जनवरी 1991 पौष 1912
विज्ञान प्रगति के
40
वर्ष
मूल्य 2.50 रु
विज्ञान प्रगति
080158
खेल और विज्ञान ...
धनुष
WILLS
गुब्बारेबाजी
विज्ञान जिनका ऋणी है

ग्राहकों के लिए खुशखबरी

विज्ञान के प्रचार-प्रसार में सी.एस.आई.आर. द्वारा प्रकाशित

विज्ञान प्रगति (हिन्दी मासिक)

अब आकर्षक साज-सज्जा में विशेष छूट के साथ उपलब्ध

- ☐ इसके एक अंक का मूल्य 2.50 रुपये और वार्षिक चन्दा 25.00 रुपये है।

परन्तु

- ☐ एक वर्ष का ग्राहक बनने पर कुल चन्दा मात्र-25.00 रुपये अर्थात 5.00 रु. की बचत
- ☐ दो वर्ष का ग्राहक बनने पर कुल चन्दा मात्र–40.00 रुपये अर्थात 20.00 रु. की बचत
- ☐ तीन वर्ष का ग्राहक बनने पर कुल चन्दा मात्र–60.00 रुपये अर्थात 30.00 रु. की बचत

विशेष छूट का लाभ उठायें और चन्दे की राशि शीघ्र भेजें।

- ☐ यदि आप मनीआर्डर द्वारा शुल्क भेजें तो अपना नाम व पता बड़े व साफ-साफ अक्षरों में लिखें। मनीआर्डर कूपन पर भी अपना पूरा पता पिनकोड नं. सहित लिखना न भूलें।
- ☐ चैक तथा डिमान्ड ड्राफ्ट ''प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली'' के नाम भेजें।
- ☐ विज्ञान प्रगति का प्रथम अंक वी.पी. द्वारा भी भेजा जा सकता है। यदि पाठक यह लिखित आश्वासन भेजें कि वह विज्ञान प्रगति के शुल्क से अतिरिक्त वी.पी. का खर्चा सहित अपनी वी.पी. छुड़ा लेंगे।
- ☐ अधिक जानकारी के लिये सम्पर्क करें :-

वरिष्ठ बिक्री एवं वितरण अधिकारी प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय
सी.एस.आई.आर., हिलसाइड रोड नई दिल्ली-110 012

बच्चों को इंटैलीजैंट बनाने वाला अद्भुत नॉलिज बैंक

बच्चों के मस्तिष्क में घुमड़ने वाले हजारों अनबूझे 'क्यों और कैसे' किस्म के प्रश्नों के उत्तर बताने वाला एक अनूठा प्रकाशन

चिल्ड्रन्स नॉलिज बैंक

(छः खण्डों में)

गिफ्ट बॉक्स पैकिंग में

बच्चे के मस्तिष्क के लिए एक टॉनिक

जैसे ही बच्चा सोचना-समझना शुरू करता है उसमें अपने आसपास की दुनिया के बारे में जानने की जिज्ञासा बढ़ती जाती है। उसके मस्तिष्क में हजारों 'क्यों और कैसे' किस्म के प्रश्न घुमड़ने लगते हैं। यदि उसे उचित समय पर इन प्रश्नों के उत्तर मिल जाते हैं तो उसका मानसिक विकास तेजी से होता है। इसके विपरीत उचित समय पर प्रश्नों के उत्तर न मिलने पर वह विषयों को समझने के बजाय उन्हें रटने लगता है। इससे उसका मानसिक विकास रुक जाता है और वह न केवल शिक्षा के क्षेत्र में बल्कि जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी पिछड़ जाता है।

प्रश्नों में से कुछ की झलक

☐ महिलाओं की दाढ़ी क्यों नहीं होती? ☐ क्या दैत्याकार मनुष्य भी पृथ्वी पर रहते हैं? ☐ शनि के छल्ले क्या हैं? ☐ क्या अन्य ग्रहों से लोग पृथ्वी पर आते हैं? ☐ क्या संसार में नरभक्षी लोग भी रहते हैं? ☐ आकाश नीला क्यों दिखाई देता है? ☐ हाइड्रोजन बम क्या है? ☐ हमारे मुंहासे क्यों हो जाते हैं? ☐ टेस्ट ट्यूब बेबी क्या है? ☐ मिस्र के पिरामिड क्यों बनाये गये? ☐ हमें सपने क्यों दिखाई देते हैं? ☐ मौत की घाटी क्या है? ☐ मरने के बाद भी आदमी के बाल क्यों बढ़ते रहते हैं? ☐ क्या कोई पहाड़ी भी रंग बदल सकती है? ☐ डिब्बाबंद फल सड़ते क्यों नहीं?

विशेषताएं

- 50 लाख से भी अधिक पाठकों की पसंद
- विद्यालयों में पुरस्कार के रूप में वितरित
- प्रत्येक खण्ड अपने आप में संपूर्ण
- सभी लाइब्रेरियों की पसंद
- प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं द्वारा प्रशंसित

"...विषय-वस्तु, साज-सज्जा और छपाई की दृष्टि से निश्चय ही ये पुस्तकें बालकों के ज्ञानवर्धन में सहायक सिद्ध होंगी......."

डा. सैयद असद अली, निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली

"....मैं इन पुस्तकों को बाल-साहित्य के क्षेत्र में एक अभूतपूर्व योगदान मानता हूं। इनकी न केवल विषय-वस्तु अपितु चित्र-सज्जा भी प्रशंसनीय है......."

प्रो. बी. गांगुली, अध्यक्ष, विज्ञान एवं गणित विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

आधारभूत विषय

■ पृथ्वी एवं ब्रह्मांड ■ आधुनिक विज्ञान, वनस्पति एवं पशु-पक्षी जगत ■ आविष्कार एवं खोजें ■ खेल एवं खिलाड़ी ■ आश्चर्य एवं रहस्य ■ सामान्य ज्ञान ■ मानव शरीर ■ भौतिक-रसायन एवं जीव विज्ञान आदि

6 खण्डों की इस शृंखला में हैं.....

- 1300 से भी अधिक बड़े आकार के पृष्ठ
- 1100 से अधिक चित्र
- 5,00,000 से भी अधिक शब्दों की पाठ्य-सामग्री
- 1050 जिज्ञासा भरे प्रश्नों के सुबोध उत्तर

मूल्य:

पेपरबैक विद्यार्थी संस्करण: 28/-
डाकखर्च: 6/- प्रत्येक

पूरा सैट: 168/- डाकखर्च माफ

Also available in English

अंग्रेजी तथा 8 भारतीय भाषाओं में प्रकाशित

अपने निकट के या रेलवे तथा बस-अड्डों पर स्थित बुक-स्टालों पर मांग करें। न मिलने पर वी.पी.पी. द्वारा मंगाने का पता:

पुस्तक महल, खारी बावली, दिल्ली-110006

10-B नेताजी सुभाष मार्ग, दरिया गंज, नई दिल्ली-110002

शाखा: 22/2 मिशन रोड, बंगलौर-560027.

आर. गुप्ता कृत लाभदायक पुस्तकें

Rs 75

ASSISTANTS' GRADE EXAM Prev. Papers
Rs 25

Rs 70

Rs 25

Rs 25

Rs 35

Rs 15

Rs 20

Rs 20

Rs 25

Rs 35

Rs 60

Rs 35

Rs 30

Rs 35

Rs 70

Rs 70

Rs 18

Rs 15

Monthly Magazine: Annual Subs. Rs 24

वी पी पी द्वारा पुस्तकें मंगाने के लिए 15 रु. का अग्रिम मनीआर्डर भेजें :

रमेश पब्लिशिंग हाउस 4457, नई सड़क, दिल्ली-6

'विश्व घटना चक्र' की नमूना प्रति मंगाने के लिए कृपया 3 रु. का मनीआर्डर भेजें।

ग्राहकों के लिए सूचना

विज्ञान प्रगति की एक प्रति का मूल्य 2.50 रुपये है। इस पत्रिका का वार्षिक मूल्य 25.00 रुपये, द्विवार्षिक मूल्य 40.00 रुपये, त्रिवार्षिक मूल्य 60.00 रुपये हैं। अर्थात् आप **एक वर्ष, दो वर्ष, तीन वर्ष का ग्राहक बनकर क्रमशः 5.00 रुपये 20.00 रुपये एवं 30.00 रुपये की बचत कर सकते हैं।** चन्दे की राशि अग्रिम रूप से मनी आर्डर, डिमांड ड्राफ्ट अथवा चैक द्वारा **प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय**, हिलसाइड रोड, नई दिल्ली-110012 को भेजी जानी चाहिये,

विज्ञान प्रगति की पहली प्रति वार्षिक/द्विवार्षिक/त्रिवार्षिक ग्राहकों को, अगर वे चाहते हैं तब वी.पी.पी. से भेजी जा सकती है। वी.पी.पी. छुड़ाते समय एक/दो/तीन वर्ष के चन्दे की पूरी राशि तथा वी.पी.पी. शुल्क देना होगा।

चैक भेजते समय दिल्ली के बाहर के चैक पर, कृपया बैंक कमीशन 3.50 रु. भी जोड़ लें।

ग्राहक फार्म

मेरा नाम विज्ञान प्रगति के ग्राहकों/नए ग्राहकों की सूची में वर्ष के लिए (मास.... 199 से... 199 तक दर्ज कर लीजिए।

इसके लिए मनी आर्डर/बैंक ड्राफ्ट

क्रमांक.................दिनांक.......................से

"प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, सी.एस.आई.आर.," नई दिल्ली-110012 के नाम भेजे जा रहे हैं।

-हस्ताक्षर

पूरा पता ______________________

____

____

____

वरिष्ठ बिक्री और वितरण अधिकारी,
'विज्ञान प्रगति'
पी.आई.डी. हिलसाईड रोड,
नई दिल्ली-110012

विषय सूची

वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् का हिन्दी विज्ञान मासिक

वर्ष : 40 जनवरी : 1991 पौष : 1912 अंक : 1 पूर्णांक : 440

अपनी बात

जनवरी 1991

प्रमुख सम्पादक
डा. जी.पी. फोंडके

सम्पादक
दीक्षा बिष्ट

सहायक सम्पादक
मनोज कुमार पटैरिया

सम्पादन सहायक
ओम प्रकाश मित्तल

कला अधिकारी
दलवीर सिंह वर्मा

प्रोडक्शन अधिकारी
रत्नाम्बर दत्त जोशी

बिक्री और वितरण अधिकारी
आर.पी. गुलाटी
टी. गोपाल कृष्ण
एल.के. चोपड़ा
मो. आसीफ अख्तर

सहायक
फूल चन्द
बी.एस. शर्मा

आवरण
नीरू शर्मा
पारदर्शियां : नरेश सूरी

टेलीफोन : 585359 और 586301

लेखकों के कथनों और मतों के लिये प्रकाशन और सूचना निदेशालय उत्तरदायी नहीं है।

एक अंक का मूल्य : 2.50 रुपये
वार्षिक मूल्य : 25.00 रुपये

विज्ञान प्रगति वर्ष 1991 के प्रारम्भ के साथ कई उतार-चढ़ावों के बाद अपने 40 वें वर्ष में प्रवेश कर रही है। विज्ञान प्रगति का प्रकाशन अगस्त 1952 में घरेलू और छोटे उद्योगों के लिये मासिक अनुसंधान समाचार सेवा के रूप में आरंभ हुआ था ताकि देश भर में फैली सी.एस.आई.आर. की तत्कालीन ग्यारह प्रयोगशालाओं और दूसरी अनुसंधान संस्थाओं के वैज्ञानिक तथा तकनीकी कार्यों के उपयोगों को आम आदमी तक राष्ट्रभाषा के माध्यम से पहुंचाया जा सके, घरेलू और छोटे उद्योगों में लगे हुये लोगों की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके। विज्ञान प्रगति के अक्तूबर 1952 अंक में स्पष्ट रूप से बताया गया है "अनुसंधान-समाचार-सेवा के लिये विज्ञान प्रगति देश की अनुसंधान संस्थाओं की मदद पर निर्भर है। वह देश में फैले हुये उन संगठनों की सहायता और सहयोग पर भी निर्भर है जो वर्षों से घरेलू और छोटे उद्योग-धन्धों की भलाई के लिये काम कर रहे हैं और जो देश के उद्योग के इस बहुत महत्वपूर्ण हिस्से की समस्याओं को बड़ी गहराई के साथ जानते और समझते हैं।"

सन् 1963 तक विज्ञान प्रगति अनुसंधान समाचार सेवा के रूप में प्रकाशित होती रही और वर्ष 1964 में विज्ञान प्रगति को लोकप्रिय मासिक पत्रिका का रूप दिया गया।

जनवरी 1964 अंक में केन्द्रीय सरकार के तत्कालीन शिक्षा मंत्री और सी.एस.आई.आर. के उपाध्यक्ष श्री एम.सी. छागला का वक्तव्य छपा है, "मुझे जान कर बहुत प्रसन्नता हुई है कि सी.एस.आई.आर. "विज्ञान प्रगति" को नया रूप दे रही है। इसका उद्देश्य शिक्षित जन-साधारण में विज्ञान का प्रचार करना है। जहां तक विज्ञान का प्रश्न है मैं सचमुच साधारण जन हूं और मैं समझता हूं कि मैं एक शिक्षित व्यक्ति हूं। अतएव यह पत्रिका उन लोगों के लिये है, जिनकी संख्या हमारे देश में लाखों है।"

तब से आज तक विज्ञान प्रगति लोकप्रिय विज्ञान मासिक पत्रिका के रूप में निरन्तर प्रकाशित हो रही है। इस लम्बे समयान्तराल में विज्ञान जगत में विज्ञान प्रगति ने अपनी एक विशिष्ट साख बनाई हुई है। यह एक खुशी की, समाधान की बात है कि आज भी प्रकाशित हो रही हिन्दी की सभी पत्रिकाओं में विज्ञान प्रगति का अपना एक विशिष्ट स्थान है जो हमारे और आपके लिये गौरवपूर्ण बात है।

ये तो हुयीं अतीत की बातें। यद्यपि इनको आज दोहराना अनुचित नहीं है लेकिन यदि हम पुरानी यादों को ही संजोये रहें तो "विज्ञान" की हर घड़ी हो रही "प्रगति" को आपके सामने रखने का, हम अपना कर्तव्य नहीं निभा पायेंगे। यही कारण है कि भूतकाल की इन सब घटनाओं की याद जगाते हुये हम भविष्य की ओर दृष्टि लगाये बैठे हैं। हम न केवल आपकी अपेक्षाओं को पूरा करने के लिये चिंतित हैं बल्कि इन अपेक्षाओं को सरासर ऊंचा उठाने के लिये भी प्रयत्नशील हैं।

इसी अंक के साथ पत्रिका को और अधिक आकर्षक बनाने हेतु हमने कुछ नये आयामों का प्रयोग किया है। आपको विज्ञान जगत में हो रही विविध घटनाओं, नये विचारों, आधुनिक प्रयोगों और इस पर आधारित तकनीकों के नवीनतम आविष्कारों से परिचित कराने की हार्दिक इच्छा ही हमारे इन प्रयासों का आधार है। हमारा यह प्रयास अपनी कसौटी पर कहां तक खरा उतरा है, इस पर आप अपने विचारों से हमें अवगत करायेंगे ही। इस पर आपके विचार सदैव अपेक्षित हैं।

नववर्ष मंगलमय हो।

नये उपहार

दीपावली अंक पटाखे मिश्रित कवर चित्र अन्य स्तम्भों से ज्यादा अच्छा एवं आकर्षक प्रतीत हुआ। पत्रिका के प्रत्येक लेख एवं स्तम्भ मुझे बहुत अच्छे लगे।

मख्यतः "द मान्सटर", "प्रश्नमंच" प्रतिभा के अन्तर्गत अंकों के जादूगर "कापरेकर" के बारे में परिचय विशेष सराहनीय रहा। विज्ञान विकास अर्थात विज्ञान प्रगति एक माह उपरान्त अपने एक नये वर्ष में पदार्पण कर रही है। हम पाठक गण आपसे यही उम्मीद रखते हैं कि प्रति वर्ष नये वर्ष के उपहार के रूप में कोई नई सामग्री पत्रिका में मिश्रित करेंगे।

[निरंजन कुमार, चौरसिया, सुल्तानपुर, उ.प्र.]

बधाई

मैं आपकी पत्रिका "विज्ञान प्रगति" का 5 साल पुराना पाठक हूं। मुझे इस पत्रिका के माध्यम से अनेकों हितकारी स्तम्भ तथा लेख पढ़ने को मिलते हैं जो मानस पटल पर एक बार पढ़ने पर ही आच्छादित हो जाते हैं। मैं इस पत्रिका द्वारा देश-विदेश में घटित विज्ञान की घटनाओं का ज्ञाता हो जाता हूं। कभी-कभी इस पत्रिका में इतने सुन्दर लेख छपते हैं कि जिन्हें पढ़कर हृदय प्रफुल्लित हो उठता है। समझ में नहीं आता कि किस तरह "विज्ञान प्रगति" के लिये किन शब्दों से प्रशंसा करूं। पत्रिका मिलते ही ऐसा लगता है कि कैसे प्रशंसा करूं। प्रशंसा के लिये मेरा शब्द कोश खाली हो जाता है कोई शब्द नहीं रह जाता है। इस पत्रिका को एक अच्छे मार्ग पर खड़ा करने के लिये आपको मेरी ओर से बधाई।

[हरीसिंह, गन्ना विकास विभाग, उत्तर प्रदेश और अमर नाथ शर्मा, पंच मंदिर रोड, मधुपुर, बिहार]

सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता

मैं ने नवम्बर 1990 अंक पढ़ा। मुझे यह इतना अच्छा लगा कि मैं शब्दों में वर्णन नहीं कर सकता हूं। आमुख कथा "पटाखों की निराली दुनिया" पढ़ कर पटाखों के बारे में दुर्लभ जानकारी प्राप्त हुई। मुख्य पृष्ठ ही इतना आकर्षक था कि किसी को भी बरबस अपनी ओर आकर्षित कर सकता है। 1990 से पत्रिका में जो महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये हैं उससे इस पत्रिका में चार चांद लग गये। इसकी प्रशंसा करना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है। इस पत्रिका ने मुझ पर ऐसा जादू सा कर दिया है कि मैं एक ही बार में सारी पत्रिका पढ़ डालता हूं। मैं चाहता हूं कि आप इसमें सामान्य ज्ञान संबंधी प्रतियोगिता शुरू करें जिससे मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञानवृद्धि भी हो सके।

[संजीव कुमार, इटावा, उ.प्र.]

नयनाभिराम अंक

आपके सुप्रसिद्ध मासिक "विज्ञान प्रगति" का मैं विगत दो वर्षों से नियमित पाठक हूं लेकिन यह मेरा पहला खत है। लगता है इस पत्रिका को भगवान का वरदान प्राप्त है, ऐसे भाता है यह हर विज्ञान प्रेमियों को। इस पत्रिका का यह पटाखों के रंगों में लिपटा अंक इतना नयनाभिराम लगा कि जी चाहता है हमेशा ही देखता रहूं, इस अंक को, इसके चित्रों को। इसमें प्रकाशित कथा "पटाखों की निराली दुनियां", "गुणों की खान धान", "कितना उचित है यह आकर्षण", "पृथ्वी की कहानी" काफी ज्ञानवर्धक लगा। प्रश्न मंच से तो इस पत्रिका में जैसे चार चांद लग जाता है। बस खलता है तो "हम सुझायें आप बनायें" स्तंभ की कमी। अगर यह स्तम्भ भी जारी रहे तो बहुत अच्छा रहेगा।

[सत्य सिंधु "सलिल", सीतामढ़ी]

सराहनीय स्तम्भ

मुझे नवम्बर 1990 का अंक मिला यह अंक काफी रोचक एवं ज्ञानवर्द्धक लगा। विज्ञान प्रगति की जितनी भी प्रशंसा की जाये उतनी ही कम होगी। मुझे यह कहते हुये बड़ी प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है कि वर्ष 1990 की प्रत्येक माह की पत्रिकाओं में जो आपने नये स्तम्भों का चयन किया है, वे वास्तव में सराहनीय हैं। विशेष रूप से इसका मुख पृष्ठ ही एक अनदेखे पाठक को अपनी ओर उसे खरीदने के लिये मजबूर कर देता है। आपकी इस पत्रिका की मैं जितनी भी प्रशंसा करूं वह कम है। इस पत्रिका को मैं हाथ में लेता हूं तो एक ही सांस में पढ़ डालता हूं। यह अंक अब तक पढ़े गये अंकों में सर्वश्रेष्ठ प्रतीत हुआ।

[नसीम अखतर, म.नं. 4 ख 8 मधुबन कालोनी, बासनी, जोधपुर (राज.) और मनोज कुमार यादव, दुर्गावती यादव, स्टेशन पारा सक्ती, बिलासपुर (म.प्र.)- 495 689]

सबसे अधिक पाठक

मैं विज्ञान प्रगति का 26 माह से नियमित पाठक हूं। वैसे तो सम्पूर्ण पत्रिका ज्ञान का भण्डार है परन्तु प्रश्न मंच, साहित्य परिचय एवं हम सुझायें आप बनायें तो मुझे अत्यधिक पसंद हैं।

हमने अपने कस्बा बुढ़ाना में एक पुस्तकालय (सरस्वती पुस्तकालय) खोल रखा है। जिसकी स्थापना 11.9.88 में हुई थी। इन दो वर्षों से अधिक समय में, मैंने अपने रिकार्ड द्वारा यह देखा कि विज्ञान संबंधी अनेक पत्रिकाओं में किस पत्रिका को हमारे पाठक सदस्य अधिक पसन्द करते हैं तो मुझे बड़ी खुशी हुई जब मैंने पाया कि "विज्ञान प्रगति" ही एक मात्र ऐसी पत्रिका है जो अत्यधिक पसन्द की जाती है। सबसे अधिक पाठक इस पत्रिका के हैं। हमारे छोटे से कस्बे में लगभग 100 पाठकों द्वारा प्रतिमाह इस पत्रिका को पढ़ा जाता है। इसके अलावा जब से आपने इसकी साज-सज्जा में परिवर्तन किया है तब से यह बहुत आकर्षक लगने लगी है।

[नवीन कुमार गर्ग, बुढ़ाना, मुजफ्फरनगर, उ.प्र.]

अगले अंक के आकर्षण

पूरे हुये ध्रुव के पांच वर्ष
खराब गुर्दे का सहारा
आधुनिक अंक विधा का जन्म?
एवं सभी स्थायी स्तम्भ

प्रेरणादायक अंक

विज्ञान प्रगति का नवम्बर अंक मिला, आद्योपांत पढ़ कर मन प्रसन्न हो गया। अनेक लेख प्रेरणादायक जीवनोपयोगी, मनोरंजक और ज्ञानवर्धक हैं। विविध विषयों से संबंधित और काफी सज-धज के साथ प्रस्तुत करने से यह अंक अत्याधिक प्रभावी बन पड़ा है, इसकी सामग्री काफी उपयोगी रही है।

जनवरी, 1985 से नियमित पाठक होने के कारण पत्रिका का अवलोकन करने पर अंक प्रति अंक पत्रिका का स्तर ऊंचा उठता जा रहा है। पत्रिका का सबसे चर्चित, उपयोगी, मनोरंजक, चिर-परिचित स्तम्भ "हम सुझायें आप बनायें" को नियमित करने का प्रयत्न करें। यह पत्रिका विज्ञान के छात्र/छात्राओं के लिये परीक्षोपयोगी और ज्ञानवर्धक है। इसका आवरण पृष्ठ पाठकों को आकर्षित करने वाला है।

[सुभाष चन्द पाण्डेय, रवीन्द्र नगर, पो.-खरिका, लखनऊ ; कु. शान्ति, नीरा, तान्या और ज्योति कुटियाल, धारचूला (पिथौरागढ़) और एम. शंकर लाल शर्मा, गुरुजी गली, डीडवाना (राज.)]

समुद्र की सैर

मैं पुस्तकों को पढ़ने के लिये लालायित रहता हूं। प्रत्येक तरह की पत्रिकाएं पढ़ना मेरा शौक है। उस दिन मैं अन्य पुस्तक खरीद रहा था तो मेरी नजर विज्ञान प्रगति पर पड़ी। नवम्बर, 90 अंक की पठनसामग्री द्वारा समुद्री जलज में बैठकर ज्ञान-विज्ञान सहित शिक्षा रूपी सागर की अथाह सैर हुई। सच मानिये पत्रिका, पुस्तकों के उपभोक्ता बाजार में ऐसी ही अनेक पुस्तकों की आवश्यकता है। वस्तुतः "विज्ञान प्रगति" में उचित सामग्री व मनोरंजन सहित सभी जानकारियां विषय अनुकूल उपलब्ध हैं। अंग्रेजी रहित विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करना मुश्किल है किन्तु पुस्तक में उल्लेखित भाषा सामग्री के आधार से व्याप्त कुविचार का खण्डन सरलता से किया जा सकता है। प्रत्येक सार व विषय अपने-अपने में चमक-दमक से परिपूर्ण रहा।

[मोहन लाल कुकरेजा, नेहरू नगर, नई दिल्ली- 65]

दुर्लभ रत्न

समयानुकूल प्रकाशन, सामयिक विषय वस्तु और यथाशीघ्र हम तक पत्रिका पहुंचाने हेतु .... पाठकों की ओर से ढेर सारी शुभकामनायें स्वीकार करें। मुझे विज्ञान में बहुत रुचि है। मैं लगभग 10 वर्षों से इसका नियमित पाठक हूं। मेरे पास कम से कम 130 प्रतियां उपलब्ध हैं। मैं लगभग दस वर्षों से देखता और पढ़ता चला आ रहा हूं कि इसका हर अंक एक दुर्लभ रत्न है जिसमें एक नवीनता, रहस्य और एक दुर्लभ तेज छिपा होता है जिससे हर पाठक आलोकित हो जाता है। विज्ञान प्रगति का नवम्बर, 1990 का अंक प्राप्त हुआ। इस पत्रिका की प्रशंसा करना इस पोस्ट कार्ड में संभव नहीं। इस पत्रिका की जितनी भी प्रशंसा की जाये उतनी ही कम है।

[सुनील कुमार मिश्रा, भावनाथपुर टाऊनशिप, जिला-पालमाऊं, बिहार]

उत्कृष्ट रचनायें

विज्ञान प्रगति का नवम्बर अंक अपेक्षाकृत पहले प्राप्त हुआ। सर्वप्रथम आमुख कथा "पटाखों की निराली दुनिया" के अन्तर्गत तथ्यपरक और दुर्लभ जानकारी प्राप्त हुई पटाखों के बारे में। "गुणों की खान धान" में वर्तमान जीवन में धान की उपयोगिता और महत्व से अवगत हुआ। "कितना उचित है यह आकर्षण" तथा "कैसे बने खनिज और जीवाश्म?" उपयोगी और ज्ञानवर्धक लगे। इसके अलावा अन्य सामग्री रोचक व पठनीय रही। ऐसी उत्कृष्ट रचनाओं के प्रकाशन हेतु बहुत-बहुत धन्यवाद।

[प्रणय मिश्र, मुंगेर लाइन कालोनी, जमालपुर, (बिहार)- 811 214]

हम सुझायें आप बनायें

विज्ञान प्रगति के नवम्बर की प्रति पाकर अति प्रसन्नता हुई इसके सभी लेख अच्छे लगे। इसके लिये प्रशंसा अधिक नहीं कर सकता क्योंकि मैं इसका बहुत ही पुराना पाठक हूं। विज्ञान प्रगति की प्रशंसा के लिये मेरे पास शब्द नहीं हैं। परन्तु मुझे दो बातें बहुत कष्टदायक प्रतीत हो रही हैं; (1) आप इसमें विज्ञापन बहुत छाप देते हैं। प्रयत्न करें कि विज्ञापन कम से कम छापें; (2) विज्ञान प्रगति में आप "हम सुझायें आप बनायें" नियमित रूप से दें।

[आलोक कुमार, मानस नगर (रेलवे कालोनी), मुगल सराय, वाराणसी]

ज्ञानगंगा

मैं पांच वर्षों से विज्ञान प्रगति का पाठक हूं और बहुत साहस के साथ आपसे यह प्रश्न करना चाहता हूं कि आप विज्ञान प्रगति में कौन सा ऐसा जादू डाल देते हैं जिसे पाठक मात्र एक बार पढ़ने से ही इसका दीवाना हो जाता है। हम पाठकों को इससे इतना ज्ञान मिलता है जैसे कोई एक सच्चे महर्षि अपने शिष्यों में ज्ञान की गंगा बहाते हैं। पर मुझे तो बस यही कहना है कि आप अवश्य कोई जादू जानते होंगे।

[मनोज कुमार मिश्र, ग्राम- पोस्ट. पीटरी, (भोजपुर), बिहार]

नया चमत्कार

आपकी अवर्णनीय विज्ञान प्रगति पत्रिका का नियमित पाठक हूं। मुझे इस पत्रिका का ऐसा इन्तजार रहता है कि जैसे पपीहे को स्वाती की बूंद का। इस पत्रिका के किसी एक अंक का वर्णन करना दूसरे के प्रति अन्याय होगा। इस वर्ष पत्रिका में हुये परिवर्तन से यह अनुमान लगाता हूं कि जनवरी, 1991 वाली पत्रिका भी कोई नया चमत्कार ही लेकर आयेगी। कृपया आप पत्रिका में अगले अंक की थोड़ी सी झलक अवश्य दिया करें।

[विनोद कुमार मिश्र, सन्दहां, मानी कला, जौनपुर, उ.प्र.]

उड़ान भरिये खुली हवा में

हसन जावेद खान

क्या आपने कभी आकाश में उड़ान भरते हुये मनमोहक रंग-बिरंगे गुब्बारों को देखा है? एक-आध उड़ता हुआ गुब्बारा तो आपने अवश्य ही देखा होगा। आपने एक गैस वाला गुब्बारा खरीदा, डोरी अभी ठीक से पकड़नी ही थी कि हाथ से छूट गई और गुब्बारा कह गया अलविदा और आप खड़े के खड़े रह गये। यदि ऐसे ही सैकड़ों रंग-बिरंगे गुब्बारे आकाश में उड़ रहे हों तो ऐसे आकर्षक दृश्य को देखकर किसका मन खुशी से नहीं झूमेगा। और किसकी इच्छा नहीं होगी इन गुब्बारों पर सवार होकर पृथ्वी की सतह से ऊपर उठने की, आकाश की ऊंचाइयों को छूने की और उन्हीं ऊंचाईयों से पक्षियों की भांति पृथ्वी के मनमोहक रूप को निहारने की।

कुछ इसी प्रकार की इच्छाओं से प्रेरित होकर आज से लगभग दो सौ आठ वर्ष पूर्व मोन्टगोल्फियर बन्धुओं ने प्रथम गुब्बारा आकाश में भेजने का प्रयत्न किया था और उनकी सफलता के केवल दो वर्ष बाद 1783 में जीन रोजियर नामक एक वैज्ञानिक को गुब्बारे में यात्रा करने वाले विश्व के प्रथम मानव का सम्मान मिला। उस समय के लिये यह एक आश्चर्यजनक घटना अवश्य थी। लेकिन आज खुली हवा में उड़ान भरने की यह घटना एक दिलचस्प खेल और शौक का रूप धारण कर चुकी है। विश्व भर में अनेक लोग इस खेल से हवा में उड़ने की अपनी इच्छा पूर्ति करते हैं और करें भी क्यों न? क्योंकि मनुष्य की आकाश में उड़ने की कहानी उतनी ही पुरानी है जितना मनुष्य का अपना इतिहास।

दिल्ली में आयोजित गुब्बारेबाजी का मनोरम दृश्य।

हालांकि मनुष्य की यह इच्छा विमान के आविष्कार से कुछ पूरी भी हुई। परन्तु विमान में कैद होकर चालक द्वारा नियंत्रित दिशा में तेज गति से उड़ने में वो मजा कहां जो एक गुब्बारे में बैठ कर खुली हवा में तैरने में है।

सदियों पहले आर्कीमिदीज के बताये हुये वस्तुओं के तैरने से संबंधित सीधे-साधे सिद्धांत के आधार पर उड़ने वाले गुब्बारों का प्रयोग आज कई वैज्ञानिक परीक्षणों के लिये किया जाता है। विज्ञापनों के लिये विशालकाय गुब्बारों का प्रयोग तो अब आम हो गया है। साथ ही यह एक प्रचलित खेल भी है। परन्तु जब मोन्टगोल्फियर बन्धुओं ने गुब्बारा उड़ान की प्रथा प्रारंभ की तो उस समय वैज्ञानिकों और सैनिकों ने इसका भरपूर प्रयोग किया। इनमें उड़ान भर कर ऊंचाई से दुश्मन की हरकतों पर नजर रखी जा सकती थी और दुश्मन के इलाके का जायजा भी लिया जा सकता था।

हवा से भरे गुब्बारे उड़ने को तैयार

दूसरी ओर वैज्ञानिकों ने पाया कि गुब्बारों की सहायता से परीक्षण संबंधी उपकरण तथा औजारों को ऊंचाइयों तक पहुंचाया जा सकता है। इससे उन्हें पृथ्वी के वायुमण्डल की जांच करने के अच्छे अवसर प्राप्त हुये। कुछ समय पश्चात गुब्बारों में भरी जाने वाली गर्म हवा के स्थान पर हाइड्रोजन गैस भरी जाने लगी। क्योंकि यह गैस बहुत ही हल्की थी इससे गुब्बारे और भी अधिक ऊंचाई तक उड़ने लगे। लेकिन इसका एक भयंकर परिणाम यह भी हुआ कि ऊंचाइयों पर आक्सीजन की कमी और अत्यधिक ठंड के कारण कई वैज्ञानिक अपनी जान गवां बैठे। लेकिन गुब्बारों में हाइड्रोजन गैस का प्रयोग भी खतरे से खाली न था। इसलिये विकल्प के रूप में हाइड्रोजन का स्थान अज्वलनशील हीलियम गैस ने ले लिया।

विमानों के आगमन से धीरे-धीरे गुब्बारों की लोकप्रियता क्रम होने लगी। चूंकि विमान, गुब्बारों से हर बात में बेहतर थे। उन्हें किसी भी दिशा में मोड़ा जा सकता था और वे तेज गति से हवा के विपरीत भी चल सकते थे। परन्तु कुछ वैज्ञानिक परीक्षणों में गुब्बारों का प्रयोग जारी रहा। लेकिन 50वें दशक के उत्तरार्द्ध में जोखिम भरे काम करने के शौकीन लोगों को गुब्बारेबाजी को खेल का रूप देने की सूझी। इसका एक कारण यह भी था कि उस समय प्रभावी गैस बर्नर बनने लगे थे और बाहरी खोल बनाने के लिये मजबूत और टिकाऊ संश्लेषित पदार्थों का आविष्कार भी हो चुका था। इससे गुब्बारेबाजी को एक नई दिशा मिली। आजकल गुब्बारों का निर्माण एक विशेष प्रकार के रिपस्टॉप नायलॉन फैब्रिक या कपड़े से किया जाता है। इस कपड़े पर पालीयूरीथीन की परत चढ़ाई जाती है जिससे ये कपड़ा छिद्रहीन हो जाता है और साथ ही सूर्य की पराबैंगनी किरणों से भी इसका बचाव हो जाता है। इस प्रकार बनाये गये विशालकाय गुब्बारों में एक साथ चार व्यक्ति तक यात्रा कर सकते हैं।

गुब्बारे को ऊपर उड़ाने के लिये उसमें एक पंखे द्वारा हवा भरी जाती है और इस हवा को एक बर्नर द्वारा गर्म किया जाता है। गर्मी पहुंचाने के लिये प्रोपेन का ईंधन के रूप में प्रयोग किया जाता है। प्रोपेन तरल रूप में उच्च दाब पर टैंकों में भरी रहती है और लचीली नलियों द्वारा इसे बर्नर तक पहुंचाया जाता है। कणीकृत प्रोपेन से 2-3 मीटर लंबी ज्वाला निकलती है। भारत में ईंधन के रूप में द्रवीभूत पेट्रोलियम गैस यानि एल पी जी का प्रयोग किया जाता है। गुब्बारे का वह हिस्सा जो बर्नर के संपर्क में आता है उसे अग्निरोधी कपड़े से बनाया जाता है जिसे "नोमैक्स" कहते हैं। लीजिये तैयार है गुब्बारा, गुब्बारेबाजी के लिये।

गुब्बारा आकाश में उड़ सकता है, लेकिन प्रश्न अब यह है कि उसकी इस उड़ान के पीछे कौन सा सिद्धांत छिपा है। यह आर्कीमिदीज का वह सिद्धांत है जिसके अनुसार कोई वस्तु पानी की सतह पर तैरने लगती है। इस सिद्धांत के अनुसार जब कोई वस्तु किसी द्रव में डुबोयी जाती है तो जितना द्रव बर्तन से बाहर गिरता है उतना ही दबाव ऊपर की ओर वस्तु पर पड़ता है। यदि वस्तु का भार, वस्तु द्वारा हटाये गये द्रव के भार के बराबर है तो वह तैरने लगती है, यदि अधिक है तो डूब जाती है, और यदि कम है तो वह ऊपर उठती है तब तक जब तक वस्तु का भार हटाये गये द्रव के भार के बराबर न हो जाये।

इसी प्रकार जब गुब्बारे के अंदर की हवा को गर्म किया जाता है तो उस हवा का भार, चारों ओर की हवा, जिसे वह विस्थापित करती है, के भार से कम हो जाता है और गुब्बारा हवा में ऊपर उठता है। गुब्बारे के अंदर की हवा को बर्नर की सहायता से लगातार गर्म किया जाता है और इस प्रकार गुब्बारा ऊपर उठता जाता है।

ऊपर उठने और नीचे जाने के अलावा

गुब्बारे के अन्दर की हवा को गर्म करने के लिये प्रयुक्त प्रोपेन बर्नर का गोन्डोला में स्थापित करने से पहले अच्छी तरह परीक्षण किया जाता है इस बर्नर की लौ 2-3 मी. तक लम्बी होती है।
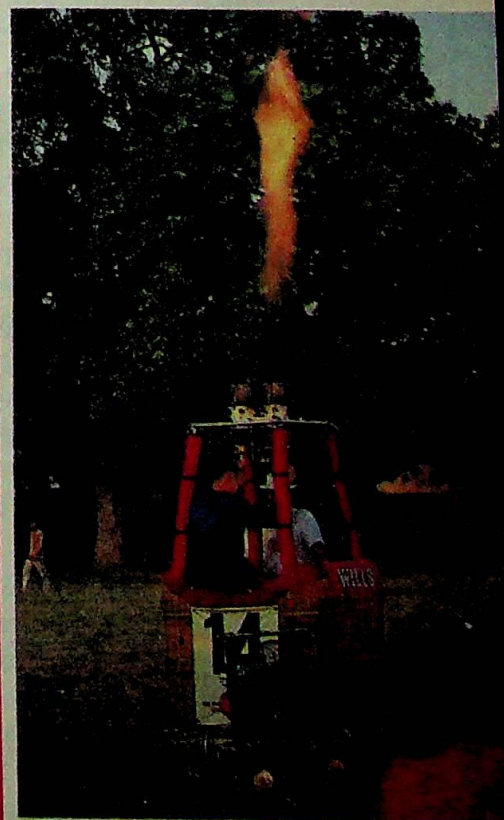
पहले गुब्बारे की पहली उड़ान
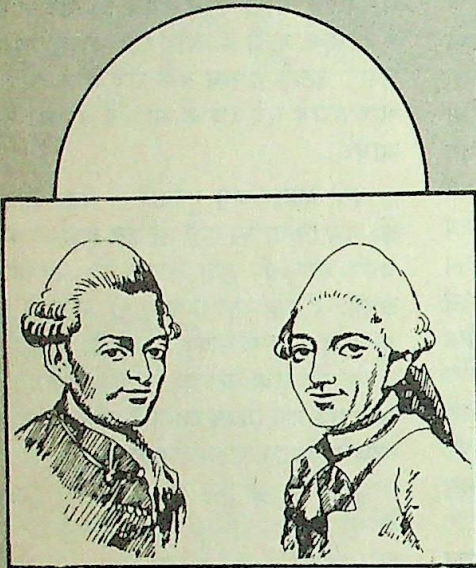
धुआं, कैसा भी हो हमेशा ऊपर की ओर जाता है और यदि वही धुआं गुब्बारे में भर दिया जाये तो गुब्बारा भी अवश्य ही ऊपर की ओर हवा में जायेगा। कुछ इस प्रकार की धारणा मन में लिये हुये 1782 में मोन्टगोल्फियर बन्धुओं ने एक छोटे से गुब्बारे को हवा में उड़ाने की चेष्टा की। इटीयेन और जोजफ मोन्टगोल्फियर, जो एक नामी कागज के व्यापारी के पुत्र थे, ने एक गुब्बारे में पूरी तरह धुआं भरा क्योंकि उनके विचार में धुयें में एक ऐसी रहस्यमयी शक्ति थी जिससे वह ऊपर की ओर जाता है। और उनकी अपेक्षानुसार गुब्बारा हवा में उड़ा भी यद्यपि उसका कारण कुछ और था।

इस पहली सफलता के बाद 5 जून, 1783 को दोनों भाईयों ने 9 मीटर व्यास का रेशम और कागज से बना हुआ गुब्बारा फ्रांस में स्थित शहर अनोने से उड़ाया और उसका नाम रखा "ग्लोब एयरोस्टेटीक"। गुब्बारा 2,000 मीटर की ऊंचाई तक उड़ा और 10 मिनट हवा में रहा। अपने अगले गुब्बारे में उन्होंने कुछ यात्रियों को भी भेजने का निश्चय किया। विश्व के पहले गुब्बारा यात्री थे एक भेड़, एक मुर्गा और एक बतख। आठ मिनट की यात्रा के बाद ये यात्री तीन किलोमीटर दूर सकुशल पृथ्वी पर लौट आये।

इन अद्भुत यात्रियों की यात्रा से प्रेरणा पाकर जीन रोजियर नामक एक वैज्ञानिक ने भी गुब्बारे में यात्रा करने की ठानी। और आखिरकार 15 अक्तूबर, 1783 को वे एक गुब्बारे में बैठकर 90 मीटर की ऊंचाई तक उड़े और 25 मिनट हवा में विचरते रहे। इस प्रकार प्रथम गुब्बारे की उड़ान सम्पन्न हुई और जीन रोजियर को प्रथम गुब्बारा यात्री होने का सम्मान प्राप्त हुआ। □

गुब्बारे की गति पर अन्य कोई नियंत्रण संभव नहीं है। हवा की दिशा के अनुसार ही गुब्बारा हवा में तैरता रहता है। गुब्बारे को नीचे की ओर उतारने के लिये अंदर की हवा को ठंडा, बर्नर की आंच को कम कर के किया जा सकता है। कभी-कभी गुब्बारे में भारी सामान जैसे रेत की बोरी आदि रख ली जाती है। एक निश्चित ऊंचाई पर पहुंच कर इस सामान को नीचे फेंक दिया जाता है जिससे गुब्बारा और ऊपर उठ जाता है। वैसे एक निपुण गुब्बारेबाज हवा की दिशा के अनुसार अपने गुब्बारे को कुछ हद तक दिशा दे सकता है।

विविध मनमोहक आकर्षक रंगों के अलावा आजकल गुब्बारे कई आकृति एवं आकार में उपलब्ध हैं। इनके आयतन के अनुसार फेडरेशन ऑफ एयरोनाटिक इंटरनेशनल ने गुब्बारों को दस किस्मों में बांटा है। एक औसत गुब्बारे का व्यास 17 मीटर, ऊंचाई 24 मीटर और आयतन
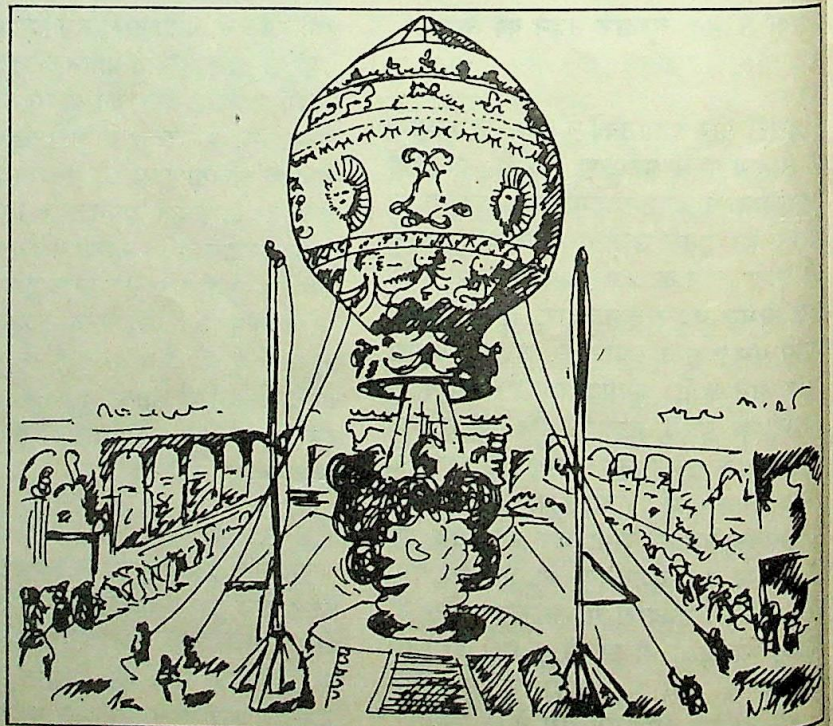
प्राचीनतम गुब्बारा

प्रसिद्ध गुब्बारेबाजः फ्रेडफील्डर, जर्मनी की गुब्बारेबाज महिला टीम की नेता एल्के क्रॉस प्रथम भारतीय गुब्बारेबाज- विश्वबन्धु गुप्ता

गत वर्ष 28 अक्तूबर को दिल्ली में छठा अन्तर्राष्ट्रीय गुब्बारा मेला आयोजित किया गया। इस प्रकार भारत में गुब्बारेबाजी के इतिहास के बीस वर्ष पूरे हुये। इस अवसर पर भारत के अतिरिक्त अन्य देशों के 18 गुब्बारेबाजों ने अपनी रोमांचकारी उड़ानों से आकाश को रंगीन कर दिया।

इस त्रिदिवसीय मेले का आयोजन बैलूनिंग क्लब ऑफ इंडिया ने किया था और इसका उद्घाटन किया अमेरिका के राजदूत विलियम जे. क्लार्क ने। मेले के अंत में गुब्बारेबाजी की तकनीक में निपुणता का प्रदर्शन करने के लिये आस्ट्रियाई टीम, जिसका नेतृत्व ईवान आन्द्रे त्रिफोनोव ने किया, को प्रथम पुरस्कार दिया गया।

इस प्रकार के अनेकों मेले भारत में पहले भी आयोजित किये जा चुके हैं और इसके पीछे हाथ है बैलूनिंग क्लब ऑफ इंडिया का। इस संस्था का उद्घाटन नवम्बर, 1970 में चन्द्रमा में कदम रखने वाले पहले व्यक्ति नील आमस्ट्रांग ने किया था। क्लब के कार्यों में सबसे बड़ा योगदान है इसके सचिव श्री विश्वबन्धु गुप्ता का और इस क्लब के निर्माण में भी उनकी अहम् भूमिका रही है। श्री गुप्ता की इस खेल में गहरी रुचि का प्रमाण हैं उनके नाम के अनेकों राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय रिकार्ड। वे पहले भारतीय हैं जिन्हें गुब्बारा उड़ाने का लाइसेंस मिला। उन्होंने 253 किमी. लंबी नौ घण्टे की लगातार उड़ान का भारतीय रिकार्ड बनाया है। इसके अलावा उन्होंने रिचर्ड बार और औलिवर होम्स के साथ तिब्बत के लेह स्थल की सर्वाधिक ऊंचाई से उड़ान भरने का विश्व रिकार्ड भी बनाया है।

बैलूनिंग क्लब ऑफ इंडिया के आज बीस सदस्य हैं जिनमें से बारह बराबर गुब्बारों में उड़ान भरते हैं। श्री गुप्ता के नेतृत्व में इस क्लब ने कई गुब्बारे मेलों का आयोजन भारत भर में किया है। इसके अलावा तीन क्रास कन्ट्री अभियान और पांच अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं का भी आयोजन किया। अब तो भारत में ये भी गुब्बारे बनने लगे हैं। पहला गुब्बारा "उड़न खटोला" पूरी तरह स्वदेशी तकनीक से बनाया गया था। उसके बाद श्री गुप्ता ने अपनी ही फैक्ट्री "बन्धु एयरोस्पेस" में गुब्बारों का निर्माण शुरू किया। एक गुब्बारे की कीमत लगभग चार लाख रुपये है। भारतीय थल सेना ने भी "फिल्लोरा" नामक गुब्बारा खरीदा है।

बैलूनिंग क्लब ऑफ इंडिया के कार्यकलापों से प्रभावित होकर यह खेल अब गुवाहाटी, बैंगलूर और कलकत्ता जैसे शहरों में भी लोकप्रिय हो रहा है। गुब्बारे में उड़ने के लिये महानिदेशक, सिविल उड्डयन से अनुमति प्राप्त करनी होती है। इसके लिये जगह, दिन, समय और उड्डयन कार्यक्रम का विवरण भी देना होता है। लेकिन सबसे पहले प्रशिक्षण लेना आवश्यक है।

2,100 घन मी. होता है। आयतन के अनुसार एक गुब्बारे में एक से सोलह तक यात्री एक साथ यात्रा कर सकते हैं। आमतौर पर ये गुब्बारे 60 से 180 मीटर की ऊंचाई पर उड़ाये जाते हैं। और जहां तक उनकी गति का प्रश्न है तो हवा की गति पर निर्भर करती है।

गुब्बारेबाजी अभी विश्व में बहुत लोकप्रिय नहीं हो पायी है। जिसका कारण
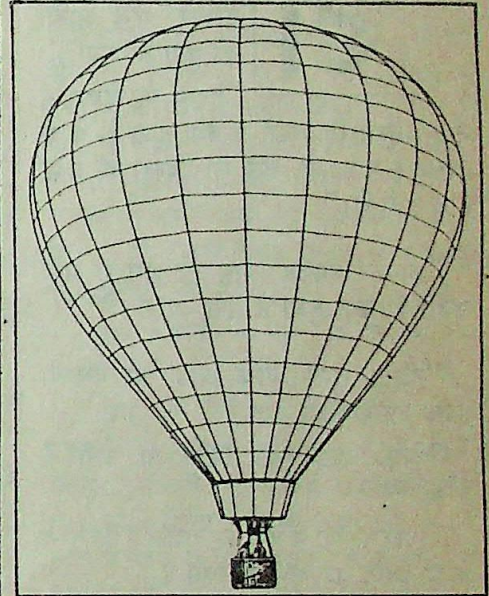
गर्म हवा का गुब्बारा

संभवतः इनकी ऊंची लागत है। विश्व में इस समय लगभग 6,000 गुब्बारे हैं। खतरनाक खेल होने के बावजूद भी इसे हवा में खेले जाने वाला सबसे सुरक्षित खेल समझा जाता है। यूं भी इसमें बहुत ही कम दुर्घटनाओं का विवरण आज तक मिला है। फिर भी इसे सीखने के लिये विशेष प्रशिक्षण लेना आवश्यक होता है। गुब्बारेबाजी में उड़ान भरने के लिये लाइसेंस का होना अनिवार्य है।

खेल के रूप में गुब्बारेबाजी भारत में भी काफी लोकप्रिय हो रही है। बाढ़-ग्रस्त क्षेत्रों से लोगों को बचाने में भी इसका प्रयोग किया जा सकता है। □

[श्री हसन जावेद खान, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, हिलसाइड रोड, नई दिल्ली]

दुखती आँखें

सुरेश नाडकर्णी

"डाक्टर! डाक्टर! जरा देखिये, मेरी आंखों को क्या हो गया?"

"इतना मत घबराओ नीना! तुम्हारी आंखों में क्या हुआ है, ये तो बिल्कुल स्पष्ट हैं, वैसे भी चिन्ता की कोई बात नहीं है।"

"डाक्टर साहब आप तो हमेशा यही कहते हैं, क्या हुआ है मेरी आंखों को?"

"नीना! तुम्हें 'पिंक आई' या गुलाबी आंख का रोग हो गया है।"

"'पिंक आई' यह कौन-सा रोग है डाक्टर?"

"दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि तुम्हें आंख दुखने का रोग हो गया है।"

"हे भगवान! अब क्या होगा?"

चिन्ता की कोई बात नहीं है, नीना। कंजक्टिवाइटिस (नेत्र श्लेष्मा शोथ) नाम की एक महामारी होती है।"

"यह नई बीमारी कौन-सी है?"

"कंजक्टिवाइटिस का मतलब है आंखें दुखना। कंजक्टाइवा पलकों के नीचे एक ऐसी पतली झिल्ली होती है जो नेत्र गोलक या आई बाल को सामने से ढकती है। इसी के शोथ को कंजक्टिवाइटिस कहते हैं।"

"कंजक्टिवाइटिस संक्रामक होता है। ऐसा ही है न? तुमने अभी-अभी शहर में महामारी के बारे में बताया था।"

"और हां, तुम्हें जो यह कंजक्टिवाइटिस हुआ है, संक्रामक प्रकार का है।"

"अब मैं समझ गयी। मेरे ऑफिस में मेरी एक सहेली की आंखें दुख रही थीं।"

"निस्संदेह, यह रोग तुम्हें अपनी सहेली से ही मिला है।"

कंजक्टिवाइटिस का अर्थ कंजक्टाइवा झिल्ली में सूजन है। स्टेरिलाइज्ड रूई के फाहे से मां, अपनी बेटी की आंखें साफ करती हुई।

"हा, डाक्टर! मेरी आंखें दुखने की यह प्रक्रिया बहुत धीरे शुरू हुई। जिस दिन मैं अपनी सहेली से मिली थी उसी दिन से आंखों में कुछ किरकिरापन महसूस होने लगा। मैंने सोचा था कि आंखों में कुछ गर्द घुस गयी है। फिर आंखों में कुछ जलन भी महसूस होने लगी। कोई मुझे देखता तो मुझसे आंखों के बारे में पूछता, क्योंकि मेरी आंखें लाल हो गयी थीं और ऐसा लगता था जैसे उनमें खून उतर आया हो। धीरे-धीरे मेरी आंखें चिपचिपी हो गयीं और उनमें गीद जमने लगी। जब मैं प्रातः उठती थी तो मेरी दोनों आंखें चिपकी हुई होती थी।"

"नीना, तुमने तो दुखती आंखों की एक जीती-जागाती तस्वीर उपस्थित कर दी है। इन लक्षणों के अतिरिक्त कुछ व्यक्तियों की पलकों पर सूजन भी आ जाती है।"

"मान लीजिये डाक्टर साहब, जैसा कि कुछ लोग कहते हैं कि यदि मैं अपनी दुखती हुई आंखों की कोई दवा-दारू नहीं करती हूं तो भी ये अपने आप ठीक हो जायेंगी। क्या

यह सत्य है?"

"हां, आंखों का यह रोग 2-3 सप्ताह में ठीक हो जाता है। लेकिन यह भुगतने से क्या लाभ। कुछ घरेलू नुस्खों से भी आपकी आंखें जल्दी ही ठीक हो जायेंगी।"

"धन्यवाद डाक्टर साहब! कृपया मुझे इन घरेलू नुस्खों के बारे में बताइये।"

"बताता हूं, आंखों को गर्म तथा साफ पानी से धोते रहें और संक्रमण को रोकने के लिये जहां तक हो, टिश्यू पेपर या ऐसे कपड़े का प्रयोग करें जिसे एक बार प्रयोग के बाद फेंका जा सके। पहले, हम इस रोग में मरकरी आक्साइड प्रयोग में लाने की सलाह दिया करते थे। लेकिन आजकल एण्टिबायोटिकों का चलन है। अतः अब फ्रेमाइसेटाइन, क्लोरमफेनिकॉल, नारफ्लॉक्सैसिन जैसे एण्टिबायोटिकों से बनी 'आई ड्रापों' और मरहमों का प्रयोग किया जाता है। पलकों के भीतरी किनारों पर मरहम को धीरे-धीरे लगा कर आंखों को कुछ देर तक बंद रखना चाहिये। मरहम को प्रातः तथा रात को सोने से पूर्व लगाना चाहिये। आंखों को साफ रखने के लिये साफ गर्म पानी से भीगे पैड (कम्प्रेसेस) को भी प्रयोग में ला सकते हैं। इन पैड़ों को गर्म पानी में तर करके दिन में तीन-चार बार, पांच-पांच मिनट आंखों पर रखना चाहिये। इसके लिये एक गिलास गर्म पानी में एक चाय का चम्मच भर कर बोरिक पाऊडर मिलायें। अपने साफ धुले हुये रूमाल की एक बॉल बनाकर इसे बोरिक पाऊडर मिले हुये पानी में डुबो कर अपनी आंखों की सिकाई करें। लेकिन एक बात का ध्यान रखें, यदि इस उपचार से आंखें जल्दी ही ठीक नहीं होतीं हैं तो आप शीघ्र ही मुझे अथवा अपने डाक्टर को अवश्य दिखा दें।"

"डाक्टर साहब, कंजक्टिवाइटिस किन कारणों से होता है?"

"यह बताने से पहले, मैं तुम्हें सजग करना चाहूंगा कि दुखती आंखों को कभी भी आई पैच से नहीं ढकना चाहिये। ऐसा करने से और अधिक संक्रमण हो सकता है और कभी-कभी गंभीर रूप ले लेता है। अब मैं तुम्हें कंजक्टिवाइटिस के कारणों के विषय में बताता हूं। सामान्यतः यह वायरस या बैक्टीरिया के संक्रमण द्वारा होता है। किसी भी प्रकार का धुंआ, यहां तक कि तम्बाकू का धुंआ अथवा सौंदर्य प्रसाधन, जैसे काजल या सूरमे से भी यह रोग हो सकता है। यदि पहले से ही आंखों में कोई बीमारी पनप रही हो, तो कंजक्टिवाइटिस भी उस रोग का लक्षण हो सकता है। कभी-कभी एलर्जी भी कंजक्टिवाइटिस के रूप में उभर आती है। नवजात शिशुओं में इसका कारण अश्रुवाहिनी में अवरोध हो सकता है। इस रोग का संदेह होने पर नीचे की पलक से नीचे नाक के पास मालिश करने से इस अवरोध को हटाने में सहायता मिलती है।"

"इन कारणों के बताने के बाद अब शायद आप यह बतायेंगे कि जैसे ही
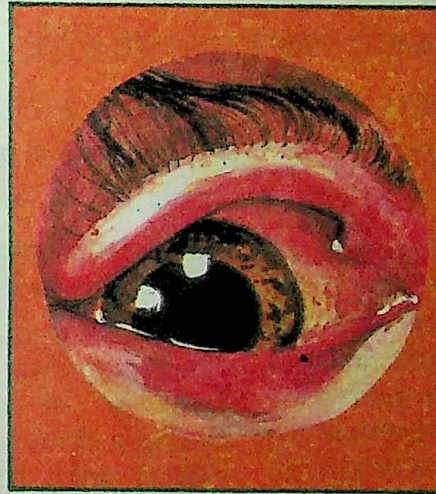
कंजक्टिवाइटिस का संक्रमण हो, तो रोगी को तुरन्त डाक्टर के पास जाना चाहिये।"

"नहीं, नहीं, पहले तुम्हें घरेलू नुस्खे आजमानें चाहियें। यदि फिर भी आंखों में चिपचिपाहट व किरकिराहट बनी रहती है और आंखों में लाली आ जाती है तो अवश्य अपने डाक्टर से सलाह लेनी चाहिये। यदि आपकी आंखें बार-बार दुखने लगती हैं तो हो सकता है कि तुम ट्रैकोमा या रोहे नामक बीमारी से पीड़ित हो। इस अवस्था में तुम्हें अवश्य डाक्टर के पास जाना चाहिये। यदि आंखों के दुखने के साथ-साथ भयंकर दर्द अथवा सिर दर्द भी हो तो भी डाक्टर को अवश्य दिखाना चाहिये।"

"मैंने सुना है कि कंजक्टिवाइटिस कई प्रकार का होता है।"

"हां नीना, पहले प्रकार का कंजक्टिवाइटिस वह होता है जिसमें इसके साथ-साथ तीव्र नजला व जुकाम भी होता है। तुम इसी प्रकार के कंजक्टिवाइटिस से पीड़ित हो। दूसरे प्रकार के कंजक्टिवाइटिस में दीर्घकाल तक नजले, जुकाम की शिकायत रहती है। इसके लक्षण भी पहले प्रकार के कंजक्टिवाइटिस से मिलते हैं। अंतर केवल इतना है कि दिन में इसका प्रकोप अधिक तीव्र नहीं होता, जबकि रात को इसका प्रकोप बहुत भयंकर होता है। इस रोग को ठीक होने में हफ्तों और कभी-कभी तो महीनों लग जाते हैं। तीव्र नजला व जुकाम वाले कंजक्टिवाइटिस की अवस्था में रोगी की ठीक से चिकित्सा न करवाना, सामान्य स्वास्थ्य का गिर जाना, लम्बे समय तक पूरी नींद न सोना, विषाक्त पदार्थों का सेवन करना, आवश्यक होने पर भी चश्मा न लगवाना, लम्बे समय तक अश्रुवाहिनियों में सूजन तथा एलर्जी आदि कारण भी इस रोग में सहायक होते हैं।"

"इस हालत में क्या करना चाहिये, डाक्टर?"

"रोग की स्थितियों को ठीक करना चाहिये। संतुलित पोषक भोजन लेकर सामान्य स्वास्थ्य को बनाये रखना चाहिये। पलकों के किनारों तथा पक्ष्मों को दिन में कम-से-कम दो बार अवश्य साफ करें तथा डाक्टर के बताये अनुसार एण्टिबायोटिक आई ड्राप को आंखों में डालते रहें।"

"डाक्टर साहब, आपने तो बताया था कि संक्रमण के कारण मेरी आंखें दुख रही हैं। क्या आप मुझे इस रोग की रोक थाम के बारे में बतायेंगे ताकि यह सब मैं अपने परिवार के सदस्यों को भी बता सकूं।"

"ठीक है, मैं बताता हूं। संक्रमित व्यक्ति के निकट न जायें। उसका रूमाल अथवा अन्य सामान प्रयोग में न लायें। यदि आंखें दुखने लगें तो क्षोभ उत्पन्न करने वाली वस्तुएं जैसे धूम्रपान आदि नहीं करना चाहिये और आंखों के आस-पास सौंदर्य प्रसाधनों का प्रयोग भी नहीं करना चाहिये। डाक्टर की सलाह के बिना समाचार पत्रों में विज्ञापित वस्तुओं को प्रयोग नहीं करना चाहिये। संक्रमण को फैलाने से रोकने के लिये, आंखों में ड्राप अथवा मरहम लगाने के पश्चात हाथों को अवश्य धो लेना चाहिये।"

"क्या आप यह भी समझते हैं कि इससे

मेरी आंखों की दृष्टि भी प्रभावित हो जायेगी।"

"नहीं! चिन्तित न हों। ट्रैकोमा की अवस्था के अतिरिक्त आंखों की दृष्टि कभी भी प्रभावित नहीं होती।"

"अक्सर यह भी कहा जाता है कि दुखती आंखें पूरी तरह ठीक नहीं हो पातीं।"

"ऐसा किसी प्रकार की एलर्जी की अवस्था में ही होता है। वरना, दुखती आंखें तो कुछ ही दिनों में ठीक हो जानी चाहियें।"

"क्या मुझे काले रंग के शीशे वाला चश्मा पहनना चाहिये?"

"नहीं, यह आवश्यक नहीं है। यदि किसी व्यक्ति को रोशनी कष्टकर न लगती हो तो गहरे रंग का चश्मा पहनने का कोई लाभ नहीं है। मैंने कुछ व्यक्तियों को रात के समय में भी गहरे रंग का चश्मा पहने हुये देखा है। यह पागलपन है।"

"धन्यवाद, डाक्टर साहब, आपकी इस उत्तम सलाह के लिये पुनः धन्यवाद। मैं अपनी दुखती हुई आंखों की पूरी तरह देखभाल करूंगी।" □□

[डा. सुरेश नाडकर्णी, फ्लैट नं. 38-39, पांचवीं मंजिल, म्युनिसिपिल बिल्डिंग, जोबनपुत्रा कम्पाउंड, नानाचौक, मुंबई- 400 007]

घोषणा

जन-संचार माध्यमों के लिये हिन्दी में विज्ञान लेखन पर कार्यशाला

प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, (सीएसआईआर), नई दिल्ली/केन्द्रीय भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर के सहयोग से "जन-संचार माध्यमों के लिये हिन्दी में विज्ञान लेखन" विषय पर दिल्ली में दिनांक 18-23 फरवरी, 1991 तक एक कार्यशाला का आयोजन कर रहा है।

राष्ट्रीय विकास में वैज्ञानिक और तकनीकी साधनों का बड़ा महत्व है। आम आदमी तक उनकी भाषा में विज्ञान की बातों को पहुंचाने का काम अनेक जन-संचार माध्यमों से हो रहा है। इनमें समाचार-पत्र, पत्रिकायें, आकाशवाणी और दूरदर्शन आदि प्रमुख हैं। इन माध्यमों के द्वारा जनोपयोगी विज्ञान और प्रौद्योगिकी की जानकारी को प्रचारित करने के लिये, हिन्दी में उपयुक्त भाषा व शैली तथा विधाओं का विकास करना इस कार्यशाला का उद्देश्य है।

कार्यशाला हेतु प्रस्तावित विषय निम्न प्रकार हैं:

1. विज्ञान और समाज : अंध-विश्वासों का वैज्ञानिक निवारण
2. तकनीकी मिशन : पीने का शुद्ध पानी, खाद्य तेल, वेस्टलैण्ड
3. जन-स्वास्थ्य : वैक्सीन, घटिया नकली-मिलावटी हानिकारक दवायें, एड्स
4. पर्यावरण : ओजोन, ग्रीन हाउस प्रभाव, कीटनाशकों का दुष्प्रभाव
5. इस वर्ष के नोबेल पुरस्कार : चिकित्सा विज्ञान, भौतिकी और रसायन
6. मानव जीनोम कार्यक्रम : रेडियो के लिये
7. राष्ट्रीय विज्ञान दिवस (28 फरवरी) के लिये वैज्ञानिकों से भेंट वार्तायें : दूरदर्शन के लिये
8. वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं, संस्थाओं की नई उपलब्धियों पर वैज्ञानिकों से साक्षात्कार
9. जन-निवास : बिल्डिंग मैटीरियल्स
10. अन्य : प्रतिभागियों की रुचि के उपयोगी विषय

कार्यशाला में हिस्सा लेने वाले सहभागियों को लगभग 1,500 शब्दों की एक पाठवली लिख कर तैयार करनी होगी, सभी पाठवलियों पर, पहले टोली स्तर पर और फिर सामूहिक स्तर पर विचार-विमर्श होगा। साथ ही विषय को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिये चित्रों आदि पर भी विचार-विमर्श होगा।

कार्यशाला के पहले दिन उद्घाटन के उपरांत सहभागियों को इस संबंध में विस्तृत जानकारी दी जायेगी। समापन सत्र में सभी पाठवलियों पर सामूहिक विचार-विमर्श किया जायेगा। कार्यशाला की समाप्ति पर ये पाठवलियां केन्द्रीय भाषा संस्थान को सौंप दी जायेंगी और उन पर व्यावहारिक परीक्षण आदि की अगली कार्यवाही उनके द्वारा की जायेगी।

भारतीय भाषा संस्थान इनको अलग-अलग क्षेत्रों में पाठकों को सौंप देगा और उनकी प्रतिक्रियायें आमंत्रित करेगा, साथ ही विज्ञान संचार के क्षेत्र में लगे कार्यकर्ताओं को भी यह जानकारी दी जायेगी तथा उनके विचार आमंत्रित किये जायेंगे। इन सभी विचारों के परिप्रेक्ष्य में पाठवलियों को बाद में अंतिम रूप दिया जायेगा।

इस कार्यशाला में देश के कोने-कोने से हिन्दी में विज्ञान लेखन के विविध क्षेत्रों में लगभग 40 मूर्धन्य विशेषज्ञ भाग ले रहे हैं।

प्रतिभागियों से निवेदन किया गया है कि वे अपनी रुचि के अनुसार कार्यशाला से संबंधित किसी भी विषय का चयन करके पाठवली की सामग्री अथवा प्रारंभिक लेख अपने साथ लायें। इसके लिये वे किसी भी विधा का प्रयोग कर सकते हैं, परंतु भाषा और शैली आम पाठक को ध्यान में रखते हुये सरल एवं सुबोध होनी चाहिये, कार्यशाला को सफल बनाने के लिये संबद्ध सुझाव आमंत्रित हैं।

इस कार्यशाला से संबंधित अन्य जानकारी के लिये कार्यशाला संयोजक एवं वैज्ञानिक ई-1, श्री तुरशन पाल पाठक, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, हिलसाइड रोड, पूसा गेट, नई दिल्ली-110012 से संपर्क स्थापित किया जा सकता है।

खिलाड़ी बढ़ेंगे विज्ञान के सहारे

सुभाष लखेड़ा

यद्यपि सभ्यता के पथ पर एक लंबी यात्रा करने के पश्चात मनुष्य अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए सांड के सदृश्य अपनी शारीरिक शक्ति के बूते पर खाली हाथ लड़ना हजारों वर्ष पूर्व बंद कर चुका था, इसके बावजूद शक्तिशाली खिलाड़ियों को सभ्य समाज में तब से लेकर आज तक आदर्श स्थान प्राप्त होता रहा है। प्राचीन समय के प्रमुख खेल समारोहों में उन मूल ओलम्पिक खेलों को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था जो लगभग सात सौ वर्ष ईसा पूर्व प्रारंभ हुये थे। आज की भांति उस समय भी उन ओलम्पिक खेलों में भाग लेने की अनुमति मिलना अत्यधिक गौरव की बात समझी जाती थी और तब भी केवल उन्हीं खिलाड़ियों को ऐसे अवसर मिलते थे जो कठोर एवं उच्च स्तर का प्रशिक्षण प्राप्त कर अपनी श्रेष्ठता स्थापित कर चुके होते थे।

जहां तक खेलों में विज्ञान के उपयोग का प्रश्न है तो यह भी कोई नई बात नहीं है। कई सौ वर्ष ईसा पूर्व का मनुष्य भी इस तथ्य से परिचित था कि खेलकूद में आहार, व्यायाम एवं आराम का बहुत अधिक महत्व है। प्राचीन सभ्यताओं के अध्ययनों से पता चलता है कि उस समय के प्रशिक्षक भी अपने खिलाड़ी शिष्यों को वैज्ञानिक ढंग से तैयार करते थे। वे खिलाड़ियों की खेलकूद संबंधी क्षमता बढ़ाने के लिये गरम स्नान, मालिश तथा तथा पीड़ानाशक औषधियों का उपयोग करते थे। प्राचीन यूनान एवं रोम में खेल प्रशिक्षक होते थे। खिलाड़ियों को सलाह देते हुये चार सौ साठ वर्ष ईसा पूर्व जन्मे प्रसिद्ध दार्शनिक-वैज्ञानिक एवं चिकित्सा जगत के पितामह हिप्पोक्रेट्स ने कहा था—"अत्यधिक या अत्यल्प आहार और शरीर को अचानक अधिक गरम या ठंडा करना खिलाड़ियों को हानि पहुंचाता है। उन्हें याद रखना चाहिये कि कोई भी 'अति' प्रकृति विरोधी होती है।"

पितामह-हिप्पोक्रेट्स

हिप्पोक्रेट्स के बाद गैलन एवं उनके समकालीन वैज्ञानिक खेलकूद में उचित आहार, नशीले पदार्थों से परहेज एवं संयमित जीवन को बहुत अधिक महत्वपूर्ण स्थान देते थे। उनके समय में आहार के स्वास्थ्य और खेल प्रदर्शन क्षमता पर प्रभाव को लेकर काफी अध्ययन किया गया।

बहरहाल, रोमन साम्राज्य के पतन के बाद विश्व भर में कई सौ वर्षों तक खेलकूद का क्षेत्र काफी उपेक्षित रहा। सच तो यह है कि पुनर्जागरण काल के बाद ही खेलों को फिर से महत्व मिलना शुरू हुआ। फलस्वरूप, धीरे-धीरे खेलकूद भी वैज्ञानिक जानकारियों के प्रभाव से अछूता न रह पाया और उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से खेलों में विज्ञान का उपयोग होने लगा। आज जो स्थिति है, उसे देखकर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि अब खेलों के क्षेत्र में विज्ञान केवल एक प्रभावी नहीं अपितु निर्णयात्मक भूमिका निभा रहा है। यह एक कटु सत्य है कि वह समय काफी पीछे छूट गया है जब खेलों में सफलता अर्जित करने के लिये मात्र प्राकृतिक, शारीरिक गुण एवं बनावट पर्याप्त होते थे।

आज राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय खेल स्पर्द्धाओं में किये जाने वाले खेल प्रदर्शनों के स्तर में निरन्तर प्रगति होती जा रही है। विभिन्न खेलों से जुड़े खिलाड़ी अपनी शारीरिक शक्ति एवं कौशल के पहले से बेहतर कीर्तिमान स्थापित करते जा रहे हैं। जहां एक ओर इन उपलब्धियों का सीमित श्रेय खेल मैदानों एवं संबंधित खेल उपकरणों में हुये परिवर्तनों को जाता है वहीं दूसरी ओर इसका मुख्य श्रेय अनुशिक्षण (कोचिंग) की उपलब्धता एवं उसके तौर-तरीकों में विज्ञान के कारण हुई प्रगति को जाता है। पिछले कुछ दशकों में यांत्रिक एवं शरीर

क्रिया विज्ञान संबंधी शोध कार्यों के द्वारा अर्जित ज्ञान की वजह से आज के खिलाड़ी खेलों में श्रेष्ठता प्राप्त करने के लिए प्रभावी तकनीकों का उपयोग कर सकते हैं।

यूं किसी खिलाड़ी के लिये प्रशिक्षण कार्यक्रम को लाभ की दृष्टि से.अत्यधिक प्रभावी बनाने के लिये यह आवश्यक है कि इस कार्यक्रम का निर्धारण उसके द्वारा खेले जाने वाले खेल के लिये जरूरी शारीरिक क्षमताओं को विकसित करने की दृष्टि से तय किया जाय। साथ ही आने वाले समय के लिये तैयार किये जाने वाले खिलाड़ियों को खेल विज्ञान के सभी ऐसे पक्षों की आवश्यक जानकारी दी जाय जिसका उपयोग वे अपनी खेल क्षमताओं में अपेक्षित सुधार के लिए कर सकें।

आज खेलकूद के क्षेत्र में विज्ञान की जिन महत्वपूर्ण शाखाओं का उपयोग हो रहा है, उनमें खेल-शरीरक्रिया विज्ञान, पोषण विज्ञान, जीव यांत्रिकी, खेल आयुर्विज्ञान एवं खेल मनोविज्ञान प्रमुख हैं। खेल-शरीरक्रिया विज्ञान का उपयोग खिलाड़ियों को चुनने एवं तत्पश्चात उनको दिये जाने वाले प्रशिक्षण में किया जा रहा है। आज खेल वैज्ञानिकों के पास ऐसे उपकरण मौजूद हैं जिनके उपयोग से वे किसी भी खिलाड़ी की शारीरिक क्षमताओं एवं कमजोरियों को आसानी से माप एवं जांच सकते हैं। आज हम खिलाड़ियों के हृदय, फेफड़ों एवं मांसपेशियों के अध्ययनों से यह बताने की स्थिति में पहुंच चुके हैं कि उन्हें कौन-सा खेल खेलना चाहिए और किस खेल विशेष में वे उत्कृष्ट प्रदर्शन कर सकते हैं? इस जानकारी का उपयोग अल्प आयु के बच्चों में से भावी खिलाड़ियों को चुनने के लिये भी किया जा रहा है।

यद्यपि विश्व के कई देशों विशेषकर अमेरिक, रूस और पूर्वी यूरोपीय देशों में कई वर्षों से भावी खिलाड़ियों का पता लगाने के लिए खेल प्रतिभा परीक्षण किए जाते रहे हैं, हमारे यहां हाल में ही खेल विज्ञान की इस महत्वपूर्ण विधा का उपयोग करने की बात सोची गई है। दरअसल, खेल प्रतिभा परीक्षण के लिए जो तरीके एवं नियम अपनाए जाने चाहिए उनको तय करने के लिए यह जरूरी है कि खेल विज्ञान की विभिन्न शाखाओं से उपयोगी तथ्यों का दोहन कर और उनमें तादम्य स्थापित कर खिलाड़ियों के चयन के लिए अपनाए जाने वाले सिद्धांतों को संश्लेषित किया जाए।

खिलाड़ियों पर किए गए वैज्ञानिक अध्ययनों से इस तथ्य की पुष्टि की गई है कि प्रत्येक खेल के लिए विशेष प्रकार की शारीरिक बनावट एवं क्षमताओं की आवश्यकता होती है। फलस्वरूप, अब किसी खिलाड़ी द्वारा खेले जाने वाले खेल की आवश्यकता अनुसार ही उसके द्वारा किए जाने वाले व्यायामों का निर्धारण किया जाता है और अभ्यास के तौर-तरीके व सीमाएं निश्चित की जाती हैं।

कबड्डी

खेलकूद के क्षेत्र में आहार विज्ञान का विशेष महत्व है। आहार शरीर के निर्माण एवं ऊर्जा उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ऐसे खेलों में जहां खिलाड़ियों को शारीरिक भार के आधार पर प्रतियोगिताओं में मुकाबला करना होता है, शरीर में वसा की निम्नतम मात्रा होनी चाहिए। शारीरिक शक्ति एवं शारीरिक भार के बीच का अनुपात जिमनास्ट एवं लंबी दौड़ जैसे खेलों में अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। अधिक समय वाले खेलों में शरीर की मांसपेशियों में मौजूद 'ग्लाइकोजन' निर्णायक भूमिका निभाता है। आज आवश्यकता पड़ने पर खिलाड़ियों की मांसपेशियों में 'ग्लाइकोजन' की मात्रा में वृद्धि कर सकते हैं ताकि खेल के दौरान शरीर को पर्याप्त मात्रा में ग्लूकोज मिलता रहे।

आहार विज्ञान के अन्तर्गत किए गए शोध कार्यों से ज्ञात हुआ है कि खिलाड़ियों को सामान्य लोगों की तुलना में अधिक लौह
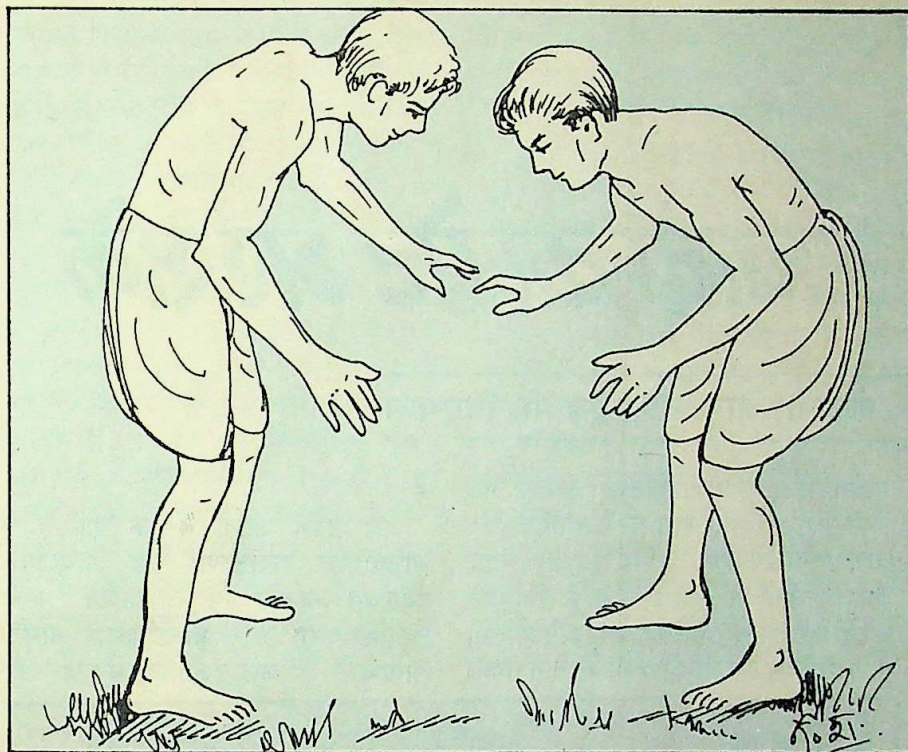
कुश्ती

(आयरन) की जरूरत होती है। यह भी ज्ञात हुआ है कि विज्ञापित विटामिनों एवं तथाकथित अधिक प्रोटीन युक्त उत्पादों को खाने से खिलाड़ियों को कोई लाभ नहीं होता है। अब तक उपलब्ध तथ्यों के आधार पर खिलाड़ी विशेष द्वारा खाए जाने वाले आहार के विभिन्न घटकों के बीच के अनुपात को तथा आहार की मात्रा को तय करना संभव हो गया है।

वैज्ञानिक अध्ययनों से यह भी ज्ञात हुआ है कि प्रतियोगिता के दिन खिलाड़ियों को ठोस आहार की अपेक्षा तरल आहार देना अधिक लाभदायक होता है। प्रतियोगिता के दौरान खिलाड़ी के शरीर में जल की पर्याप्त मात्रा का होना भी आवश्यक है अन्यथा वह घटिया प्रदर्शन कर सकता है।

"जीव यांत्रिकी" विषय का भी आज खेलकूद के क्षेत्र में व्यापक उपयोग हो रहा है। पिछले बीस वर्षों में वैज्ञानिकों ने खेलों के दौरान शरीर के विभिन्न अंगों की कार्यप्रणाली एवं गति का गहराई से अध्ययन किया है। इन अध्ययनों से जो जानकारी प्राप्त हुई है, उनका उपयोग विभिन्न प्रकार की खेल सामग्री के निर्माण में, प्रशिक्षण की तकनीकों में तथा दुर्घटनाग्रस्त खिलाड़ी को खेलों में पुनः स्थापित करने के लिए किया जा रहा है। धावकों के जूते, टेनिस के रैकिटों, शारीरिक व्यायाम के विभिन्न उपकरणों एवं खेल सुरक्षा संबंधी सामान के निर्माण में भी 'जीव यांत्रिकी' का उपयोग किया जा रहा है।

वैज्ञानिक अध्ययनों से पता चला है कि शारीरिक अंगों के जोड़ों की लचक का भी खिलाड़ियों की खेलकूद संबंधी क्षमताओं से गहरा संबंध है। अच्छी शारीरिक लचक का यही अर्थ है कि जोड़ों के इर्द-गिर्द कोई असामान्यता नहीं है। आज वैज्ञानिक ज्ञान के कारण कई ऐसी 'स्ट्रेचिंग पद्धतियां' खोजी जा चुकी हैं जिनके उपयोग से खिलाड़ियों को इन पद्धतियों से लाभ पहुंचाकर पहले से बेहतर प्रदर्शन योग्य बनाया जा सकता है।

खेल आयुर्विज्ञान भी आज काफी विकसित हो चुका है। विज्ञान की यह शाखा खेलकूद के दौरान खिलाड़ियों को होने वाली शारीरिक क्षति के बचाव एवं उपचार में काफी लाभदायक साबित हो रही है। सामान्य दुर्घटनाओं एवं खेलों के दौरान घटने वाली दुर्घटनाओं की स्थिति में अंतर होने के कारण शरीर को पहुंचने वाली क्षतियों में भी अंतर होता है। खेलों के दौरान घायल हुए खिलाड़ी का उपचार एक खेल आयुर्विज्ञान विशेषज्ञ ही बेहतर ढंग से कर सकता है।

बहरहाल, यह भी सच है कि मात्र शारीरिक शक्ति एवं सामर्थ्य के बल पर ही कोई व्यक्ति महान खिलाड़ी नहीं बन सकता है। एक खिलाड़ी के लिए शारीरिक अनुकूलन कार्यक्रम में पूर्ण निष्ठा, उचित आहार, खेल के तकनीकी पक्षों की जानकारी तथा निपुणता के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि उसके अंदर "विजय की प्रबल इच्छा" (किलिंग स्प्रिट) मौजूद हो। मानसिक शक्ति एवं संतुलन का भी खेलकूद में महत्वपूर्ण स्थान है। खेल मनोविज्ञान के उपयोग से खिलाड़ियों में विजय की भावना के बीज बोये जा सकते हैं और उनमें चुनौती का मुकाबला करने की दृढ़ इच्छाशक्ति पैदा की जा सकती है।

यह खेद का विषय है कि यद्यपि हमारे पास खेल उपभोक्ताओं के रूप में लाखों बच्चे मौजूद हैं, पर हमारे यहां उन्हें दिशा निर्देश देने के लिए अभी भी कोई ठोस ढांचा नहीं है। आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है कि बड़ी मात्रा में ऐसा व्यवस्थित खेल विज्ञान संबंधी साहित्य तैयार किया जाय जो सरल सपाट भाषा में इन बच्चों को उन गुणों से परिचित करा सके जो खेलों में आगे बढ़ने के लिये आवश्यक हैं तथा साथ ही उन्हें विभिन्न खेलों में से अपनी योग्यता के अनुरूप खेल छांटने की दृष्टि दे सकें।

अब हमें यही प्रयास करना है कि हम अपने किशोरों को उनके शारीरिक, मानसिक एवं मनोवैज्ञानिक गुणों के अनुरूप ऐसे खेलों से जोड़ सकें जिनमें उचित अनुशिक्षण, पोषण एवं प्रशिक्षण देने पर वे भावी खेल प्रतियोगिताओं में भारत को शिखर पर पहुंचाने में सहायक हों। □

[श्री सुभाष लखेड़ा, एक्स- 360, सरोजिनी नगर, नई दिल्ली- 23]

ताकि बढ़ती आबादी का पेट भर सके

एन.के. नोटानी, आर. तुली एवं पी. विएगास

एक जमाना था, जब आबादी बहुत कम थी, और प्राकृतिक संसाधनों की भरमार थी। धीरे-धीरे समय बीतता गया और आबादी बढ़ती गई, लेकिन ससाधन घटते चले गए। तब दुनियां की भूख मिटाने के लिए,खेती योग्य भूमि की कमी की समस्याएं और इसी से जुड़ी अन्य समस्याएं सामने आईं। मनुष्य लगातार उत्तरोत्तर फसल के सुधार और कम भूमि में अधिक उपज के सभी संभव तरीकों की खोज-बीन करता रहा। 1900 में मेण्डल के वंशानुगत संबंधी नियम की पुनर्स्थापना के बाद विज्ञान की एक अलग शाखा 'पौध प्रजनन' का उदय हुआ। तब पौध प्रजनकों ने उत्परिवर्तनों और संकरण के परिणाम-स्वरूप वंशानुगत विभिन्नताओं का पता लगाया। नए गुणों वाली फसलें पैदा करने के लिए संकरण की विधि बड़े पैमाने पर प्रयोग की जाती है। इसमें वांछित गुणों वाले भिन्न जनकों के मेल से नए गुणों के संयोजन वाले पौधे प्राप्त किए जा सकते हैं।

अनेक वर्षों से संकर ओज के प्रयोग से उपज बढ़ाने में सफलता मिल रही है। तथापि ये अधिकांश तकनीकें एक ही प्रजाति तक सीमित रहती हैं। इनकी गति भी धीमी है। इन विधियों से संकरण द्वारा किसी नई प्रजाति के उल्लेखनीय उत्पादन स्तर तक आने में प्रायः 10-15 साल तक लग जाते हैं।

प्राथमिक आनुवंशिक पदार्थ के रूप में डीएनए की मान्यता के साथ ही इस ओर पौध जीनोम के संगठन के द्वार खुले। डीएनए क्लोनिंग तकनीक के आने से फसल पादपों के आनुवंशिक रूपांतरण द्वारा कृषि-उद्योग को काफी बढ़ावा मिला। इस तकनीक में प्रयोगशाला में **ऐशेरिकिया कोलाई** जैसे विभेदों से वांछित जीन पुनर्उत्पादित किए जाते हैं (देखिये वि.प्र. अप्रैल, 1990)। ये नई जैव-तकनीकें न केवल तेजी से विशिष्ट परिवर्तनों हेतु उपयोगी हैं, बल्कि प्रजातियों में लक्षणों को स्थानांतरित भी करने में सक्षम हैं।

अब प्रश्न उठता है कि क्या है ये आनुवंशिक रूपांतरण? यह क्रियाविधि सर्वप्रथम प्रकृति में मिलने वाली **न्यूमोकोक्साई** और **हीमोफिलस** नामक जीवाणुओं की कुछ प्रजातियों में पाई गई।

ऐशेरिकिया कोलाई से प्लाज्मिड डीएनए के प्रयोग द्वारा आनुवंशिक परिवर्तन

संक्षेप में, जीवाणु कोशिकाएं अपनी प्रवर्धन या संवर्धन अवस्थाओं में अपने चारों ओर के माध्यम से डीएनए प्राप्त कर सकती हैं, और यदि यह समान हुआ तो उसे अपने जीनोम में समायोजित कर लेती हैं। इस समायोजन में कोशिका के डीएनए का हिस्सा अलग होता है। यदि आगंतुक डीएनए में स्पष्ट गुण दर्शाने वाला जीन है, तो नए रूपांतरित प्रभेद में इसको पहचाना जा सकता है।

यह स्पष्टतया जीवाणुओं के दो विभेदों से प्रमाणित होता है—जिनमें एक स्ट्रेप्टोमाइसिन सुग्राही है और दूसरा इसका प्रतिरोधी। यदि स्ट्रेप्टोमाइसिन रोधी कोशिकाओं युक्त, संवर्धन घोल में सुग्राही कोशिकाओं का डीएनए अलग किया जाए तो उनमें से कुछ कोशिकाएं संवर्धन माध्यम में से यह डीएनए ग्रहण कर लेंगीं। तत्पश्चात सुग्राही कोशिकाएं लगातार सुग्राही नहीं बनी रह सकतीं, वे भी स्ट्रेप्टोमाइसिन प्रतिरोधी हो जाएंगी। यह पाया गया है कि इस माध्यम में स्ट्रेप्टोमाइसिन डालने के बावजूद कुछ कोशिकाओं की वृद्धि जारी रही।

पौधों में आनुवंशिक रूपांतरण प्रणाली कुछ अलग प्रकार से काम करती है। जीन स्थानांतरण की एक प्राकृतिक प्रणाली भी खोजी गई है। **ऐग्रोबैक्टीरियम ट्यूमेफेसिएंस** अनेक पौधों में शिखर गाल नामक अर्बुद रोग पैदा करता है, इसमें डीएनए का वलयाकार हिस्सा होता है, जिसे अर्बुदकारी प्लाज्मिड कहते हैं। इसे सूक्ष्म-जीवों द्वारा पौधे के आनुवशिक पदार्थ (जीनोम) में प्रविष्ट कराया जाता है। ये प्लाज्मिड, ग्राही के गुणसूत्रों में वह जीन स्थानांतरित कर देता है, जिससे पौधे में अर्बुद पैदा हो जाते हैं। जीन स्थानांतरण पद्धतियों में यह सूक्ष्मजीव एक एजेंट के रूप में जीन अंतरण का जटिल काम करता है। **ऐ. ट्यूमेफेसिएंस** का अर्बुदकारी प्लाज्मिड उच्च पौधों के लिए सफल जीनवाहक माना जाता है। इसमें से अर्बुदकारी जीन को अलग कर के उसके स्थान पर अन्य इच्छित जीन को यात्री के रूप में रोपित किया जा सकता है। जब **एग्रोबैक्टीरिया** किसी पौधे को संक्रमित करता है तब इच्छित जीन, अर्बुदकारी प्लाज्मिड के साथ पौधे के जीनोम में आ जाता है। यहां यह जीन पौधे के गुणसूत्र के साथ एकीकृत होकर पौधे के लक्षणों के साथ-साथ अपने लक्षण भी प्रकट करता है।

एग्रोबैक्टीरिया द्वारा जीन स्थानान्तरण करने के मूल चरण इस प्रकार हैं :

1. स्थानांतरण हेतु जीन का चयन और पृथक्करण, उपयुक्त संकेतों की आपूर्ति, और डीएनए संयोजन, जो पौधों में प्रकट हो सके।
2. **एशेरिकिया कोलाई** में डीएनए संयोज्य की क्लोनिंग तथा **एग्रोबैक्टीरिया** में इसको प्रविष्ट कराना।
3. डीएनए संयोज्य के वाहक **एग्रोबैक्टीरिया** युक्त पादप पर्ण डिस्क (या प्रोटोप्लास्ट) का संक्रमण।
4. स्थानांतरित पर्ण डिस्क या प्रोटोप्लास्ट का चयन और परिपक्वन तक उनका ऊतक संवर्धन।

इस प्रकार अंततः संतति नवोद्भिद, स्थानांतरित जीन का पृथक्करण दर्शाएंगे।

कृषि उद्योग के क्षेत्र में, फसल पौधों के आनुवंशिक रूपातंरण की तकनीकों से नए रास्ते खुले हैं। अब तक इस दिशा में मिली सफलताएं आशाप्रद प्रतीत हो रही हैं। अनेक फसल पौधों में कवक, कीट, शाकनाशी, और विषाणु रोधी जीन डाले गए हैं। जीनियागर धान की जड़ों में **राइजोबियम, ऐजोबैक्टर** और नाइट्रोजन स्थाईकारी जीन युक्त अन्य जीवाणुओं को बसाने पर कार्य कर रहे हैं, ताकि धान की जड़ें, वातावरण से सीधे नाइट्रोजन लेकर उसे स्थिर कर सकें, जिससे किसान की परेशानी और रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग में कुछ कमी आए।

पॉलीगैलेक्टुरोनेज के लिए एक जीन कोड को निष्क्रिय कर के टमाटर की निधानी आयु बढ़ाई गई है। कोशिका भित्तियों के पार्श्व घुलन द्वारा पॉलीगैलेक्टुरोनेज फलों को नरम करने में काफी भूमिका निभाता है। इस
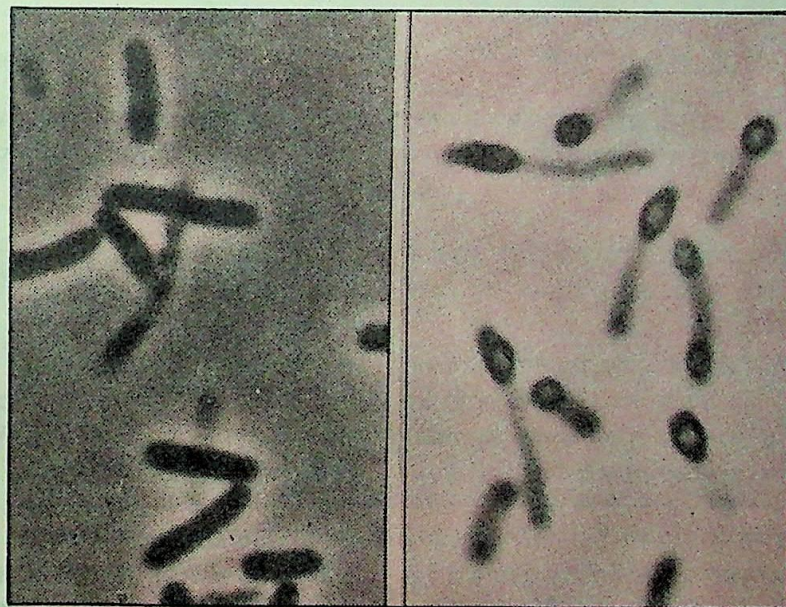
ऐशेरिकिया कोलाई में बेसिलस थूरिंजिनेसिस क्रिस्टल प्रोटीन जीन का प्रकट होना। जीन में ज्ञात सुरक्षित न्यूक्लियोटाइड कड़ी के आधार पर संयोजित प्रोब के प्रयोग द्वारा क्रिस्टल प्रोटीन जीन का पृथक्करण किया गया। फिर स्थानांतरण द्वारा ऐशेरिकिया कोलाई में एक डीएनए संयोज्य प्रविष्ट कराया गया।

(क) विष जीन विहीन ऐशेरिकिया कोलाई
(ख) विष जीन युक्त ऐशेरिकिया कोलाई

विषम जीनी ऐशेरिकिया कोलाई, विष प्रोटीन वाली चमकीली अंतर्वेशन रचनाएं पैदा करते हैं।

विषम जीनी पौधों में जीन अभिलक्षण

विभिन्न कोशिकीय माध्यमों में क्षमतापूर्वक लक्षण प्रकट करने हेतु जीनों में अनेक पूर्वसंकेत निहित होते हैं। उदाहरणार्थ, जीवाणु में असंगठित केन्द्रक होता है, जबकि पादप कोशिका का केन्द्रक संगठित होता है। अतः जीवाणु के जीन को, पादप कोशिका में काम करना मुश्किल होता है। लेकिन पठन ढांचों या आनुवंशिक सूचना रखने वाली त्रिक्षारीय श्रृंखला (ट्रिप्लेट बेस सीक्वेंस) में उपयुक्त पादप संकेत जोड़ देने पर जीवाणु के जीन, पादप कोशिकाओं में ठीक प्रकार प्रकट होते हैं। जैसे कि कैनामाइसिन रोधी जीवाणु जीन, पादप कोशिका (तम्बाकू) में प्रकट होने के लिए किए गए परिवर्तन के उपरांत उसमें प्रकट होने लगता है। सामान्यतया पादप कोशिकाओं में प्रकट होने वाले जीन के संकेतों द्वारा अनुरूपण की शुरूआत करने वाले मूल संकेत प्रतिस्थापित हो जाते हैं। इसी प्रकार पॉलिडिनाइलेशन संकेतों वाले जी[illegible] को कैनामाइसिन के नीचे जोड़ देने पर पादप कोशिका में उसके लक्षण आ जाते हैं। दूसरी ओर नाइट्रोजन स्थायीकारी जीवाणु के जीन को तंबाकू में स्थानांतरित करने पर वह पादप कोशिका में प्रकट हो जाता है, जबकि उसे इसके लिए नियोजित नहीं किया जाता। इससे स्पष्ट होता है कि ये श्रृंखलाएं चयन दबाव के बिना एकीकृत हो जाती हैं। हालांकि डीएनए संकरण, नाइट्रोजन स्थायीकारी जीन और कैनामाइसिन रोधी जीन को विषम जीनी तंबाकू में प्रदर्शित करता है, लेकिन यहां पहले वाले के लक्षण आने का अनुमान नहीं किया जाता।
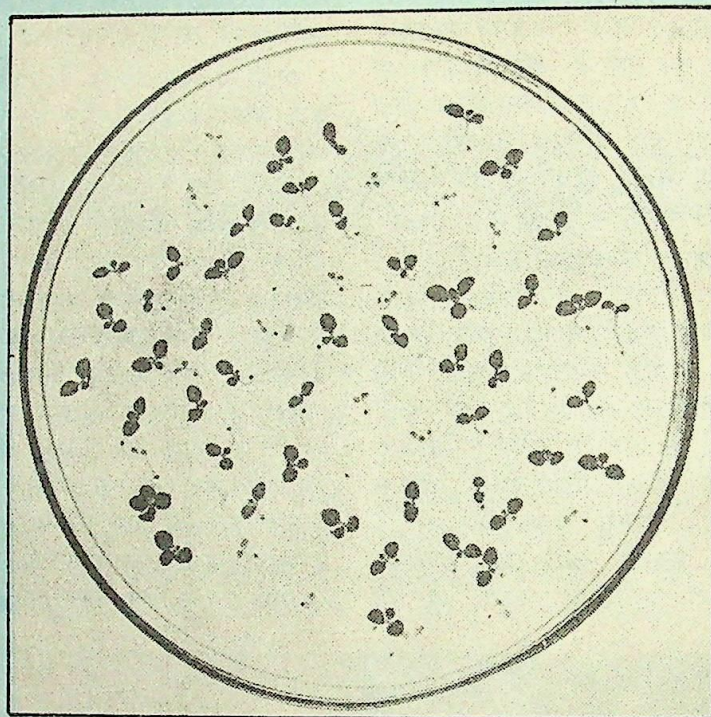
कैनामाइसिन प्रतिरोधी का पृथक्करण : जीन स्थानांतरित पौधों की संतति में कैनामाइसिन संवेदी नवोद्भिद स्वतंत्र स्थितियों में जीन की एक प्रति प्रविष्ट होने पर संभावित अनुपात 3:1 और दो प्रतियां प्रविष्ट होने पर 15:1।

इस प्रकार उपयुक्त अनुरूपण नियंत्रक पदार्थों का प्रयोग करके बाहरी जीनों को पौधों व ऊतकों में प्रविष्ट कराया जा सकता है, और विशिष्ट लक्षण पैदा किए जा सकते हैं। प्रकाश, ऊष्मा, संघात और गैर वायवीयजीवन जैसे उद्दीपनों की अनुक्रिया को प्रकट करने वाले जीनों के डीएनए क्रम ज्ञात हैं। इसी प्रकार प्ररोहों, जड़ों, पुष्पीय पंखुड़ियों और कटे-फटे ऊतकों में ऊतक-विशेष जीन को प्रकट करने वाली कड़ियां भी होती हैं। □□

प्रकार इसके जीन के कार्य को विपरीत दिशा देकर विपरीत जीन प्राप्त हुआ, जिसे फूलगोभी चकत्ता विषाणु वाहक के द्वारा टमाटर कोशिकाओं में पहुंचाया गया। इस जीन के प्रभाव से उक्त एंजाइम में कमी आई, फलस्वरूप टमाटरों का पकना और सड़ना कम हो गया, और उनकी निधानी आयु बढ़ गई। वैज्ञानिकों ने ऐसे जीन संयोजित करने में सफलता पाई है, जो आलू के अनेक लुप्त एमीनो अम्लों को संश्लिष्ट कर सकते हैं। अतः जल्दी ही प्रोटीन से भरपूर आलू मिलने वाले हैं। इन अनुसंधानों का प्रयोग खाद्यान्नों पर भी किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त खाद्यान्नों में डीएनए स्थानांतरित करने के लिए लगभग 20 विधियों पर काम चल रहा है, जिनमें से कुछ में सफलता मिल चुकी है। तथापि अभी भी किसी फसल के संपूर्ण आंतरिक रूपातंरण का स्पष्ट प्रदर्शन होना बाकी है।

बेसिलस थूरिंजिनेसिस नामक जीवाणु के एक जीन को **ऐशेरिकिया कोलाई** में क्लोनित किया गया है। इसमें कृषि नाशक जीवों के लारवा के लिए एक जहरीला प्रोटीन तैयार करने की सूचना निहित होती है। यह विषम जीनी **ऐशेरिकिया कोलाई** बड़ी मात्रा में लारवानाशी प्रोटीन बनाता है, जो कोशिकाओं में जमा हो जाती है, इसे एक प्रोटीन आकृति के रूप में प्रकाशसूक्ष्मदर्शी में देखा जा सकता है। लारवानाशी जीन के गुणों से युक्त विषम जीनी पौधे संबद्ध कीटों के लिए भी रोधी समझे जा रहे हैं, क्योंकि ऐसे पौधों को खाने पर लारवे स्वतः नष्ट हो जाएंगे।

ये मात्रात्मक जीनयुग्म या क्वांटिटेटिव ट्रेट लॉसी, उपज जैसे महत्वपूर्ण लक्षणों को नियंत्रित करते हैं, जिनमें अनेक जीन शामिल होते हैं। उपज बढ़ाने में शामिल इन जीनों की क्रियाविधि पारंपरिक तौर पर

समझना कठिन है। महत्वपूर्ण मात्रात्मक जीन या जीन समूहों में संबंध और अनुवर्तन का पता करने के लिए रिस्ट्रिक्शन फ्रैगमेंट लेंथ पॉलीमॉर्फिज्म नामक तकनीक काम में लाई जाती है। इन जीन समूहों का संबंध इस विधि से ज्ञात करना अपेक्षाकृत आसान है, लेकिन कुछ पीढ़ियों तक इस तकनीक को दोहराना पड़ता है। सूचक के रूप में इस तकनीक का प्रयोग रिस्ट्रिक्शन एंजाइम के निरीक्षणों पर आधारित है, जो डीएनए को विशिष्ट स्थानों पर काटता है, जिससे किस्म में उत्परिवर्तन द्वारा डीएनए कड़ियों में परिवर्तन को रोका जा सकता है। तब एंजाइम डीएनए को उस स्थान पर नहीं काटता है, और इस प्रकार अलग लंबाई के डीएनए सूत्र का निर्माण होता है। अब अनेक फसलों के लिए उक्त तकनीक से मैप और प्रोब उपलब्ध हैं। इन तकनीकों से टमाटर जैसे फलों के संघटकों को उच्च ठोस अवस्था में बनाए रखने के लिए जीन या जीनों को स्थापित करने या अभिनिर्धारित करने की क्षमता प्राप्त हुई है।

बार्बेरा एमसी क्लिंटॉक ने सबसे पहले मक्का में परिवर्तनशील तत्वों का पता लगाया। उन्होंने जीन और परिवर्तनशील तत्वों में भेद किया। जीन स्थाई स्थान पर निहित होते हैं जबकि परिवर्तनशील पदार्थ एक से दूसरे स्थान पर घूम सकते हैं। इन परिवर्तनशील तत्वों के लक्षण प्रकट नहीं होते हैं। लेकिन इनको जीन में डालने पर गुणसूत्र टूट जाता है, जिससे उत्परिवर्तन होता है।

इस प्रकार से परिवर्तनशील तत्व जीन में उत्परिवर्तन पैदा कर देते हैं अतः इनको उत्परिवर्तनकारी की भांति प्रयोग किया जा सकता है। जिन कुछ जीनों को सीधे क्लोनित नहीं किया जा सकता है, उन्हें ट्रांसपोजोनटैगिंग विधि से क्लोनित किया जा सकता है। इसमें विशेष परिवर्तनशील तत्व को जीन में डालने पर पैदा हुए उत्परिवर्तन को, एक प्रोब के रूप में परिवर्तनशील तत्व डीएनए का प्रयोग करके अलग किया जा सकता है।

अनेक परिवर्तनशील तत्व क्लोन आज उपलब्ध हैं, और मक्का के करीब एक दर्जन जीनों को इस तकनीक द्वारा क्लोनित किया जा चुका है।

सामान्यतया परिवर्तनशील तत्व शांत रह सकते हैं, पर ये प्रेरित भी होते हैं इसको जीनोमी दबाव कहते हैं, जिसके कारण पूर्वगामी लक्षण में कमी आती है। अत्यधिक फास्फेट या कम नाइट्रोजन युक्त मिट्टी में उगाए गए सन के पौधों से इस तकनीक द्वारा परिवर्तित गुण वाली संतति पैदा हुई, जिन्हें आगे भी वंशानुगत रखा जा सकता है। एल व एस-डीएनए निहित दो उत्परिवर्ती अभिनिर्धारित किए गए हैं। एक पौधे में सामान्य 10% ज्यादा डीएनए तथा दूसरे में लगभग 6% कम डीएनए था, जिसमें राइबोसोमल डीएनए की मात्रा बहुत कम थी। समस्थापन के कारण हुए दबाव में कमी के कारण पादप ऊतक संवर्धन में सोमाक्लोनल विभेद प्रकट होते हैं। इनका पृथक्करण आरंभ हो रहा है। मक्का में दोनों—उच्च ट्रिप्टोफेन युक्त तथा शाकनाशी रोधी विभेद पाए गए हैं। इनको उपयुक्त किस्मों में संकर बीज उत्पादन के लिए प्रविष्ट कराया जा रहा है।

सहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण द्वारा बड़ी मात्रा में नाइट्रोजनी खाद प्रदान नहीं की जा सकती है। इसके लिए विशेषतया **राइजोबियम इनोकुला** का प्रयोग किया गया है। सोयाबीन और चारा फसलों के लिए यह बहुत उपयुक्त सिद्ध हुआ है। अन्य फसलों में अपेक्षाकृत कम सफलता मिली है। इसके लिए उत्तरदायी प्रमुख कारक इस प्रकार हैं : राइजोबियम और पौधा साहचर्य अत्यंत जटिल है और जीवाणु तथा पौधों के बीच सक्षम सहजीविता को बढ़ाने की क्रिया में दर्जनों जीन काम आते हैं। **राइजोबियम इनोकुला** की अपेक्षा कम सक्षम जीवाणु के साथ स्ट्रेप्टोमाइसिन द्वारा एंटिबायोटिक तैयार हो सकता है।

इस प्रकार के मेल के लिए संभावित प्रेरक और वृद्धिकारी विचाराधीन हैं। लगभग तीन प्रकार के संकेत यौगिक पता चले हैं। इनमें से प्राथमिक फ्लैवोनायड हैं। **राइजोबिया** में, विशिष्ट फ्लैवोनायड और जड़ों में उनके व्युत्पन्न कॉमन नोडुलेशन ज़ीन के लक्षणों को प्रकट करते हैं। कॉमन नोड जीन और ग्राही विशिष्टता वाले नोड जीन जैव-रासायनिक संकेत उत्पन्न करते हैं, जो ग्राही की विशिष्टता निर्धारित करते हैं। **राइजोबियम मेलिलोटाई** में ऐसा पहला संकेत, ग्लूकोसैमिन के टेट्रासैकेराइड के रूप में पहचाना गया है। सल्फाकृत करने पर इससे **रा. मेलिलोटाई** से अल्फाल्फा में गुटिकाओं के निर्माण की क्षमता प्रकट होती है, लेकिन बैच में नहीं। धारक पौधों में विशिष्ट संकेतों की एक और बड़ी श्रेणी लैक्टिन है। मटर लैक्टिन जीन को तिपतिया चारे में स्थानांतरित करने पर मटर विशेष **रा. लेग्युमिनोसैरम** द्वारा गुटिकाएं पैदा की जा सकती हैं।

नई अणु जैविक तकनीकों से उपज बढ़ाने या विशिष्ट रोधकता का समावेश करने की अतीव संभावनाएं हैं। एक ओर नई तकनीक से मात्रात्मक जीन युग्म के प्रभाव से टमाटर के फलों को नरम होने से बचाया जा सकता है और यह विधि अन्य फलों पर भी अपनाई जा सकती है। दूसरी ओर पौधों में अनेक एकल जीन स्थानांतरणों द्वारा विषाणु रोगों, कीट और नाशक जीव तथा शाकनाशियों की प्रतिरोधिता पैदा की जा सकती है। विषम जीनी तम्बाकू से चूहे के एंटीबॉडी भी उत्पन्न किए गए हैं। इसके साथ ही मक्का संकरों के उत्पादन में काम आने वाली कोशिका द्रव्यिक-नर वंध्यता का भी अध्ययन किया जा रहा है। माइटोकॉन्ड्रिया के डीएनए में अंतराआण्विक पुनर्योजन से नर बंध्यता के कुछ प्रकार सामने आए हैं। चीन में इस तकनीक से चावल के संकर पैदा किए गए हैं, लेकिन स्रोतों का विवरण अज्ञात है।

परिवर्तनशील तत्वों को उन फसलों में डाला जा सकता है, जिनमें पहले उनका पता नहीं था, और जीन टैगिंग में इसका प्रयोग किया जा सकता है। तम्बाकू में मक्के का परिवर्तनशील तत्व डालने पर वह प्रायः नए परपोषी में चला जाता है। इस प्रकार के परिवर्तनशील तत्व के साथ विषाणु रोग रोधी जीन को टैग किया जा सकता है, और क्लोनित किया जा सकता है। इसी प्रकार सोमाक्लोनल विभेद पृथक किए जा सकते हैं और परिवर्धित किए जा सकते हैं, लेकिन उनकी स्थिरता महत्वपूर्ण है। इस प्रकार ये सभी जैव तकनीकें मानवता की सेवा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। □

[श्री एन.के. नोटानी, श्री आर. तुली एवं श्री पी. विएगास, जैव चिकित्सा प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, ट्राम्बे, मुंबई- 400 085]

पुरस्कृत प्रश्न

गायक प्रायः अपने कान पर हाथ रख कर क्यों गाते हैं?

[जितेन्द्र, त्रिवेणीगंज]

फेफड़ों से निकलने वाली वायु जब लैरिंक्स में स्थित स्वर कोष्ठों से टकराती है तो कोष्ठों में कम्पन उत्पन्न होते हैं, जिसके कारण ध्वनि पैदा होती है। होठों, जिव्हा और तालू के सहयोग से ध्वनि स्वरों में परिवर्तित हो जाती है। ध्वनि की तीव्रता, फेफड़ों द्वारा स्वर कोष्ठों पर पड़ने वाली वायु की तीव्रता, इसके अन्तराल और कोष्ठों की लम्बाई पर निर्भर करती है। जब कोई इतने हलके से भी बोले कि पास बैठा व्यक्ति भी नहीं सुन पाये और यदि बोलने वाला व्यक्ति अपने कान पर हाथ रख ले तो वह स्वयं अपने द्वारा फुसफुसाए शब्दों को साफ तौर पर सुन लेता है। इसका कारण यह है कि बोलने की प्रक्रिया में मुंह की सभी हड्डियों में कम्पन होता है और इन कम्पनों के कारण, बोली हुई ध्वनि के उतार चढ़ाव में होने वाले सूक्ष्म परिवर्तन तुरन्त मुखगुहा के अन्दर ही अन्दर कान के पर्दे पर महसूस किये जा सकते हैं जो कि कानों के ऊपर हाथ रखने से अधिक स्पष्ट सुनाई देते हैं। इस कारण गायक को अपने स्वरों की तीव्रता और अन्तराल का सही अन्दाजा होता है और वह सुनिश्चित कर सकता है कि वह सुर में गा रहा है अथवा नहीं।

राजीव माथुर

क्या कारण है कि मृत व्यक्ति का शरीर पानी में तैरता है जबकि जीवित व्यक्ति पानी में डूब जाता है?

[प्रमोद कुमार भास्कर, अरदौना, मऊ]

इस प्रश्न के उत्तर के लिये सर्वप्रथम तो यह जानना आवश्यक है कि कोई वस्तु किसी द्रव में तैरती अथवा डूबती क्यों है?

जब कोई वस्तु किसी द्रव में डुबोई जाती है तो उस समय दो बल कार्य करते हैं–गुरुत्वाकर्षण बल जो नीचे की ओर कार्य करता है और वस्तु को द्रव के अन्दर ले जाने के लिये उत्तरदायी होता है। गुरुत्वाकर्षण बल के विपरीत दिशा में (ऊर्ध्वाधर दिशा में) द्रव का उछाल कार्य करता है जिसे उत्प्लावन कहते हैं। आर्कमिडीज़ के सिद्धांत के अनुसार जब कोई वस्तु पूर्णतया या आंशिक रूप से किसी द्रव में डुबोई जाती है तो उसके भार में परोक्ष रूप से कमी आ जाती है और यह कमी उस वस्तु द्वारा हटाये गये द्रव के भार के बराबर होती है। वस्तु द्वारा हटाया गया द्रव का भार, उस द्रव द्वारा उस वस्तु के लिये उत्प्लावन होता है।

जब कोई पानी में गिर जाता है तो उसके शरीर का भार, शरीर द्वारा हटाये गये पानी के भार से अधिक होता है और व्यक्ति पानी में डूबने लगता है। परन्तु यदि वह तैराकी के विभिन्न दांव पेचों से प्रयत्न करता हुआ अपने भार के बराबर पानी को विस्थापित करता रहता है तो वह नहीं डूबता। जब उसके द्वारा किये गये प्रयत्न समाप्त हो जाते हैं तो वह पानी में डूबना आरंभ कर देता है और अन्त में सांस न ले पाने के कारण व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है।

मृत्यु के बाद सभी जैवरासायनिक क्रियायें बन्द हो जाती हैं और साथ ही शरीर का अपघटन और सड़ना आरंभ हो जाता है। इस प्रक्रिया में वातावरण में उपस्थित बैक्टीरिया और कवक, कार्बनिक पदार्थों को अमोनिया, कार्बन डाइआक्साइड, हाइड्रोजन सल्फ़ाइड आदि दुर्गन्ध वाली गैसों, कार्बनिक तथा अकार्बनिक तत्वों, हाइड्रोकार्बन के छोटे छोटे टुकड़ों तथा मरकेप्टन (—SH समूह वाले कार्बनिक पदार्थ) में परिवर्तित कर देते हैं। इन गैसों के बनने के कारण शरीर फूल जाता है, उसका आयतन बढ़ जाता है और वह हल्का हो जाता है। आयतन अधिक हो जाने के कारण शरीर अपने भार से अधिक पानी विस्थापित करने लगता है और उत्प्लावन (पानी का उछाल) बढ़ जाने की वजह से मृत शरीर पानी पर तैरने लगता है।

राजीव माथुर

मनुष्य के दो आंखें होती हैं, लेकिन कोई वस्तु देखने पर उसे एक ही दिखाई देती है, ऐसा क्यों होता है?

[राजेश कुमार सहारण, खाराचककाने-वाला, डाक-गोलूवाला, जिला-श्रीगंगा-नगर (राज.)]
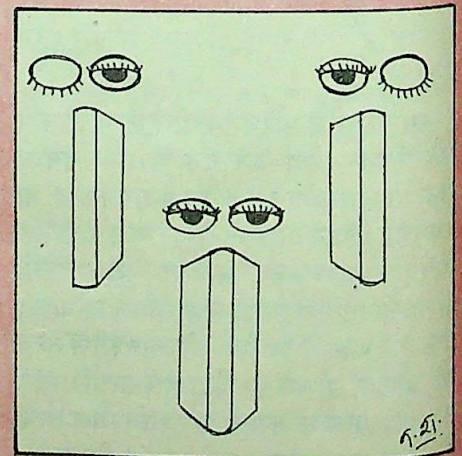
दृष्टि की क्रियाविधि को इस प्रकार भली-भांति समझा जा सकता है कि आंखें जो देखती हैं, दिमाग वह नहीं देखता है। प्रत्येक आंख अपनी रेटिना रूपी पर्दे पर किसी

वस्तु का प्रतिबिम्ब उसी प्रकार प्रकट करती है, जैसे कि कैमरे में फिल्म पर प्रतिबिम्ब बनता है। तत्पश्चात इस प्रतिबिम्ब को तंत्रिका संवेगों द्वारा संसाधित करके मस्तिष्क तक ले जाया जाता है ताकि वस्तु की छवि को मस्तिष्क ग्रहण कर सके। रेटिना में बना प्रतिबिम्ब द्विविमीय होता है, यथा, सपाट, बिना गहराई के, छोटा, अवनत और वस्तु के समान रंग वाला। लेकिन दाईं आंख द्वारा तैयार किया गया प्रतिबिम्ब, बाईं आंख की रेटिना में निर्मित प्रतिबिम्ब के पूर्ण समान नहीं होता है। क्योंकि वस्तु से प्रत्येक आंख का दृष्टिकोण कुछ अलग-अलग होता है। दृष्टि केन्द, मस्तिष्क के पिछले भाग में स्थित होता है। यह दोनों आंखों की रेटिनाओं से आने वाले तंत्रिका संवेगों को मिश्रित करता है, जिससे हमें वस्तु के आकार, मोटाई और उसकी दूरी का ज्ञान होता है। वास्तव में हमारा दिमाग दो प्रतिबिम्ब ही देखता है। इसका परीक्षण एक आंख खोल कर व एक बंद कर के, देख कर किया जा सकता है।

कोल्लेगाल शर्मा

अस्पतालों में दरवाजे तथा खिड़कियों पर प्रायः हरे पर्दे ही क्यों लगाये जाते हैं?

[आलोक सिंह, हथसारा, जगेशरगंज, प्रतापगढ़, उ.प्र.]
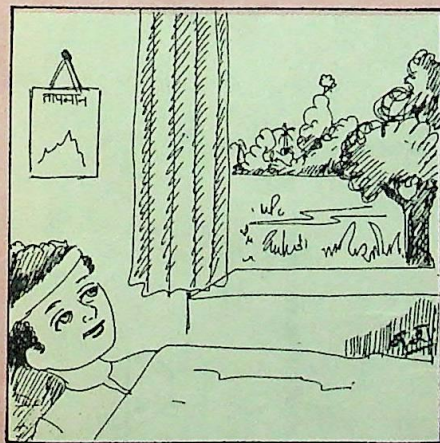
अस्पतालों में दरवाजे तथा खिड़कियों पर पर्दे प्रायः हरे रंग के इसलिये लगाये जाते हैं क्योंकि हरा रंग आंखों में चुभता नहीं है, इसका आंखों पर प्रभाव प्रशान्तक यानि ठण्डक देने वाला होता है और यही रंग प्रकृति में सर्वत्र छितराया हुआ है। इसी हरियाली के कारण ही बाग-बगीचों तथा पार्क आदि में लोग सैर के लिये जाते हैं, जो आंखों व सेहत के लिये बहुत लाभकारी है।

मीनाक्षी

गर्मियों में कुत्ता अपनी जीभ बाहर क्यों निकाले रहता है?

[राजू कुमार सिंह, भोजपुर, बिहार]
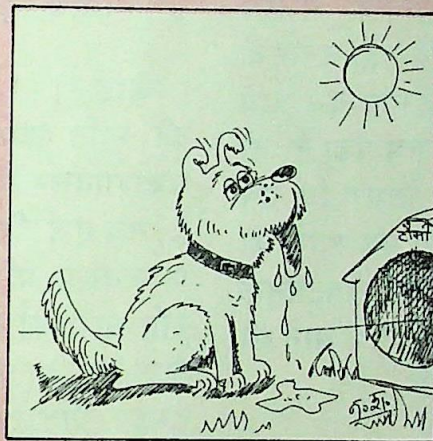
कुत्ता भी हमारी तरह एक स्तनपायी प्राणी है। सम्पूर्ण जन्तुवर्ग में केवल स्तनपायी जीव एवं पक्षी गर्म रक्त वाले प्राणी हैं। गर्म रक्त वाले प्राणियों का तापमान सदैव स्थिर रहता है जबकि शीत रक्त वाले प्राणियों के शरीर का तापमान वातावरण के अनुसार बदलता रहता है।

सभी स्तनपाइयों के शरीर में निरन्तर ऊष्मा पैदा होती रहती है और इसके कुछ भाग का क्षय त्वचा द्वारा होता रहता है। त्वचा के नीचे स्थित स्वेद ग्रंथियों से, त्वचा में स्थित छोटे-छोटे छिद्रों द्वारा पसीना बाहर निकलता रहता है। जिसके वाष्पीकरण से शरीर की ऊष्मा वातावरण में जाती रहती है और हमें ठंडक का अनुभव होता है। कुत्ते के शरीर में स्वेद ग्रंथियां नहीं होती केवल पैर के तलुओं में होती हैं, लेकिन इनका तापमान नियंत्रण से कोई सम्बन्ध नहीं होता। गर्मियों के मौसम में अथवा भागने आदि पर जब कुत्ते के शरीर का तापमान बढ़ जाता है तो शरीर के तापमान को नियंत्रित रखने के लिये कुत्ता अपनी जीभ को बाहर निकाल कर हांफता है।

इस प्रक्रम में उसकी जीभ द्वारा पानी का वाष्पीकरण होता रहता है जिससे वह ठंडक का अनुभव करता है और गर्मी से राहत पाता है।

दीक्षा बिष्ट

कुछ खाद्य पदार्थों जैसे अचार आदि को खुला रखने पर उनमें फफूंदी लग जाती है। क्यों?

[मेघना भांगरे, 8, श्रीराम कालोनी, गेडाम वाड़ा, छिंदवाड़ा-480 001]
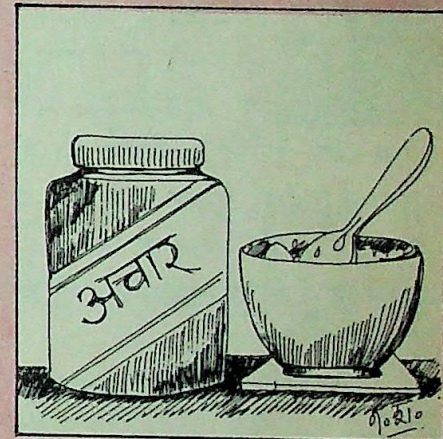
कोई भी खाद्य पदार्थ खुला छोड़ने पर खराब हो जाता है या सड़ जाता है जिसका कारण उस पर फफूंदी का आक्रमण होता है। जहां तक रोजमर्रा प्रयोग में आने वाली वस्तुओं जैसे सब्जी आदि का प्रश्न है, वे शीघ्र ही खायी जाती हैं लेकिन अचार, जैसी चीजें जो लम्बे समय तक रखी जाती हैं प्रायः खराब हो जाती हैं लेकिन वे सड़ती तभी हैं जब उनमें नमी उत्पन्न हो जाये। यदि वे भली-भांति ढक कर अच्छी प्रकार से रखी जायें तो उन्हें सड़ने से बचाया जा सकता है। वैसे भी लम्बे समय तक अचार को रखने के लिये उसमें नमक और तेल अधिक मात्रा में डाल दिया जाता है, इससे अचार के सड़ने की संभावना कम रहती है। लेकिन इसके बावजूद यदि उसमें से गीली चम्मच या हाथ से अचार निकाला जाये तो नमी पाते ही उसमें फफूंदी की वृद्धि होनी आरंभ हो जाती है। औद्योगिक स्तर पर इनको परिरक्षित करने के लिये डिब्बाबन्दी के समय भी इनमें परिरक्षकों का प्रयोग किया जाता है।

एस. डी. पंवार

इलेक्ट्रॉनिक पत्र-पेटी

राजीव रंजन

सामने से आता हुआ डाकिया सबकी जिज्ञासा का केन्द्र होता है। लेकिन घर के भीतर ही यदि आपको यह पता चल जाये कि आपकी पत्र-पेटी में पत्र पड़ा है, तो इससे आप इतने आश्वस्त तो हो ही जायेंगे कि पत्र आया है, और अनेक बार पत्र-पेटी से पत्र खोने की आशंका से भी मुक्त हो जायेंगे। प्रस्तुत इलेक्ट्रॉनिक युक्ति को बना कर आप घर के अन्दर ही पत्र आने की सूचना पा सकते हैं।

कार्य प्रणाली

इस परिपथ में मूलतः दो एकीकृत परिपथों (आई.सी.) का प्रयोग किया गया है। इस परिपथ के दो भाग हैं। प्रथम भाग, आई.सी.-1 से बना है, तथा दूसरा भाग आई.सी.-2 से।

आई.सी.-1 से बना भाग, प्रकाश नियंत्रक स्विच की भांति कार्य करता है। जब एल.डी.आर. या प्रकाशावलम्बी प्रतिरोध पर बल्ब द्वारा प्रकाश पड़ता है, तब एल.डी.आर. का प्रतिरोध निम्नतम होता है। फलस्वरूप, परिवर्तनशील प्रतिरोध (प.) से होकर आ रही धारा का मान शून्य हो जाता है। परन्तु इसके ठीक विपरीत जब एल.डी.आर. अंधेरे में होता है तब इसका प्रतिरोध उच्चतम हो जाता है। परिणाम स्वरूप परिवर्तनशील प्रतिरोध (प.) से होकर आई धारा के मान में अकस्मात वृद्धि होती है। धारा के मान में आया यह परिवर्तन, आई.सी.-1 के "ट्रिगरिंग कम्परेटर" को उत्तेजित करता है। इस क्रिया के

इलेक्ट्रॉनिक पत्र पेटी का परिपथ चित्र

घटकों की सूची

एकीकृत परिपथ आई.सी. - 1 एवं 2	एन.ई. 555
डायोड (ड)	आई.एन. 4003
संधारित्र या कन्डेंसर	
(स1)	1000 माइक्रो फैरेड, 25 वोल्ट
(स2)	·10 किलो पिको फैरेड
(स3) एवं (स4)	100 माइक्रो फैरेड, 10 वोल्ट
एल.डी.आर. (प्रकाशावलम्बी प्रतिरोध)	200 ओह्म
परिवर्तनशील प्रतिरोध	
(प1)	1 मेगा ओह्म
(प2)	10 किलो ओह्म
प्रतिरोध	
(र1)	56 किलो ओह्म
(र2)	1 किलो ओह्म
स्पीकर (स)	8 ओह्म
बल्ब (ब)	9 वोल्ट
लकड़ी की पत्र-पेटी	
बैटरी या सैल	9 वोल्ट

परिणामस्वरूप, पिन संख्या-3 पर विशेष संकेत उत्पन्न होता है। इन संपूर्ण क्रियाओं को, परिवर्तनशील प्रतिरोध (प1) की सहायता से आवश्यकतानुसार बदला जाता है। इस आई.सी. के पिन संख्या-8 पर बैटरी का धनात्मक तथा पिन संख्या-1 पर ऋणात्मक टर्मिनल जोड़ा जाता है।

दूसरे भाग में आई.सी.-2 को ध्वनित्र के रूप में प्रयोग किया गया है। आई.सी.-1 के पिन संख्या-3 से निकले संकेतों को, डायोड (ड) व संधारित्र (स1) की सहायता से, आई.सी.-2 के पिन संख्या-1 पर अर्थ के रूप में प्रयोग किया है। इसी आई.सी. के पिन संख्या-8 पर धन सप्लाई दी गई है। आई.सी.-1 से आया संकेत, ध्वनित्र परिपथ को चालू कर देता है, जिससे आई.सी.-2 के पिन संख्या-3 पर लगे स्पीकर में से विशेष प्रकार की ध्वनि आती है। इस पिन पर लगे संधारित्र (स3) एवं (स4), स्पीकर से उत्पन्न ध्वनि की विशेषता बनाये रखते हैं। परिवर्तन प्रतिरोध (प2) की सहायता से ध्वनि स्वर को इच्छानुसार नियंत्रित किया जा सकता है।
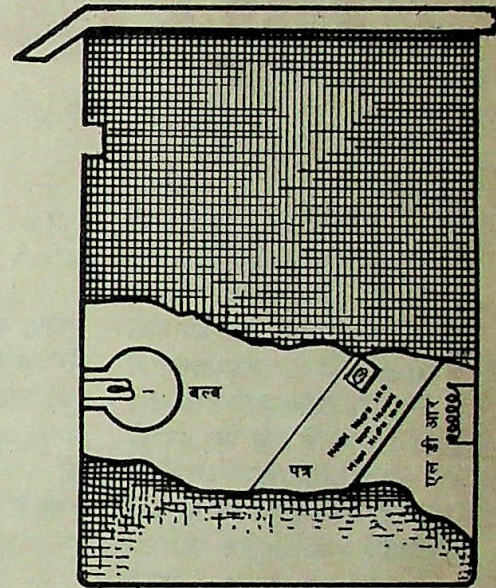
बनाने की विधि

लकड़ी के तख्ते पर सारे घटकों को चित्र में दिये गये परिपथ के अनुसार यथास्थान लगा दें, किन्तु एल.डी.आर. और बल्ब को, लकड़ी की पत्र-पेटी में इस प्रकार समायोजित करें, कि उनकी स्थिति आमने-सामने हो और बल्ब की रोशनी सीधी एल.डी.आर. पर पड़ती रहे। अब स्पीकर को सुविधानुसार, कमरे के अंदर किसी स्थान पर लगा दें। इस प्रकार आपकी इलेक्ट्रॉनिक पत्र-पेटी तैयार हो जायेगी और पत्र-पेटी में पत्र आने पर कमरे में लगे स्पीकर पर आने वाली आवाज से आपको पत्र आने की सूचना मिल जायेगी।

इसको बनाने में कुछ बातों का ध्यान अवश्य रखें, जैसे कि लेटर बाक्स की भीतरी दीवार को काले रंग से रंग दें। परिपथ को पत्र-पेटी में ही समायोजित करें। आई.सी. का प्रयोग, आई.सी. आधार के साथ करें। □

[श्री राजीव रंजन, मकान नं. 559, सेक्टर- 1/ बी, बोकारो इस्पात नगर- 827012]

आक्रामक पक्षी

भाग-1

पीयूष पाण्डेय

अलार्म की हठीली आवाज ने मुझे चौंकाया, मैंने अर्धनिद्रावस्था में हाथ से टटोलकर उसे बन्द किया। पर ये क्या वह अब भी बज रहा था। अब मैं पूरी तरह जाग चुका था और इसके साथ ही यह अहसास भी हो चला था कि मुझे अलार्म ने नहीं बल्कि फोन की घंटी ने जगाया था, जो अब मुझे अपनी सुपरिचित ट्रिंग-ट्रिंग से बुला रहा था।

"हां", मैंने चोंगे में कहा, "मैं पाण्डेय बोल रहा हूं।"

"डाक्टर साहब, मैं बासु हूं। क्षमा चाहता हूं। सर, मैंने सोचा आप व्यस्त रहते हैं, कहीं भूल न जायें, इसलिये स्मरण करा रहा हूं कि सुबह नौ बजे आपको प्रधानमंत्री जी ने नाश्ते पर बुलाया है। मुझे जल्दी कहीं अन्यत्र जाना पड़ रहा है इसलिये इतनी सुबह आपको कष्ट दिया।"

"तो तुम समझते हो मैं बूढ़ा हो चला हूं, शाम की बात सुबह तक याद नहीं रख सकता। अरे बासु, मेरा दिमाग तुम नई पीढ़ी के छोकरों से अब भी ज्यादा तेज है।"

'इसमें क्या शक है, सर? हां, आपको लेने सरकारी गाड़ी ठीक साढ़े आठ बजे पहुंच जायेगी, अच्छा नमस्कार।"

"नमस्कार।"

जाड़ों की सुबह थी, सवा छः बजे थे। मेरी झल्लाहट स्वाभाविक-थी, क्योंकि आज तो मुझे और भी कम काम करने थे, नाश्ता प्रधानमंत्री के साथ करना था तो सुबह की चाय पिलाने का वायदा कल रात से पड़ोस की सुमेधा कर गई थी। एकाकी जीवन बिताना मैंने स्वेच्छा से तय किया था और इस बात का मुझे पछतावा कभी नहीं रहा। मैंने शुरू से ही अपनी आवश्यकताओं को समेट कर रखने की आदत डाल रखी थी। अपने सभी काम यथा-संभव में स्वयं ही करना पसन्द करता हूं।

स्नानादि से निवृत्त हुआ ही था कि द्वार पर एक विशिष्ट अन्दाज में खट-खट, खट-खट, खट-खट हुई जो "मोर्स कोड" के तीन डॉट्स की यानि अंग्रेजी अक्षर "एस" की परिचायक ध्वनि थी और एस-फार-सुमेधा। सुमेधा मेरे कमरे में प्रवेश से पहले सदैव इसी प्रकार खटखटाती थी और उसका निर्देश था कि मैं भी उसके घर का दरवाजा खटखटाते समय अपने नाम के पहले अक्षर अंग्रेजी के "पी" का मोर्स संकेत दिया करूं, यानि डॉट-डैश-डैश-डॉट (.--.)। हमारी यह व्यवस्था कई वर्षों से चली आ रही थी। सुमेधा का विचार था कि "मोर्स-कोड" के प्रयोग से घंटी बजाना, फिर दूसरे व्यक्ति का घर के दरवाजे तक आकर पूछना कि "कौन है?" तथा फिर आपका अपना परिचय देनां जैसे तीन कार्य एक साथ हो जाते हैं।

सुमेधा मेरे पड़ौसी रावत जी की लड़की है। बारह वर्ष पूर्व जब इस फ्लैट में आकर मैंने रहना शुरू किया था तब वह 10-11 वर्ष की छोटी-सी प्यारी बच्ची थी। परिचय उससे कुछ इस तरह हुआ था, "नमस्ते, ईजा ने चाय भेजी है। आप थके होंगे पहले चाय पी लें फिर अपना सामान ठीक-ठाक करियेगा। मेरा नाम सुमेधा है, सुमेधा रावत।" वह बिना सांस लिये कहती जा रही थी, उसने एक स्टील का चमचमाता गिलास तथा एल्यूमीनियम की केतली मेरे एक ट्रंक के ऊपर लाकर रख दी।

वही सुमेधा आज मेरे अधीन अनुसंधान कर रही थी। मेरी ही सलाह पर उसने जन्तु विज्ञान में एम.एस.सी. किया और आजकल वह "जतिंगा रहस्य" पर शोध कर रही है। सुमेधा बम्बई नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी की सदस्या बनी तथा फिर हम दोनों साथ-साथ देश के विभिन्न जंगलों में न जाने कितने अभियानों में गये। उसे मैंने फोटोग्राफी सिखाई, स्कैच बनाने में तो वह पहले से ही प्रवीण थी। देखते-देखते वह मेरी स्वघोषित अवैतनिक सेक्रेटरी बन गयी।

यों मैं आयु में उससे लगभग चालीस वर्ष बड़ा हूं पर वह सदा मुझे मेरे प्रथम नाम से बुलाती आ रही है। आरंभ में उसने मुझे "बर्ड-अंकल" कहना शुरू किया था। उसके अनुसार मेरे चेहरे की आकृति ओर मुद्रा बहुत कुछ पक्षियों से मिलती-जुलती है। पक्षियों को देखते-देखते मैं स्वयं उन्हीं जैसा दिखाई देने लगा हूं। तब मैंने उसे बताया कि बहुत से लोग 'डाक्टर सालिम अली' के लिये भी ऐसा ही कहते हैं। न जाने क्यों फिर उसके बाद उसने मुझे दुबारा "बर्ड अंकल" नहीं कहा। शायद उसे यह अहसास हो गया था कि सालिम अली जैसे प्रसिद्ध व्यक्ति से अपनी तुलना करना मुझे अच्छा नहीं लगा था।

"अब आप यह चाय पीयेंगे भी या यों ही ठण्डी होती रहने देंगे?" सुमेधा ने मु

वर्तमान में ला दिया। कुछ देर बाद वह फिर बोली, "मैं सोच रही हूं यदि आपके साथ प्रधानमंत्री वाला नाश्ता करने का सौभाग्य मुझे भी मिलता तो क्या ही अच्छा होता।"

अब आपको यह बताना आवश्यक है कि मेरे सभी तर्कों, प्रधानमंत्री की सुरक्षा व्यवस्था इत्यादि की एक न चली और वह हठी युवती मेरी बगल में सफेद सरकारी एम्बेसेडर कार में ठीक साढ़े आठ बजे आरूढ़ हो गयी। संयोग से प्रधानमंत्री निवास में प्रवेश पाने में कोई कठिनाई नहीं हुई, किसी ने भी—वह कौन है—नहीं पूछा।

नाश्ते में संतरे का रस, पपीता तथा चीकू और चाय देखकर मुझे सुमेधा के घर के आलू भरे मक्खन युक्त परांठे याद आने लगे। साठ वर्ष की आयु पार करने पर भी मुझे कभी कॉलेस्टेरॉल कम करने की जरूरत नहीं पड़ी। यदि प्रतिदिन पांच छः किमी. चलना आम घटना हो तो फिर आहार की कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ती। फिर आप जीवन भर मनचाहा खाये पीयें।

प्रधानमंत्री जी ने संकेत किया तो हम सतर्क होकर बैठ गये। उन्होंने बोलना शुरू किया, "अब मैं आपको एक गोपनीय बात बताने जा रहा हूं, चूंकि आपका कहना है सुमेधा आपके सभी अभियानों में साथ जाती हैं तो मैं इनके सामने ही वह बात आपसे कहता हूं।"

एकाग्र होकर उस रहस्य को जानने को आतर हो उठे।

एक पड़ोसी राष्ट्र का नाम लेते हुए उन्होंने बताया कि वहां एक बड़ी गंभीर समस्या उत्पन्न हो गयी है और उन्होंने हमसे तुरन्त सहायता मांगी है। मैं बोला, "पर मैंने तो समाचार पत्रों में उस देश में किसी भी समस्या की चर्चा नहीं सुनी, हां केवल एक समाचार उस देश के बारे में आज सुबह के

अखबार में था कि अगले मास वहां होने वाली उपमहाद्वीपीय एथलीटिक प्रतियोगिता स्थगित हो गयी है। पर उसमें कोई कारण नहीं दिया था।"

प्रधानमंत्री ने हल्के उपहास के स्वर में कहा, "पण्डितजी, यहां प्रजातन्त्र है तथा प्रैस की आजादी और वहां है घोर तानाशाही और सेन्सरशिप। हमारे अखबारों में तो क्या उनके अपने अखबारों में भी यह खबर नहीं छपी है जो मैं आपको बताने जा रहा हूं। कल दिन में जब मैं अपने दफ्तर में था जो उनके राष्ट्रपति का फोन मेरे लिये आया। यह एक विचित्र बात थी क्योंकि एक राष्ट्रपति सामान्यतः आचार संहिता के विचार से दूसरे राष्ट्रपति से ही बात करेगा। और चूंकि उनके यहां हमारी जैसी जनतांत्रिक प्रणाली नहीं है वहां प्रधानमंत्री होता नहीं तो उन्होंने शायद आचार संहिता के बजाय अपने उद्देश्य को अधिक प्राथमिकता देना उचित समझा हो।"

अब तक मैं पर्याप्त बेसब्र हो चुका था और अपनी बेसब्री को व्यक्त कर ही बैठा, "हां, पर यह तो बताइये कि वहां की समस्या क्या है?"

प्रधानमंत्री जी उसी स्वर में बोलते रहे मानों मैंने उन्हें टोका ही नहीं था, "उन्होंने हमसे सैनिक सहायता मांगी है।" यह कहकर वे एक बार फिर ठिठके और सुमेधा की ओर देखकर रुक गये।

मैं सोचने लगा यदि सैनिक सहायता मंगाई है तो मुझे बुलाने की क्या जरूरत थी, सेनाध्यक्ष को बुलाना चाहिये था। मेरा मन भांपते हुए वे फिर बोले, "आपको अपने बुलाये जाने पर आश्चर्य हो रहा होगा, दरअसल मेरा विचार है, समस्या का सैनिक समाधान नहीं है बल्कि एक पक्षी विशेषज्ञ ही उसका कोई हल सुझा सकता है। वहां पक्षियों के कारण लोगों का जीवन संकट में पड़ गया है। पक्षियों के कारण वहां रोज इतनी अधिक दुर्घटनायें हो रही हैं कि एक राष्ट्रीय आपात स्थिति की घोषणा कर दी गयी है। स्कूल, कॉलेज, दफ्तर, कारखाने धीरे-धीरे सब बन्द होते जा रहे हैं। विभिन्न प्रकार की दुर्घटनाओं तथा पक्षियों द्वारा किये गये सीधे आक्रमणों में मरने वालों की संख्या सात
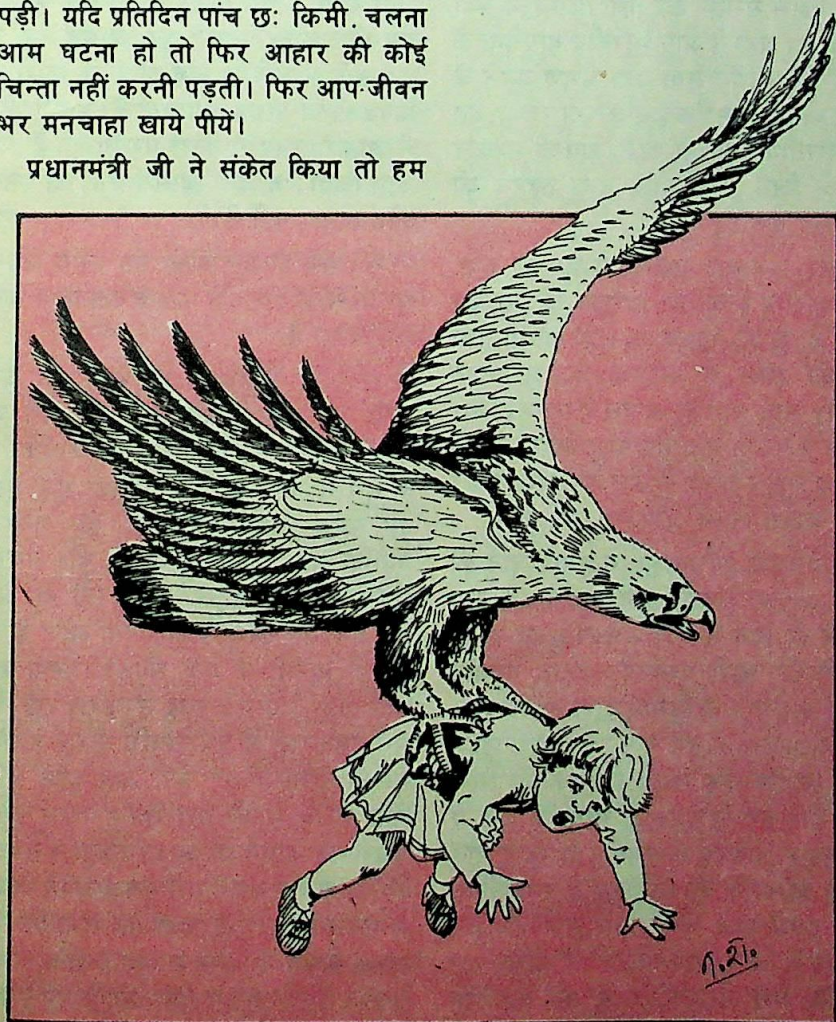
हजार तक पहुंच चुकी है।''

''आपने पक्षियों की प्रकृति, व्यवहार आदि पर गहन शोध किया है। मैंने आपकी पुस्तकें 'उड़ने वाले जन्तु', 'पक्षियों का पशुत्व' और 'मृणाल' पढ़ी हैं। क्यों डाक्टर साहब, 'मृणाल' तो वही है न जो डा. सालिम अली ने अपनी मृत्यु से कुछ ही सप्ताह पूर्व विमोचित की थी?''

मैंने सहमति में अपना सिर हिलाया और उनकी ओर प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा। वे बोलते रहे।

''उनके राष्ट्रपति के अनुसार लगभग दो महीने से यह अनुभव किया जा रहा था कि पक्षी धीरे-धीरे हिंस्र होने लगे थे। आरंभ में वे यदा-कदा स्कूली बच्चों और छोटे जानवरों पर टूट पड़ते थे और थोड़ा बहुत नोचकर फुर्र उड़ जाते थे। पर अब पिछले महीने से उन्होंने न केवल वयस्कों पर बल्कि बसों, कारों तथा अन्य वाहनों पर भी आक्रमण करना आरंभ कर दिया है। कभी उनके व्यवहार को देखकर लगता है मानो मनुष्यों का मांस नोचने आ रहे हों, तो कभी लगता है जैसे वे आत्महत्या करने पर आमादा हों। मुझे, हमारे पर्यावरण मंत्री जी ने बताया कि हमारे यहां भी हर वर्ष जतिंगा में पक्षी सामूहिक आत्महत्या करते हैं।''

सुमेधा ने टोका, ''जी, वे आत्महत्या नहीं करते बल्कि दिग्भ्रमित होकर प्रकाश स्रोतों पर सिर मारने लगते हैं और जितना वे स्वयं नहीं मरते उससे अधिक जतिंगावासियों की लाठियों की मार से मरते हैं। मैं इस विषय पर डा. पाण्डेय की निगरानी में शोध कर रही हूं।''

प्रधानमंत्री ने प्रशंसा भरी नजरों से सुमेधा की ओर देखा। इसी बीच दुबारा चाय आ गयी थी। इस बार साथ में बिस्कुट भी थे, मैंने मन ही मन सोचा कि चलो कुछ तो अन्न मुख में जायेगा, पपीते ने तो मुख का स्वाद ही बिगाड़ दिया था।

''चलिये यह तो बड़ा अच्छा है कि आपने इससे मिलती-जुलती समस्या पर कार्य किया है, आपके वहां जाने से निश्चय ही डाक्टर पाण्डेय को सहायता मिलेगी। हां, तो मैं बता रहा था कि....।''

मैंने टोका, ''क्या इतनी सारी बातें आपको उनके राष्ट्रपति ने फोन पर बतलायी?''

''नहीं, उन्होंने मुझे केवल मोटी-मोटी बातें ही फोन पर बतायी थीं, साथ में एक 'फैक्स' भेज दिया था जिसमें पूरा ब्यौरा सविस्तार दिया था। उसकी एक कापी आपके लिये इस लिफाफे में रखी है। हां, तो मैं आपको बता रहा था कि पक्षी राह चलते व्यक्तियों तथा वाहनों पर टूट पड़ते हैं, कुछ बड़े पक्षी छोटे बच्चों को उठा ले जाने लगे हैं, कौवे और चीलें विशेष रूप से आतंक मचाये हुए हैं। किसी बिजली के खम्बे पर बैठे कौवे यकायक किसी वाहन पर टूट पड़ते हैं और चालक घबड़ाहट में संतुलन खोकर किसी अन्य वाहन से टकराकर एक भीषण दुर्घटना कर बैठता है।''

''मेरा अनुरोध है कि आप दोनों यथाशीघ्र वहां जाकर समस्या का अध्ययन कर फोन द्वारा मुझसे सम्पर्क करें तथा सुझायें कि क्या करना है। यहां से आप भारतीय वायुसेना के विमान में जायेंगे तथा वहां भ्रमण करने के लिये आपके पास एक हेलीकॉप्टर रहेगा, वह भी भारतीय वायुसेना का है, वहां की सरकार आपके लिये कार आदि तथा ठहरने की व्यवस्था करेगी।''

''हां, एक बात कहना तो भूल ही गया, मैंने जनरल निकोलस डिसूज़ा को भी कह दिया है, वे भी आपके साथ ही जायेंगे तथा आपकी दृष्टि से समस्या का मूल्यांकन करेंगें। आप चाहें तो आपस में परामर्श कर सकते हैं परन्तु जहां तक मेरा अनुमान है वे शायद मुझे स्वतन्त्र रिपोर्ट देना पसन्द करें तथा आपसे भिन्न अभिमत रखते हों।''

प्रधानमंत्री सचिवालय ने हमारे जाने की सभी औपचारिकतायें पूरी कर दी थीं तथा अगले ही दिन मैं और सुमेधा सुबह-सुबह अपनी ढेर सारी पुस्तकों, नोट्स, दूरबीनें लेकर वायुसेना के विमान द्वारा रवाना हुए। सेना मुख्यालय से हमें चार-चार जोड़ी छद्म वेश (कैमोफ्लाज किट) पोशाकें भी मिल गयी थीं। इस हिदायत के साथ कि वनों में एकान्त में विचरण के समय ये ही पहनी जाएं ताकि आसपास की घासफूस व वनस्पतियों तथा इसमें पक्षी भेद न कर सकें और हम अदृश्य हो जायं। हमने किट रख ली पर पता था कि पूरी नेकनीयती से की गयी यह व्यवस्था हमारे लिए किसी काम की नहीं होगी, क्योंकि चीलों तथा बाजों, जिनसे ह... विशेष खतरा था, कि दृष्टि इतनी पैनी हो... है कि वे सैकड़ों फुट की ऊंचाई से जमीन... रेंगते हुए चूहे को देखकर झपट पड़ते हैं... उनके लिये मनुष्य जितनी बड़ी आकृति का... दिखाई पड़ना असंभव प्रतीत होता है। ... भी पता चला कि लेफ्टिनेन्ट जनरल डिसू... अलग विमान से एक दिन बाद अपने सा... सामान तथा सहायकों के साथ वहां पहुंचेंगे।

विमान को गंतव्य तक पहुंचने में लगभ... साढ़े सात घंटे लगे और वह रास्ते में कहीं न... उतरा। छोटा सा हवाई अड्डा था। हमें ले... उस देश के एक उच्चाधिकारी आये हुए थे... पर हमें यह देखकर आश्चर्य हो रहा था ... कोई भी कार वहां हमारे लिये नहीं थी। मैं... उनसे पूछा, ''क्या होटल इतना पास है ... पैदल जाया जा सकता है?''

वे बोले, ''नहीं साहब वो तो कम से क... दस मील होगा, सामने वह 'आर्मर्ड वैन' ... न? उसी से जायेंगे। अब तो चीलें, कारों ... विण्डशील्ड तोड़ने लग गयी हैं। इतनी ऊं... से आकर ऊपर से कारों पर गिरती हैं, ... आप चिंता न करें 'आर्मर्ड वैन' को इन... कोई खतरा नहीं है।''

मैंने मन ही मन बोला इस समय अप... सुरक्षा से अधिक मुझे आपके देश के भवि... की चिन्ता है।

राष्ट्रपति से हमारी भेंट सांय चार ब... रखी गयी थी, उसके बाद ही आगे ... कार्यक्रम निश्चित होना था। यह जानकर ... व सुमेधा दोनों ही बड़े निराश हुए औ... यह समय हमने होटल में ही गुजा... क्योंकि बाहर घूमने पर मनाही थी। सुमे... अपने ''जतिंगा नोट्स'' पढ़ती रही और ... तब तक वह काला बड़ा बक्सा खोल डा... जिसमें दिल्ली के एक भौतिकशास्त्री ... घोष द्वारा दिये गये कुछ उपकरण रखे ... मैंने उपकरणों की प्रयोगविधि भी पढ़ डाली... सुमेधा कभी-कभार मेरी ओर दृष्टि डा... लेती थी कि मैं कर क्या रहा हूं परन्तु उ... मुझसे यह जानने की आवश्यकता न सम... कि वह सब है क्या? उसे केवल अपने वि... से मतलब रहता है, जहां यह लगा कि ... उसके विषय से भिन्न मसला है तो वह ... उसपर दृष्टिपात् भी नहीं करेगी। मैंने ... बार उसे समझाने का प्रयास किया है ...

''अध्ययन को हम अलग-अलग कोष्ठों में नहीं बांट सकते कि यह जन्तु विज्ञान है, यह वनस्पति, यह खगोलशास्त्र और यह भौतिकी। बहुत से ऐसे क्षेत्र होते हैं जिन्हें हम अन्तर्विषयी अध्ययन या इण्टरडिसिप्लिनरी स्टडीज़ कहते हैं और इनके बिना तो जैसे आजकल का शोध कार्य असम्भव सा है। बायोफिजिक्स तथा बायोकैमिस्ट्री शब्द शायद पुराने लगें, एस्ट्रोकैमिस्ट्री शब्द भी कानों को न खटके परन्तु एक्सोबायोलॉजी विषय के बारे में आप क्या सोचती हैं, है न एक दम नया नाम, हिन्दी में शायद हम नाम देना चाहें 'ख-जीव विज्ञान', 'खगोल जीव विज्ञान', 'खगोल जैविकी' अथवा 'धरातीत-जैविकी'।''

शाम के पौने चार बजे, एक ''आर्मर्ड वैन'' में बैठ हम दोनों राष्ट्रपति भवन गये। राष्ट्रपति से भेंट केवल पन्द्रह मिनट चली जिसमें मुख्यतः उन्हीं बातों की संक्षिप्त चर्चा हुई जो हम एक दिन पूर्व अपने प्रधानमंत्री द्वारा जान चुके थे। केवल दो बातें नई थीं जिनमें से एक बड़े हैरत में डालने वाली थी कि उनके यहां कोई पर्यावरण मंत्रालय या विभाग नहीं था, इसलिये हमारी आगामी गतिविधियों के संचालन और उनमें सहयोग का जिम्मा संयुक्त रूप से वन मंत्रालय तथा गृह मंत्रालय को सौंपा गया था। दूसरी नई बात बड़े शोक की थी कि आज ही सुबह कुछ पक्षियों ने एक स्कूल भवन में छात्रों पर आक्रमण कर दिया था जिससे उत्पन्न भगदड़ में बाईस छात्रों की जीवन लीला समाप्त हो गयी थी तथा दो सौ के लगभग घायल हो गये। मैंने जानना चाहा कि स्कूल-कालेज तो बन्द थे फिर यह स्कूल किस प्रकार खुला था तो पता चला कि वह कोई साधारण स्कूल न था और न उसे बन्द किया जा सकता था क्योंकि वह धर्म की शिक्षा देने वाला स्कूल था, जिसके छात्र आगे चलकर धर्म गुरु, भिक्षु या पुजारी आदि बनते हैं। इस विषय में उन्हें कोई सलाह न देना ही मैंने बेहतर समझा।

राष्ट्रपति हमारे आगमन और हमारी योजना के प्रति बिल्कुल भी उत्साहित न थे, उनके विचार से हमारे अध्ययन से कुछ होना-वोना नहीं था, पक्षी पगला गये थे, उन्हें मार देने के अलावा कोई विकल्प नहीं था। फिर भी पूरी सहायता का आश्वासन उनसे पाकर हम उनके वन-मंत्री तथा गृह-मंत्री से मिलने के लिये निकल पड़े। राष्ट्रपति भवन के विभिन्न कक्षों से होकर हम बाहर आ रहे थे कि मेरे कानों में तोते की आवाज पड़ी। राष्ट्रपति के अंगरक्षकों की बौखलाहट की चिन्ता किये बगैर हम दोनों उस आवाज की ओर दौड़ पड़े और हमारे अगल-बगल बदहवास से अंगरक्षक बड़बड़ाते हुए, ''क्या है, क्या है?''

राष्ट्रपति निवास का वह पालतू तोता अन्य तोतों की तरह सीखे हुए शब्द दुहरा रहा था, पूर्ण स्वस्थ दिखाई दे रहा था। मैंने अपने बैग में से एक चमड़े का दस्ताना निकालकर हाथ पर पहना तथा अपनी उंगली पिंजरे में डाल दी। तोते ने पहले तो इधर-उधर देखा फिर अपना मुख खोलकर बड़े प्रेमपूर्वक मेरी उंगली पर चोंच फिराई तथा फिर धीरे से मुख खोलकर अपनी चोंच से मेरी उंगली को अपने मुख में ले लिया। अब दस्ताने पहने रहने का एक ही अर्थ था—इस प्यारे से पक्षी का अपमान। मैंने दस्ताना खोला, फिर पिंजड़े का दरवाजा खोलकर तोते को हाथ से लेकर सहलाया, फिर मैंने उसे उड़ा दिया। तोते ने कमरे के दो-तीन चक्कर लगाये फिर मेरे कन्धे पर आकर पलभर के लिये बैठा और स्वयं वापस पिंजड़े में चला गया।

मैंने कहा, ''ऊं-हुंह'', सुमेधा ने प्रत्युत्तर में कहा, ''हुं-हुं''। हम दोनों ने एक साथ कहा कि ''हम तुरन्त आपके चिड़ियाघर जाना चाहते हैं।'' राष्ट्रपति के सचिव जो अब तक हमारे पीछे इस कक्ष तक पहुंच चुके थे बोले, ''आपकी प्रतीक्षा होटल में वन तथा गृह मंत्री कर रहे हैं।''

मैं बोला, ''देखिये यह सब तो बाद में भी हो जायेगा परन्तु आपका चिड़ियाघर साढ़े पांच बजे बन्द हो जायेगा और हम उसे फिर आज नहीं देख पायेंगे। आप कृपया मंत्रीगणों को फोन पर हमारी मीटिंग का समय केवल आधा घंटा आगे बढ़वा दें, हमें इससे अधिक समय वहां नहीं लगेगा।''

किसी प्रकार सचिव महोदय मान गये। चिड़ियाघर पशु-पक्षियों से भरा पड़ा था, रख-रखाव भी ठीक था परन्तु दर्शक नदारद थे, सिवाय हमारे एवं कुछेक विदेशी पर्यटकों के।

पक्षियों में सर्वाधिक आकर्षक था यहां का उल्लूओं, फीजेन्ट्स (मोर सरीखे पक्षी) तथा पैराकीट्स (तोते से मिलती-जुलती आकृति वाले छोटे पक्षी) का संग्रह। उल्लूओं की इतनी विविध प्रजातियां यहां मौजूद थी कि मुझे कई वर्ष पूर्व अपने देश मियाओ (अरुणाचल) में देखे छोटे से चिड़ियाघर की याद हो आयी जहां कल पशु-पक्षियों की संख्या की तुलना में उल्लूओं की तादाद व प्रजातियां बहुत अधिक थी। उल्लू शब्द चाहे मन में कोई विचित्र भाव क्यों न उत्पन्न करता हो इस नाम का पक्षी निस्संदेह अत्यन्त सुन्दर होता है। लगभग सवा पांच सौ प्रजातियां होती हैं इसकी और उनमें से लगभग 30 यहां थी, बित्ते भर की आकृति से लेकर साढ़े तीन फुट ऊंचे उल्लू। सुमेधा जो बहुत देर से चुप थी बोली, ''ये ऑर्डर-**स्ट्रीजीफॉर्मस** में आते हैं न?''

''हां, परन्तु मेरे विचार से ये चार पक्षी उल्लू नहीं हैं, हालांकि देखने में पर्याप्त समानता है, पर ध्यान से देखो तो ये थोड़ा भिन्न हैं। इनके डैनों के कोने बड़े नुकीले हैं और चोंचों में बाल या कांटे जैसी संरचनायें हैं जिसकी मदद से ये कीट-पतंगों को अपने मुख में कैद कर लेते हैं। ये 'नाइट-जार' कहलाते हैं और इनका ऑर्डर है, '**कैप्रीमुल्गीफॉर्मस**'।

चिड़ियाघर के संरक्षक से अनुमति लेकर हम बाजों तथा फिर मैनाओं के बाड़े में गये उनकी इस हिदायत के साथ कि आप अपनी जिम्मेदारी पर अन्दर जा रहे हैं; परन्तु किसी भी पक्षी ने हम पर आक्रमण नहीं किया, सभी शान्त भाव से कभी हमें देख लेते फिर अपनी गतिविधियों में लग जाते।

''क्यों सुमेधा'', उसे विचारमग्न देख मैंने पूछा, ''क्या तुम भी वही सोच रही हो जो मैं सोच रहा हूं?''

''हां, मुझे लग रहा है हम किसी निष्कर्ष की ओर धीरे-धीरे बढ़ रहे हैं। मैं जरा इन पक्षियों के दाने, पानी, आहार की व्यवस्था के बारे में कुछ प्रश्न संरक्षक से करना चाहती हूं।'' □

(क्रमशः)

[श्री पीयूष पाण्डेय, निदेशक, जवाहर प्लैनेटेरियम, आनन्द भवन, इलाहाबाद- 2 उ.प्र.]

गर्भाशय बना ऑपरेशन थियेटर

सुनील कुमार

विभिन्न घातक रोगों के कारण गर्भपात हो जाना एक आम घटना है इस समस्या से निपटने के लिये शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में एक ऐसी खोज हुई है जिससे हजारों गर्भपातों को रोका जा सकेगा। यह चिकित्सा है भ्रूण की शल्य चिकित्सा। पिछले वर्ष इस प्रकार के लगभग 400 भ्रूण ऑपरेशन किये गये थे।

इस नयी प्रकार की शल्य चिकित्सा का लाभ उठाने वाला प्रथम रोगी था एक अजन्मा मादा भ्रूण, जिसका बाद में नाम पड़ा 'एम्मा कैटपोल', जो अब 3 वर्ष की है। जब यह लकड़ी अपनी माता के गर्भ में ही थी तभी चिकित्सकों को पता लगा कि भ्रूण के फेफड़ों में एक प्रकार का घातक द्रव भर गया है।

डा. क्यिप्रोस निकोलाइडिस के नेतृत्व में लंदन स्थित किंग्स कालेज हॉस्पिटल के चिकित्सकों ने भ्रूण का ऑपरेशन करके उसके फेफड़ों में भरे द्रव को निकाल दिया। अब बच्ची की छाती पर ऑपरेशन के दो छोटे निशानों के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

डा. निकोलाइडिस के अनुसार "गर्भाशय" एक पूर्ण रूप से सुरक्षित ऑपरेशन थियेटर के समान ही है। इसमें भ्रूण स्वयं ही सुरक्षित द्रव में घिरा रहता है जिसकी नमी व तापक्रम स्थिर रहते है। साथ ही भ्रूण के लिये अनवरत पोषण की आपूर्ति भी जारी रहती है।

अस्सी के दशक में चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में इतनीं तरक्की हो चुकी थी कि अजन्मे बच्चे या भ्रूण में कोई भी घातक त्रुटि उसके जन्म से पहले ही पहचानी जा सकती थी। अल्ट्रासाऊंड तकनीक तथा भ्रूण के धिरे द्रव का परीक्षण करके लगभग 16 हफ्ते बाद ही भ्रूण की अनियमिततायें पता लगायी जा सकती हैं।

ऐसे मामलों में डाक्टर अन्त में मां व बच्चे की भलाई के लिये गर्भपात कराने की ही सलाह देते थे। कई देशों में गर्भपात को अब तक भी कानूनी वैधता प्राप्त नहीं हुयी है। और कुछ देशों में जहां पर गर्भपात कानूनी रूप से मान्यता प्राप्त भी है वहां पर भी भावनात्मक उद्वेग के कारण गर्भपातों के खिलाफ हिसंक संघर्ष भी होता रहता है।

श्रीलंका के जयवर्धनपुरा जनरल अस्पताल की शिशु रोग विशेषज्ञ डा. जैमिनी के अनुसार मानव शरीर में जो घातक बीमारियां भ्रूण अवस्था में पैदा होती है वे ऐसे ही है जैसे किसी फैक्टरी में कार निर्माण के समय आने वाली निर्माण त्रुटियां। लेकिन कार की तुलना में मानव में यह त्रुटियां तब तक ठीक नहीं की जा सकती जब तक कि बच्चा अपनी निर्माण फैक्ट्री से बाहर नहीं आ जाता।

प्रथम प्रयोग

पिछले वर्ष दिसम्बर माह में लंदन के गईस अस्पताल के चिकित्सकों ने एक अजन्मे बच्चे के ऑपरेशन का प्रयास किया था। इस भ्रूण का पता, गर्भावस्था के 30 सप्ताह बाद लगा कि इसके हृदय के वाल्व में कुछ पदार्थों के जमने के कारण रक्त परिवहन में अवरोध आ गया है, जिस कारण अन्त में बच्चे के हृदय की धड़कन बंद हो जायेगी अथवा समय से पूर्व इस बच्चे को जन्म देना पड़ेगा।

यह ऐतिहासिक ऑपरेशन प्रोफेसर माईकल टायनन के नेतृत्व में किया गया था। इसमें डा. टायनन ने मां के गर्भाशय को भेदते हुये एक पतली नलिका भ्रूण के नन्हे से हृदय में प्रवेश करायी। इस पतली ट्यूब के हृदय के अन्दर पहुंचने के उपरान्त, इस ट्यूब के अग्र भाग पर स्थित गुब्बारे को फुलाया गया। जिसके फूलने से भ्रूण के हृदय के अवरोधक वाल्वों को अलग-अलग कर दिया गया। इस संपूर्ण ऑपरेशन में लगभग दो घंटे का समय लगा। यह बच्चा जिसका नाम माइकैल वर्मिलो रखा गया जनवरी माह के आरंभ में

मां के गर्भाशय से होकर पतली नलिका को भ्रूण के हृदय में प्रवेश करना।

नलिका के अग्र भाग में लगे छोटे से गुब्बारे को फुलाकर हृदय के अवरोधक कपाटों को खोल दिया गया।

पैदा हुआ लेकिन एक माह तक के जीवन संघर्ष के उपरान्त उसकी मृत्यु हो गई।

जन्म से पूर्व ऑपरेशन का एक और तरीका व उदाहरण मिला है जिसमें भ्रूण को माता के गर्भ से, बाहर निकाल कर ऑपरेशन किया गया तथा ऑपरेशन के उपरान्त पुनः गर्भ में स्थापित कर दिया गया। पिछले वर्ष ऐसा ही एक अन्य उदाहरण मिला जिसमें सैन फ्रांसिस्को स्थित कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय में प्रो. माईकल हैरीसन के नेतृत्व में इस तकनीक से सफलता मिली। एक बच्चा जो डाईफ्रैगमैटिक हर्निया से ग्रस्त था (इस अवस्था में पेट को दो हिस्सों में बांटने वाला पर्दा फट जाता है और आंतें ऊपर के हिस्से में चढ़ जाती हैं इससे फेफड़ों पर दबाव पड़ता है), को मां के गर्भाशय से लगभग आधा बाहर निकाला गया जबकि वह गर्भधारण के उपरान्त केवल 6 माह का ही था। इसके उपरान्त बच्चे का पेट खोला गया और ऑपरेशन के द्वारा दोष को ठीक करके बच्चा पुनः मां के गर्भ में पहुंच गया। तीन महीने बाद बच्चा स्वास्थ्य पैदा हुआ।

अजन्मे बच्चे के जीवन के लिये सिर्फ हृदय के वाल्व अवरोध या डायफ्राम हर्निया ही घातक नहीं है बल्कि दूसरे दोष जैसे खंडित होठ अथवा क्लेफट लिप्स तथा खंडतालू क्लेफट पैलेट्स भी बराबर घातक हैं।

किसी ऑपरेशन के बाद शरीर पर बने निशान जीवनपर्यन्त उसकी याद दिलाते हैं। लेकिन काफी शोधों के उपरान्त यह पाया गया है कि माता के गर्भ में भ्रूण अवस्था में किये गये ऑपरेशन के निशान लगभग अदृश्य होते है। मानचेस्टर विश्वविद्यालय के डा. मार्क फर्गुसन के अनुसार भ्रूणअवस्था में हुये घाव के चिन्हों का अदृश्य हो जाना भविष्य में प्लास्टिक सर्जरी के क्षेत्र में वरदान साबित होगा क्योंकि प्रायः 700-800 बच्चों में से एक बच्चे की पैदाइश खंडित होंठ या क्लेफ्ट लिप्स अथवा खंडतालु के साथ होती है। गईस अस्पताल के चिकित्सकों को आशा है कि वे शीघ्र ही भ्रूणअवस्था के बच्चे में पहला खंडतालु ठीक करने का ऑपरेशन कर सकेंगे। उसके लिये बच्चे के सिर को मां के गर्भ से लगभग एक घंटे के लिये बाहर निकाला जायेगा। इसमें किसी प्रकार की कोई परेशानी पैदा नहीं होगी क्योंकि ऑपरेशन के दौरान बच्चे (भ्रूण को) को आक्सीजन तथा पोषण की निरन्तर आपूर्ति मां के गर्भाशय में जुड़े नाल (अम्बेलिकल कौर्ड) से होती रहेगी। यह अवस्था कुछ ऐसी ही अवस्था के समान है जिसमें कृत्रिम रूप से न होकर, भ्रूण अपने ही हृदय तथा फेफड़ों की मशीन से जुड़ा रहता है।

जन्म से पूर्व भ्रूणावस्था में सर्जरी करना संभावनाओं का मार्ग है यद्यपि ये संभव है कि इससे जुड़े हुए कुछ नैतिक प्रश्न भी उठ खड़े होंगे। लेकिन उन बच्चों के भविष्य के लिये, जो अभी गर्भ में वंशानुगत त्रुटियों की त्रासदी के शिकार हैं, का भ्रूणावस्था में ऑपरेशन करना उनका पैदा होने के बाद बचपन में किये जाने वाले ऑपरेशन से संभवतः कम कष्टप्रद होगा और इस प्रकार की शल्य चिकित्सा ऐसे बच्चों के लिये वरदान साबित होगी। ■

[डा. सुनील कुमार, 513, विज्ञान सदन, सेक्टर- 10, आर. के. पुरम, नई दिल्ली]

40 वर्ष पहले

अगस्त १९५२

सेंट्रल रोड रिसर्च इंस्टीट्यूट का उद्घाटन

प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने १६ जुलाई, १९५२, को केन्द्रीय रोड रिसर्च इंस्टीट्यूट का उद्घाटन किया। उन्होंने कहा कि हमारी प्रयोगशालायें नवीन भारत की प्रतीक हैं। वे हमारी उन्नति और समृद्धि की आधारशिलायें हैं। आज की दुनिया में संचार के साधनों का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है।

नेशनल फ़िज़िकल लेबोरेटरी

नेशनल फ़िज़िकल लेबोरेटरी देश की रिसर्च संस्थाओं में एक गौरव का स्थान रखती है। इसकी शानदार इमारत सुन्दर बगीचों के बीच में बनी है, और इसके अन्दर की प्रयोगशालायें और लेबोरेटरियां तरह-तरह की मशीनों, औज़ारों और उपकरणों से सजी हुई हैं। स्वर्गीय सरदार वल्लभभाई पटेल ने जनवरी १९५० में इसका विधिवत उद्घाटन किया।

घरेलू और छोटे उद्योगों के विकास की योजना

घरेलू और छोटे उद्योगों के महत्व को अब सारे संसार ने मान लिया है। जापान में छोटे उद्योगों की सफलता से यह साबित हो जाता है कि आज के युग में राष्ट्र के उद्योग धंधों में छोटे उद्योगों की जगह बड़े महत्व की है; और यह भी साबित हो जाता है कि छोटे उद्योग धंधे बड़े-बड़े कारखानों के साथ एक दूसरे को लाभ पहुंचाते हुए चल सकते हैं।

कई धागे एक साथ कातने वाला चर्खा

पेटेन्ट

भारतीय पेटेन्ट नं० ४३८२०, २७ सितम्बर, १९५०

इस चर्खे का नाम नरेन्द्र-चर्खा है। दो-तीन धागे एक साथ निकालने के लिए यह हाथ से चलाया जाता है पर चार या अधिक धागे एक साथ कातने के लिए इसमें पैर से चलाने का प्रबन्ध किया गया है। साधारण चर्खे में कुछ परिवर्तन करके इस चर्खे का निर्माण किया गया है। इस चर्खे में तकुवा नहीं होता और पूनी हाथ में नहीं रखी जाती। वह ऐसी खड़ी नलियों में रख कर कस दी जाती हैं जो घूमती हैं और जिनमें से धागा निकल कर ऊपर की ओर जाता है।

'विज्ञान प्रगति'' के पिछले वर्ष के अंकों में आपने इस स्तम्भ के अन्तर्गत विविध आकर्षक एवं आश्चर्यजनक चित्र दिखाये हैं, जिनमें माडर्न आर्ट जैसे प्रतीत होते न्यूरान, माणिक जड़े हार का पैन्डलनुमा ओला, पेड़ से लिपटे हुये अजगरों जैसे एपिफाइट पौधे, दलदल में फंसे घड़ियाल जैसे स्पूस पेड़ के तने के अवशेष, लुका-छुपी का खेल खेलती प्रतीत होती मादा स्टिकिलबैक मछली देवीय प्रतिमा के कलात्मक हाथ जैसे लगते लिक्विडैम्बर, स्टाइरेसीफ्लुआ जाति की पत्तियां पाषाण युगीन लकड़ी की सड़क के अवशेष और लावा उगलते ज्वालामुखी आदि के चित्र सम्मिलित हैं। परन्तु इस चित्र को देखकर तो ऐसा लगता है कि समुचित प्रकाश युक्त शीशे लगा कर इन पक्षियों के लिये नववर्ष के उपहार स्वरूप ड्रेसिंग टेबल लगाई गई है और नवयौवनाओं की भांति ये लम्बे छरहरे पक्षी शीशों में अपना रूप निहारने का आनन्द उठा रहे हैं।''

''परन्तु मुझे तो ऐसा लग रहा है कि इन पक्षियों का कोई सांस्कृतिक समारोह होने जा रहा है और उसी उपलक्ष्य में होने वाले नृत्य का अभ्यास चल रहा है और साथ ही साथ शीशे में देख कर लय और ताल का तालमेल बैठाया जा रहा है।''

''ज़ी नहीं, आप जो सोच रहे हें, ऐसा कुछ भी नहीं है।''

तो फिर ये पक्षी शीशों के पास क्या कर रहे हैं और इनके पास इन शीशों को लगाने का उद्देश्य क्या है?''

हां !इसी रहस्य को उजागर करने के लिये ही तो आज आपके सम्मुख यह चित्र हमने रखा है।

इन पक्षियों को राजहंस या फ़्लेमिंगो कहते हैं।

राजहंस लम्बे पैरों वाले विशालकाय पक्षी हैं, चोंच से पूंछ तक इनकी लम्बाई 3·5 फुट तक होती है। इनके पंख सिंदूरी या गुलाबीपन लिये हुये सफेद होते हैं। उड़ते समय पंखों का फैलाव 3.5 फुट होता है। विश्राम के समय ये अपनी लम्बी गर्दन से शरीर को घेर कर चोंच को कन्धे के पंखों में दबा कर रखते हैं और प्रायः देखा गया है कि बगुलों की भांति यह भी एक पैर पर खड़े होते हैं।

ये कभी भी पेड़ों पर नहीं बैठते। अन्य घरेलू पक्षियों के विपरीत उड़ते समय यह पक्षी अपने पैर पूरे फैला कर उड़ते हैं और अपनी गर्दन को सीधा रखते हैं। इनके पैर गुलाबी रंग के होते हैं। यूं तो विचरण करते हुये राजहंसों की गिनती सुन्दर पक्षियों में की जाती है, लेकिन उड़ते समय इनकी खूबसूरती देखते ही बनती है। उस समय इनके गहरे लाल-गुलाबी पंख काले रंग के अग्र भाग के साथ एक अद्भुत छटा बिखेरते हैं।

उड़ने से पहले ये अपने पंखों को फड़फड़ाते हैं, मानों कि वह परीक्षण कर रहे हों कि पंख सुचारु रूप से कार्य करने एवं उड़ने में सक्षम हैं अथवा नहीं। इसके बाद पैरों से पानी को छपछपा कर पंखों की तेज फड़फड़ाहट के साथ ये उड़ जाते हैं।

ये अपनी पतली और लम्बी गर्दन को पूरा फैला कर शान्त गंभीर चाल से दलदली क्षेत्रों, झीलों और नदी के मुहानों के उथले पानी में भोजन की खोज में विचरण करते हैं। इनका मुख्य भोजन शैवाल तथा अन्य एककोशीय जलीय जीव-जन्तु हैं। दलदली मिट्टी में पाये जाने वाले क्रस्टेशिया और मोलस्क समुदाय के

प्राणी भी यदाकदा भोजन के रूप में लिये जाते हैं।

राजहंस अंडे देने के लिये घोंसलों का निर्माण करते हैं। चूंकि यह पक्षी पेड़ों पर नहीं बैठते तथा अधिकांश समय पानी के पास ही व्यतीत करते हैं। अतः इनके घोंसले मिट्टी में ही पानी की सतह से कुछ ऊपर उठे हुये होते हैं। घोंसले के बीच में लगभग 15 इंच व्यास का गड्ढा बना कर अंडे रखने का स्थान बनाया जाता है। मई मास में मादा प्रायः दो अंडे देती है जिनको केवल वही सेती है। चूज़े मटमैले सफेद रंग के होते हैं। यह चूज़े 2/3 दिन में घोंसले को छोड़ देते हैं, परन्तु इनका भोजन वयस्क पक्षियों द्वारा गोलियों के रूप में उड़ेला हुआ उपाच्य पदार्थ होता है।

आस्ट्रेलेशिया के भागों को छोड़ कर राजहंस सभी उष्णकटिबन्धी देशों में पाये जाते हैं।

चित्र में दिखाये गये राजहंस लेसर फ्लेमिंगो (फीनीकोनाएस माइनर) जाति के हैं जो आमतौर पर अफ्रीका महाद्वीप के पूर्वी तटों तथा झील वाले स्थानों पर बहुतायत में पाये जाते हैं। एक अनुमान के अनुसार विश्व की राजहंसों की कुल संख्या में एक तिहाई राजहंस लेसर फ्लेमिंगो जाति के हैं।

राजहंसों की केवल यही जाति (लेसर फ्लेमिंगो) भारत में समुद्र तटों, मुहानों आदि के किनारे प्रायः सारे साल मिलती है। गुजरात में कच्छ के रन में लेसर फ्लेमिंगो के झुंड देखे गये हैं, परन्तु भारत में इनके घोंसलों की अनुपस्थिति के कारण यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि यह पक्षी भारत में अंडे देते हैं अथवा प्रजनन काल के दौरान दूसरे देशों को चले जाते हैं।

लेसर फ्लेमिंगो सदैव विशाल झुण्डों में ही मिलते हैं। अफ्रीकी झीलों के किनारे पाये जाने वाले झुण्डों में पक्षियों की संख्या लाखों तक देखी गई है। भोजन की तलाश में यदि राजहंसों को अकेले भी विचरण करना पड़ता है तो भी दिन ढलने से पहले सभी पक्षी झुंड में वापस आ जाते हैं और अपने बसेरों की ओर एक साथ उड़ते हैं।

राजहंस झुण्डों में प्रजनन करते हैं। प्रजनन को आरंभ करने वाले कारणों का हालांकि अभी पता नहीं चल सका है, परन्तु घोंसलों के निर्माण के लिये अनुकूल परिस्थितियों का होना अनिवार्य है। परन्तु कभी-कभी अनुकूल परिस्थितियों के होते हुये भी ये अंडे नहीं देते और दूसरी और पथरीले स्थानों पर जहां कि घोंसलों का निर्माण असंभव है, इन पक्षियों को अंडे देते देखा गया है। दूसरी ओर किसी वर्ष हजारों राजहंस एक स्थान पर घोंसले बनाते हैं, वहीं संभव है आगामी वर्षों में कोई भी जोड़ा घोंसला बनाने के लिये वापस न आये।

प्रजनन काल आरंभ होने से पहले इन पक्षियों में अद्भु क्रियाकलाप देखने को मिलते हैं। जिस प्रकार बिल्ली और कु विश्राम के बाद अंगड़ाई लेते हैं, कुछ उसी प्रकार यह पक्षी अप को सीधा करते हैं और उसके बाद चोंच से अपने पंखों को संवार हैं। यह क्रियायें इसी क्रम में होती हैं। समझा जाता है कि इ क्रियाओं को करने का उद्देश्य प्रजनन के लिये एक साथ से तैया पक्षियों के छोटे समूह को विशालकाय झुण्डों से अलग करन होता है। ऐसे सभी पक्षी जो प्रजनन के लिये तैयार होते है छोटे-छोटे समूह बना लेते हैं और विशाल झुण्डों का एक भा होते हुये भी झुण्ड के एक ओर प्रजनन के लिये एकत्र हो जाते हैं। हालांकि समूह बनाने का प्रजनन से कोई सीधा संबंध नहीं होता, परन्तु नर और मादा पक्षी के जोड़े समूहों में ही बनते हैं।

लेसर फ्लेमिंगो की प्रजनन से पूर्व की क्रियायें फ्लेमिंगों की अन्य जातियों से भिन्न होती हैं। समूह बनाने से पहले सीधा हों और पंखों को संवारने की क्रियाओं के स्थान पर राजहंस की इ जाति में पक्षी एक दूसरे को तनी हुई गर्दन से छूते हैं और जल्दी जल्दी कदमों को आगे-पीछे करते हैं। यह क्रियायें सैकड़ों पक्षी एक साथ करते हैं। समझा जाता है कि प्रजनन से पहले लेस फ्लेमिंगों का सैकड़ों की संख्या में होना अनिवार्य है।

प्रस्तुत चित्र वाइल्डफ़ाउल एवं वैटलैण्डस ट्रस्ट, स्लिमब्रि ग्लोचेस्टरशायर (इंग्लैण्ड) के तीस लेसर फ्लेमिंगों का है। पिछ छः वर्षों से इन पक्षियों ने यहां अण्डे नहीं दिये हैं। वैज्ञानिकों क मत है कि कम संख्या में होने के कारण ही इन लेसर फ्लेमिंगों प्रजनन संबंधी क्रियायें नहीं हुई हैं।

इनको धोखे में डालने के लिये, इनके विचरण के स्थानों पास बड़े-बड़े शीशे लगाये गये हैं, ताकि ये भ्रमित होकर अप आप को बड़े समूहों में समझ सकें। दरअसल यह प्रयोग वैज्ञानि यह जानकारी प्राप्त करने के लिये कर रहे हैं कि क्या वास्तव प्रजनन के लिये अथवा जोड़े बनाने के लिये इनका बड़े समूहों होना आवश्यक है? वैज्ञानिकों के अनुसार शीशे लगाने का उन उद्देश्य सफल रहा है क्योंकि इन्होंने जोड़े बना लिये हैं और ऐ समझा जाता है कि ये अपने आप को समूहों में जान कर प्रजनन लिये उत्प्रेरित हो जायेंगे।

श्री राजीव माथुर, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली-110012

देवेंद्र मेवाड़ी

दुनियां पहले अज्ञान के अंधेरे में डूबी हुई थी। प्रकृति के रहस्यों के अनावरण और नूतन खोजों से अज्ञान का अंधेरा दूर हुआ और ज्ञान-विज्ञान का प्रकाश फैला। अपनी खोजों से ज्ञान का प्रकाश फैलाने वाले महान वैज्ञानिकों के प्रति विज्ञान ऋणी है।

जिन्होंने विज्ञान का सच सामने रखने के लिये परिस्थितियों से समझौता नहीं किया, कठिनाइयों के आगे हार नहीं मानी, निरंतर संघर्ष किया और जरूरत पड़ने पर अपनी जान भी दे दी, विज्ञान के विविध क्षेत्रों के ऐसे ही महान वैज्ञानिकों के परिचय देने के लिये इस अंक से हम यह लेखमाला प्रारंभ कर रहे हैं।

उसका अपराध सिर्फ यह था कि उसने सच को सच कहा। उसने कहा कि यह सच है, ''पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है और हमारे ब्रह्मांड का केन्द्र सूर्य है।'' लेकिन, सच कहने के इस अपराध के लिये धार्मिक कठमुल्लों ने उस पर मुकदमा चलाया और उसे यह कहने के लिये मजबूर किया—''मैं, गैलीलियो गैलिली..... इस झूठे विचार से सहमत नहीं हूं.....कि सूर्य केन्द्र है और स्थिर है। ...ऐसी गल्तियों को मैं शपथ लेकर त्यागता हूं, उन पर लानत भेजता हूं और उनसे घृणा करता हूं।''

कहा जाता है, अदालत के सामने यह कहने के बावजूद 69 वर्षीय गैलीलियो धीरे-धीरे बुदबुदाया..... *'इस सब के बावजूद पृथ्वी ही सूर्य के चारों ओर घूमती है।'*

यह मुकदमा इटली के महान खगोलविद, भौतिकशास्त्री और गणितज्ञ गैलीलियो गैलिली पर 1633 में चलाया गया था। सच कहने के अपराध में उसे अपने जीवन के अंतिम आठ वर्ष नजरबंदी में बिताने पड़े। उस पर मुकदमा चलाने वाले धार्मिक कठमुल्लों का कहना था कि जो कुछ धर्मग्रंथों में लिखा है—वही सच है, और उनमें यह नहीं लिखा है कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है। वे धर्मांध लोग इससे पहले 17 फरवरी, 1600 को इटली के ही महान दार्शनिक, खगोलविद और गणितज्ञ गिओर्डानो ब्रूनो को मुंह बंद करके जिन्दा जला चुके थे।

अदालत में झूठा बयान देकर बूढ़े, बीमार गैलीलियो की जान तो बच गई, लेकिन उसने सच्चाई सामने रखने के लिये अपने शोध प्रबंध छपा दिये।

जन्म

गैलीलियो गैलिली का जन्म 15 फरवरी, 1564 को इटली के सुप्रसिद्ध पीसा नामक शहर में हुआ था। उसके पिता विंसेंज़ियो गैलिली संगीतकार थे। गैलीलियो भी अपने पिता की तरह अच्छा गाते थे और बांसुरी बजाने के शौकीन थे। चित्रकला में भी गैलीलियो को काफी रुचि थी। उनकी प्रारंभिक शिक्षा फ्लोरेंस के निकट वेलोम्ब्रोसा में हुई। सन् 1581 में गैलीलियो ने पीसा विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। पिता बहुत चाहते थे कि गैलीलियो डाक्टर बने लेकिन स्वयं गैलीलियो का मन डाक्टरी से कहीं अधिक गणित में लगता था। पीसा विश्वविद्यालय में अभी उनका पहला वर्ष ही था कि एक दिन वे शहर के गिरजाघर में गये। वहां उन्होंने रस्सी से लटकता हुआ एक लैंप देखा। तभी हवा का एक झोंका आया। लैंप झूलने लगा। गैलीलियो गौर से उस झूलते हुये लैंप को देखता रहा। कुछ सोच कर उसने अपनी अंगुलियां कलाई पर रखीं। अपनी नाड़ी की धड़कन से उसने लैंप के झूलने के समय का हिसाब लगाया। उसने देखा कि लैंप चाहे कितना ही झूलता हो, वह अपने स्थान पर आने में बिल्कुल बराबर समय लेता है। घर लौटकर उसने रस्सियों से भार लटका कर उन्हें झुलाना शुरू किया। उसके मन में उथल-पुथल मच गई थी। अपने इन प्रयोगों से उसने पता लगा लिया कि चाहे भार कम हो या अधिक और रस्सी चाहे

कितनी ही पेंग भरती हो लेकिन रस्सी की आगे व पीछे की पेंग में बराबर समय लगता हैं। इससे पेंडुलम के सिद्धांत की खोज हुई इसी सिद्धांत के आधार पर आगे चल कर उच्च वैज्ञानिक क्रिश्चियान ह्यूजेंस ने घड़ी का आविष्कार किया। गैलीलियो ने स्वयं अपने जीवन के अंतिम वर्षों में इस सिद्धांत के सहारे एक घड़ी भी बनाई।

प्रयोग और परीक्षण

गैलीलियो पीसा विश्वविद्यालय में चिकित्सा, भौतिकी और गणित पढ़ रहा था लेकिन पैसे की तंगी के कारण उपाधि लेने से पहले ही विश्वविद्यालय छोड़ कर घर पर ही पढ़ना शुरू कर दिया। सन् 1586 में उन्होंने "द्रव स्थैतिक संतुलन" अर्थात "हाइड्रोस्टैटिक बैलेंस" पर अपना अनुसंधान आलेख छपवाया। इस खोज से गैलीलियो इटली भर में प्रसिद्ध हो गये। इसके बाद 1589 में "ठोस पदार्थों" में "गुरुत्वाकर्षण केन्द्र" पर उनका शोध प्रबंध छपा। इससे उन्हें बहुत ख्याति मिली और पीसा विश्वविद्यालय ने उन्हें 65 डालर प्रतिवर्ष के वेतन पर गणित के प्राध्यापक का पद देकर सम्मानित किया। प्राध्यापक के रूप में भी गैलीलियो सत्य की खोज में लगातार जुटे रहे और गणित तथा प्रयोगों के आधार पर अरस्तू के वैज्ञानिक नियमों का विश्लेषण करते रहे। जो बात गलत साबित हुई, उसे गैलीलियो ने बिना किसी हिचक के खुलेआम गलत कहा। उदाहरण के लिये, अरस्तू का कहना था कि गिरती हुई वस्तुओं की गति का उनके भार से समानुपात होता है। गैलीलियो ने इसे गलत पाया। उसने घोषणा कर दी कि वह अरस्तू के इस नियम को सार्वजनिक रूप से गलत सिद्ध करेगा। वह पीसा की मीनार पर चढ़ा। वहां से उसने लोगों की भारी भीड़ के सामने एक पौंड तथा 10 पौंड के सीसे के गोले एक साथ नीचे फेंके। लोग आश्चर्य से देखते ही रह गये—दोनों गोले लगभग एक साथ जमीन पर गिरे।

गैलीलियो ने अपने प्रयोगों से यह भी साबित किया कि अगर कोई चीज हवा में जोर से फेंकी जाये तो वह सीधे नीचे नहीं आती बल्कि घेरा बनाते हुये अर्थात् परवलयिक रूप में नीचे गिरती है। अपनी
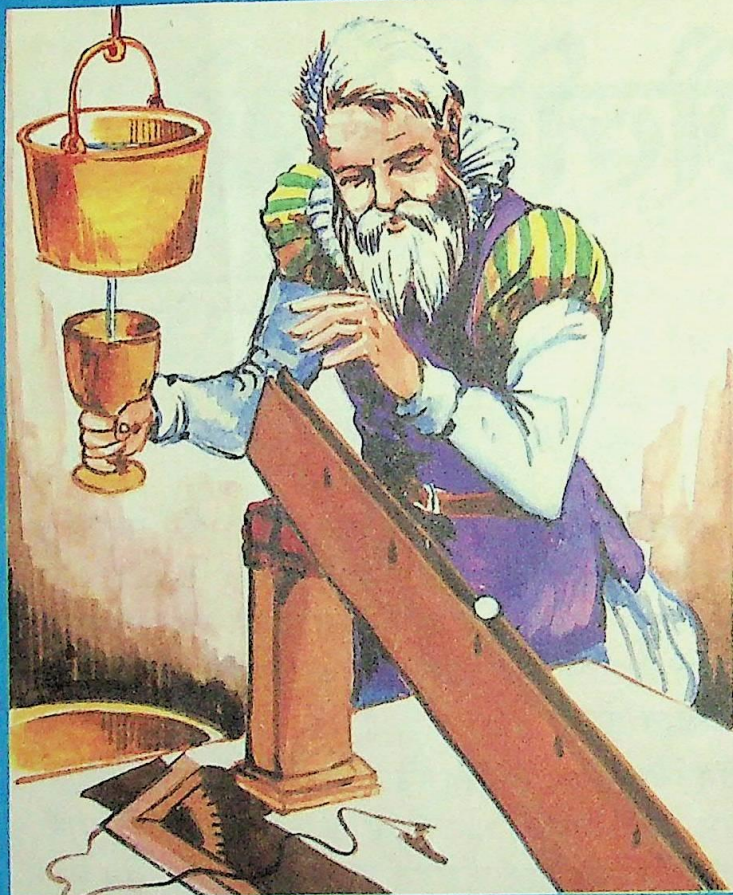
गैलीलियो अपनी प्रयोगशाला में—झुके हुये समतल पर गेंद लुढ़क कर कितने समय में नीचे गिरती है, समय के ज्ञान के लिये गैलीलियो की घड़ी है—पानी से भरी बाल्टी
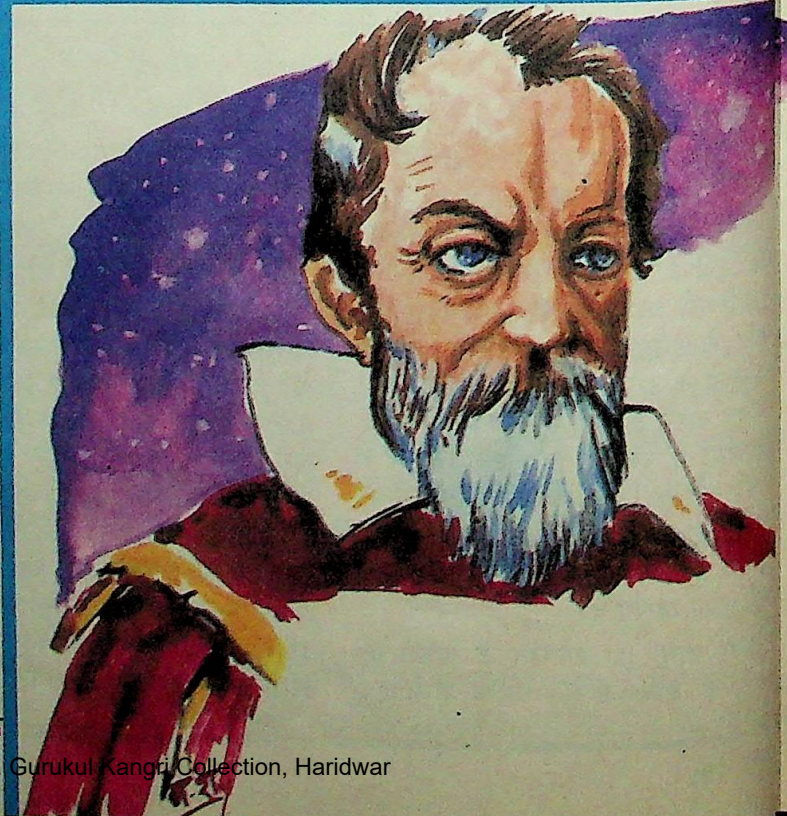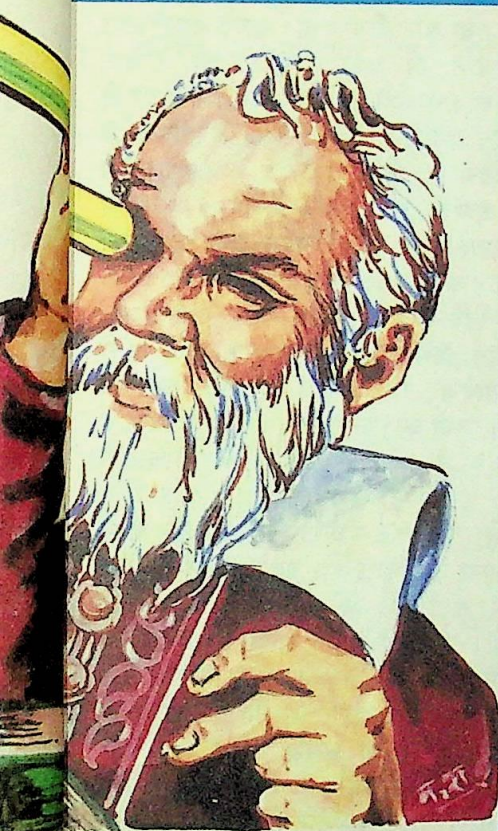
गैलीलियो अपने दूरदर्शी के साथ

इस खोज के आधार पर गैलीलियो ने "परवलयिक पतन" का नियम अर्थात् "ला आफ पैराबोलिक फाल" सामने रखा। इस नियम से तोप के गोले सही निशाने पर फेंकने में बड़ी मदद मिली। पहले तक लड़ाई के मैदान में तोप से निशाने की बिल्कुल सीध में गोले छोड़े जाते थे। जब गैलीलियो ने समझाया कि तोप के गोले घेरा बनाते हुये गिरते हैं तो निशाने पर सही मार करने के लिये तोप से सही कोण बना कर गोले बरसाये जाने लगे। गति के इन तमाम नियमों पर प्रयोग करते हुये गैलीलियो कहता रहा कि प्रकृति के रहस्यों का उत्तर, अरस्तू की किताबों या प्राचीन पंडितों की बातों में ढूंढने के बजाय, स्वयं प्रेक्षण और प्रयोग करने चाहिये।

झूठ से नफरत

गैलीलियो को झूठ और दिखावा कतई पसंद नहीं था। वह अपने प्रयोगों से पुरानी मान्यताओं के झूठ को उजागर करता रहा। पीसा विश्वविद्यालय में भी उसने निर्धारित एकेडेमिक पोशाक पहनना स्वीकार नहीं किया जिसके कारण अपने मामूली से वेतन में से उसे काफी जुर्माना भरना पड़ा। उसके विरोधी बढ़ते गये और अंततः उसे पीसा विश्वविद्यालय से निकाल दिया गया। तब गैलीलियो को पैडुआ विश्वविद्यालय ने करीब 200 डालर प्रति वर्ष के वेतन पर नियुक्त कर लिया। पैडुआ में उसने गणना के लिये त्रिज्य-मंत्र अर्थात् "सैक्टर" का आविष्कार किया।

वह पोलिश खगोलविद् निकोलस कोपर्निकस के विचारों का कट्टर समर्थक था। कोपर्निकस की इस बात से वह सहमत था कि ग्रह सूर्य के चारों ओर घूमते हैं। सन् 1510 में कोपर्निकस ने कहा था कि सूर्य ब्रह्मांड का केन्द्र है और पृथ्वी अपने कक्ष पर घूमने के साथ-साथ सूर्य के चारों ओर भी चक्कर लगाती है।

दूरबीन का आविष्कार

सन् 1609 में गैलीलियो जब वेनिस गया तो वहां उसने सुना कि एक जर्मन चश्मा बनाने वाले ने नतोदर और उन्नतोदर लैंस इस तरह रखे कि उनसे दूर की चीज पास दिखाई देने लगती है। उसने इस दिशा में प्रयोग किये और दूरबीन बनाने में सफलता प्राप्त कर ली। उसकी दूरबीन से तीस गुना अधिक दिखाई देना संभव हो गया। उसने अपनी दूरबीन का सार्वजनिक प्रदर्शन किया। फ्लोरेंस के ग्रेंड ड्यूक के राजदूत ने भी यह प्रदर्शन देखा। उसने इस चमत्कार के बारे में ड्यूक को बताया। गैलीलियो की दूरबीन से समुद्र में दूर से आते हुये वे जहाज भी दिखाई देते थे जो खाली आंख को कम-से-कम तीन घंटे बाद दिखाई देते। उसने अपनी दूरबीन ड्यूक को भेंट कर दी और ड्यूक ने गैलीलियो को पैडुआ विश्वविद्यालय में आजीवन प्रोफेसर नियुक्त कर दिया।

गैलीलियो ने दूसरी दूरबीनें बनाईं। उसकी बनाई हुई दूरबीनों की काफी मांग रही। जब उसने अपनी दूरबीन से अंतरिक्ष में झांका तो वह देखता ही रह गया। जब लोग अंतरिक्ष में स्वर्ग और नर्क की कल्पनायें कर रहे थे, तब उसने अपनी दूरबीन से आकाशीय पिंडों की असलियत देख ली थी। उसने चांद को देखा और दुनिया को पहली बार बताया कि चांद की सतह ऊबड-खाबड़ है और उस पर मैदान तथा पहाड़ हैं। इन्हीं पहाड़ों के कारण चांद में धब्बे दिखाई देते हैं। फिर उसने अपनी दूरबीन से आकाश गंगा को देखा और बताया आकाश गंगा असंख्य सितारों से बनी है। उसने यह भी पता लगाया कि ग्रह स्वयं अपने प्रकाश से नहीं चमकते बल्कि वे सूर्य के प्रकाश से चमकते हैं। उसने घोषणा की कि उसने चार नये ग्रह खोज निकाले हैं जो बृहस्पति ग्रह के चांद थे। इस तरह पृथ्वी के चांद के अतिरिक्त पहली बार किसी अन्य ग्रह के चांद देखे गये। गैलीलियो ने उनके नाम भी रखे। अपने इन अध्ययनों पर उसने एक पुस्तक लिखी। उसमें उसने लिखा—"मैं ईश्वर का आभारी हूं जिसने मुझे उन आश्चर्यजनक चीजों का पहला दर्शक बना दिया है जिनका विगत युगों में कोई पता तक नहीं था। मैंने सिद्ध कर दिया है कि चांद भी पृथ्वी के समान है।

गैलीलियो ने अपनी दूरबीन से शनि ग्रह के वलयों का भी पता लगाया और दुनिया को पहली बार बताया कि शनि ग्रह के चारों ओर घेरा बना हुआ है। फिर उसने शुक्र ग्रह की कलाओं का पता लगाया। उसने सूर्य की ओर
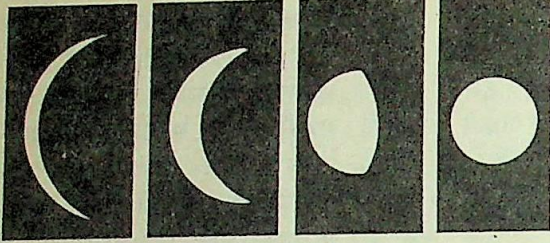
वीनस अथवा
शुक्र की प्रावस्थायें

शुक्र ग्रह ही सूर्य की
परिक्रमा करता है
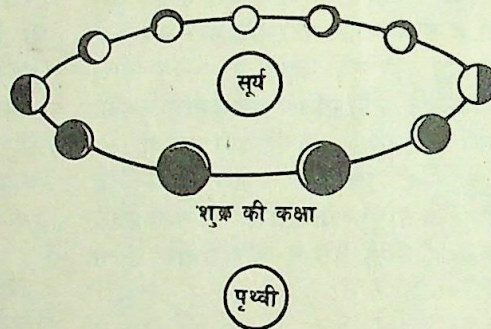
अपनी दूरबीन का मुंह किया और देखा कि सूर्य पर भी धब्बे हैं। लेकिन वे धब्बे सदा नहीं दिखाई देते थे। कभी गायब हो जाते और कभी फिर से दिखाई देने लगते। इससे गैलीलियो ने यह निष्कर्ष निकाला कि सूर्य भी अपनी धुरी पर घूमता है, इसलिये उसके धब्बे कभी दिखाई देते हैं और कभी ओझल हो जाते हैं। उसने चांद के अंधेरे भाग को भी देखा और पता लगाया कि सभी ग्रह सूर्य के प्रकाश से चमकते हैं। यदि पृथ्वी को किसी अन्य ग्रह से देखा जाये तो वह भी चांद की तरह चमकती हुई दिखाई देगी।

सच्चाई का दंड

तभी गैलीलियो अपने जन्म स्थान पीसा लौट आया। उसे पीसा विश्वविद्यालय में नियुक्ति मिल गई। पीसा लौटना उसके लिये दुर्भाग्य साबित हुआ। वह अपने प्रयोगों और अध्ययन से कोपर्निकस के सिद्धांतों की सच्चाई सिद्ध कर रहा था लेकिन इससे धर्मांध लोग तथा अरस्तू के समर्थक बुरी तरह नाराज हो गये। सन् 1616 में गैलीलियो ने एक पत्र लिख कर धर्माधिकारियों को लताड़ा कि पृथ्वी को अपने स्थान पर स्थिर होने का सिद्धांत धर्म ग्रंथों में किसी गलती के कारण मान्यता प्राप्त नहीं कर रहा है बल्कि उन लोगों की गल्तियों के कारण स्वीकार किया जा रहा है जो धर्मग्रंथों की व्याख्या कर रहे हैं। धर्माधिकारी गैलीलियो से बुरी तरह नाराज हो गये। उन्होंने उसे झूठा और धर्म का दुश्मन बताया। फिर, भी पोप पाल पांचवें और कुछ मित्रों के कारण उसे केवल चेतावनी ही मिली। यह चेतावनी भी इस शर्त पर मिल सकी कि वह भविष्य में कोपर्निकस के सिद्धांतों पर न तो विश्वास करेगा, न उनके बारे में बतायेगा और न उनका समर्थन करेगा। 5 मार्च, 1616 को तत्कालीन कार्डिनल बेल्लामाईन की यह चेतावनी गैलीलियो को थमा दी गई।

आठ वर्ष बाद 1623 में जब पोप अर्बन आठवें पोप बने तो न जाने क्यों गैलीलियो उन्हें विज्ञान के प्रति उदारवादी मानने की भारी भूल कर बैठा। उसने अपनी "डायलाग आन द ग्रेट वर्ल्ड सिस्टम्स" नामक पुस्तक प्रकाशित कर दी। इसमें उसने दूसरी सदी के खगोलविद टोलेमी और कोपर्निकस के समर्थक दो पात्रों की आपसी बातचीत के माध्यम से टोलेमी के विचारों का खंडन और कोपर्निकस के विचारों का समर्थन किया। पुस्तक में धार्मिक मान्यताओं का खंडन होने के कारण उसका घोर विरोध किया गया।

अंतिम समय

पोप ने गैलीलियो के खिलाफ मुकदमे का आदेश दे दिया। तब तक गैलीलियो बूढ़ा हो चुका था और बीमार था। उसने अपनी बात समझाने की बड़ी कोशिश की, लेकिन उसकी एक नहीं सुनी गई। मुकदमा दायर हो गया। सन् 1633 का वर्ष था। गैलीलियो को मुकदमा झेलने के लिये रोम जाना पड़ा। उस पर धर्म विरोधी बातों के प्रचार का अभियोग लगाया गया। उसने बहुत कहा कि उसने केवल कोपर्निकस के नियमों को प्रस्तुत किया है, लेकिन इसका कोई लाभ नहीं हुआ। रोमन कैथोलिक अदालत ने एक जाली दस्तावेज पेश किया, जिसके अनुसार गैलीलियो को किसी भी रूप में कोपर्निकस के नियमों का कोई उल्लेख नहीं करना चाहिये था। उसे माफी मांगने के लिये मजबूर किया गया। उसे विज्ञान के क्षेत्र में आगे काम करने से मना कर दिया और पहरे में नजरबंद कर दिया गया। 74 वर्ष की उम्र में वह अंधा हो गया। फिर भी अपनी खोजों के बारे में वह अपने शिष्यों को लिखवाता रहा। अपना खोज कार्य भी उसने जारी रखा। विज्ञान को अपनी महान खोजों से समृद्ध करके बूढ़ा और बीमार गैलीलियो 78 वर्ष की उम्र में 8 जनवरी, 1642 को दुनिया को अलविदा कह गया।

गैलीलियो ने खगोल विज्ञान, भौतिक विज्ञान और गणित के क्षेत्र में महान खोजें की। उसने गति और गुरुत्वाकर्षण पर कार्य किया। उसे आधुनिक बल-विज्ञान अर्थात् मैकेनिक्स और व्यावहारिक भौतिकी का जनक माना जाता है। उसने प्रयोगों के गणितीय विश्लेषण की नींव डाली। यह गैलीलियो की बहुत बड़ी देन मानी जाती है। इसीलिये कहा जाता है कि गैलीलियो ने अरस्तू के शाब्दिक तर्कवाद के स्थान पर गणितीय तर्कवाद की पुनर्स्थापना की। उसने कहा कि प्रकृति की किताब गणित की भाषा में लिखी गई है।

गैलीलियो के बारे में महान वैज्ञानिक आइजक न्यूटन ने कहा था—"गैलीलियो महामानव था, जिसके कंधों पर चढ़ कर मैंने दुनिया देखी।"

[श्री देवेंद्र मेवाड़ी, 5/109-ए, कृष्णानगर, सफदरजंग इन्क्लेव, नई दिल्ली- 110029]

क्वार्क के शिकारी

आर. साम्बशिवन
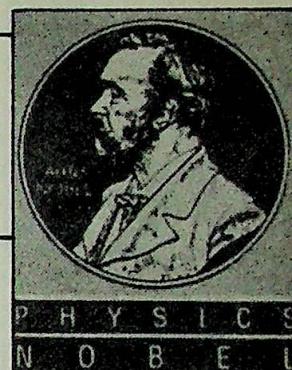
इस वर्ष का भौतिक विज्ञान का नोबेल पुरस्कार संयुक्त रूप से अमेरिका के जेरोम फ्रीडमैन और हेनरी केन्डाल तथा कनाडा के रिचर्ड टेलर को प्रदान किया गया है। उन्हें यह पुरस्कार परमाणु के भीतरी मूल कण क्वार्क के अस्तित्व को प्रमाणित करने वाले उपकरण के विकास और उसकी जटिल क्रियाविधि की खोज के लिए दिया गया है।

फ्रीडमैन और केन्डाल मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी में प्रोफेसर हैं तथा टेलर स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हैं। 1967 में उन्होंने कैलिफोर्निया में स्टैनफोर्ड लीनियर एक्सीलरेटर सेंटर (स्लैक) में अनेक प्रयोग किए। तब उनके प्रयोग सुर्खियों में नहीं आए थे। 1967 से यह केन्द्र विश्व का सबसे लम्बा (3 किमी.) इलेक्ट्रॉन एक्सीलरेटर केन्द्र रहा है। 3 किमी. लम्बे पाइप में इलेक्ट्रॉन एक छोर से दूसरे छोर तक दौड़ लगाते हैं इसके लिए उन्हें विद्युत क्षेत्र द्वारा ऊर्जा प्रदान की जाती है। एक्सीलरेटर के अंतिम छोर को अंत केन्द्र कहते हैं।

इस श्रेष्ठ कार्य को समझने से पहले परमाणु का मूल सिद्धांत जानना प्रासंगिक होगा। परमाणु में बीच में एक नाभिक होता है। जिसके अंदर प्रोटॉन और न्यूट्रॉन होते हैं तथा नाभिक के बाहर चारों ओर इलेक्ट्रॉन अपनी कक्षाओं में चक्कर लगाते हैं नाभिक के भीतरी कणों को न्यूक्लियॉन कहते हैं। न्यूक्लियॉन की तुलना में इलेक्ट्रॉन का द्रव्यमान 1/1840 भाग होता है।

वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि न्यूट्रॉन, प्रोटॉन भी कोई ठोस रचनाएं नहीं हैं, बल्कि इनकी भी अपनी एक संरचना होती है। 1963 से पूर्व यह एक अनुमान था, लेकिन धीरे-धीरे इस ओर वैज्ञानिकों का विश्वास बढ़ता गया। तत्पश्चात प्रोटॉन के अंदर 'क्वार्क' की स्थिति का पता चला।

प्रो. केन्डाल और उनके साथियों के प्रयोगों से पता चला कि प्रोटॉन और न्यूट्रॉन के अंदर बहुत छोटे बिन्दु के प्रकार के क्रिस्टल पाए जाते हैं। इसके पहले 1964 में प्रो. मुरे गेल मान और जार्ज ज्वैग ने भौतिक सिद्धांतों के आधार पर इन कणों की परिकल्पना की थी, जिन्हें "क्वार्क" कहा गया। क्वार्क में अन्य मूल कणों की तरह पूर्ण विद्युत आवेश नहीं होता है। इसमें भिन्न-भिन्न विद्युत आवेश होते हैं। विपरीत आवेश युक्त क्वार्क को एंटीक्वार्क कहते हैं। प्रोटॉन और न्यूटॉन के अंदर के क्वार्कों को अप या डाउन क्वार्क कहते हैं। क्वार्क में विद्युत आवेश की मात्रा $\pm 1/3$; $\pm 2/3$ होती है।

अपनी अनेक विलक्षणताएं लिए अनेक प्रकार के क्वार्क मूल कणों में पाए जाते हैं। इन्हें अपरिचित, मनोहर, सच्चा और सुंदर नाम दिए गए हैं। इन्हें पुनः तीन वर्गों में बांटा गया है। रसीला-लाल, नीला और हरा। यह तो इनके नाम हैं, वास्तव में क्वार्क कोई रस या रंग नहीं होते हैं।

दरअसल ये क्वार्क, प्रोटॉन और न्यूटॉन में बंद रहते हैं। इनको अलग करने और बाहर निकालने के प्रयास बार-बार असफल होते रहे हैं। ऐसा देखा गया है कि दो क्वार्क कणों को अलग करने की कोशिश में वे आपस में और ज्यादा मजबूती से बंध जाते हैं।

नये नोबेल पुरस्कार विजेताओं ने अपने प्रयोगों हेतु 3 किमी. लम्बे एक्सीलरेटर से 20 गीगा इलेक्ट्रॉन वोल्ट ऊर्जा वान इलेक्ट्रॉनों का प्रयोग किया। ये इलेक्ट्रॉन सर्वप्रथम द्रव हाइड्रोजन के 'लक्ष्य' से टकराते हैं, जिसके परमाण्विक नाभिक में सिर्फ प्रोटॉन होते हैं। अनेक इलेक्ट्रॉन इस दौड़ में लक्ष्य को भेद कर सीधे निकल गए जबकि कुछ बिखर गए।

इन वैज्ञानिकों ने उच्च ऊर्जा वान इलेक्ट्रॉनों की मदद से अन्य द्वितीयक पुंजों का भी अध्ययन किया, जो म्यूऑन से संबंधित थे। उनके प्रत्यास्थ इलेक्ट्रान प्रकीर्णन प्रयोगों से ही क्वार्क के बारे में नए अध्ययनों के द्वार खुले हैं। अप्रत्यास्थ प्रकीर्णन से अनुमानित द्रव्य समूह प्राप्त हुआ। इस प्रकार स्कैलिंग विधि द्वारा प्रोटॉन को भेदना संभव हो सका। फेयरमैन ने यह स्पष्ट किया है कि उच्च ऊर्जावान इलेक्ट्रॉन, ज्यादातर प्रोटॉन के अवयवों की अपेक्षा अपनी उपइकाइयों के प्रति ज्यादा संबंधित होते हैं। उन्होंने इन इकाइयों को "पार्टोन" कहा, और यह तर्क दिया कि पार्टोन अधिक मुक्त रूप से घूमते हैं।

इस उच्च स्तरीय कार्य से जुड़े प्रो. केन्डाल का जन्म 9 दिसम्बर, 1926 को बोस्टन में हुआ था। उन्होंने 1953 में भौतिकी में डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त करके स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय में प्रवक्ता का पद ग्रहण किया। 1967 में वे मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टैक्नोलॉजी में आए और विभिन्न पदों पर रहते हुए 1975 में प्रोफेसर नियुक्त हुए।
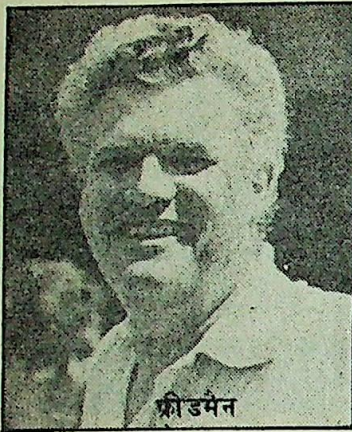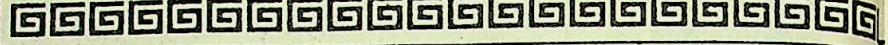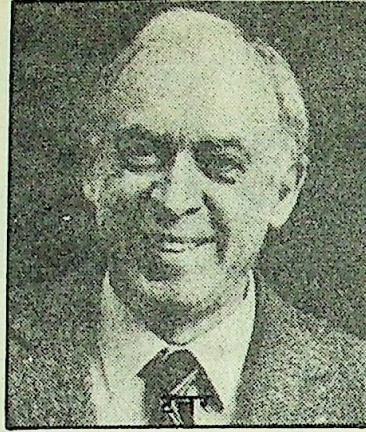
फ्रीडमैन

टेलर
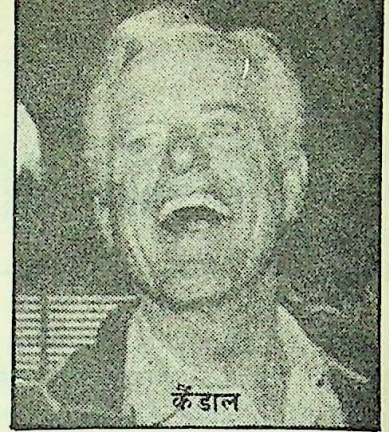
कैंडाल

शिकागो में 28 मार्च, 1930 को जन्मे प्रो फ्रीडमैन ने 1956 में शिकागो विश्वविद्यालय से पी एच डी की और विभिन्न पदों पर रहते हुए वे 1967 में मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टैक्नोलॉजी के प्रोफेसर बन गए। आजकल वे वहां की परमाणु प्रयोगशाला के निदेशक हैं। प्रो. टेलर का जन्म 2 नवम्बर, 1929 को कनाडा के मेडिसन हट-अलबर्टा में हुआ था। उन्होंने 1962 में स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय से भौतिकी में पी एच डी की। बाद में वे वहीं सेवारत हो गए। वर्तमान में वहां वे परमाणु विज्ञान विभाग के निदेशक हैं।

जिस अनुसंधान परियोजना के अंतर्गत यह नोबेल स्तरीय कार्य संपन्न किया गया, उसे मिट-स्लैक (मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टैक्नोलॉजी-स्टैनफोर्ड लीनियर एक्सीलरेटर सेंटर) संयुक्त परियोजना नाम दिया गया है। इसके अंतर्गत आगे भी गहन अनुसंधान कार्य की योजना है, जिनमें क्वार्क और इलेक्ट्रॉन के भीतर रहस्यों को उजागर किए जाने के प्रयोग शामिल हैं। अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक समदाय को आशा है कि इन प्रयोगों से कणिका भौतिकी (पार्टिकिल फिजिक्स) के क्षेत्र में नए युग का सूत्रपात होगा और पदार्थ की रचना को स्पष्ट रूप से समझने में मदद मिलेगी।

[श्री आर. साम्बशिवन, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली- 110012]

उल्टे कदम जो सफलता के शिखर तक ले आये

बी.एस. अग्रवाल

और लाभों के अतिरिक्त पेड़-पौधों का एक लाभ यह है कि उनसे हमें औषधियां तथा रसायन प्राप्त होते हैं परन्तु इस प्रकार प्राप्त इन पदार्थों की न केवल संख्या तथा मात्रा ही सीमित होती हैं वरन् इन पर खर्च भी बहुत आता है। इन पदार्थों की बढ़ती हुई मांग तथा कम मूल्य पर इन्हें सर्वसाधारण को उपलब्ध कराने हेतु ही आरंभ हुआ इनका कार्बनिक संश्लेषण। कार्बनिक संश्लेषण वह विधि है, जिसमें सुलभता से उपलब्ध रसायन की कई चरणों में विभिन्न रासायनिक क्रियाएं कराने के उपरान्त वांछित उत्पाद प्राप्त किया जाता है। यह एक जटिल तथा सूझ-बूझ से किया जाने वाला प्रक्रम है, ठीक शतरंज के खेल की भांति। शतरंज के खेल में अपने विरोधी को मात देने के लिए कई-कई अग्रिम तथा वक्री चालों की योजना बना कर खेलने वाला खिलाड़ी ही सफल हो पाता है और यदि कोई ऐसा खिलाड़ी मिल जाये जो आरंभ से लेकर शह देने तक की सभी सीधी तथा वक्री चालों को योजनाबद्ध करदे तो क्या कहेंगे ऐसे खिलाड़ी को आप? इस वर्ष के रसायन-शास्त्र के नोबेल पुरस्कार विजेता एलियस कोरे ऐसे ही एक खिलाड़ी हैं, लेकिन शतरंज के नहीं, कार्बनिक संश्लेषण के।

सन् 1928 में अमेरिका में जन्मे प्रोफेसर कोरे को इस पुरस्कार के दिये जाने की घोषणा से, संसार के सभी कार्बनिक रसायनशास्त्री गौरवान्वित अनुभव कर रहे हैं, क्योंकि रसायनशास्त्र के लिए दिया जाने वाला यह प्रतिष्ठित पुरस्कार विगत कई वर्षों से जीवविज्ञानियों, जीवरसायन विज्ञानियों, और यहां तक कि भौतिक शास्त्रियों की झोलियां भरने के पश्चात् इस वर्ष एक मूल रसायनज्ञ को मिला है। वर्ष 1990 के लिए दिये गए इस पुरस्कार की एक विशेषता यह भी है कि इस वर्ष यह एक ही व्यक्ति को मिला है न कि विगत वर्षों की भांति संयुक्त रूप से दो या तीन को। इसके अतिरिक्त इस वर्ष यह पुरस्कार वैज्ञानिक की किसी विशिष्ट उपलब्धि पर न मिल कर, उसके द्वारा जनित एक पूर्ण संकल्पना पर दिया गया है।

आज से लगभग 40 वर्ष पूर्व जब युवा कोरे ने इलीनॉयस विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य आरंभ किया तो उन्हें लगा कि कार्बनिक रसायन में किए जाने वाले संश्लेषणों के लिए कोई विशेष प्रारूप अथवा नियमावली नहीं है। वह केवल एक 'जांच और भूल' विधि थी। कार्बनिक संश्लेषणों में यह कमी उन्हें बहुत खटकी और इसी ने उन के जीवन का रुख उस दिशा की ओर मोड़ दिया जहां वे आज पहुंच गए हैं। उन्होंने कार्बनिक संश्लेषण को एक नई दिशा दी तथा उसे योजनाबद्ध किया। उनके द्वारा सुझाई गई विधि को 'विमुखी संश्लेषणीय विश्लेषण' या रिट्रोसिन्थेटिक एनालिसिस कहते हैं। इस विधि में वांछित यौगिक प्राप्त करने के लिए एक-एक चरण पीछे की ओर तब तक चलना होता है जब तक सुलभता पूर्ण उपलब्ध आरंभिक पदार्थ तक नहीं पहुंच जाते।

सरल शब्दों में यूं मानिए कि हमारा ध्येय यौगिक "क" को प्राप्त करने का है। यौगिक "क" को ध्यान में रख कर हम एक ऐसे यौगिक "ख" की खोज करेंगे जिससे रासायनिक विश्लेषण द्वारा यौगिक "क" प्राप्त क्रिया जा सकता हो। इसी प्रकार यौगिक "ख" को "ग" से तथा "ग" को यौगिक "घ" से प्राप्त किए जाने का मार्ग प्रशस्त किया जाता है। अर्थात "घ" वह प्रारंभिक पदार्थ पा लिया गया जिससे "क" प्राप्त किया जा सकता है। प्रत्येक चरण के लिए विभिन्न मार्ग संभव हैं और एक से अधिक यौगिक भी। किस यौगिक को लेकर किस मार्ग द्वारा सुगमता से पहुंचा जा सकता है—यही निर्देशन कोरे की महान् उपलब्धि है।

लीड्स विश्वविद्यालय के प्रोफेसर पीटर जॉनसन का कहना है, "अच्छे कार्बनिक रसायनज्ञ इस विधि का प्रयोग करते रहे हैं लेकिन अपने कौशल को तर्कशास्त्र का जामा पहनाये बिना। कोरे की उपलब्धि यह है कि उन्होंने इसे भाषा का रूप देकर साकार कर दिया। आज भी यह एक महान् कौशल है तथा कल भी एक महान् कौशल था, अन्तर केवल यह है कि अब यह एक गुप्त कौशल नहीं रह गया है जैसा कि प्रो. कोरे के इस क्षेत्र में पदार्पण से पूर्व था।"

नोबेल पुरस्कार प्रदान करने वाली संस्था, रॉयल स्वीडिश एकेडमी ऑफ साइन्सेज, द्वारा प्रो. कोरे को भेंट किए गए मान-पत्र में कहा गया है. "इन्होंने ऐसे बहुत से प्राकृतिक रूप से उपलब्ध, जैविक सक्रिय तथा जटिल यौगिकों का पूर्ण सश्लेषण करने में सफलता प्राप्त की जिनका संश्लेषण असभव माना जाता था।" प्रो. कोरे अब तक लगभग 100
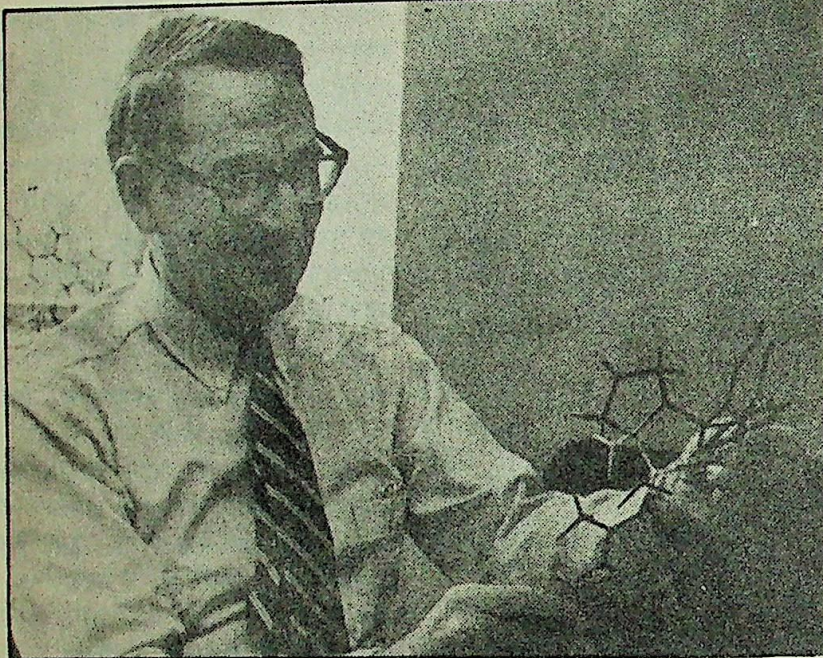
नाम : एलियस जेम्स कोरे
जन्म : 1928
स्नातक उपाधि : मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, 1948
डाक्टरेट उपाधि : मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, 1950
अध्यापन : इलिनॉयस विश्वविद्यालय, 1951-59
संप्रति : हार्वर्ड विश्वविद्यालय, 1959 के बाद

ऐसे जटिल यौगिकों का संश्लेषण कर चुके हैं। इनमें मुख्य हैं प्रॉस्टेग्लैंडिन, प्रॉस्टेसाइक्लिन, थ्रॉम्बॉक्सेन तथा ल्युकोट्राइन आदि। उन्होंने 1978 में जिबरेलिक एसिड, जोकि एक महत्वपूर्ण पादप-हार्मोन है, का संश्लेषण कर वनस्पति- जगत को एक महान भेंट दी थी। केवल वर्ष 1988 में ही उन्होंने ए महत्वपूर्ण संश्लेषण किये जिनमें गिंकगोलाइड-बी का संश्लेषण व्यापारिक दृष्टिकोण से बहुत महत्व रखता है। गिंकगो वृक्ष से प्राप्त यह प्राकृतिक पदार्थ दमा तथा रक्त परिसंचरण विकार जैसे रोगों के उपचार के लिए प्रयुक्त किया जाता है और ऐसा माना जाता है कि संसार में केवल इस पदार्थ की बिक्री लगभग 50 करोड़ डालर की होगी और इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं।

प्रो. कोरे का कहना है कि संसार में दवाइयां बनाने वाली ऐसी कोई कंपनी नहीं जिसने उनकी प्रयोगशाला से निकली विधि का प्रयोग न किया हो! रासायनिक जगत में संश्लेषण की महत्ता का वर्णन करते हुए प्रो. कोरे कहते हैं, "पूरी दुनिया में इस क्षेत्र में हुई उन्नति के लिए जिन शक्तियों ने योगदान दिया उनमें संश्लेषण की शक्ति का योग अद्वितीय है!" उनकी धारणा है कि संश्लेषण की शक्ति न केवल हमारे जीवन स्तर को बनाये रखने में हमें सहयोग देगी वरन् संसार में व्याप्त स्वास्थ्य तथा आबादी जैसे महारोगों से लड़ने के लिए भी एक शक्तिशाली अस्त्र के रूप में प्रयुक्त की जा सकेगी! □

[डा. बी.एस. अग्रवाल, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, हिलसाइड रोड, नई दिल्ली- 110 012]
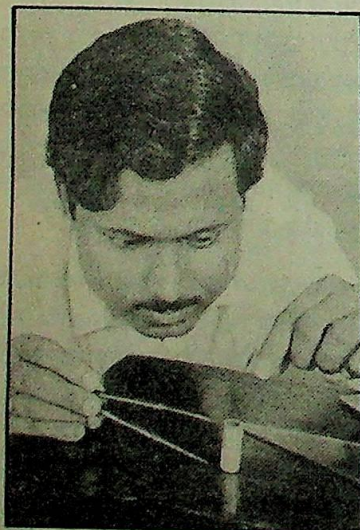
छोटा किन्तु अद्भुत

रानीगंज के युवा वैज्ञानिक श्री अजय कुमार खेतान ने 3 सेंमी. ऊंचे तथा 1.3 सेंमी. व्यास का एक ऐसा अद्भुत बेलनाकार कैलेण्डर बनाया है जो देखने में बैटरी सैल के समान है। श्री खेतान के अनुसार यह विश्व का ऐसा सबसे छोटा कैलेण्डर है जिसमें 5000 वर्षों की तिथियां देखी जा सकती हैं। इस कैलेण्डर की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसको कुछ ही क्षणों में किसी भी अवधि तक बढ़ाया जा सकता है। □

साबुन बनायें—खाद्य तेल बचायें : भारतीय वैज्ञानिकों ने साबुन बनाने की विधि में सुधार करके, साबुन की धुलाई की क्षमता बढ़ा कर और खाद्य तेल की बचत करके प्रौद्योगिकी क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया है।

साबुन के मुख्य दो अवयव होते हैं—तेल और सोड़ा। साबुन में अवाष्पशील तेल या वसा के यौगिकों को साबुन का "टोटल फैटीमैटर (टी.एफ.एम.) कहते हैं। बंबई स्थित हिन्दुस्तान लीवर अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिकों ने साबुन के टी.एफ.एम. के भाग 76-80 प्रतिशत तक कम करके तथा उसके मैल छुड़ाने व झाग देने वाले गुणों में वृद्धि करने में सफलता प्राप्त की है। वैज्ञानिकों का कहना है कि टी.एफ.एम. के 50 प्रतिशत भाग का धुलाई व झाग उत्पन्न करने में कोई योगदान नहीं है। इससे केवल साबुन को मजबूत तथा सुडौल बनाने में सहायता मिलती है। इस नई विधि में टी.एफ.एम. के कुछ भाग को वसा रहित पदार्थों में विस्थापित कर दिया है जिससे साबुन की नमी भी कम हो जाती है और गुणों में सुधार आता है।

फल-सब्जी खाइये, कैंसर भगाइये : वैज्ञानिकों के पास इस समय कई प्रमाण व आंकड़े हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि फल व सब्जियों का अधिक सेवन कैंसर के खतरों को रोकता है। वैज्ञानिक प्रमाण सिद्ध करते हैं कि विटामिन मनुष्य के शरीर को कैंसर की बीमारी से पीड़ित होने से बचाते हैं तथा उसे सुरक्षा प्रदान करते हैं। विटामिन "सी", "ई", तथा प्रोविटामिन "ए" या बीटा कैरोटीन आदि हमारे शरीर की कोशिकाओं पर होने वाली घातक क्रियाओं से उन्हें सुरक्षित रखते हैं।
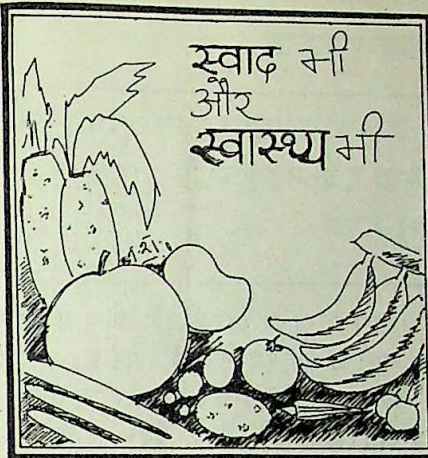
अमेरिका के राष्ट्रीय कैंसर संस्थान के वैज्ञानिक गैडीज ब्लाक का कहना है कि अब तक विटामिनों की कैंसर के रोक-थाम में इस महत्वपूर्ण भूमिका का प्रचार नहीं किया गया है। इस समय अमेरिका के ल्यूसियाना विश्वविद्यालय में जीवरसायन के प्रोफेसर, विलियम प्रायोर के अनुसार चिकित्सक विटामिनों की महत्ता का अधिक बखान शायद इसलिये नहीं करते ताकि लोग अपने आहार में फल-सब्जियों के बजाय केवल विटामिनों की गोलियों का ही उपयोग करने न लग जायें, उन्होंने प्रचुर मात्रा में फल-सब्जियों के सेवन की सलाह दी है। आहार विशषज्ञों ने फल-सब्जियों के दिन में पांच बार सेवन की सलाह दी है।

पृथ्वी की ताप वृद्धि के कारक : मुख्यतः कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा वातावरण में बढ़ने से पृथ्वी का ताप बढ़ता है। मीथेन गैस को भी ताप को रोकने में कार्बन-डाइआक्साइड से अधिक सक्रिय पाया गया है। मीथेन हमारे वातावरण की प्राकृतिक अवयव है जो जैविक क्रियाओं से बनती और समाप्त होती है। इसके अणु हवा में दस वर्ष तक रह सकते हैं।

पिछले दस वर्षों में वायुमंडल में मीथेन की सांद्रता में 1.1 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि पाई गई है। इसका कारण हमारे "इकोसिस्टम" की मीथेन अवशोषित करने की शक्ति में कमी माना गया है। मैसानासेट की समुद्रीय जीव विज्ञान प्रयोगशाला तथा हेमीसहपर विश्वविद्यालय के शोधकर्त्ताओं के अनुसार इस शक्ति के ह्रास का कारण मृदा में नाइट्रोजन की अत्यधिक मात्रा होती है यह रसायन मिट्टी में स्थित मीथेन को खत्म करने वाले जीवाणु की क्षमता कम करती है। खेतों में नाइट्रोजन की अधिकता उर्वरकों से एवं जंगलों में अम्ल वर्षा से होती है।
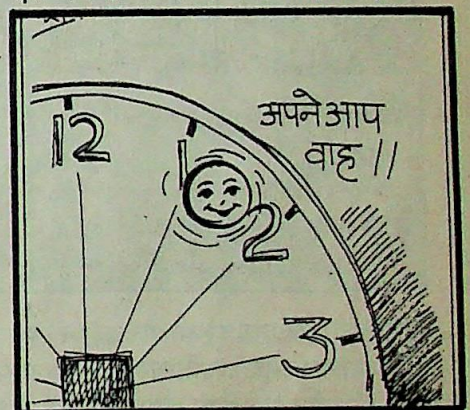
गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत पर घड़ी : मणिपुर के एक घड़ी साज ने एक ऐसी घड़ी का निर्माण किया है जो गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत पर चलती है। इस घड़ी में केवल घंटे सूचित करने वाले चिन्ह हैं। छः सेंमी. व्यास की तांबे की एक गोली समय दर्शाने के लिये 90 सेंटीमीटर के अर्ध व्यास वाले डायल पर घूमती है। श्री गणेश ने बताया है कि इस घड़ी में मिनट सूचक चिन्ह लगाने के लिये सुधार किये जा सकते हैं। इस घड़ी साज ने इससे पूर्व विपरीत दिशा में चलने वाली (एन्टी क्लाक) तथा मिनी वाल क्लाक भी विकसित की थी।

[श्री एम.एम.एस. कार्की, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली- 12]
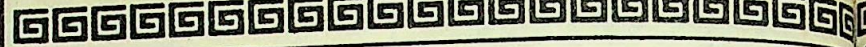
1000 मैथ्स क्विज़

लेखक : दिलीप एम. सालवी; प्रकाशक : रूपा एण्ड कम्पनी, 3831, पटौदी हाउस रोड, दरिया गंज, नई दिल्ली-110002; पृष्ठ संख्या : 144; मूल्य : 30 रुपये
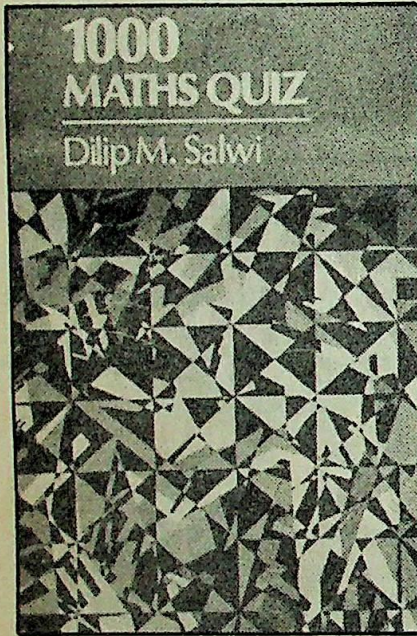
गणित को एक दुरूह और कठिन विषय माना जाता है। यही कारण है कि आम लोगों की दृष्टि में गणित एकदम नीरस और निरर्थक बनकर रह गया है। मगर आज के इस वैज्ञानिक युग में मानव की कई तकनीकी उपलब्धियों के पीछे गणित का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। गणित के प्रयोग से ही कम्प्यूटरों का निर्माण, यहां तक कि चांद तक पहुंचना भी संभव हो पाया है। अत: गणित में छिपी विलक्षण और असाधरण शाक्ति को पहचानना और उसको सही ढंग से इस्तेमाल में लाना आवश्यक है। जटिल समीकरणों और सूत्रों वाली पाठ्य पुस्तकें शुष्क और दुरूह लग सकती है, मगर तस्वीर का एक दूसरा पहलू भी है। गणित के कई रोचक और मनोरंजक आयाम भी हैं, जैसे गणित के मनोरंजक खेल, माया वर्ग (मैजिक स्क्वैयर), अंक पहेलियां आदि।

समीक्ष्य पुस्तक अंग्रेजी में है जो गणित के विभिन्न रोचक और मनोरंजक पहलुओं पाठकों के सामने लाने तथा गणित संबंधी आम लोगों के भ्रामक दृष्टिकोण में बदलाव लाने के उद्देश्य से लिखी गई है। आजकल किसी भी विषय में ज्ञान और जानकारी की नाप-जोख के लिये प्रश्न पहेली यानी "क्विज" को एक सशक्त माध्यम माना जाने लगा है। पर "गणित क्विज" पर अच्छी पुस्तकों की अभी भी कमी है। जाने-माने विज्ञान लेखक दिलीप सालवी की पुस्तक इस कमी को काफी हद तक पूरा करने में सफल होगी।

पुस्तक में गणित के विविध पहलुओं पर 1000 प्रश्न पहेलियां दी गई हैं। गणित के खेल, मनोरंजक पहेलियां, कम्प्यूटर उपकरणों और मशीनों से लेकर गणित के सूत्र, समीकरण, ज्यामिति आदि नाना विषयों पर प्रश्नों का समावेश पुस्तक में किया गया है। भाषा, संस्कृति, तंत्र, धर्म तथा संगीत पर भी गणित ने अपना प्रभाव डाला है। इन सभी पहलुओं को पुस्तक में स्थान देने का प्रयास किया गया है। भारतीयों के गणित के क्षेत्र में किये गये महत्वपूर्ण योगदान को भी लेखक ने प्रश्न पहेलियों के माध्यम से पुस्तक में यथोचित स्थान दिया है।

विश्वख्याति प्राप्त गणितज्ञों में ... गणितज्ञ जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी दक्ष ... इनमें से एक गणितज्ञ लम्बी दूरी का धा... तथा एक वकील था। एक गणितज्ञ माली ... बेटा था। शौकीन मिजाज एक गणितज्ञ ... "प्रिन्स ऑफ मैथेमेटिशियंस" के रूप ... जाना जाता था। एक अन्य गणितज्ञ सफ... व्यवसायी सिद्ध हुआ। गणितज्ञों से संबं... ऐसे और कई रोचक तथ्यों का समावेश ... पुस्तक में हुआ है।

पुस्तक न केवल पाठकों के ज्ञान ... जानकारी की परख में सहायक सिद्ध हो... बल्कि गणित संबंधी नये-नये तथ्यों से ... अवगत भी करायेगी। गणित में उनके ज्ञ... की कई कमियों को पूरा करने में भी पुस्त... सहायक सिद्ध होगी। सभी प्रश्न पहेलियों ... सही उत्तर अंत में दिये गये हैं। कहीं-क... उत्तरों के साथ छोटी-छोटी जरूरी व्याख्या... भी दी गई हैं जो पाठकों के बड़े काम ... होंगीं।

लेखक ने बड़ी मेहनत और बुद्धि से ... प्रश्नों को पुस्तक में मूर्तरूप दिया है। लेख... इसके लिये प्रशंसा का पात्र है। अधिकाधि... ज्ञान और जानकारी प्राप्त करने की लाल... रखने वाले छात्रों के लिये पुस्तक निस्सं... बड़ी उपयोगी साबित होगी। प्रतियो... परीक्षाओं की तैयारी में जुटे छात्र भी पुस्त... से भली-भांति लाभान्वित होंगे।

[डा. पी.के. मुखर्जी, 43, देशबंधु सोसाइ... प्लाट नं. 15, पटपड़गंज, दिल्ली- 92]

उत्तराखण्ड के वन्य कन्द-मूल फल

उत्तराखण्ड सेवा निधि, अल्मोड़ा द्वारा उत्तराखण्ड पर्यावरण शिक्षा एवं चेतना पुस्तिका माला योजना के अन्तर्गत प्रकाशित; पृष्ठ : 44

कहा जाता है कि महाकवि रवीन्द्र की सुप्रसिद्ध कृति "गीतांजलि" की स्वदेश में चर्चा तब शुरु हुई जब उसके अनुवाद को विदेश में सराहाया गया। आज देश ने पदार्थ जगत में काफी प्रगति कर ली है किन्तु वर्षों की दासता की देन यह मनोवृत्ति आज भी हमारी मानसिकता से यथापूर्व लगी है। प्रकृति से जुड़ कर जीने की शिक्षा ... कला हमारी सांस्कृतिक धरोहर है। कि... आज हम प्रकृति की ओर तभी मुख मोड़... जब पश्चिम का कोई आधुनिक शोध... इस विषय पर अपनी रिपोर्ट प्रकाशित क... है।

ऐसे मानसिक संकट काल में प्रकृति...

देन का पुनरावलोकन करने का सूक्ष्मतम प्रयास भी सराहनीय कहा जायेगा। उपर्युक्त पुस्तिका ऐसे ही एक श्रृंखलाबद्ध प्रयास की एक कड़ी है। उत्तराखण्ड सेवानिधि, जो कुमाऊं व गढ़वाल क्षेत्र में क्रियाशील है, पत्रिकाओं की एक श्रृंखला प्रकाशित करने में कार्यरत है। विषय है "उत्तराखण्ड पर्यावरण : शिक्षा एवं चेतना"। इस आठवीं श्रृंखला में उत्तर प्रदेश के कुमाऊं व गढ़वाल प्रदेश में पाये जाने वाले वन्य कन्द-मूलों, फलों व फूलों के भोजन, उपचार व अन्य दैनिक उपयोग में महत्व को सचित्र वर्णित किया गया है। पुस्तक में एक जगह वर्णन है कि डाक्टरों के एक दल ने अस्कोट (जिला पिथौरागढ़) की 'राजी' जनजाति का अध्ययन करके पता लगाया कि उनकी लम्बी आयु का कारण उनके भोज्य पदार्थों में जंगली खाद्य पदार्थों की प्रधानता है। प्रकृति के मूलभूत नियमों का वैज्ञानिक विश्लेषण करने से निर्णय यह निकलता है कि प्रकृति किसी भी स्थान की पर्यावरण दशाओं के अनुरूप ऐसे पदार्थ उपलब्ध कराती है जिनका सेवन वहा के प्राणियों के लिये सर्वोत्तम होता है। यहां तक कि जो पदार्थ जिस मौसम में पैदा होते हैं उसी मौसम में उनका सेवन अधिकतम लाभ पहुंचाता है। उत्तराखण्ड की प्राकृतिक वनस्पति में अनेक अमूल्य खाद्य पदार्थों का विशाल भण्डार छिपा है। किलमोड़ा, काफल और हिसालू जैसे फलों को न केवल गांवों में ही वरन् नगरों में भी खाया जाता है। गेंठी और लिंगुड़ा जैसी सब्जियां उत्तराखण्ड के कई नगरों में बिक्री हेतु भी आती हैं। बुराश के फूल से उत्तम प्रकार का शहद प्राप्त होता है जो दवाइयों के निर्माण में काम आता है। इसका नियमित सेवन आरोग्यवर्धक होता है। इसके फूलों से बनाया गया शर्बत अब शहरों में भी प्रचलित होने लगा है।

पुस्तक के प्रारंभिक पृष्ठों में वन्य कन्द-मूलों का परिचय, महत्व, इनकी विविधता, वितरण एवं उपयोग का समुचित वर्णन दिया गया है। बदलती हुई परम्पराओं के परिप्रेक्ष्य में जंगली भोज्य पदार्थों की स्थिति का अवलोकन किया गया है। वन्य भोज्य पदार्थों के उपयोग का प्रचार-प्रसार व इनके संरक्षण पर भी प्रकाश डाला गया है।

पुस्तक में 59 कंद-मूल फलों का विवरण दिया गया है जिससे उनके आकार, फलने का मौसम, उगने के स्थान, उपयोग, स्वाद आदि की जानकारी मिलती है।

विशेष वनस्पतियों के चित्र भी दिये गये हैं जो पूरे पृष्ठ के आकार में छपे हैं। कुल मिलाकर 18 वनस्पतियों के चित्र दिये गये हैं। कुमाऊं व गढ़वाल क्षेत्र का एक नक्शा पाठक को क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति का ज्ञान कराता है। गहन जानकारी चाहने वाले पाठकों की सुविधा के लिये एक तालिका में वनस्पतियों के वानस्पतिक नाम दिये गयें हैं।

आवरण फूलों से आच्छादित बुराश (रोडोडेण्ड्रान आर्बोरियम) के पेड़ का रंगीन चित्र पुस्तक में लिखी कहानी को स्वतः ही इंगित करता है। पुस्तक की छपाई आकर्षक है। यदि पुस्तक में कुछ और कन्द-मूलों का समावेश किया गया होता तो इसे एक व्यापक संकलन कहा जा सकता था। उदाहरणार्थ कैरु (एक प्रकार की फर्न), पुरैणी (एक प्रकार की लता) जो उत्तराखण्ड के जंगलों में आमतौर पर पायी जाती है, का समावेश पुस्तिका में नहीं हो पाया है। □

[श्री आर.डी. रिखाड़ी, एन.आर.डी.सी., 20-22, जमरूदपुर, कम्यूनिटि सेंटर, कैलाश कालोनी एक्सटैंशन, नई दिल्ली- 110048]

सम्पादक "प्रश्न मंच"
विज्ञान प्रगति
प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय
सी.एस.आई.आर., हिलसाइड रोड
नई दिल्ली-110 012

सूचना

विज्ञान प्रगति में समीक्षित पुस्तकें मंगाने के लिए उनके प्रकाशकों से ही सम्पर्क करें। इस कार्यालय से इन पुस्तकों को भेजने की कोई व्यवस्था नहीं है।

मूल्य 2.50 रुपये
40
वर्ष
विज्ञान प्रगति

विशेष सूचना

प्रकाशन और सूचना निदेशालय (वै.औ.अ.प.) की लोकप्रिय मासिक पत्रिका 'विज्ञान प्रगति' और 'साइंस रिपोर्टर' की जुलाई 1990 से विज्ञापन की नई दरें

विज्ञान प्रगति

	एक बार रु.	छः बार रु.	बारह बार रु.
पूरा पृष्ठ	5,000.00	25,000.00	50,000.00
आधा पृष्ठ	3,000.00	15,000.00	30,000.00
चौथाई पृष्ठ	1,600.00	8,000.00	16,000.00
दूसरा तथा तीसरा आवरण पृष्ठ	6,000.00	30,000.00	60,000.00
चौथा आवरण पृष्ठ	7,000.00	35,000.00	70,000.00

साइंस रिपोर्टर

	एक बार रु.	छः बार रु.	बारह बार रु.
पूरा पृष्ठ	5,000.00	25,000.00	50,000.00
आधा पृष्ठ	3,000.00	15,000.00	30,000.00
चौथाई पृष्ठ	1,600.00	8,000.00	16,000.00
दूसरा तथा तीसरा आवरण पृष्ठ	6,000.00	30,000.00	60,000.00
चौथा आवरण पृष्ठ	7,000.00	35,000.00	70,000.00

विज्ञान प्रगति तथा साइंस रिपोर्टर की संयुक्त विज्ञापन की दरें

	एक बार रु.	छः बार रु.	बारह बार रु.
पूरा पृष्ठ	8,000.00	40,000.00	80,000.00
आधा पृष्ठ	4,500.00	22,500.00	45,000.00
चौथाई पृष्ठ	2,500.00	12,500.00	25,000.00
दूसरा तथा तीसरा आवरण पृष्ठ	9,500.00	47,500.00	95,000.00
चौथा आवरण पृष्ठ	11,000.00	55,000.00	110,000.00

रंगीन विज्ञापनों पर 75 प्र.श. अतिरिक्त

रैपिडैक्स इंगलिश स्पीकिंग कोर्स
• बड़ा आकार • 400 से अधिक पृष्ठ
• मूल्य 40/- • डाकव्यय 6/-
It is really a good book to learn Spoken English.
— Kapil Dev
पत्र-पत्रिकाओं एवं शिक्षाविदों द्वारा प्रशंसित

ग्राहकों के लिए सूचना

विज्ञान प्रगति की एक प्रति का मूल्य 2.50 रुपये है। इस पत्रिका का वार्षिक मूल्य 25.00 रुपये, द्विवार्षिक मूल्य 40.00 रुपये, त्रिवार्षिक मूल्य 60.00 रुपये हैं। अर्थात् आप **एक वर्ष, दो वर्ष, तीन वर्ष का ग्राहक बनकर क्रमशः 5.00 रुपये 20.00 रुपये एवं 30.00 रुपये की बचत कर सकते हैं।** चन्दे की राशि अग्रिम रूप से मनी आर्डर, डिमांड ड्राफ्ट अथवा चैक द्वारा **प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय**, हिलसाइड रोड, नई दिल्ली-110012 को भेजी जानी चाहिये

विज्ञान प्रगति की पहली प्रति वार्षिक/द्विवार्षिक/त्रिवार्षिक ग्राहकों को, अगर वे चाहते हैं तब वी.पी.पी. से भेजी जा सकती है। वी.पी.पी. छुड़ाते समय एक/दो/तीन वर्ष के चन्दे की पूरी राशि तथा वी.पी.पी. शुल्क देना होगा।

चैक भेजते समय दिल्ली के बाहर के चैक पर, कृपया बैंक कमीशन 3.50 रु. भी जोड़ लें।

ग्राहक फार्म

मेरा नाम विज्ञान प्रगति के ग्राहकों/नए ग्राहकों की सूची में वर्ष के लिए (मास.... 199 से... 199 तक दर्ज कर लीजिए। इसके लिए मनी आर्डर/बैंक ड्राफ्ट

क्रमांक................दिनांक......................से

"प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, सी.एस.आई.आर.," नई दिल्ली-110012 के नाम भेजे जा रहे हैं।

-हस्ताक्षर

पूरा पता ______________________

____

____

____

वरिष्ठ बिक्री और वितरण अधिकारी,
'विज्ञान प्रगति'
पी.आई.डी. हिलसाईड रोड,
नई दिल्ली-110012

40 वर्ष

विषय सूची

वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् का हिन्दी विज्ञान मासिक

वर्ष : 40 फरवरी : 1991 माघ : 1912 अंक : 2 पूर्णांक : 441

विज्ञान प्रगति

फरवरी 1991

प्रमुख सम्पादक
डा. जी.पी. फोंडके

सम्पादक
दीक्षा बिष्ट

सहायक सम्पादक
मनोज कुमार पटैरिया

सम्पादन सहायक
ओम प्रकाश मित्तल

कला अधिकारी
दलवीर सिंह वर्मा

प्रोडक्शन अधिकारी
रत्नाम्बर दत्त जोशी

बिक्री और वितरण अधिकारी
आर.पी. गुलाटी
टी. गोपाल कृष्ण
एल.के. चोपड़ा
मो. आसीफ अख्तर

सहायक
फूल चन्द
बी.एस. शर्मा

आवरण
नीरू शर्मा

टेलीफोन : 585359 और 586301
लेखकों के कथनों और मतों के लिये प्रकाशन और सूचना निदेशालय उत्तरदायी नहीं है।
एक अंक का मूल्य : 2.50 रुपये
वार्षिक मूल्य : 25.00 रुपये

आज का युग अणु-परमाणु का युग है जहां रोज-रोज नये-नये अनुसंधान होते हैं, नयी-नयी खोजें होती हैं, नये-नये आविष्कार होते हैं। जिस क्षेत्र में जितनी अधिक प्रगति होती है उस क्षेत्र में आवश्यकताओं में भी उतनी ही बढ़ोत्तरी होती है। ऐसा ही एक क्षेत्र है-ऊर्जा का। आज विश्व भर में ऊर्जा के स्रोतों की खोज में वैज्ञानिक जुटे हुये हैं। ऊर्जा की संभाव्य कमी से निपटने के लिये अनेक दिशाओं में सतत प्रयास किये जा रहे हैं।

विकासशील राष्ट्रों की पंक्ति में बैठा भारत भी ऊर्जा संरक्षण के लिये हर संभव प्रयास कर रहा है। वर्ष 2000 तक 10,000 मेगावाट परमाणु बिजली उत्पादन के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये अनेक परियोजनायें आरंभ की गई जिनके अंतर्गत स्थापित तारापुर (महाराष्ट्र), राजस्थान (कोटा के निकट राणा प्रताप सागर पर), मद्रास (कलपक्कम), नरोरा (उत्तर प्रदेश) कक्रापार (गुजरात) परमाणु बिजलीघर प्रमुख हैं।

परमाणु ऊर्जा के क्षेत्र में नाभिकीय विज्ञान और तकनीकी अनुसंधान के लिये मुम्बई भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र की कार्यक्षमता सराहनीय रही है। इस क्षेत्र में नित नई खोजों के लिये इस अनूठे संस्थान में विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में अनुसंधान कार्य हो रहे हैं।

इस केन्द्र की नींव यहां स्थापित 'नाभिकीय भट्टियां' हैं। जिनमें कुछ ऊर्जा प्राप्ति के लिये हैं तो कुछ अनुसंधान कार्यों के लिये। केन्द्र के वैज्ञानिकों का मनोबल इतना ऊंचा है कि उन्होंने स्वदेशी तकनीक से निर्मित भट्टियों का निर्माण करके अपनी आत्मनिर्भरता को दर्शाया है। इसका ज्वलन्त उदाहरण है प्रसिद्ध 'नाभिकीय अनुसंधान भट्टी-ध्रुव' जिसने कार्य करते हुये सफल पांच वर्ष तो पूरे कर ही लिये हैं साथ ही नाभिकीय अनुसंधान में रत भारतीय वैज्ञानिकों को सम्बल प्रदान किया है।

वैज्ञानिकों के इन्हीं प्रयासों से भारत का स्थान परमाणु रिएक्टर स्वयं बनाने वाले गिने चुने देशों में काफी पहले आ चुका है, इसका सबूत है भारत को अंतर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेन्सी के बोर्ड आफ गवर्नर्स का सदस्य बनाया जाना।

अपने सुविज्ञ पाठकों से हमें नये वर्ष की शुभ कामनायें व प्रशंसा पत्र निरन्तर प्राप्त हो रहे हैं, धन्यवाद। आशा है पाठकों का सहयोग हमें आगे भी मिलता रहेगा।

विदाई भेंट

पत्रिका का दिसम्बर 1990 अंक विशेष रूप से भाया। यदि इसे रत्न विशेषांक कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। बीते साल का यह अंक विदाई-भेंट स्वरूप रहा। हर सामग्री रोचक व ज्ञानवर्धक लगी। "बेशकीमती कंकड़ पत्थर" में परिचित-अपरिचित पत्थरों की वैज्ञानिक जानकारी ऐतिहासिक तथा भौगोलिक परिचय के साथ पायी।

इसके अतिरिक्त अस्सी का दशक, हिचकियां तथा जैवप्रौद्योगिकी के अंतर्गत अनुवंशिकता सभी लेख सराहनीय लगे।

आशा है नये वर्ष में यह और भी आकर्षक रूप में हमारे सामने होगी। लेकिन आपसे अनुरोध है कि कृपया इसकी कीमत न बढ़ायें। (नये वर्ष में ज्यादातर पत्रिकायें अपना मूल्य बढ़ा रही हैं)

नये वर्ष की मंगल कामना के साथ।

[अलख निरंजन कुशवाहा, माधोपुर, मुंगेर- 2 (बिहार), नरेन्द्र कुमार कुशवाहा, लोहियानगर, कोचस, रोहतास (बिहार)- 821 112 और अंजु सिंह, कमला नगर, आगरा (उ.प्र.)]

बेमिसाल पत्रिका

यूं तो वर्तमान में अनेक पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा है। परन्तु मैं एक विज्ञान वर्ग का छात्र होने के बावजूद न केवल मुझे परन्तु अन्य वर्ग के छात्रों हेतु यह पत्रिका वास्तव में एक सराहनीय प्रयास बन रही है।

मैं "विज्ञान प्रगति" का सन 1981 से एक नियमित पाठक हूं। आज के दौर में जब कि महंगाई दिन-दुगनी प्रगति पर है, अन्य पत्रिकाओं के दामों में धीरे-धीरे बढ़ना शुरू हो गया है। परंतु मुझे यह कहते हुये बड़ा हर्ष अनुभव हो रहा है "विज्ञान प्रगति" के अन्दर रंगीन चित्रों का स्पष्ट समायोजन मुद्रण की सफलता के तत्व हैं जो कि पत्रिका को एक नया रूप दे रहे हैं तथा जब कि कीमत वहीं है।

मैं तो विज्ञान प्रगति को एक "बेमिसाल पत्रिका" का नाम दूंगा क्योंकि इसमें वह सब कुछ है जो किसी अन्य वैज्ञानिक पत्रिकाओं में शायद ही........

आज तक विज्ञान प्रगति के जितने अंक मैंने पढ़े रोचक व ज्ञानवर्द्धक लगे, तथा भविष्य में आशा करता हूं कि विज्ञान प्रगति अपनी शान इसी तरह बनाये रखे। वर्ष 1991 के आगमन पर समस्त "विज्ञान प्रगति परिवार" को मेरी ओर से हार्दिक शुभकामनायें।

[भूपेन्द मोहन रौतेला, डा. देव सिंह बिष्ट संघटक कालेज, नैनीताल- 2]

सुनहरे रत्न

दिसम्बर माह का विज्ञान प्रगति अंक हमें प्राप्त हुआ। इस माह के मुख्य पृष्ठ ने हमें बहुत ही आकर्षित किया। इस अंक रूपी दर्पण में सबसे सुनहरा रत्न प्रश्न मंच, आमुख कथा, चित्रकथा, आरोग्य सलाह, साहित्य परिचय के साथ साथ उपग्रह प्रणाली अपने आप में गागर में सागर प्रतीत होते हैं। लेखक एवं कार्यरत सम्पादक मंडल को मसीहा रेडियो श्रोता संघ की ओर से नव वर्ष शुभ कामनाओं सहित ढेर सारी बधाई हो—आशा है भविष्य में भी ऐसे ही "विज्ञान प्रगति" प्रगति के पथ पर अग्रिम रहेगी।

[परशु राम, द्वारा मसीहा रेडियो श्रोता संघ, कुतुबपुर उजियार घाट, जिला बलिया (यू.पी.)- 277 501]

नई दिशा

हमारी परिचित पत्रिका विज्ञान प्रगति के दिसम्बर 90 का अंक अन्य अंकों की तरह एक आकर्षक साज-सज्जा एवं ज्ञानवर्धक लेखों के साथ हमारे हाथों में आया। इस अंक के सभी लेख प्रशंसनीय एवं ज्ञानवर्धक थे। विज्ञान प्रगति ने भारत में विज्ञान की पत्रिकाओं को एक नई दिशा प्रदान की है। इस पत्रिका ने विज्ञान के जटिल तथ्यों को बोधगम्य बनाकर जन-जन तक पहुंचाया है।

दिसम्बर अंक के लेख-बेशकीमती कंकड़ पत्थर भारतीय राष्ट्रीय उपग्रह प्रणाली व अस्सी का दशक....ने विशेष रूप से प्रभावित किया। नव वर्ष में विज्ञान प्रगति के नव लक्ष्य सम्पादन की कामना करता हूं।

[साधन सिंह, गोपालगंज, बिहार, बी.के. सिन्हा, दिनारा, रोहतास, बिहार, ओम प्रकाश कश्यप, सिद्धु मार्किट किच्छा (नैनीताल)- 263 148 तथा सुधीर कुमार सिन्हा, आरंगाबाद, घोंटा, बिहार]

प्रगति पथ पर

जब से "विज्ञान प्रगति" से मेरी मुलाकात हुई है तब से मैं इस पत्रिका को उत्तरोत्तर प्रगति करते हुये देखा हूं। प्रगतिशील विज्ञान के महत्वपूर्ण तथ्यों को अपने में समाये हुये यह पत्रिका न ही सिर्फ अपने नाम को सार्थक करती है बल्कि पूरे पाठकों में समाहत होकर लोकप्रियता का गौरव हासिल कर रहीं है।

यूं तो विज्ञान प्रगति का हर अंक अपने आप में बेमिसाल होता है। परंतु दिसम्बर 90 अंक काफी रोचक तथा ज्ञानवर्द्धक साबित हुआ।

प्रश्न मंच काफी लोकप्रिय हो रहा है। प्रश्नमंच का विकसित रूप "विशेष" देकर आपने पत्रिका में चार चांद लगा दिये। निस्संदेह इस पत्रिका के पाठकों की संख्या में वृद्धि होगी।

[कृष्ण कुमार निर्मलकर "अजनबी", देवभोग- 493 890 तथा कुमार पद्मनाभ, सहरसा, बिहार]

अगले अंक के आकर्षण

बच्चों का वैज्ञानिक तीर्थ

एलर्जी

एवं अन्य सभी स्थायी स्तम्भ

आत्मनिर्भरता का प्रतीक

अनिल काकोडकर

यह भट्टियां नाभिकीय विकिरण की स्रोत होती हैं। इन विकिरणों का प्रयोग नाभिकीय शक्ति रिऐक्टर में प्रयुक्त होने वाले ईंधन तथा अन्य पदार्थों की कार्य करने की क्षमता के परीक्षण के लिये आयुर्विज्ञान, कृषि, उद्योग आदि क्षेत्रों में प्रयोग में आने वाले विभिन्न प्रकार के समस्थानिक बनाने के लिये तथा न्यूट्रॉन क्रिरण-पुंज अनुसंधान के लिये प्रयोगात्मक सुविधाएं प्रदान करने के लिये किया जाता है। छठे दशक के अन्त तक भारत में अप्सरा, जेरलीना, साइरस, तथा पूर्णिमा-1 नाभिकीय भट्टियों का निर्माण हो गया था। 40 मेगावाट शक्ति की विशाल नाभिकीय भट्टी साइरस को छोड़ कर शेष

नाभिकीय भट्टियां (रिऐक्टर) मुख्यतः दो प्रकार की होती हैं—एक तो वह जिसका उपयोग ऊर्जा प्राप्त करने के लिये किया जाता है, तथा दूसरी वह जो अनुसंधान कार्य के लिये बनाई जाती हैं। अनुसंधान कार्य के लिये बनाई जाने वाली नाभिकीय अनुसंधान भट्टियों के निर्माण में भारतीय वैज्ञानिकों ने महत्वपूर्ण कार्यकुशलता हासिल की है, उसका ही एक जीता जागता नमूना है-ध्रुव भट्टी।

— सम्पादक

ट्राम्बे (मुम्बई) स्थित भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र (भाभा एटोमिक रिर्सच सेन्टर (बार्क), भारत द्वारा अर्जित नाभिकीय विज्ञान और तकनीकी जानकारी की राष्ट्रीय शक्ति का एक अग्रणी संस्थान है। जहां एक ओर इस संस्थान ने परमाणु ऊर्जा अनुसंधान संबंधी अनेकों कार्यक्षेत्रों को जन्म दिया है जो आज स्वतन्त्र औद्योगिक इकाईयों के रूप में कार्य कर रहे हैं, वहीं स्वयं केन्द्र के वैज्ञानिक नाभिकीय विज्ञान और तकनीकी की नित नई खोजों में रत हैं। बार्क अपने आप में एक अनूठा अनुसंधान और विकास संस्थान है जहां एक ही स्थान पर बड़ी संख्या में विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में कार्य चल रहा है।

नाभिकीय विज्ञान और तकनीकों से संबंधित किसी भी अनुसंधान और विकास संस्थान के लिये नाभिकीय अनुसंधान भट्टी (रिऐक्टर) का होना अत्यन्त आवश्यक है।

ध्रुव रिऐक्टर

ध्रुव की क्षैतिज किरण पुंज नलिका

भट्टियों का निर्माण भारत में उपलब्ध स्वदेशी जानकारी के आधार पर किया गया था। साइरस भट्टी कनाडा के सहयोग से स्थापित की गई थी और पहले इसका नाम 'कनाडा इण्डिया रिऐक्टर' रखा गया था। यह वहां की विख्यात NRX भट्टी से मिलती जुलती है। बार्क के वैज्ञानिकों के साथ-साथ अनेक संस्थानों के अनुसंधानकर्त्ता भी इन सब भट्टियों का उपयोग करते रहे हैं। अपने निर्माण के 30 वर्ष बाद भी अप्सरा और साइरस भट्टियां अनुसंधान और विकास के क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।

संस्थान केन्द्र में नाभिकीय अनुसंधान के आधुनिक क्षेत्रों में अनुसंधानों को जारी रखने के लिये नई सुविधाओं की आवश्यकताओं, तथा नाभिकीय ऊर्जा के बढ़ते हुये कार्यक्रमों को देखते हुये, सातवें दशक के आरंभ में एक नई अनुसंधान भट्टी की आवश्यकता महसूस की गई। इसकी आवश्यक उपलब्धियों को भांपते हुये बार्क के वैज्ञानिकों तथा अभियन्ताओं ने भारत में नाभिकीय कार्यक्रमों के जनक डा. होमी जहांगीर भाभा के जन्म दिन के अवसर पर 30 अक्तूबर, 1975 को एक नई अनुसंधान भट्टी का निर्माण कार्य आरंभ किया, जिसका नाम रखा R-5, क्योंकि यह भारत की पांचवीं अनुसंधान परियोजना थी। बाद में 29 सितम्बर, 1983 को तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने इसको नया नाम दिया, 'ध्रुव'।

ध्रुव नामक इस भट्टी की परिकल्पनां, रूपरेखा और निर्माण में पूर्ण रूप से केन्द्र के वैज्ञानिकों और अभियन्ताओं का योगदान है। 8 अगस्त, 1985 को पहली बार इस भट्टी को चालू किया गया और जनवरी 1988 से यह पूर्ण क्षमता पर कार्य कर रही है। वर्ष 1990 में 'ध्रुव' ने पांच और 'साइरस' ने तीस वर्ष पूरे कर लिये हैं। केन्द्र में किये गये अनुसंधान और विकास के परिणामों के फलस्वरूप ध्रुव की योजना में अनेकों नये कार्य शामिल किये गये हैं जो कि आगामी वर्षों में ऊर्जा भट्टियों में अपनी उपयोगिता सिद्ध करेंगे। भट्टी के विभिन्न भागों के निर्माण में अनेक भारतीय उद्योगों और केन्द्र ने कन्धे से कन्धा मिला कर कार्य किया है।

भारी जल द्वारा शीतल की जाने वाली 100 मेगावाट की यह तापीय अनुसंधान भट्टी—ध्रुव, विश्व की उच्च प्रवाह उत्पन्न करने वाली भट्टियों में से एक है। यह लगभग 1.8×10^{15} न्यूट्रॉन/प्रति वर्ग सेमी/सेकन्ड की दर से गर्म न्यूट्रॉन प्रवाह उत्पन्न कर सकती है।

आन्तरिक संरचना

ध्रुव में प्रकृति में मिलने वाला धात्विक यूरेनियम (U^{235}) ईंधन के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। गुरु जल मंदक अथवा मॉडरेटर और परावर्तक अथवा रिफलेक्टर, के साथ-साथ शीतलक अथवा कूलेण्ट के रूप में भी प्रयुक्त होता है। 1.27 सेमी. व्यास की 306 सेमी. लंबी ईंधन की छड़ें। मिमी. मोटी एल्युमिनियम की चादर से लिपटी होती हैं और 7 छड़ों के समूह में 5.23 सेमी. व्यास की एल्युमिनियम की ही नालिकाओं में अवस्थित रहती हैं। शीतलक के रूप में प्रयुक्त होने वाला गुरु जल इन 5.23 सेमी. व्यास की नलिकाओं में बहता रहता है। ईंधन की छड़ों के समूह को ज़िरकौलॉय गाइड नलिकाओं में रखते हैं। यह गाइड नलिकाऐं प्रतिस्थापित की जा सकने वाली शीतलक वाहिकाओं का एक भाग होती हैं। इन शीतलक वाहिकाओं को 387.5 सेमी. लंबे, 372 सेमी. व्यास और 1.9 सेमी. मोटे दीवार वाले स्टेनलेस स्टील के कैलेंड्रिया में रखा जाता है। एक कैलेन्ड्रिया में ऐसे 146 वाहिकाओं को एक जाल के रूप में व्यवस्थित किया जाता है। जाल में एक वाहिका की दूसरी से दूरी 18 सेमी. होती है। वाहिकाओं के जाल में 127 जाल ईंधन लिये तथा शेष 19 को अवरोधक (समायोजक छड़ों, रेडियो-आइसोटोप करने वाली छड़ों) आदि के रूप में प्रयु किया जाता है।

यूरेनियम 235 (U^{235}) के विखंडन से होने वाली 100 मेगावाट ऊष्मा गुरु द्वारा ले ली जाती है और यह विखनिजित जल को स्थानांतरित कर जाती है जहां से यह अंत में समुद्री जल अवशोषित कर ली जाती है। रेडियोधर्मि को वातावरण में रिसने से बचाने के लि भट्टी को 3 फीट मोटे कंक्रीट के एक पात्र रखते हैं। भट्टी की इमारत के आस-पास गुजरने वाली हवा को विशेष प्रकार फिल्टर से गुजारने के बाद 100 मीटर ऊं चिमनियों से वातावरण में छोड़ा जाता है।

प्रत्येक शीतलक चैनल में तापमान प्रव और रेडियोधर्मिता के साथ-साथ भट्टी अन्य आवश्यक पैरामीटरों को बराबर जा जाता है। किसी भी पैरामीटर की निश्चित सीमा में परिवर्तन से भट्टी क्रियायें स्वतः ही बंद हो जाती हैं।

शीतलक, मंदक तथा परावर्तक के रूप गुरु जल इस्तेमाल करने के कारण भट्टी की ईंधन की खपत में साइरस तुलना में 36.5% कमी आई है। हाला ऐसा समझा जाता है कि ध्रुव का अधिक न्यूट्रॉन प्रवाह साइरस की तुलना में 2.7 गुना अधिक है, अनुसंधान आइसोटोप की उत्पति के लिये यह प्रवाह आंकड़ों से कहीं अधिक है। वास्तव में का न्यूट्रॉन प्रवाह किसी भी तापीय भट्टी प्रायोगिक सीमा के बराबर ही है।

प्रयोग के लिये विभिन्न प्रकार सुविधायें प्रदान करने के कारण ध्रुव आप में एक विलक्षण भट्टी है। भविष्य इस्तेमाल किये जाने वाले ईंधन के परी के लिये इस भट्टी में विशिष्ट स्थान है। से अत्यधिक गर्म (2000^0 केल्विन) ठण्डा (115^0 केल्विन) न्यूट्रॉन प्रवाह प्रा किया जा सकता है।

सुरक्षा तथा अर्थव्यवस्था

ध्रुव की संरचना ने यह सिद्ध कर दिया

कि उचित सुरक्षा व्यवस्था के लिये अत्यधिक खर्च होना आवश्यक नहीं है। शीतलक और मंदक प्रणाली के बीच के परस्पर संबंध के कारण मंदक के शीतलन, संचरण तथा संशोधन के लिये मंदक में एक अलग से प्रणाली की आवश्यकता नहीं है, तथा इस कारण भट्टी और अधिक सुरक्षित हो गई है। शीतलन के लिये प्रयुक्त नलियों में यदि टूट-फूट हो जाय तो मंदक, क्रोड में से बह जाने के कारण भट्टी स्वतः ही बन्द हो जायेगी और किसी यन्त्र आदि के सहारे की आवश्यकता नहीं होगी। सुरक्षा तथा अर्थव्यवस्था का एक और उदाहरण भट्टी का अन्तःकक्ष है। अन्तःकक्ष के पानी से भरे होने के कारण भट्टी के चारों ओर प्रयुक्त होने वाले जटिल तापीय आवरण की आवश्यकता को दूर कर दिया है। अन्तःकक्ष का पानी भट्टी से उत्सर्जित ऊर्जा क्षय को भी सोखता है। अन्तःकक्ष मुख्य भट्टी के चारों ओर 1.2 मीटर चौड़े गोलाकार मार्ग के रूप में होता है। इस मार्ग से भट्टी के पात्र तथा परस्पर जुड़े विकिरण पुंज छिद्र नलिका

रिऐक्टर ब्लाक तथा मुख्य शीतलन परिपथ

और पाईप प्रणाली का निरीक्षण भी किया जा सकता है।

सुरक्षा तथा अर्थव्यवस्था के गठबन्धन का एक और उदाहरण सिरा-परिरक्षक (एण्ड शील्ड) है। इस्पात की गोलियों और पानी को कवच के रूप में प्रयुक्त करने के कारण कवच का निर्माण और ऊर्जा का निष्कासन सरल हो गया है। उच्च तथा निम्न द्रव्यमान वाले कवच पदार्थों के अधिक प्रयोग करने के कारण सिरा परिरक्षक विभिन्न प्रकार के अवांछित विकिरणों को क्षीण करने में सक्षम हैं। एक विशिष्ट प्रकार की बनावट कवच के भट्टी के सामने वाले तले पर पड़ने वाले दबाव को कम करती है। जहां तक संभव हो सका है, कवच के लिये कम खर्चीले पदार्थों का उपयोग किया गया है। उदाहरण के लिये सिरा परिरक्षक को घेरने वाले गोलाकार कवच में कंक्रीट को कवच पदार्थ के रूप में इस्तेमाल किया गया है। डेक प्लेट में प्रयुक्त होने वाले इस्पात की पट्टियों के अनुप्रयोगी टुकड़ों को इस्पात के स्थान पर कवच पदार्थ के रूप में प्रयुक्त किया गया है। कवच में सीसे का प्रयोग केवल नाम मात्र के लिये किया गया है।

अन्य जटिल संयंत्रों की भांति ध्रुव को भी प्रारंभ में अनेक आलोचनाओं का सामना करना पड़ा। कुछ प्रचार माध्यमों ने इस भट्टी के ढांचों पर आपत्ति की तो कुछ ने तो यहां तक कहा कि भट्टी केवल कबाड़े के अलावा और कुछ नहीं है। वास्तव में इन सब आलोचनाओं को केन्द्र के अभियन्ताओं तथा वैज्ञानिकों ने चुनौती के रूप में स्वीकारा और भट्टी के निर्माण में अपने आप को और अधिक समर्पित कर दिया।

भट्टी के चालू होने के साथ ही नाभिकीय भौतिकी, ठोसावस्था भौतिकी अथवा सॉलिड स्टेट भौतिकी, विकिरण रसायन आदि क्षेत्रों में प्रयोगों के लिये नये रास्ते खुले हैं। भट्टी द्वारा उपलब्ध कुछ उन्नत सुविधायें हैं : (1) विकिरणपुंज छिद्र के पास उपस्थित माइक्रोप्रोसेसर कंट्रोल स्पेक्ट्रोमीटर; (2) कोल्ड न्यूट्रॉन गाइड ट्यूब। इनके द्वारा

रिऐक्टर ब्लाक का सामान्य दृश्य

साइरस रिऐक्टर

कोल्ड न्यूट्रॉन विकिरणों को प्रयोगों के लिये किसी सुरक्षित स्थान पर स्थानांतरित भी किया जा सकता है। (3) भट्टी के चालू होने से विभिन्न प्रकार के उच्च विशिष्ट सक्रियता वाले रेडियो आइसोटोप के उत्पादन में भी बढ़ोत्तरी हुई है, जैसे आयोडीन-131, क्रोमियम-51, मॉलिब्डेनम-99, इरिडियम -92, कोबाल्ट 60 आदि। ये आइसोटोप चिकित्सा प्रणाली में निदान और उपचार में अत्यन्त उपयोगी होते हैं।

ध्रुव के निर्माण ने भाभा परमाणु अनुसंधान संस्थान के अभियन्ताओं और वैज्ञानिकों में एक नई ज्योति का संचार किया है। भविष्य की अनुसंधान और गुरु जल भट्टी के निर्माण की तकनीकी संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये एक आत्मविश्वास को जन्म दिया है। आशा है ध्रुव में इस्तेमाल की जाने वाली अनेक सुविधाओं को गुरु जल तकनीक वाली भट्टियों के रूपरेखा और निर्माण की आगामी योजनाओं में भी स्थान मिलेगा।

ध्रुव जैसी परियोजनाओं के कार्यन्वयन के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि अनुसंधान और विकास कार्य में एक तालमेल हो और ऐसे क्रार्यो को शीघ्र और समयबद्ध तरीके से लागू किया जाय। ऐसी योजनाओं में विभिन्न क्षेत्रों के अनेकों विशेषज्ञों का सामन्जस्य होना अनिवार्य है।

वास्तव में ध्रुव एक सामूहिक प्रयासों और कुशल योग्यता का नमूना है जो एक बेजोड़ यादगार के रूप में सदैव याद किया जायेगा। ऐसी योजनाओं के कार्यन्वयन से भागीदार न केवल अपने ज्ञान को बढ़ाते है बल्कि अर्जित भी करते हैं। आशा है ध्रुव विख्यात 'ध्रुव तारे' की तरह जिसके नाम पर इस भट्टी का नामकरण हुआ है, आने वाले समय में अभियन्ताओं और वैज्ञानिकों का पथ प्रदर्शन करती रहेगी और प्रेरणा देती रहेगी। □

[अनिल काकोडकर, निदेशक, रिऐक्टर डिजाइन और डेवलपमेन्ट ग्रुप, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द, ट्राम्बे, मुम्बई- 400 085; प्रस्तुति: राजीव माथुर, प्रकाशन और सूचना निदेशालय, वै.औ.अ.प., नई दिल्ली- 110 012]

परमाणु रिएक्टर 2000 ईस्वी तक

विट्ठलकुमार फरक्या

ऊर्जा मानव की प्रमुख आवश्यकता है। आधुनिक सभ्यता का विकास ऊर्जा साधनों के निरंतर विकास और उपभोग से संबद्ध है। किसी भी देश की विकास व्यवस्था में अधिक ऊर्जा संसाधन आवश्यक हो गये हैं। आज निःसंदेह किसी भी देश की प्रति व्यक्ति ऊर्जा खपत ही उसकी प्रगति का सूचकांक बन गया है।

आदि काल से मानव ऊर्जा आवश्यकताओं की पूर्ति लकड़ी, गोबर और अन्य साधनों से करता आया है। सभ्यता के विकास के साथ कोयला, पेट्रोलियम उत्पादन और जल प्रवाह को रोककर विद्युत उत्पादित करना इस शताब्दी के प्रारम्भ में प्रमुख ऊर्जा साधन रहे हैं। विश्व में कोयले और पेट्रोल के असमान वितरण और सीमित भंडारों ने इस शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विकसित और विकासशील देशों को सावधान कर दिया है। आज ऊर्जा उत्पादन, वितरण और प्रबन्ध, शोध के प्रमुख विषय बन गये हैं। विश्व के अधिकांश देशों में ऊर्जा के गैरपरंपरागत और नवीनीकृत होने वाले ऊर्जा के स्रोतों की खोज जारी है और इसमें भरपूर सफलता भी मिली है। आज नाभिकीय विखंडन ऊर्जा, सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, भू-तापीय ऊर्जा, जैव गैस ऊर्जा और अन्य विकसित विधियों से भी ऊर्जा प्राप्त की जा रही है

नाभिकीय विखंडन ऊर्जा

सन् 1939 में दो जर्मन वैज्ञानिकों ऑटोहॉन और स्ट्रॉसमैन ने पाया कि जब 235 परमाणु भार वाले यूरेनियम (U^{235}) के नाभिक पर मन्दगामी न्यूट्रॉन की बमबारी की जाती है तब वह लगभग दो समान भागों में विखंडित हो जाता है। इस प्रक्रिया में 3 न्यूट्रॉन तथा अत्यधिक मात्रा में ऊर्जा उत्सर्जित होती है। इस प्रक्रिया को 'नाभिकीय विखंडन' कहते हैं। 'नाभिकीय विखंडन' प्रक्रिया इस रासायनिक

विभिन्न प्रकार की नाभिकीय भट्टियां

समीकरण द्वारा दर्शाई जाती है :

$${}_{92}U^{235} + {}_{0}n^{1} \rightarrow Ba^{141} + Kr^{92} + 3\,{}_{0}n^{1} + 200\ \text{MeV}$$

(यूरेनियम) (न्यूट्रॉन) (बेरियम) (क्रिप्टन) (न्यूट्रॉन) (ऊर्जा)

नाभिकीय विखंडन की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें अत्यधिक ऊर्जा उत्पन्न होती है। अत्यधिक ऊर्जा उत्पन्न होने का प्रमुख कारण है यूरेनियम के विखंडन

से प्राप्त तत्वों का द्रव्यमान के इस प्रक्रिया में भाग लेने वाले प्रारंभिक द्रव्यमान से कम होना, अर्थात् विखंडन प्रक्रिया में कुछ द्रव्यमान लुप्त हो जाता है। यह लुप्त द्रव्यमान ही ऊर्जा के रूप में प्रकट होता है। प्राप्त ऊर्जा का मान आइन्सटीन के द्रव्यमान ऊर्जा समीकरण $E=mc^2$ से प्राप्त किया जा सकता है, जहां E ऊर्जा, m लुप्त होने वाला द्रव्यमान तथा c प्रकाश का वेग (मान 3×10^{10} सेंटीमीटर/सेंकड) है। यदि 1 पौंड यूरेनियम-235 के सभी परमाणु विखंडित हो जाएं तो प्राप्त ऊर्जा तीस लाख टन कोयले को जलाने से प्राप्त ऊर्जा के बराबर होगी।

प्राकृतिक यूरेनियम और विखंडन

प्राकृतिक यूरेनियम के तीन समस्थानिक (आइसोटोप) होते हैं, यथा; यूरेनियम 238, 99.28% यूरेनियम 235, 0.71%; यूरेनियम 234, 0.01%; कुल प्रतिशत 100.00। यहां यह जान लेना आवश्यक है कि निम्न चार भारी समस्थानिक ही नाभिकीय विखंडन प्रक्रिया द्वारा ऊर्जा उत्पादित कर सकते हैं। ये चारों इस प्रकार हैं: यूरेनियम-233, यूरेनियम-235, प्लूटोनियम-239, प्लूटोनियम-241।

इन चार समस्थानिकों में से केवल यूरेनियम-235 ही प्रकृति में बहुतायत में पाया जाता है। प्राकृतिक यूरेनियम में इसका प्रतिशत 0.7 होता है। शेष तीन समस्थानिक, थोरियम और यूरेनियम के कुछ समस्थानिकों द्वारा न्यूट्रॉन अवशोषित करने पर प्राप्त होते हैं।

यूरेनियम-235 (U-235) नाभिक का बेरियम, क्रिप्टान तथा तीन न्यूट्रानों (n) में विखण्डन और श्रृंखला अभिक्रिया क्रम जारी रखना।

नाभिकीय रिऐक्टर का एक स्वरूप मंदक तथा ईंधन क्रमशः बड़ी और छोटी छड़ों से दर्शाये गये हैं।

इसमें नाभिकीय विखंडन की नियंत्रित श्रृंखला प्रतिक्रिया के द्वारा ऊर्जा उत्पन्न की जाती है। आधुनिक परमाणु रिऐक्टरों में निम्न मुख्य भाग होते हैं:

ईंधन: यह पदार्थ विखंडन द्वारा नाभिकीय ऊर्जा उत्पन्न करता है। इस कार्य के लिये यूरेनियम-235 या प्लूटोनियम-239 प्रयुक्त किये जाते हैं। विखंडन प्रक्रिया रिऐक्टर के क्रोड में संपन्न होती हैं।

मंदक: इसका कार्य न्यूट्रॉनों की गति को मंद करना होता है। मंदक के रूप में भारी जल, ग्रेफाइट, दाबित जल आदि का उपयोग किया जाता है।

शीतलक: विखंडन के कारण अत्यधिक मात्रा में ऊष्मा उत्पन्न होती है जिसे शीतलक द्वारा हटाया जाता है। शीतलक के रूप में जल, कार्बन डाईआक्साइड, तरल सोडियम आदि का उपयोग किया जाता है।

परिरक्षक: परमाणु रिऐक्टर में नाभिकीय विखंडन प्रक्रिया के फलस्वरूप निकलने वाली गामा किरणों और न्यूट्रॉन से रिऐक्टर पर कार्य करने वालों और समीप रहने वाली जनता को बचाना आवश्यक है। इसके लिये रिऐक्टर के चारों ओर कंक्रीट की मोटी दीवारें बना दी जाती हैं जिससे विखंडन प्रक्रिया में बाहर निकलने वाली गामा किरणें और न्यूट्रॉन उसमें अवशोषित हो जाते हैं।

प्रमुख प्रकार के रिऐक्टरों के नाम, विखंडनीय पदार्थ, मंदक आदि का विवरण

रिऐक्टर का प्रकार	परमाणु ईंधन	मंदक	शीतलक
क्वथन जल रिऐक्टर	संवर्धित यूरेनियम ऑक्साइड	जल	जल
दाबित जल रिऐक्टर	संवर्धित यूरेनियम ऑक्साइड	दाबित जल	दाबित जल
गुरुजल रिऐक्टर	अल्प संवर्धित यूरेनियम ऑक्साइड	गुरु जल	भाप और जल
एडवांस्ड गैसकूल्ड रिऐक्टर	अल्प संवर्धित यूरेनियम ऑक्साइड	ग्रेफाइट	कार्बन डाइआक्साइड
मेगनॉक्स रिऐक्टर	प्राकृतिक यूरेनियम	ग्रेफाइट	कार्बन आक्साइड
तीव्र प्रजनक रिऐक्टर	प्लूटोनियम और यूरेनियम के ऑक्साइड	नहीं	तरल सोडियम

नियंत्रक: परमाणु विखंडन की गति पर नियंत्रण रखने के लिये कैडमियम की छड़ें उपयोग में लाई जाती हैं।

इस विवरण से स्पष्ट है कि यूरेनियम के नाभिकीय विखंडन से प्राप्त ऊर्जा (ऊष्मा) को न्यूट्रॉन शोषक पदार्थों से घेर कर नियंत्रित किया जाता है जिन्हें मंदक अथवा मोडरेटर कहते हैं। इस प्रक्रिया द्वारा नियंत्रित तापीय ऊर्जा प्राप्त कर पानी को भाप में बदला जाता है जिससे टरबाइन चलाकर जनरेटर की सहायता से विद्युत ऊर्जा प्राप्त की जाती है।

नाभिकीय ऊर्जा स्थिति

जून 30, 1989 तक संपूर्ण विश्व में 434 रिऐक्टर कार्यशील हैं जिनसे 316488 मेगावाट विद्युत ऊर्जा प्राप्त की जा रही है। इसके साथ ही 100 रिऐक्टरों का निर्माण कार्य जारी है जिनसे 80189 मेगावाट विद्युत शक्ति प्राप्त हो सकेगी।

आज विश्व में 434 परमाणु रिऐक्टर कार्यशील हैं तथा 100 रिऐक्टरों का निर्माण कार्य चालू है। इनका वर्गीकरण सारणी में स्पष्ट किया गया है।

नाभिकीय ऊर्जा के अतिरिक्त परमाणु के शांति पूर्ण उपयोगों के शोध के लिये शोध रिऐक्टर होना आवश्यक है। आज विश्व में 326 शोध रिऐक्टर कार्यशील हैं। सर्वाधिक शोध रिऐक्टर संयुक्त राज्य अमेरिका में हैं जिनकी संख्या 99 है। दूसरा स्थान रूस का है जहां 24 शोध रिऐक्टर हैं। तीसरे और चौथे स्थान पर क्रमशः जर्मन संघीय गणराज्य तथा फ्रांस हैं जिनके यहां 21 तथा 20 शोध रिऐक्टर कार्यरत हैं। जापान तथा इंग्लैंड के पास क्रमशः 18 और 15 शोध रिऐक्टर हैं। विकासशील देशों में भारत में पांच पाकिस्तान में एक ईराक में दो ईरान में एक, फिलीपीन में एक, बंगलादेश में एक, लीबिया में एक तथा अन्य स्थानों में भी शोध रिऐक्टरों का विकास कार्य जारी है। भारत में मुम्बई स्थित ध्रुव अनुसंधान रिऐक्टर ने सफलतापूर्वक पांच वर्ष पूरे कर लिये है।

विश्व के महत्वपूर्ण रिऐक्टर

विश्व का सबसे बड़ा नाभिकीय रिऐक्टर चूज़-बी-1 फ्रांस में इस वर्ष तक कार्यशील होने की संभावना है। इसका निर्माण कार्य 1984 में शुरू हुआ था। इसकी क्षमता 1516 मेगावॉट विद्युत की होगी।

आज जापान में फुकूशीमा स्थित नाभिकीय पॉवर स्टेशन विश्व का सबसे बड़ा पॉवर स्टेशन है जहां दस रिऐक्टर इकाईयों द्वारा 8896 मेगावाट विद्युत एक ही स्थान से उत्पन्न की जाती है। दूसरे स्थान पर फ्रांस स्थित ग्रेवलीन पॉवर स्टेशन है जहां छः रिऐक्टरों द्वारा 5706 मेगावॉट विद्युत उत्पन्न की जाती है। तीसरा स्थान कनाडा के ब्रूस पावर स्टेशन का है जहां छः रिऐक्टरों द्वारा 4910 मेगावॉट विद्युत उत्पन्न की जाती है।

सन् 2000 तक नाभिकीय शक्ति

दिसम्बर 20, 1951 को संयुक्त राज्य अमेरिका में रिऐक्टर ईबीआर-1 द्वारा विश्व में पहली बार विद्युत ऊर्जा प्राप्त की गई; 26 जून, 1954 को रूस ने एपीएस-1 ऑबनिनस्क द्वारा विद्युत ऊर्जा प्राप्त की और तीसरे स्थान पर इंग्लैंड ने 27 अगस्त, 1956 को कल्डर हाल इकाई-1 द्वारा विद्युत ऊर्जा प्राप्त की। आज चालीस वर्ष से भी कम समय में विश्व में 434 रिऐक्टर कार्यशील हैं तथा 100 का निर्माण कार्य चालू है। सुनिश्चित है कि नाभिकीय रिऐक्टरों का विकास विकसित और विकासशील देशों में द्रुत गति से हो रहा है। विश्व की विकास योजनाओं से नाभिकीय ऊर्जा की धारिता वृद्धि अपेक्षित है। मोटे अनुमान के अनुसार सन् 2000 तक नाभिकीय रिऐक्टरों से प्राप्त विद्युत ऊर्जा 480000 मेगावॉट से 600000 मेगावॉट के मध्य होगी। इसका तात्पर्य यह है कि 90000 मेगावॉट से लगाकर 120000 मेगावॉट विद्युत ऊर्जा प्राप्ति के प्रयास इस शताब्दी के अंतिम दशक में किये जाने हैं। यह अनुमान विश्व के समस्त देशों की योजनाओं और कार्यविधि को देखकर लगाया गया है।

भारत का लक्ष्य

भारत में तारापुर रावतभाटा (कोटा, राजस्थान), कलपक्कम (मद्रास) तथा नरोरा (उत्तर प्रदेश) में कार्यशील रिऐक्टरों द्वारा विद्युत प्राप्त की जा रही है। ककरापार, गुजरात राज्य में रिऐक्टर निर्माणाधीन है। भारत का लक्ष्य सन् 2000 तक नाभिकीय रिऐक्टरों द्वारा दस हजार मेगावॉट विद्युत उत्पन्न करने का है, जो कि कुल उत्पादित एक लाख मेगावॉट विद्युत का दस प्रतिशत होगा। □

[प्रोफेसर (डा.) विट्ठलकुमार फरक्या, 1170, मोदीबाड़ा, कैन्ट, जबलपुर- 482 001 मध्य प्रदेश]

सारणी

कार्यशील 434 रिऐक्टरों का विवरण

रिऐक्टर		संख्या
दाबित जल मंदित और शीतलित रिऐक्टर	=	238
क्वथन जल मंदित और शीतलित रिऐक्टर	=	87
गैस शीतलित और ग्रेफाइट मंदित रिऐक्टर	=	30
जल शीतलित और ग्रेफाइट मंदित रिऐक्टर	=	27
दाबित भारी जल मंदित और शीतलित रिऐक्टर	=	26
एडवांस्ड गैस शीतलित और ग्रेफाइट मंदित शीतलित रिऐक्टर	=	14
अन्य प्रकार के रिऐक्टर	=	12
कुल रिऐक्टर	=	434

निर्माणाधीन रिऐक्टरों का विवरण

रिऐक्टर		संख्या
दाबित जल मंदित और शीतलित रिऐक्टर	=	66
दाबित भारी जल मंदित और शीतलित रिऐक्टर	=	18
क्वथन जल शीतलित और मंदित रिऐक्टर	=	09
जल शीतलित और ग्रेफाइट मंदित रिऐक्टर	=	05
तीव्र प्रजनक रिऐक्टर	=	02
कुल रिऐक्टर	=	100

"अरे यह क्या ? ये कैसा अजूबा है। चश्मा पहने हुये फोटो, वो भी एक चूजे का ? नहीं, ऐसा कैसे हो सकता है! हमें तो यह बिल्कुल संभव नहीं लगता। लेकिन क्या पता ऐसा हो भी सकता हो। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के युग में तो 'असंभव' शब्द ही शब्दकोशों में मिटता प्रतीत होता है।"

"हां, आपका सोचना सही है। वास्तव में यह संभव नहीं है। केवल मनुष्य ही दृष्टि दोष को ऐनक या कान्टेक्ट लेन्स लगाकर दूर करता है। किसी भी जन्तु या पक्षी को पास या दूर की वस्तु साफ या स्पष्ट दिखाई देती है या नहीं यह ज्ञात करना बड़ा ही कठिन है। इसी दिशा में वैज्ञानिकों ने अनेक शोध कार्य किये हैं और सीबा फाऊंडेशन द्वारा आयोजित संगोष्ठी में अपने विचार व्यक्त किये। इन्हीं शोध कार्यों पर आधारित एक रोचक लेख विश्व की ख्याति प्राप्त साप्ताहिक विज्ञान पत्रिका 'नेचर' में प्रकाशित हुआ है। आईये इन शोधों की रोचक जानकारी आप तक पहुंचायें।

आमतौर पर मनुष्य की आंख की बनावट इस प्रकार होती है कि बिना किसी परेशानी के वह दृश्यों का अनुभव या आभास करता है लेकिन यदि आंख अपनी दृष्टि-क्षमता से ज्यादा लम्बी हो जाये तो वह निकट दृष्टिक (मायोपिक) हो जाती है। फिर भी ज्यादातर आंखें ना तो निकट दृष्टिक होती हैं और ना ही दूर दृष्टिक क्योंकि आंख की वृद्धि इस प्रकार होती है कि विश्राम कर रही आंख के घटक दृष्टिपटल (रेटिना) पर दृश्य को केन्द्रित करते हैं। लेकिन कभी-कभी ऐसी वृद्धि नाकाम हो जाती है, ऐसा क्यों ?

शोध कार्यों से कुछ ऐसे प्रमाण मिले हैं कि दृश्य प्रतिबिम्ब आंख की वृद्धि के लिये महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। यदि प्रतिबिम्ब को दृष्टिपटल पर बनने न दिया जाये तो आंख बढ़ कर निकट दृष्टिक हो जाती है। चूजों पर किये गये गहन अध्ययन से पता चला है कि यदि उनकी आंख को चापाकार पारभासी प्लास्टिक से ढक दिया जाये ताकि प्रतिबिम्ब दृष्टिपटल पर एक समान और आकृति विहीन बने तो फिर विट्रस चैम्बर प्रकोष्ठ (लेंस और दृष्टि पटल के बीच का भाग) बढ़ कर आंख को

निकट दृष्टिक बना देता है। ऐसा आंख की रचनात्मक आकृति बनाने की क्षमता खोने के कारण होता है न कि कम रोशनी (चमक) के कारण। अति निकट की वस्तु (अर्ध गोलार्ध) को केन्द्रित करना तो आंख के निकट दृष्टिक होने का कारण नहीं है? नहीं ! क्योंकि आंख के केन्द्र बिन्दु को जब बदला जाता है तो वंचित या डिप्रिवेशन निकट दृष्टि आ जाती है और यदि पारभासी अर्धगोलार्ध को इस प्रकार हिस्सों में बांटा जाये कि चूजा केवल एक तरफ ही देख सके तो जिस हिस्से पर रचनात्मक दृश्य नहीं बनता वह बढ़कर निकट दृष्टिक हो जाता है। इसी तरह आंख के जिस हिस्से की दृक-तंत्रिका अथवा आप्टिक नर्व (जो मस्तिष्क को संदेश पहुंचाती है) को काटा जाता है वहां स्थानीय निकट दृष्टि आ जाती है। इन शोधों से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि आंख की वृद्धि की प्रक्रिया भी उसी में विद्यमान है।

आंख की वृद्धि के साथ-साथ श्वेत पटल अथवा स्क्लेरा में डी.एन.ए., प्रोटीन और प्रोटियोग्लाइकैन अधिक मात्रा में बनते हैं। यदि दृष्टिपटल गुच्छिका की कोशिकाओं (जो मस्तिष्क तक संदेश पहुंचाती है) को निष्क्रिय किया जाये तो भी निकट दृष्टि पैदा होती है। बंदरों और चूजों पर अध्ययन करने से यह पता चला है कि दृष्टि पटल तंत्रिकाएं ही आंख की वृद्धि को संभवतः संचालित करती है। वैसे ही डोपामाईन (एक रासायनिक प्रसारी या ट्रांसमीटर जो कुछ दृष्टिपटल कोशिकाओं को आपस में संदेश पहुंचाने में मदद करती है वंचित निकटदृष्टि को रोक सकती है।

लेकिन अभी तक यह पता नहीं चल सका है कि ऐसा कोई अनुमानित कारक दृष्टिपटल से श्वेत पटल तक जाता है विशेषकर वह संकेत दृष्टिपटल के बाहर तो जाता है परन्तु किसी कारणवश दृष्टिपटल की रक्त नलिकाओं में पूर्णतया फैल नहीं पाता।

शोध कार्यों से यह भी पाया गया है कि पूरे दिन में 2 घंटे की सामान्य दृष्टि भी निकट दृष्टि को रोक सकती है। यह कैसे होता है। अभी तक रहस्य है। लेकिन इससे यह आशंका दूर हो गई है कि आवश्यक संकेत दृष्टिपटल का साधारण प्रतिबिम्ब बनाने का कार्य नहीं है वरन वास्तविक संचालन कार्य प्रणाली को प्राणियों में पास की वस्तु को केन्द्रित करते समय दृष्टिपटल के ज्यादातर भाग पर धुंधलापन आने की प्रतिक्रिया को दूर करना है।

लेकिन सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या ऊपर बताये गये वंचित दृष्टि के प्रभाव ऐसी प्रणाली से उत्पन्न हुये हैं जो आमतौर पर आंख की वृद्धि को इस प्रकार संचालित करती है कि वह सकेंद्रित होती है। एक अच्छी नियंत्रण प्रणाली आंख के ऊपर और नीचे की वृद्धि को बनाये रखती है परन्तु क्या यह प्रणाली पूर्णतया नेत्र में ही विद्यमान है? यदि चूजों की आंखों में वंचित दृष्टि जानबूझ कर पैदा की जाये और फिर सामान्य दृष्टि पैदा की जाये तो आंख के काचाभ प्रकोष्ठ की वृद्धि धीरे-धीरे होती है। चूजों को अंधेरे में रखने से दूरदृष्टि आ जाती है लेकिन उन्हें बाद में उजाले में रखने पर काचाभ प्रकोष्ठ की वृद्धि से सामान्य दृष्टि आ जाती है। दृक-तंत्रिकाओं को काटने पर निकट या दूर दृष्टि को कुछ हद तक दूर किया जा सकता है। वैसे ही आंख की इस जगह को, जहां वृद्धि हो सकती है, खत्म किया जाये तो दूर या निकट दृष्टि दूर हो सकती है। अब यह स्पष्ट हो गया है कि चूजे अपनी आंख की क्षमता को बदलते हैं और ऐनक या कान्टेक्ट लेन्स की जरूरत को दूर करते हैं। आंख की वृद्धि, जो थोपी गई निकट या दूर दृष्टि को अनुकूलित कर सके, तो विकेन्द्रीकरण संकेत पहचानने जरूरी हैं। तो क्या सिर्फ ऐसे संकेत दृष्टिपटल पर बने धुंधले प्रतिबिम्ब से आंख में ही मिल सकते हैं? वैसे तो आंख और मस्तिष्क मिलकर ही विकेन्द्रीकरण के संकेतों को पहचानते हैं तो क्या सिर्फ आंख अकेले ही ऐसा कार्य कर सकती है? यह आंख की वृद्धि की संचालन प्रणाली का एक कौतूहल पूर्ण प्रश्न है। □

[डा. के.वाई. कवठेकर, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली- 110012]

युद्ध जीतने के

नवम्बर 1990 के आखिरी दिन भारत के लगभग सभी समाचार पत्रों में भारतीय रक्षा विज्ञान की आधुनिक उपलब्धि पर ए. खबर सुर्खियों में छपी थी। विषय था—स्वदेशी एंटिटैंक मिसाइल को दागने का सफल परीक्षण। उस दिन 'नाग' मुख पृष्ठ पर मोटे अक्षरों में था। इसमें लगी जटिल इलेक्ट्रॉनिक मार्गदर्शन प्रणाली के द्वारा यह मिसाइल चार किलोमीटर दूर के शत्रु टैंक को नष्ट कर सकती है। महाद्वीपों के पार शत्रु के दूरवर्ती शहर पर गिराने के लिए, तथा उड़ते आक्रामक वायु यान को तुरंत गिराने के लिए उपयुक्त मिसाइलें भी भारतीय सैनिक हथियारों में शामिल हैं।

युद्धास्त्रों ने तीर-कमान और ढाल-तलवार युग से लेकर अब तक बड़ा लंबा सफर तय किया है। अब एक सैनिक को दुश्मन से आमना-सामना करने की जरूरत नहीं रही और न ही द्वंद-युद्ध करने की। अब वह आराम से बंकर में बैठ कर दूर स्थान पर हथियार गिरा सकता है। आज युद्ध में दांव पेंच या असंख्य मानव शक्ति का नहीं बल्कि प्रौद्योगिकी का महत्व है। यह बात हाल ही में (14-28 नवम्बर 1990) नई दिल्ली में आयोजित 'रक्षा और विज्ञान प्रदर्शनी' में खुलकर सामने आई कि वह युद्धास्त्र विज्ञान ही है, जो किसी युद्ध को जीतती है। एक पखवाड़े तक चली इस प्रदर्शनी में रक्षा से संबंधित सभी संगठनों ने अपनी उपलब्धियों और विकासों का प्रदर्शन किया। इसका आयोजन भारत के पहले प्रधानमंत्री पंडित नेहरू की याद में रक्षा अनुसंधान और विकास संगठन द्वारा तीनमूर्ति भवन में किया गया था। इसमें बंदूक की कुछ मि.मी. मोटी गोली से लेकर, धरती से धरती में मार करने वाली संपूर्ण भारतीय मिसाइल 'पृथ्वी' का भी प्रदर्शन किया गया। अनेक प्रकार के ब्रिजलांचर भी दिखाए गए थे। ये ब्रिजलांचर तुरंत पुल बनाने में काम आते हैं। कुछ घंटों में ही इससे पुल बनाया जा सकता है.

कारों और जीपों में लगने वाले चार घाती इंजनों और लेसर किरण उत्पादन आदि के मॉडलों का प्रदर्शन भी किया गया। भविष्य में उपयोग किए जाने के उद्देश्य से तैयार किए गए हल्के कॉम्बैट वायुयान और हल्के

भूमि से भूमि पर मार करने वाली मिसाइल पृथ्वी

कॉम्बैट हैलीकॉप्टर तथा भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन द्वारा आयोजित उपग्रह प्रक्षेपण यान के मॉडलों का प्रदर्शन भी किया गया था। ये सभी हल्के लेकिन मज़बूत पदार्थ से बने थे। लेकिन सबसे ज्यादा रोमांचक बात यह थी कि लगभग सभी मशीनों और उपकरणों को प्रत्यक्ष तथा वास्तविक रूप में प्रस्तुत किया गया था, जिन्हें प्रतिदिन लगभग 6 हजार दर्शक देख कर प्रफुल्लित होते थे। क्योंकि इससे पहले अधिकांश दर्शकों ने ये चीजें सिर्फ तस्वीरों में देखी थीं।

प्रमुख प्रदर्श थे—सेना हैलीकॉप्टर का इंजिन व नियंत्रण, मिग-23 लड़ाकू विमान पायलट के प्रशिक्षणार्थ काकपिट सिमुलेटर, सिर्फ एक हैण्डल को दबाने पर पायलट को आपात काल से निकालने वाली सीट, बिना बाधा के देखने के लिए सेना और नावकों हेतु पेरिस्कोप, वह असली कैप्सूल जिसमें राकेश शर्मा अंतरिक्ष यात्रा से लौटे थे, आदि। इनसे यह भी पता चलता था कि ये उपकरण काम कैसे करते हैं। दर्शकों को रोमांच और प्रफुल्लता अनुभव करने के लिए वहां ऐसा बहुत कुछ था। यहां अदृश्य सुरंगों को दर्शकों द्वारा पार करने का प्रदर्शन भी उल्लेखनीय था। इनका प्रदर्शन इस प्रकार किया गया था, जब कोई टैंक—कई दसियों टोनर इन्हें दबाते हैं, तो विस्फोट होता है, ठीक उसी तरह जैसे चार किग्रा. भार वाले बच्चे द्वारा इस पर चढ़ने पर होता है। सुरंग संसूचक भी दर्शाए गए थे, जो एक बटन के आकार की धातु को भी जानने के लिए संवेदशील हैं और न पहचानने योग्य प्लास्टिक सुरंगों का भी पता लगा सकते हैं। दरअसल सुरंग प्लास्टिक में अंशमात्र धातु भी मिली होती है जिससे संसूचक इसका पता लगा लेता है। सुरंग और सुरंग सूचक ठीक

खतरा भाँपकर पलायन कर जाते हैं। अच्छा अब चलें!"

हमारी जीप एक झील के समीप से गुजरी, नवम्बर का महीना था, साइबेरियाई सारसों का दक्षिण की ओर प्रव्रजन आरम्भ हो गया था, झील के किनारे सैकड़ों की संख्या में सारस डेरा डाले हुए थे। सारसों से हम दस मीटर की दूरी पर रहे होंगे कि दस बारह सारस यकायक पंख फड़फड़ाते हुए उड़ गये। हम सब भयभीत हो अपनी गर्दनें सिकोड़कर सिरों को हाथों से ढ़ककर एक दम जमीन पर लेट गये। इन सारसों की आहट से फिर 20 25 सारस और उड़े फिर सबके सब आकाश में एक वृत्ताकार मार्ग पर घूमते हुए पुनः तट पर विभिन्न जगहों पर आकर जम गये। किसी ने हम पर आक्रमण नहीं किया। हम सहज भाव से सारसों की पंक्ति की ओर बढ़े, हमसे करीब बीस मीटर के फासले पर अब हमारे गार्ड थे जो आगे नहीं बढ़ रहे थे।

सुमेधा ने यकायक एक सारस के पास दबे पांव जाकर उसे पकड़ लिया, वह आवाजें करता हुआ पंख तथा पैर फड़फड़ाने लगा, सुमेधा ने उसे धीरे-धीरे सहलाया और पुचकारा। उसका फड़फड़ाना कम हो गया मानों कोई पालतू पक्षी था, फिर सुमेधा ने उसे मुक्त कर दिया। उसने डायरी निकाली और लिखना शुरू किया।

साइबेरियाई प्रव्रजनशील सारस भी 'प्रभाव' से मुक्त।

जीप ज्यादा से ज्यादा पचास मीटर गयी होगी कि पिछली जीप में एक सैनिक बड़ी जोर से चिल्लाया और उसके बाद अंधाधुंध गोलियों की आवाज आई। न जाने कहां से एक मैना इतनी तेजी से आयी मानों कोई पत्थर फेंका गया हो और इसके पूर्व कि कोई समझ पाता कि क्या हो रहा है और संभल पाता कि वह उस सैनिक के कान का एक हिस्सा नोंचकर उसी गति से गायब हो गयी। गोलियों की बौछार संयोग से उसका कुछ न बिगाड़ सकी। हमने तुरन्त उसका प्राथमिक उपचार किया और आगे रवाना होने से पूर्व मैंने पराश्रव्य तरंग उत्पन्न करने वाले उपकरण को चालू कर दिया तथा उसमें ऐसी व्यवस्था कर दी कि वह दस सेकण्ड तक विविध आवृत्तियों की पराश्रव्य तरंगें फेंकता तथा फिर इतने ही समय के लिये शान्त हो जाता, यही चक्र चलता रहता। ध्वनि का आयाम (एम्प्लीट्यूड अथवा वोल्यूम) महत्तम से केवल आधे अंक पर था। पर जैसे ही उपकरण को चालू किया, आसपास के वृक्षों पर बैठे ढेर सारे पक्षी कलरव करते ऊंचा उड़ गये। एक झाड़ी के पीछे छिपी एक बिल्ली व उसके दो बच्चे बड़ी द्रुत गति से आवाजें करते हुए भागे। कुछ आगे सड़क के किनारे बैठा एक कुत्ता कुछ ऐसे अंदाज से टिटियाता हुआ भागा मानों उस पर किसी ने लाठी से प्रहार किया हो।

हमारे साथ के सैनिकों ने इस पर विद्रूप हास किया पर सुमेधा व मैं संजीदा थे तथा हमें मन ही मन ग्लानि हो रही थी कि हम अपनी सुरक्षा के लिये पशु-पक्षियों के जीवन के साथ छेड़छाड़ कर रहे हैं। तभी मेरे मन में

विचार आया कि यह समय भावनाओं में बहने का नहीं है क्योंकि असली समस्या इससे कहीं गंभीर है।

खेत में एक विचित्र दृश्य देखकर हमने दूर से ही जीप रोक दी। चार कौवे एक कुत्ते पर बार-बार टूट पड़ते थे और उन्होंने उसे लहूलुहान कर दिया था वे उसका मांस नोंचकर खा रहे थे। कुत्ते को जीप में डालकर हम आगे बढ़े। तभी हम एक सीढ़ीनुमा विशाल खेत के बगल से गुजरे, उसमें चटख हरे रंग की कोई फसल खड़ी थी तथा सुर्ख लाल रंग के कई फल उन पौधों में लगे थे ड्राइवर नें बताया कि वह मिर्च का खेत है जो उनके देश की एक प्रमुख फसल थी। इतने बड़े खेत में मिर्च लगी मैंने पहले नहीं देखी थी। ड्राइवर बताता जा रहा था कि कौवे इस फसल को बहुत नष्ट करते हैं।

"सुमेधा, देखो कैसी अज़ीब बात है, यहां गौरैया बिल्कुल नज़र नहीं आती।" इससे पहले कि वह कुछ कहती ड्राइवर बोल उठा, "गौरैया कहां से बचतीं, जब से पक्षी बिगड़े हैं, सबसे पहले उन्होंने इन्हीं का सफाया किया।"

जीप को खेत की मेंड़ पर लगाकर तथा पराश्रव्य तरंगों के आयाम के महत्तम करके और पक्षियों की चीखों वाले कैसेट को हल्के आयाम पर चालू कर हम दोनों खेत में आगे बढ़े, सैनिक जीप में ही बैठे रहे।

खेत का दृश्य बड़ा ही चौंका देने वाला था, वहां कीट-पतंगे, तितलियों, मक्खियों, मकड़ियों का लगभग पूर्ण अभाव था। "सुमेधा, मेरे विचार से अब एक और खेत देखने के बाद तुरंत वापस चला जाय तथा वन मंत्री और कृषि मंत्री से भेंट की जाय।"

राजधानी लौटकर हम लोगों ने उच्च-स्तरीय समिति में विचार विमर्श किया मैंने कहा, "हम लोग पक्षियों के विभिन्न व्यवहार का कारण खोज चुके हैं तथा उसका समाधान लेकर यहां आये हैं, पर उसे बताने से पूर्व मैं वन तथा कृषि मंत्री से कुछ जानकारी लेना चाहता हूं। क्या पिछले चार-पांच वर्षों में आपने कृषि क्षेत्र में कोई नयी नीति अथवा किसी नये प्रयोग को लागू किया है?"

इससे पूर्व कि कृषि मंत्री बोलते अध्यक्ष महोदय ने मुझे सूचित किया, "जनरल डिसूज़ा ने पूरी स्थिति पर विचार करने के बाद प्रस्ताव रखा है—कि इसका केवल एक समाधान है— सैनिक सही निशाना लगाकर पक्षियों को मार दें। आरम्भ में हम उन पक्षियों के शवों को शहर में जगह-जगह लटका सकते हैं जिससे दूसरे पक्षी डर जायें। हम पचास हजार सैनिकों के लियेअनुरोध कर चुके हैं।"

जिस बात का मुझे संदेह था वही होने जा रही थी, मुझे आभास हो चुका था कि मेरा प्रस्ताव सुनने की इच्छा यहां किसी में नहीं है क्रियान्वयन तो दूर की बात है। मैं ऐसा सोच रहा था कि वन मंत्री बड़े साहस का परिचय देते हुए बोले, "निर्णय हो जाने के बाद भी यदि प्रोफेसर पाण्डेय की बात सुन ली जाय तो मेरी राय में इससे हमें शायद भविष्य में कोई लाभ मिल जाय।"

अध्यक्ष का इशारा पाकर कृषि मंत्री ने झिझकते हुए बताया, "प्रोफेसर आप सही नीतजे पर पहुंचे हैं। हमने अवश्य ही विगत पांच वर्षों में कृषि क्षेत्र में एक क्रांति ला दी है जिसके लिये हम संयुक्त राष्ट्र संघ के आभारी हैं। हमें कृषि की उन्नति और विकास के लिये संयुक्त राष्ट्र संघ के खाद्य व कृषि संगठन द्वारा चार अरब डालर का अनुदान मिला था। यह अनुदान हमें कृषि उपकरण, नये अधिक उपज देने वाले संकर बीज तथा कृषि अनुसंधान हेतु मिला था। हमने इस धन से उर्वरक तथा कीटनाशक रसायन भी खरीद लिये, आधा-आधा धन दोनों में व्यय किया गया। मेरा अनुमान है इतने धन से हमारे देश में लगभग एक करोड़ मीट्रिक टन उर्वकर खरीदे जा सकते हैं तथा विभिन्न प्रकार के कीटनाशकों की भारी मात्रा।

"एक क्षण रुकिये, मैं बताता हूं कि उर्वरकों तथा कीटनाशकों की इतनी मात्रा आपके लिये कितने वर्ष के लिये पर्याप्त होगी।" मैंने अपना कम्प्यूटर निकाल कर गणना शुरू की।

"इस देश का क्षेत्रफल लगभग पचास हजार वर्ग किलोमीटर है तथा कृषि में प्रयुक्त भूमि इसका लगभग पांच प्रतिशत यानि पांच हजार वर्ग किलोमीटर है और उर्वरक आपने खरीदे हैं उनका तो आप जीवन पर्यन्त तक उपयोग नहीं कर पायेंगे।"

"क्यों?", क्यों?" कहते हुए कृषि तथा वनमंत्री चौंकते हुए से उठे।

क्योंकि केवल 20 ग्रा. प्रतिवर्ग मीटर के हिसाब से विभिन्न उर्वरकों के मिश्रण का प्रयोग आपके लिये कम से कम दस वर्ष का काम दे जायेगा, क्योंकि उसका उपयोग सर्वत्र बड़े व्यापक पैमाने पर होगा।"

सभी परेशान से नज़र आने लगे।

सुमेधा ने इस बीच कुछ और गणनायें मेरे कम्प्यूटर पर कर डाली थीं। मेरा इशारा पाकर वह बोली, "अनुदान की बची आधी धनराशि से यदि विभिन्न प्रकार के कीटनाशक खरीद लिये जायें तथा उनसे सही घोल तैयार किये जायें और उनका प्रयोग इस वर्ष पूरे कृषि क्षेत्र पर किया जाय तो पूरे क्षेत्र पर कीटनाशकों के घोल की ढाई सेण्टीमीटर ऊंची तह बन जायेगी। इतना कीटनाशक औसतन बीस वर्ष में उपयोग किया जा सकता है वह भी तब जब आवश्यक हों तथा पिछली बार के छिड़काव का प्रभाव समाप्त हो चुका हो।"

सारा मामला कुछ-कुछ साफ होता जा रहा था, दोनों मंत्रियों की चुप्पी बहुत कुछ कह रही थी। अध्यक्ष के स्वर ने कमरे का मौन भंग किया।

"कृषि मंत्री कृपया बतायें कि उर्वरकों तथा कीटनाशकों का उपयोग किस प्रकार किया जा रहा है और अब उनमें से कितनी सामग्री शेष है।"

कृषि मंत्री की आवाज सुनने के लिये अब विशेष यत्न करना पड़ रहा था, काफी देर रुककर वे बोले, "श्रीमान जी को सम्भवतः याद नहीं पड़ रहा, लगभग छः मास पूर्व हमने अपनी रिपोर्ट भेजी थी कि सभी उर्वरक तथा कीटनाशक डेढ़ वर्ष के अन्दर विभिन्न चरणों में सरकारी योजनाओं के अन्तराल "कृषि-उन्नति-कार्यक्रम" के तहत पूरी तरह इस्तेमाल कर लिये गये।"

(क्रमशः)

[श्री पीयूष पाण्डेय, निदेशक, जवाहर प्लैनेटेरियम, आनन्द भवन, इलाहाबाद- 2 उ.प्र.]

वर्ष पहले

सितम्बर १९५२

सिरका बनाने का छोटा उद्योग

देश में, विशेषकर नगरों में, सिरका बनाने के उद्योग के लिये काफ़ी क्षेत्र है। सिरका बनाने का एक सरल यंत्र सैंट्रल फ़ूड टैकनोलॉजिकल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, मैसूर, में तैयार किया गया है। यह यंत्र २४ घंटे में १०-१५ बोतल सिरका तैयार कर देता है। एक बोतल सिरके की लागत १०-१२ आने पड़ती है। बाज़ार में साधारण सिरका इससे लगभग दूने मूल्य पर बिकता है। एक यंत्र को बनाने वाली आवश्यक वस्तुएं लगभग पन्द्रह रुपये में ख़रीदी जा सकती हैं।

घरेलू सिरका यंत्र

नेशनल कैमिकल लेबोरेटरी

नेशनल कैमिकल लेबोरेटरी, पूना, वह कड़ी है जो देश की वैज्ञानिक संस्थाओं और देश के उद्योगों को आपस में जोड़ती है। देश के औद्योगिक विकास में रसायनिक तरह की खोजबीनों से सहायता देने वाली वह सबसे महत्वपूर्ण संस्था है। नेशनल कैमिकल लेबोरेटरी, पूना नगर से पांच मील दूर पर्वतों की मोहक प्राकृतिक शोभा के बीच हवादार ऊंचाई पर गनेशखिंड रोड से पश्चिम की ओर बनाई गई है। लेबोरेटरी की शानदार चौमंज़िली इमारत ६५० फ़ीट लम्बी और २०० फ़ीट चौड़ी है और उसकी ४७५ एकड़ भूमि उसके चारों ओर फैली हुई है।

पेटेन्ट

कमाये चमड़े का रंग हल्का करने में हर्र का नई रीति से उपयोग

भारतीय पेटेन्ट नं० ४३५४३; २५ जुलाई, १९५०

कमाये हुए चमड़े तथा किप्स (कम आयु के पशुओं का चमड़ा) के विदेशी व्यापार से भारत को लगभग २५ करोड़ रुपये प्रतिवर्ष की आमदनी होती है। कमाने के बाद इनका रंग जितना हल्का और प्राकृतिक रंग के निकट होता है उतना ही इनका मूल्य अधिक होता है। वनस्पति छालों से चमड़ा कमाने के बाद उसके रंग को हल्का करने के लिये हर्र के पानी का इस्तेमाल किया जाता है। हर्र का पानी बनाने के लिये हर्रों को कूट-पीस कर गर्म पानी की काफ़ी मात्रा में भिगो देते हैं और रात भर उसी में रहने देते हैं। दूसरे दिन इसमें इतना और पानी मिलाते हैं कि निथरा हुआ हर्र का पानी ४०° बार्कोमीटर शक्ति का हो जाये। कमाई हुई खालों को इस पानी में डुबो-डुबो कर एक गड्ढे में रख देते हैं और उन पर शेष पानी को डाल देते हैं। छत्तीस घंटे रखा रहने के बाद खालों को निकाल कर धो लिया जाता है।

ऊपर लिखे तरीके से चमड़े का रंग जितना हल्का हो जाता है उससे भी हल्का रंग प्राप्त करने के लिये हर्र का पानी बनाने की एक नई विधि निकाली गई है।

खराब गुर्दों का सहारा

अरुण जोशी

डाक्टर साहब आज सवेरे से ही व्यस्त थे। दो एक डायलिसिस वे अब तक कर चुके थे। नीना डायलिसिस रूम के बाहर बने प्रतीक्षालय में अपनी सहेली के साथ चिंतातुर बैठी थी क्योंकि अब जिस मरीज का डायलिसिस होना था वो उसकी सहेली उमा के पिताजी ही थे। उसके पिता के पास उमा की मां परेशान-सी बैठी थी। तभी डा. साहब ने उमा के पिताजी को डायलिसिस रूम में आने को कहा। डाक्टर की आवाज से मां-बेटी दोनों के ही चेहरे पीले पड़ने लगे। उनकी हालत देखकर नीना ने डाक्टर से उनको ढाढस बंधाने का आग्रह किया जिससे वे मानसिक रूप से परेशान न होती रहें।

नीना का इशारा समझ कर मुस्कुराते हुये डाक्टर बोले, "मैं जरा मरीज को डायलिसिस रूम में ठीक तरह से व्यवस्थित कर आऊं फिर आपसे मिलता हूं।"

लगभग आधे घंटे बाद डाक्टर डायलिसिस रूम से बाहर आये और बोले "हां, नीना तुम कुछ पूछ रही थीं।"

नीना एकदम बोल पड़ी "डाक्टर साहब, यह डायलिसिस क्या है? इसका क्या अर्थ है?"

"डायलिसिस शब्द की खोज थामस ग्राहम ने अपने अध्ययनों के दौरान की थी। उन्होंने अपने शोध कार्यों में पाया कि ऐल्बुमिन लेपित चर्म पत्र से केवल क्रिस्टलीकृत पदार्थ ही विसरित होकर बाहर पानी में जाते हैं। इस क्रिया को उन्होंने डायलिसिस (यह शब्द ग्रीक भाषा से लिया गया है जिसमें 'डाय' का अर्थ है आर-पार और 'लेसिन' का अर्थ जाना) नाम दिया। हिन्दी में इसे अपोहन कहते हैं। आज डायलिसिस गुर्दे की बीमारी में काम आने वाली एक सुस्थापित तकनीक है। गुर्दे के कार्यों में व्यवधान आने पर या गुर्दों की कार्यक्षमता घट जाने पर या गुर्दों के खराब होने की स्थिति में इसका प्रयोग किया जाता है।"

"डाक्टर साहब डायलिसिस कैसे की जाती है?" नीना ने पूछा।

"इसकी प्रायः दो विधियां हैं—हीमोडायलिलिस और पेरिटोनियल डायलिसिस।"

नीना बीच में ही बोल पड़ी, "मैंने सुना है कि पेट में एक नली डालकर भी डायलिसिस की जा सकती हैं, क्या ऐसा हो सकता है डाक्टर।"

"हां! इस क्रिया को ही तो 'पेरिटोनियल डायलिसिस' कहते हैं। इसमें उदर की झिल्ली यानि पेरिटोनियम झिल्ली का डायलिसिस झिल्ली के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसमें पेट की त्वचा के अन्दर प्रवेश कराई गई नली की सहायता से पेट में डायलिसिस द्रव डाला जाता है। एक बार में पेट में 3-4 लीटर द्रव आ सकता है। इसके बाद बाहय कोशिकीय द्रव तथा पेरिटोनियल गुहा में भरे द्रव के बीच संतुलन बनाने के लिये रोगी उचित समय के लिये वैसे ही छोड़ दिया जाता है, जैसा कि डायलिसिस मशीन में। यह तकनीक दर्द रहित है और आवश्यकता पड़ने पर इसे वर्षों तक चालू रखा जा सकता है। लेकिन इसके लिये मुलायम कैथेटर का प्रयोग आवश्यक होता है। इस विधि को 'कांटिन्युअस एंबुलेटरी पेरिटोनियल डायलिसिस' कहते हैं। इस विधि में रोगी की पेरिटोनियल गुहा में द्रव भेजकर कैथेटर को बंद किया जा सकता है और एंबुलेटरी मोड़ में क्रिया जारी रख कर 'डायलाइजर' या अपोहक को बदला जा सकता है।"

"तो हीमोडायलिसिस में क्या करना होता है, डाक्टर?"

"हीमोडायलिसिस तकनीक में अर्ध-पारगम्य झिल्ली (युक्ति) की सहायता से खून में से मूत्र के विषैले तत्वों को बाहर निकाला जाता है। अब इस तकनीक को अति पारगम्य झिल्लियों के प्रयोग से अति विकसित किया गया है। ये झिल्लियां कोशिका गुच्छ के स्तर की झिल्लियों के समान होती हैं। इनके प्रयोग से बड़े अणुभार वाले पदार्थों को भी बाहर निकाला जाता है। इसके बारे में मैं तुम्हें विस्तार से बताऊंगा।"

"लेकिन डाक्टर साहब आपको कैसे पता चलता है कि रोगी की डायलिसिस कब करनी चाहिये?"

"हां, तुमने यह बहुत अच्छा प्रश्न पूछा है। जब रोगी में यूरेमिक कोमा (सम्मूर्छा), पेरिकॉर्डाइटिस तथा हृदय प्रवाह, हाईपरकेलेमिया—बारम्बार तथा अनियंत्रित द्रव अतिभरण या पल्मोनरी एडेमा, तीव्र ओलिगिरिया अथवा ऐलुरिया, (पेशाब का काफी कम होना या बिल्कुल बन्द हो जाना) परिवर्ती उपांग के बिना, अनियंत्रित सांघानिक उच्च रक्तचाप, लाक्षणिक परिधीय तंत्रिका चिकित्सा कुछ निश्चित औषधिविषाक्तता, बार्बिट्यूरेट जैसे स्पष्ट संकेत दिखायी दें तो डायलिसिस करना अति आवश्यक हो जाता है।

कुछ रोग निरोधी संकेत इस प्रकार हैं:

महत्वपूर्ण यूरेमिक लक्षण : मितली आना, उल्टियां होना, हड्डियों की बीमारियां, अपर्याप्त वृद्धि एवं अपर्याप्त लैंगिक विकास, जीवन के रहन-सहन में परिवर्तन। असाधारण प्रयोगशाला परिणाम इस प्रकार हैं: अति अम्लरक्तता, ऐजोटेमिया, सामान्यतः क्रियेटिनिन की मात्रा 8-12 मिग्रा. से अधिक, रक्त यूरिया नाइट्रोजन 100-120 मिग्रा., रक्त यूरिया 200 मिग्रा. क्रियेटिनिन पृथक्करण 5 घन सेंमी. प्रति मिनट से कम।"

"हां! डा. साहब अब आप मुझे हीमोडायलिसिस के बारे में बताइये।"

"इस पद्धति में विसरण क्रिया द्वारा किसी अर्ध पारगम्य झिल्ली (सेलोफेन, सेल्युलोस एसिटेट, पोलीएक्रिल नाईट्रिल या पोलीमिथाईल मेथाक्राईलेट) द्वारा अवांछित पदार्थ रक्त से निकाले जाते हैं तथा वांछनीय पदार्थ मिलाये जाते हैं। इस झिल्ली के एक ओर से निरंतर रक्त प्रवाहित होता रहता है और दूसरी तरफ सफाईकारी द्रव–डायलाइसेट या अपोहक द्वारा गंदे, अवांछित पदार्थ बाहर निकाले जाते हैं। यह क्रिया बिल्कुल ग्लोमेरुलस निस्यंदन के समान ही होती है।"

"डा. साहब डायलिसिस मशीन कितनी बड़ी होती है।"

"हीमोडायलिसिस उपकरण में 3 घटक होते हैं-रक्त प्रसारित करने की प्रणाली, कम्पोजिशन तथा डायलाइसेट को प्रवाहित करने वाली प्रणाली और डायलाइजर। रक्त को (200-250 मिली./मिनट) रोलर पम्प की सहायता से डायालाइजर में पहुंचाया जाता है। डायलाइसेट का संघटन प्लाज्मा द्रव के समान होता है। नलिकाओं से प्रसारित होने वाले रक्त में हिपैरिन मिलाया जाता है, ताकि रक्त का थक्का न बन जाये। इसका संवहन निम्न प्रकार से किया जा सकता है 1. फीमोरल शिरा का केनुलेशन (आपातकालीन डायलिसिस), 2. धमनी शिरा का शंट तैयार करके और 3. धमनी शिरा फिस्टुला से, ये दोनों पुरानी बीमारी के लिये प्रयुक्त किये जाते हैं?"

"डा. साहब एक मरीज को डायलिसिस पर कितनी बार रखने की आवश्यकता होती है।"

फिस्टुलायुक्त इस रोगी की नस में डायलिसिस के लिये सुई लगाई गई है।

"अधिकतर रोगियों को हर सप्ताह 10-15 घंटे के लिये विभाजित डायलिसिस की आवश्यकता होती है। हीमोडायलिसिस का एक लाभ यह भी है कि इसमें कम समय लगता है तथा रोजमर्रा की जिंदगी में कोई ज्यादा व्यवधान नहीं आता है। अब तो हीमोडायलिसिस घर पर भी किया जा सकता है परन्तु इसके लिये रोगी को किसी की सहायता लेनी पड़ती है। इस सुविधा के कारण ही हीमोडायलिसिस अधिक प्रचलित है। हां, अब तो पोर्टेबल डायलिसिस मशीनें भी उपलब्ध हैं जिन्हें मरीज इधर-उधर जाते समय अपने साथ रख सकते हैं। लेकिन वर्तमान समय में यह मशीन भारत में उपलब्ध नहीं है।"

यूरिमिया से ग्रस्त रोगियों के लिये प्रायः हीमोडायलिसिस ही ठीक होती है। इसके उपचार से गुर्दे की लंबी बीमारी पर काबू पाया जा सकता है। हालांकि आजकल कृत्रिम गुर्दे भी उपलब्ध हैं, लेकिन कृत्रिम गुर्दा आंशिक रूप से ही असली गुर्दे के समान काम कर सकता है। इससे बहुत से अवांछित पदार्थ बाहर आ जाते हैं, फिर भी कुछ अंतःस्रावी उपापचयी तकलीफें रोगी को होती रहती हैं जिन्हें दूर करने के लिये पारम्परिक तरीके अपनाने ही पड़ते हैं।"

"डा. साहब, क्या हीमोडायलिसिस के कुछ दुष्प्रभाव भी होते हैं?"

"हां, अवश्य। हीमोडायलिसिस से होने वाले दुष्प्रभाव को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है–डायलिसिस से ही संबंधित तीव्र समस्यायें और बहुत ज्यादा समय तक डायलिसिस लेने से उत्पन्न पुरानी समस्यायें। पहले प्रकार की समस्याओं में निम्न रक्त चाप, रक्त स्राव, मांसपेशियों में खिंचाव, पायरोजन प्रतिक्रिया, डायलिसिस का असंतुलन तथा दूसरे प्रकार में रक्त की कमी, आस्लियोडिस्ट्रोफी और मानसिक विकार की समस्यायें पैदा हो सकती हैं।"

"क्या पेरिटोनियल डायलिसिस से भी ऐसे ही विकार उत्पन्न होते हैं?"

"जहां तक पेरिटोनियल डायलिसिस का प्रश्न है इसका उपयोग स्टायलेट प्रकार के कैथेटर की सहायता से 24से72 घंटों तक

किया जा सकता है। इसके द्वारा 1-2 लीटर तक अवांछनीय पदार्थ शरीर से बाहर निकाले जा सकते हैं। आवश्यकता पड़ने पर नैदानिक या रासायनिक सुधार भी किये जा सकते हैं। इस प्रकार के डायलिसिस में एंटी-कोएगुलेशन और वेस्कुलर शल्य क्रिया की आवश्यकता नहीं होती। इस प्रकार की डायलिसिस तकनीक आज असंख्य रोगियों को जीवनदान दे रही है।''

डा. साहब के चुप होते ही उमा बोल पड़ी, ''डा. साहब, क्या डायलिसिस पर रखे गये व्यक्ति को विशेष भोजन देना चाहिये।''

''हां, डायलिसिस पर रहने वाले मरीजों के लिये भोजन के बारे में कुछ प्रतिबंध आवश्यक हैं। विशेषकर उच्च रक्त चाप वाले मरीजों को नमक और प्रोटीन (मांस, मछली) कम मात्रा में तथा कार्बोहाइड्रेट उचित मात्रा में लेने चाहिये।''

कैसे होती है डायलिसिस: डायलिसिस मशीन में दाबमापी , बुलबुला ग्राही , हिपैरिन , कृत्रिम गुर्दा या हीमोडायलाइजर पंप और ऊष्मक , उपयोग किये गये डायलिसिस द्रव का टैंक , कनस्तर , कांच तंतु को सहारा देती , सेलोफेन नली , रोगी के रक्त से भरी सेलोफेन नली होती हैं।

पोर्टेबल डायलिसिस मशीन, जिसे रोगी अपनी कार में और घर में साथ रख सकता है। यह बैटरी की सहायता से कार्य करती है।

नीना ने फिर पूछा, ''जो मरीज एक बार डायलिसिस करवा चुका हो क्या उसे जिंदगी भर डायलिसिस पर निर्भर रहना पड़ता है।''

''संभवतः हां। लेकिन प्रत्यारोपण के लिये यदि उपयुक्त गुर्दा मिल जाये तो समस्या हल हो सकती है। लेकिन अधिकांश रोगी प्रत्यारोपण की अपेक्षा डायलिसिस करवाना उचित समझते हैं और अपने को उसी के अनुरूप ढाल लेते हैं। नीना, तुम्हें और कुछ पूछना है क्या?''

''हां! डाक्टर साहब, सिर्फ एक प्रश्न और जैसा कि आपने बताया कि घर पर भी डायलिसिस मशीन द्वारा रोगी की डायलिसिस की जा सकती है लेकिन मैने सुना है कि इस स्थिति में रोगियों को प्रायः संक्रमणकारी हिपेटाइटिस या यकृत शोथ हो जाता है। क्या यह परिवार के अन्य सदस्यों के लिये भी हानिकारक हो सकता है?''

''हां नीना, मैं तुम्हें यही बताने जा रहा था और दुर्भाग्यवश इसका उत्तर है हां। यह घर के अन्य सदस्यों के लिये हानिकारक हो सकता है। इस का कारण यह है कि 4 प्रतिशत रोगी जो मेन्टनेंस डायलिसिस पर होते हैं उन्हें वाइरसीय हिपेटाइटिस का संक्रमण हो जाता है। यद्यपि यह संक्रमण बहुत हल्का और परोक्ष होता है लेकिन रोगी के संपर्क में रहने वालों के लिये हानिकारक हो सकता है। इससे बचने के लिये रोगी के रक्त के संपर्क में आने वाली वस्तुओं यथा सुई, रेजर, ब्लेड तथा अन्य उपकरणों से बचना चाहिये। लेकिन याद रखें बहुत से रोगी वर्षों से डायलिसिस मशीन पर बिना किसी परेशानी के अपना उपचार करवा रहे हैं।''

इतना कह कर डाक्टर साहब डायलिसिस रूम में चले गये और नीना ने कृतज्ञ मन से उनका धन्यवाद किया। □

[डा. अरुण जोशी, राम मनोहर लोहिया अस्पताल, नई दिल्ली- 110001]

[प्रस्तुति : श्रीमती माधुरी, 51, राजा इन्कलेव सोसायटी, रोड नं. 44, पीतमपुरा, दिल्ली- 34]

खिलाड़ी की पहचान

सुदृढ़ शरीर

सुभाष लखेड़ा

इस तथ्य से हम परिचित हैं कि उच्च-स्तरीय खिलाड़ियों की शारीरिक बनावट सामान्य लोगों से कुछ अर्थों में भिन्न होती हैं। इतना ही नहीं, विभिन्न खेलों से जुड़े खिलाड़ियों में भी यह भिन्नता देखने को मिलती है। यही कारण था कई सौ वर्षों तक खेल अनुशिक्षक (कोच) विभिन्न खेलों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुये शरीर की बाह्य आकृति के आधार पर अपने शिष्य खिलाड़ियों का चयन करते रहे।

बहरहाल, यद्यपि किसी युवा की कद-काठी का मात्र दृष्टि से मूल्यांकन कर मोटे तौर पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वह किस खेल विशेष के लिये उपयुक्त है, मानवमिति या नृमिति विज्ञान के कारण अब यह कार्य दृष्टि के बजाय शारीरिक मापों के माध्यम से नियमबद्ध तरीकों से किया जा सकता है। आज किसी बच्चे, किशोर या वयस्क व्यक्ति का शारीरिक मूल्यांकन करने के लिये नृमिति वैज्ञानिक (एन्थ्रोपोमीट्रिस्ट) उसकी ऊंचाई, भार, सभी शारीरिक अंग-खण्डों की लंबाई, चौड़ाई तथा परिधि तथा शरीर के विभिन्न अंगों में मौजूद वसा भंडारों का साइज मापते हैं। तत्पश्चात, वे इन मापों का उपयोग कर एक ऐसा सरल सूचकांक प्राप्त करते हैं जो उस व्यक्ति

हमारा शारीरिक आधार-कंकाल : 1. खोपड़ी या स्कल, 2. क्लेविकल, 3. स्केपुला, 4. स्टर्नम या उरोस्थि, 5. रिब्स, 6. ह्यूमरस, 7. कशेरुक दंड, 8. पेल्विस या अंस मेखला, 9. रेडियस, 10. अल्ना, 11. प्यूबिक या श्रोणिमेखला, 12. फीमर, 13. मेटाकार्पेल्स, 14. फैलेन्जेन्स, 15. पेटेल्ला, 16. टिबिया, 17. फीबुला, 18. मेटाटार्सेल्स, 19. फेलन्जेज.

विशेष के शारीरिक गठन के विषय में जानकारी देता है। यह विशिष्ट सूचकांक कायप्ररूप (सोमेटोटाइप) कहलाता है।

उपरोक्त संदर्भ में यह जानना आवश्यक है कि मुख्य रूप से तीन प्रकार के कायप्ररूप होते हैं—लंबकाय (एक्टोमॉर्फ), मध्यकाय (मीजोमॉर्फ) और स्थूलकाय (एन्डोमॉर्फ)। वैज्ञानिकों के अनुसार कोई भी व्यक्ति कायप्ररूप की दृष्टि से किसी एक तरह का नहीं होता है। उसके शरीर के गठन में सामान्यतया तीनों प्रकार के कायप्ररूपों की साझेदारी होती है।

बहरहाल, खेलों की दृष्टि से किसी मनुष्य का कायप्ररूप जांचने के लिये वैज्ञानिक उसके शरीर के विभिन्न अंगों को मापकर उसे तीनों तरह के कायप्ररूपों के लिये बनाये गये एक से लेकर छह अंक वाले पैमानों पर स्कोर देते हैं। तत्पश्चात, उस व्यक्ति द्वारा प्राप्त किये गये इन तीन स्कोरों को काय चार्ट पर दर्शाया जाता है। इस काय चार्ट से यह अनुमान लग जाता है कि व्यक्ति विशेष की शारीरिक बनावट कौन से खेल या खेलों के लिये अनुकूल है।

यद्यपि खेल वैज्ञानिकों को काय चार्टों की मदद से खिलाड़ियों के शारीरिक संघटन के विषय में लाभदायक जानकारी मिलती है किन्तु इनसे खेलों के दौरान संभावित शारीरिक प्रदर्शन के विषय में कोई महत्वपूर्ण जानकारी नहीं प्राप्त की जा सकती है। दरअसल, आधुनिक खेल वैज्ञानिकों का लक्ष्य खिलाड़ी को उसकी कमियां बताते हुये उसे बेहतर खेल प्रदर्शन संबंधी योग्यता प्राप्त करने में सहायता करना है। 'गति-मानवमिति विज्ञान' की बदौलत अब वैज्ञानिक इस लक्ष्य की पूर्ति कर सकते हैं। यही कारण है कि इस लेख में शरीर के अस्थिपंजरों, पेशियों, संयोजी ऊतकों और वसा भंडारों के खेल से संबंधित उन पहलुओं पर सामग्री दी जा रही है जिनसे 'गति मानवमिति विज्ञान' का संबंध है।

कंकालतंत्र

शारीरिक ढांचें के हड्डियों से बने उस भाग को कंकाल या अस्थिपंजर कहते हैं जो पेशियों, वसा और आन्तरिक अंगों को आधार प्रदान करता है। इसका आकार मोटे तौर पर खेलों का सीमा निर्धारक है। उदाहरणार्थ, एक बास्केटबाल सेन्टर खिलाड़ी की लंबाई अधिक हो तो बेहतर होगा। इसी प्रकार से मैराथन धावकों का अस्थिपंजर हल्का होना चाहिये तो कुछ खेलों के लिये अस्थिपंजर का बड़ा एवं घना होना जरूरी है। इतना ही नहीं, विभिन्न खेलों के लिये अस्थिपंजर के विभिन्न भागों के बीच अलग-अलग आदर्श अनुपात होते हैं। उदाहरणार्थ, धावकों की टांगों को उनके शरीर के ऊपरी भाग की तुलना में सामान्य से अधिक लंबा होना चाहिये। मुक्केबाजों के लिये लंबी भुजायें, तैराकों के लिये लंबे हाथ-पैर और नौकायन करने वालों तथा क्रास कन्टरी स्कीयरस के लिये बड़ा सीना लाभप्रद रहता है।

खिलाड़ी की शारीरिक वसा की मात्रा ज्ञात करने के लिये विशिष्ट उपकरण से त्वचा की मोटाई मापी जाती है

'शरीर के अस्थिपंजर के विभिन्न हिस्से पेशियों द्वारा जुड़े रहते हैं और इनके

गतिशील होने के लिये उनसे संबद्ध पेशियों का संकुचन द्वारा छोटा होना आवश्यक है। हमारे मस्तिष्क के प्रेरक प्रान्तस्था (मोटर कार्टक्स) में पैदा होने वाली विद्युत धाराओं से उद्दीपन के कारण पेशियां संकुचित होती हैं। यह धारा पेशी तन्तुओं तक उनसे जुड़ी प्रेरक तंत्रिकोशिका (मोटरन्यूरान) के माध्यम से पहुंचती है। पेशी तंतुओं के विभिन्न संख्याओं वाले समूह से जुड़ी एक प्रेरक तंत्रिकोशिका से मिलकर एक प्रेरक एकक (मोटर यूनिट) बनता है।

पेशियां

पेशियों द्वारा पैदा किया जाने वाला बल एवं वेग उनमें मौजूद प्रेरक तंत्रिकोशिकाओं के साइज के अनुसार होता है। प्रेरक तंत्रिकोशिकायें धातुओं के तारों की तरह विद्युत धारा का चालन करती हैं और जिस तंत्रिकोशिका का व्यास जितना बड़ा होता है वह उसी अनुपात में विद्युत धारा का चालन करती है। हमारा शरीर धीमी और कमजोर गतियों को पैदा करने हेतु कम व्यास वाली प्रेरक तंत्रिकोशिकाओं का और गति की तीव्रता एवं शक्ति में वृद्धि होने पर बड़े व्यास की तंत्रिकोशिकाओं को उपयोग में लाता है।

तंत्रिकोशिकाओं के समान मनुष्य के शरीर में दो तरह के पेशी तन्तु होते हैं। बड़ी तंत्रिकोशिकाओं से जुड़े तन्तुओं को 'स्प्रिन्ट' तन्तु कहते हैं और अपेक्षाकृत छोटी तंत्रिकोशिकाओं से जुड़े तन्तुओं को 'इन्ड्योरेन्स' तन्तु कहते हैं। चूंकि प्रेरक तंत्रिकोशिकाओं का आकार ही उनसे जुड़ने वाले तंतुओं की किस्म को निर्धारित करता है अतः किसी व्यक्ति के शरीर में इन पेशियों का आनुपातिक संघटन उस व्यक्ति में आनुवंशिक रूप से मौजूद बड़ी एवं छोटी प्रेरक तंत्रिकोशिकाओं के सापेक्ष अनुपात पर निर्भर करता है।

यूं मनुष्य की किसी भी संपूर्ण पेशी का संघटन मिश्रित होता है जिसमें स्प्रिन्ट एवं इन्ड्योरेन्स तंतुओं की संख्या बराबर भी हो सकती है और एक ही तरह के तन्तुओं का प्रतिशत शून्य से लेकर सौ तक भी हो सकता है।

स्प्रिन्ट पेशियां इन्ड्योरेन्स पेशियों की तुलना में अत्यधिक मात्रा में शक्ति पैदा करने के लिये तेजी से ऊर्जा पैदा करने में सक्षम होती हैं। ऊर्जा उत्पादन के लिये इनका प्रमुख जैव रासायनिक ईंधन शर्करा है जो इनमें ग्लाइकोजन के रूप में मौजूद रहता है। यद्यपि ऊर्जा आपूर्ति के लिये स्प्रिंट पेशियां इन्ड्योरेन्स पेशियों की तुलना में ग्लाइकोजन (ग्लूकोज अणुओं से बना एक बड़ा अणु) का भंजन दस गुना तेजी से कर सकती हैं, इन्हें इसकी कीमत चुकानी पड़ती है। ये तंतु ईंधन का दहन तो तीव्रता से करते हैं किन्तु इस कार्य को ये अपूर्ण रूप से करते हैं। फलस्वरूप, ग्लाइकोजन भंजन का अवशेष लैक्टिक अम्ल के रूप में बच जाता है। इन पेशियों में लैक्टिक अम्ल के जमाव के कारण उनकी जैवरासायनिक प्रतिक्रियायें एक सीमा के बाद पूर्णतया रुक जाती हैं। फलस्वरूप, पेशियां 'संकुचन' नहीं कर पाती हैं। यही कारण है कि स्प्रिन्ट पेशियां केवल अल्प समय तक ही कार्य कर सकती हैं।

'इन्ड्योरेन्स पेशी तंतु' स्प्रिन्ट तंतुओं के विपरीत अपने ईंधन का दहन पूर्ण रूप से करते हैं, अतः ये लैक्टिक अम्ल के जमाव के हानिकारक प्रभावों से बचे रहते हैं। श्रम की दृष्टि से सामान्य से लेकर मध्यम स्तर तक के कार्यों के लिये शरीर इन्ड्योरेन्स पेशियों का ही उपयोग करता है। चूंकि ये सदैव धीमी गति से सीमित ऊर्जा पैदा करती हैं अतः ये ईंधन के रूप में वसा का उपयोग करके शरीर की सीमित ग्लाइकोजन मात्रा का बचाव कर सकती हैं। लंबे समय के खेलों में इन्ड्योरेन्स पेशियों के इस गुण से प्रशिक्षित खिलाड़ी लाभ उठाते हैं। इनकी वसा भंडारण क्षमता स्प्रिन्ट कोशिकाओं से तीन गुना अधिक होती है।

संयोजी ऊतक

शरीर की प्रत्येक संपूर्ण पेशी के कई हजार तंतुओं को उनके संयोजी ऊतक आपस में बांधे रखते हैं। ये ऊतक पेशियों के दोनों सिरों पर संघनित होते हैं जिन्हें कंडरा (टैन्डन) कहते हैं। कंडरा पेशियों को अस्थियों से जोड़ती हैं। 'संयोजी ऊतक' पेशियों का लचीलापन निर्धारित करते हैं। कोई भी धावक जिसकी उपरिस्थपिंडिका पेशियां और एकिलिज **कंडरायें कम लचीली** होती हैं, अत्यधिक **तेजी से नहीं दौड़ सकता** हैं।

खेलों में अंगों के जोड़ों की लोच का बहुत महत्व है। वैज्ञानिक भाषा में इसे 'संधि लोच' कहते हैं। बास्केटबाल, फुटबाल एवं टैनिस जैसे खेलों में जिनमें खिलाड़ियों को अपनी गति की दिशा एवं त्वरण में तेजी से परिवर्तन करने होते हैं, अत्यधिक संधि लोच खेल प्रदर्शन क्षमता को घटाता है। दूसरी तरफ संधि लोच के अत्यल्प होने से जिमनास्टों एवं फिगर स्केटरों का खेल कुप्रभावित होता है। इसी तरह कुछ संधियों की लचक खेल विशेष की दृष्टि से अधिक महत्व रखती है। उदाहरणार्थ, तैराकी में स्कन्धों की लचक एवं टैनिस में कूल्हों की लचक का बहुत अधिक महत्व है।

किसी पेशी से संबंधित कंडरायें हड्डी पर जिन बिंदुओं पर जुड़ती हैं, उनसे पेशी की उत्तोलकता (लीवरेज़) निर्धारित होती है। खेलों की दृष्टि से पेशियों की उत्तोलकता का अत्यधिक महत्व है क्योंकि यह किसी पेशी की कार्यनिष्पादन क्षमता को घटा या बढ़ा सकती है। लंबी कूद और बाधा दौड़ के दौरान टांगों की उपरिस्थपिंडिका पेशियों की उत्तोलकता का एवं गोला फेंक जैसे खेलों में भुजा के पिछले भाग की त्रिशिरस्का पेशी (ट्राइसेप्स) की उत्तोलकता का अत्यधिक महत्व है।

लोच एवं उत्तोलकता के अतिरिक्त किसी पेशी का व्यास जितना अधिक होता है वह उतनी ही अधिक गति एवं शक्ति पैदा कर सकती है। अधिकतम व्यास वाली पेशियां विस्फोटक बल पैदा कर सकती हैं। यही कारण है मुक्केबाजों, भारोत्तोलकों, स्पीड स्केटरों, जिमनास्टों एवं साइकिल धावकों के शरीर की पेशियां अधिक मोटी होती हैं। किसी भी पेशी का अधिकतम बढ़ाया जा सकने वाला व्यास आनुवंशिक घटकों पर निर्भर करता है और इसका पेशी की लंबाई से सीधा संबंध है। यूं यदि कोई अंग बहुत लंबा है तो यह आवश्यक नहीं है कि उससे संबद्ध पेशी भी लंबी हो।

संपूर्ण पेशियों की कार्यक्षमता संबंधी विशेषताओं एवं गुणों को समझने के लिये पेशी संकुचन के दौरान बल एवं गति के बीच के संबंधों की जानकारी आवश्यक है। इन संबंधों को बल-गति वक्र नामक चार्ट की

सहायता से समझा जा सकता है। प्रशिक्षण के द्वारा किसी पेशी के बल-गति वक्र में सुधार किया जा सकता है यानि किसी निश्चित गति के लिये पेशी द्वारा पैदा किये जाने वाले बल की मात्रा को बढ़ाया जा सकता है।

कुल मिलाकर, किसी पेशी की कार्यक्षमता की तीन प्रमुख विशेषतायें गति, बल और त्वरण हैं और ये पेशी के तन्तुओं की किस्म, उसके बल-गति वक्र, उसके तापमान, साइज एवं प्रत्यास्थता (लचक) पर निर्भर हैं। किसी संपूर्ण पेशी में स्प्रिन्ट तंतुओं की मात्रा (संख्यात्मक) का प्रतिशत जितना अधिक ऊंचा होता है उसकी गति उतनी ही अधिक तेज होती है और वह श्रांति से उतनी ही शीघ्रता से उबरने की योग्यता रखती है।

शारीरिक गति में तेजी से त्वरण के लिये पेशियों में स्प्रिन्ट पेशी तंतुओं की संख्या अधिक होनी चाहिये; किसी भी अवरोध पर ऊंचे गति के बल-गति वक्र होने चाहिये और पेशियां उचित तापक्रम पर होनी चाहिये। आराम के दौरान पेशी का तापमान 37 डिग्री सेल्सियस होता है और शरीर में 'गरमाहट' पैदा करके यह 43 डिग्री तक पहुंचाया जा सकता है। इस तापमान पर पेशी की शक्ति में 50 प्रतिशत की वृद्धि हो जाती है। तापमान में वृद्धि के कारण पेशी का लचीलापन (प्रत्यास्थता) बढ़ जाता है और इसकी टूट-फूट की संभावनायें कम हो जाती हैं।

वसा

वसा, शरीर का सबसे बड़ा ऊर्जा स्रोत भंडार है। स्वस्थ मनुष्य में वसा की मात्रा पांच से लेकर चालीस प्रतिशत तक होती है और प्रत्येक खेल के लिये इसकी शरीर में एक आदर्श प्रतिशतता होती है। लंबी दूरी के तैराकों को वसा की ऊंची प्रतिशतता तैराकी के दौरान अतिरिक्त एवं लाभदायक 'प्लवन' प्रदान करती है और इसके कारण पानी में शरीर से ऊष्मा हानि कम होती है। अति लंबी दूरी की दौड़ में धावक के शरीर में वसा का प्रतिशत अत्यधिक अल्प होने से ईंधन अभाव के कारण खेल प्रदर्शन में गिरावट आ सकती है। गोल्फ, बेसबाल, भारोत्तोलन, हॉकी एवं कई अन्य खेलों में शारीरिक वसा को सापेक्ष दृष्टि से ऊंची मात्रा का होना अर्थहीन है।

अधिकांश खेलों में शारीरिक वसा की अत्यधिक मात्रा खेल प्रदर्शन क्षमता का ह्रास करती है। साइकिल दौड़, पर्वतारोहण, जिमनास्टिक्स एवं दौड़ में वसा खिलाड़ी के लिये स्वाभाविक रूप से बाधक है क्योंकि उसे व्यर्थ में ही इस अतिरिक्त भार को ढोने में ऊर्जा व्यय करनी पड़ती है। □

[श्री सुभाष लखेड़ा, एक्स- 360, सरोजिनी नगर, नई दिल्ली- 110 023]

युवा वैज्ञानिकों को भटनागर पुरस्कार

प्रधान मंत्री श्री चंद्र शेखर ने 10 जनवरी, 1991 को राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला सभागार, नई दिल्ली में 10 युवा वैज्ञानिकों को विज्ञान और प्रौद्योगिकी से संबंधित विभिन्न विषयों पर श्रेष्ठ अनुसंधान के लिए वर्ष 1989 हेतु शांति स्वरूप भटनागर पुरस्कार प्रदान किए। प्रधानमंत्री, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद के पदेन अध्यक्ष भी हैं। ये पुरस्कार देश के 45 वर्ष से कम आयु के वैज्ञानिकों को इन क्षेत्रों में श्रेष्ठ अनुसंधान पर वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद द्वारा प्रति वर्ष दिए जाते हैं: भौतिकी विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान, प्रौद्योगिकी, चिकित्सा विज्ञान, गणित, भू-वायु मण्डल, महासागर और खगोल विज्ञान।

परिषद के महानिदेशक डा. ए.पी. मित्रा ने प्रशस्तियों की घोषणा की। जीव विज्ञान में श्रेष्ठ कार्य के लिए बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रो. एस.सी. लखोटिया और जादवपुर विश्वविद्यालय के फार्मेसी विभाग की डा. मंजू राय को पुरस्कृत किया गया। प्रो. लखोटिया का कार्य कोशिका आनुवंशिकी और कोशिका विज्ञान से संबंधित है। जबकि डा. राय ने मेथिलग्लायोक्सल नामक जैव रसायन के रहस्यों को उजागर किया है। रसायन विज्ञान में उत्कृष्ट कार्य हेतु भारतीय विज्ञान संस्थान, बंगलौर के प्रो. श्रीनिवासन चंद्रशेखरन और नार्थ ईस्टर्न हिल विश्वविद्यालय, शिलांग के प्रो. मिहिर कांति चौधरी को पुरस्कार दिया गया।

उपग्रह के द्वारा माइक्रोवेव सुदूर संवेदन की तकनीक विकसित करने पर अंतरिक्ष उपयोग केन्द्र, अहमदाबाद के डा. प्रेम चंद पांडेय को भू-विज्ञान के अंतर्गत पुरस्कार मिला। उन्होंने माइक्रोवेव और अवरक्त किरणों के संयोग से मेघ प्राचल व्युत्पन्न करने में सफलता पाई है।

अभियांत्रिकी विज्ञान में, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र मुम्बई के डा. श्रीकुमार बनर्जी तथा विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केन्द्र, तिरूअनंतपुरम के डा. जी वेंकटेश्वर राव को यह सम्मान मिला। गणितीय विज्ञान का पुरस्कार टाटा मौलिक विज्ञान अनुसंधान संस्थान, मुम्बई के प्रो. गोपाल प्रसाद को दिया गया। भौतिक विज्ञान में यह पुरस्कार पाने वाले हैं—भारती देशन विश्वविद्यालय, तिरूचिरापल्ली के प्रो. एम. लक्ष्मणन और रामन अनुसंधान संस्थान, बंगलौर के प्रो. एन.वी. मधुसूदन।

इन पुरस्कारों की स्थापना, वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद के संगठन कर्ता एवं प्रथम महानिदेशक सर शांति स्वरूप भटनागर की स्मृति में 1957 में की गई थी। अब तक 237 वैज्ञानिकों को यह सम्मान मिल चुका है। प्रत्येक पुरस्कार में एक प्रशस्ति पत्र एक प्रतीक चिन्ह और पचास हजार रुपए की राशि प्रदान की जाती है।

पुरस्कार वितरण समारोह के अवसर पर बोलते हुए प्रधानमंत्री ने वैज्ञानिकों से कहा कि वे आम आदमी की रोजमर्रा की जरूरतों पर ज्यादा ध्यान दें और विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का लाभ गरीबों तक पहुंचाएं।

रसायनों से जुड़ी जीवनधारा

रायल सोसायटी ऑफ केमिस्ट्री (लंदन) की स्थापना की 150 वीं वर्षगांठ के संदर्भ में, दिल्ली विश्वविद्यालय, के रसायन विभाग में 8-9 जनवरी 1991 को अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। भारत सहित अमेरिका, ब्रिटेन, और जर्मनी के वैज्ञानिकों ने इसमें भाग लिया।

इस अवसर पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के उपाध्यक्ष प्रो. एस.के. खन्ना ने कहा कि रसायन के क्षेत्र में हमें अपने अनुसंधानों को और गहन तरीके से बढ़ाना होगा, अन्यथा हम इक्कीसवीं सदी में पिछड़ जाएंगे। उन्होंने जैव रसायन का उल्लेख करते हुए कहा कि रसायन विज्ञान प्रत्यक्ष रूप से मनुष्य, पौधों और अन्य प्राणियों से जुड़ा हुआ है। इसीलिए इसमें होने वाले अनुसंधान का जीवन के हर क्षेत्र में असर पड़ता है।

हैदराबाद विश्वविद्यालय के प्रो. गोवर्धन मेहता ने बताया कि उन्होंने ऐसे कार्बनिक यौगिक बनाए हैं, जो प्रकृति में नहीं मिलते। ये बीजगणितीय यौगिक हैं, इसे षट्कोणीय गठन तक प्राप्त कर लिया गया है और अष्टकोणीय गठन तक करने के प्रयोग जारी हैं। 'गेरूऐण' नामक इन रसायनों का उपयोग ऊर्जा के स्रोत के रूप में हो सकेगा। अमेरिकी वैज्ञानिक डेविड लवेले ने स्वविकसित दो दवाओं का हवाला देते हुए बताया कि इनको शरीर में भेजकर एन.एम.आर. इमेजिंग विधि से शरीर के भीतर कैंसर या अर्बुद का पता लगाया जा सकेगा।

वैज्ञानिक सुखदेव ने प्राकृतिक यौगिकों से नया कीटनाशी बनाने में सफलता पाई है। उन्होंने बताया कि इसके द्वारा कीटों को जन्मते ही समाप्त किया जा सकेगा। इससे कीटों से उत्पन्न होने वाली अनेक प्रकार की समस्याएं स्वतः ही समाप्त हो जाएगीं। बताया गया है कि इन प्रयोगों के फलस्वरूप पायरेथोराइड्स नामक दवा का निर्माण आरंभ हो गया है। उन्होंने हृदय रोग के निवारण हेतु, डैसमियोविसिन नामक दवा का विकास भी किया है।

एक वक्ता प्रो. इंदिरानाथ ने कुष्ठ रोग के लिए भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा खोजी गई नवीनतम औषधियों के बारे में बताया। अंत में प्रो. खन्ना ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के फैसलों में संगोष्ठी की सिफारिशों का उपयोग करने की बात कही, जोकि ऐसी संगोष्ठियों की सफलता के लिए बहुत आवश्यक है।

मेलजोल में जीवन

अकड़ धकड़ कर चली हवा, बोली मैं ही जीवन हूं।
इठलाकर बोला पानी, मैं औषधि संजीवन हूं।।
लाल आंख कर गर्मी बोली, कण कण देखा भाला।
जीव-जन्तु, जड़-चेतन सबमें, जीवन मैंने डाला।।
चौंक पड़ा वैज्ञानिक बोला, मैं निर्णय कर दूंगा।
बिना प्रयोग बात तीनों की, मैं न कभी मानूंगा।।
बीकर एक उठाया उसने, एक पट्टिका ले ली।
देख परीक्षा सबके मन पर, भर की रेखा डोली।।
जीवित लेकर तीन बीज पट्टी पर बांधे ऐसे।
ऊपर नीचे मध्य बराबर की दूरी हो जैसे।।
बीकर में रख उनको, पानी उसमें डाला इतना।
मध्य बीज आधा पानी में, डूब सके बस उतना।।
बीकर उठा खुले में, विधिवत ध्यानपूर्वक रखा।
पांच-सात दिन बाद, उसे फिर वैज्ञानिक ने परखा।।
ऊपर नीचे किसी बीज ने, जरा न अंकुर फोड़ा।
मध्य नीचे में हरित-पीत सा, अंकुर निकला थोड़ा।।
नूतन जीवन विकसित होकर, मध्य बीज में आया।
हुआ प्रफुल्लित मन, वैज्ञानिक निर्णय पा हर्षाया।।
बोला तीनों सुनो, हवा गर्मी और भाई पानी।
हार-जीत की तुम तीनों की, बनी नवीन कहानी।।
ऊपर वाला बीज बिचारा, पानी बिना न फूटा।
हवा ताप दोनों का मिलकर, जल बिन साहस टूटा।।
नीचे वाला बीज, हवा के कारण उगा नहीं था।
ताप और पानी ने उसको, बिल्कुल ठगा नहीं था।।
मध्य बीज को हवा, ताप, पानी, तीनों ने पोसा।
हुआ प्रस्फुटित प्रमुदित होकर उसका गोसा-गोसा।।
अलग-अलग तो तुम तीनों ही, हारे निश्चित हारे।
मिलकर लेकिन जीते ही हो, पारस्परिक सहारे।।
जीत किसी की नहीं किंतु, कोई भी है कब हारा।
मध्य बीज के उगने मैं, तीनों का रहा सहारा।।
कोई हारा नहीं, जीत तुम सबकी ही होती है।
मेल-जोल है प्रमुख, मेल ही जीवन का मोती है।।

[श्री शेष लाल सिंह "शेष" श्रीमहात्मा दूधाधारी इ. कालेज, नगला, विष्णु, आगरा- 19]

राष्ट्रीय विज्ञान दिवस

नयी प्रगति, नर आशा, नवगति देता है विज्ञान हमें;
दुनिया नयी, नयापन, नव युग, देता अद्‌भुत ज्ञान हमें।
नयीं मशीनें नये स्रोत, परिणाम नये देता हमको,
उदघोष नयां, नव स्पष्ट नीति, आयाम नये देता हमको।
तन ढकने को वस्त्र नये, खाने को लाखों चीज़ नयी,
कल-पुर्जे दे, नयी मोटरें, उड़ने की तकनीक नयी।
अतिचालकता, प्रतिरोधकता, जैव-प्रौद्योगिकी, ऊर्जा-निधि;
पी.ई.टी., लेसर, पाल्यूमर, एन.एम.आर. चित्रणविधि,
धरती से आयन-मण्डल, आयन-मण्डल, से अन्तरिक्ष;
ऊतक-संवर्धन की विधि है अब, परखनली में शिशु जन्मे;
विज्ञान जनित यह दुनियां, अब शायद परखनली में ही पनपे।
बच्चा-बच्चा विज्ञान पढ़े यह देश लगाये है आशा,
विज्ञान कभी बन पायेगा क्या जन साधारण की भाषा?

(राष्ट्रीय विज्ञान दिवस, 28 फरवरी के अवसर पर)

[धारा, बी. धौलाखण्डी, संघटक महाविद्यालय, अलमोड़ा- 263601]

खर्राटों का इलाज – करायें या नहीं : विश्व की सम्पूर्ण जनसंख्या के लगभग 50 प्रतिशत व्यक्ति 50 साल की उम्र के बाद गहरी नींद में प्रायः खर्राटे भरते हैं।

खर्राटे जो दूसरों की नींद हराम करते हैं, वे नाक के पिलरों के मोटे हो जाने, साफ्ट पैलेट तथा अधिजिहवा तालू में कम्पन से

उत्पन्न होते हैं। सांस द्वारा अंदर ली गई वायु जब पिलरों से गुजरती है तो अधिजिहवा तालू (वुवुला पैलेटिना) में कम्पन होने लगता है जिस कारण 300 हर्ट्ज की असहनीय सीटी जैसी ध्वनि नाक से निकलने लगती है। इस स्थिति से निपटने के लिये नोज पिलर तथा अधिजिहवा तालू के बीच की जगह को किसी लेसर द्वारा (उदाहरण के तौर पर गाजर मूली की तरह) खुरच कर दूर किया जा सकता है।

इस अनहोने आविष्कार का श्रेय फ्रांस के ई.एन.टी. विशेषज्ञ डा. कामामी को जाता है। डा. कामामी ने चिरकारी गले के शोथ एवं संक्रमण से पीड़ित किसी रोगी के कार्बनडाइआक्साइड लेसर से आपरेशन के बाद पाया कि रोग ठीक होने के साथ-साथ रोगी की खर्राटे लेने की समस्या भी एकदम ठीक हो गई थी। उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

इसके बाद उन्होंने खर्राटे भरने वाले 80 प्रतिशत रोगियों का आपरेशन किया और पायां कि वे बिल्कुल ठीक हो गये। डाक्टर के अनुसार यह उपचार सरल, संभाव्य तो है ही साथ ही इसमें ज्यादा शल्य चिकित्सा भी नहीं करनी पड़ती, लेकिन लेसर के उपयोग के समय सामान्य ऐनेस्थीसिया दिया जाता है। इसके लिये मरीज को 2-3 सप्ताह तक लगभग 10 मिनट तक 5 से 7 बार लेसर से आपरेशन करवाना पड़ता है लेकिन इसके लिये उसे पूर्णतः डाक्टर की देखरेख में रहना पड़ता है।

डाक्टर के अनुसार खर्राटे को मजाक में नहीं लेना चाहिये। कभी-कभी ये खर्राटे भयानक बीमारियां पैदा कर सकते हैं। इनके कारण कभी-कभी रोगी की हालत ऐसी हो जाती है कि वे खुद को ही नहीं पहचान पाते। विशेषज्ञों के अनुसार खर्राटों से उच्च रक्तचाप, कोरोनरी थ्रॉम्बोसिस, चिरकारी वक्ष शोथ, पालीग्लोब्युलिया जैसे रोग हो सकते हैं। डा. कामामी के अनुसार हालांकि खर्राटे हल्की शल्य चिकित्सा से बन्द किये जा सकते हैं लेकिन वुवुला पेलेटिना का आकार कम करना किसी रोगी के लिये खतरनाक भी हो सकता है। उसे दर्द हो सकता है, कमजोरी आ सकती है और उसका वजन घट सकता है और हां! यदि वुवुला पैलेटिना का आकार बहुत छोटा कर दिया जाता है तो नाक में खाद्य पदार्थ फंसने का खतरा बढ़ जाता है और रोगी को लेने के देने पड़ सकने हैं।

दंत चिकित्सा में भी लेसर : दक्षिण फ्रांस के मार्सिली फैकल्टी ऑफ डेन्टल सर्जरी के प्रोफेसर गे लेवी ने पांच वर्ष के गहन अध्ययन के बाद एक ऐसा आडोण्टोलॉजीकल

लेसर विकसित किया है जो दंत चिकित्सा, विशेष रूप से दंतक्षय के उपचार में बहुत उपयोगी है। उन्होंने इस लेसर को एनडी–वाई ए जी (*ND–YAG*) नाम दिया है।

गे लेवी के अनुसार इस आविष्कार से दंतचिकित्सक दांतों की ड्रिलिंग बन्द कर देंगे। इसकी एक खूबी यह है कि आपरेशन के दौरान आसपास के ऊतकों पर इसका कोई दुष्प्रभाव नहीं होता तथा दांतों में एकत्रित गंदगी को भी यह अवशोषित कर बाहर निकालने में सक्षम है। इस समय इसकी कीमत 60,00,000 रुपये है। इसके प्रयोग से समय की बचत तो होती ही है क्योंकि सिर्फ 2 से 3 मिनट में इससे एक आपरेशन हो जाता है, साथ ही इससे बच्चों में दंतक्षय को रोका जा सकता है।

आ गया रोब्यूटर : गतिशील रोबोटिक्स के क्षेत्र में फ्रांस की एक रोबोट बनाने वाली कम्पनी रोबोसाफ्ट ने एक ऐसा बहुउद्देशीय रोबोट बनाया है जो अन्य कार्यों

के साथ-साथ शैक्षिक और अनुसंधान कार्य करने में भी माहिर है। कम्पनी ने इस रोबोट को 'रोब्यूटर' नाम दिया है।

रोब्यूटर में एक एकीकृत कैलकुलेटर युक्त गतिशील प्लेटफार्म होता है जो 'वी एम इ बस' पर आधारित होता है। विभिन्न कार्यों जैसे सफाई, सामान उठाने, प्रतिकूल वातावरण में कार्य करने आदि के लिये इस प्लेटफार्म पर उसके उपसाधनों और उपकरणों को जोड़ा जा सकता है। इसमें लगी चार बैटरियों की सहायता से चलने वाली मोटर द्वारा यह 150 किग्रा. तक का भार उठा सकता है और और 5 सेमी./सेकण्ड से 3.6 किमी./घंटे की गति से चलता है। लगातार 8 से 10 घंटे तक कार्य कर सकता है लेकिन कार्य करने की क्षमता कार्य की स्थितियों पर निर्भर करती है। इसके बोर्ड पर लगा कम्प्यूटर इसके सभी संचालनीय का

(पथमापन और अल्ट्रासाऊंड) इसकी सुरक्षा तथा नियंत्रण की देख रेख करता है। रोब्यूटर का संचालन सुदर नियंत्रण (रिमोट कंट्रोल) द्वारा किया जा सकता है।

संतुलित तेल: फ्रांसीसी-वैज्ञानिकों के एक दल ने सूरजमुखी की नयी किस्म के पौधों से एक ऐसा तेल निकाला है जिसका संघटन संतुलित आहार के लिये अत्युत्तम है। यह तेल एक वरणात्मक विधि से प्राप्त किया गया और इसका व्यापारिक नाम रखा गया 'ओलिसॉल' क्योंकि इस तेल का ओलीक अम्ल अंश 60-80 प्रतिशत है जो पारम्परिक रूप से मिलने वाले सूरजमुखी के तेल से 20-25 प्रतिशत अधिक है। इस तेल की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें संतृप्त वसाम्ल अंश 12 प्रतिशत से कम ही हैं। इस तेल का एक अन्य रचक है लिनोलीक अम्ल, जो पोषण के लिये अत्यावश्यक है।

इस उत्पाद को बनाने वाले अनुसंधान

दल के प्रमुख के अनुसार यह तेल रक्त चाप तथा हृदय रोगियों के लिये बहुत लाभदायक है। अतः इसके अधिक उत्पादन के लिये विदेशी बीजों को बोकर उच्च ओलीक अम्लांश वाली नई किस्में उगानी चाहिये, जो ओलीसोल के उत्पादन में सहायक होंगी।

[श्रीमती दीक्षा बिष्ट, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली]

प्रश्न मंच के पाठकों से निवेदन

"प्रश्न मंच" में भाग लेने वाले पाठकों से निवेदन है कि वे प्रश्न केवल पोस्टकार्ड पर ही लिख कर भेजें। कूपन लगे लिफाफे व अन्तर्देशीय पत्रों पर भी विचार नहीं किया जायेगा। एक बार में सिर्फ एक ही प्रश्न भेजें। बिना कूपन वाले पोस्टकार्ड को प्रतियोगिता में शामिल नहीं किया जायेगा। प्रश्नकर्ता अपना नाम व पूरा पता साफ-साफ स्पष्ट शब्दों में लिखें।

सम्पादक "प्रश्न मंच"
विज्ञान प्रगति
प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय
सी.एस.आई.आर., हिलसाइड रोड,

आर. गुप्ता कृत लाभदायक पुस्तकें

Rs 75

ASSISTANTS' GRADE EXAM Prev. Papers

Rs 25

Rs 70

Rs 25

Rs 25

Rs 35

Rs 15

Rs 20

Rs 20

Rs 25

Rs 35

Rs 60

Rs 35

Rs 30

Rs 35

Rs 70

Rs 70

Rs 18

Rs 15

Monthly Magazine: Annual Subs. Rs 24

वी पी पी द्वारा पुस्तकें मंगाने के लिए 15 रु. का अग्रिम मनीआर्डर भेजें :

रमेश पब्लिशिंग हाउस 4457, नई सड़क, दिल्ली-6

'विश्व घटना चक्र' की नमूना प्रति मंगाने के लिए कृपया 3 रु. का मनीआर्डर भेजें।

एकता परेड
हम सब, पुरुष, स्त्री और बच्चे हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, बौद्ध, जैन, पारसी....
पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण से हजारों की संख्या में, गणतंत्र दिवस समारोह में शामिल होते हैं।
और एक बार फिर प्रदर्शित करते हैं अपनी एकता की भावना।
जाति, धर्म, क्षेत्रीय और भाषायी बंधन तोड़ने के लिये समर्पित करते हैं अपने आपको, और करोड़ों भारतीयों के उत्थान के लिये प्रेरणा देते हैं पूरे राष्ट्र को।
एकता परेड की इस भावना को सफल बनायें
एक जुट होकर आगे बढ़ें
डीएवीपी 90/751

पीताम्बर द्वारा प्रकाशित भारतवर्ष के किशोरों के लिए अनुपम भेंट
भारत में प्रथम बार

न्यू जूनियर एनसाइक्लोपीडिया (विश्वकोष)

हेमालन द्वारा प्रकाशित मूल अंग्रेजी का हिन्दी अनुवाद • जहाँ-तहाँ भारतीयकरण • एक खंड में सभी विषयों पर प्रामाणिक सामग्री • सरल भाषा का प्रयोग • हजारों रंगीन चित्र • आर्ट पेपर पर मुद्रित • कपड़े की मजबूत जिल्द।

मूल्य 200 रु

200 रुपये अग्रिम भेजकर बिना डाक-खर्च घर बैठे विश्वकोष प्राप्त करें।

• • • • • • • •

पीताम्बर द्वारा प्रकाशित उत्तम बाल साहित्य

जीवनी संस्मरण

1. रवीन्द्रनाथ ठाकुर — श्री व्यथित हृदय
2. मौलाना आज़ाद — श्री व्यथित हृदय
3. अब्दुल गफ्फार खां — श्री व्यथित हृदय
4. राष्ट्र नायक और निर्माता—जवाहर लाल नेहरु — ब्रज भूषण
5. ऐसे थे जवाहर — अक्षय कुमार जैन
6. यादें जो सांसों में बसी है भाग 1 व 2 — श्री व्यथित हृदय
7. बालक जो अमर हो गए भाग 1 से 3 — राजकुमार अनिल
8. अच्छे बच्चे अच्छी कहानियां — श्री व्यथित हृदय
9. बच्चे हिन्दुस्तान के भाग 1 व 2 — श्री व्यथित हृदय
10. स्वतन्त्र भारत के वीर बच्चे भाग 1 से 3 — श्री व्यथित हृदय

ज्ञान-विज्ञान

1. जगदीश चन्द्र बोस — विमल कुमारी
2. टामस अल्वा एडीसन — श्याम कपूर
3. अलबर्ट आइनस्टाइन — श्याम कपूर
4. महान भारतीय वैज्ञानिक — श्री व्यथित हृदय
5. भारत का प्रथम अन्तरिक्ष यात्री — जयप्रकाश भारती
6. दैनिक जीवन में विज्ञान — श्री व्यथित हृदय
7. ऊर्जा की कहानी — कृष्ण गोपाल रस्तोगी
8. क्या और कैसे? — मनोहर लाल वर्मा
9. धरती के खेल तमाशे — रामस्वरूप वशिष्ठ
10. होमी जहांगीर भाभा — श्याम कपूर
11. चन्द्रशेखर वेंकट रमन — श्याम कपूर
12. शक्ति का विकास — ब्रह्म प्रकाश गुप्त

राष्ट्रप्रेम, एकता और स्वतंत्रता संग्राम

1. एकता के प्रकाश दीप भाग 1 व 2 — श्री व्यथित हृ
2. शहीदों की शौर्य गाथाएं भाग 1 व 2 — श्री व्यथित हृ
3. स्वतन्त्रता संग्राम की कहानी भाग 1 से 3 — राजेन्द्रमोहन भटना
4. भारत का स्वतंत्रता संग्राम — दुर्गा प्रसाद गु
5. राष्ट्र के प्रतीक — जयप्रकाश भा

कथा साहित्य

1. लो उपहार भाग 1 व 2 — जयप्रकाश भार
2. गरीब परी तथा अन्य कहानियां — लक्ष्मीनारायण ला
3. नीली रोशनी का महल — स्नेह अग्रवा
4. अनुपम प्रेरक कथाएं — श्रीनिवास व
5. हीरों का हार — जयप्रकाश भार
6. नन्हें बने महान — ब्रह्मप्रकाश गु
7. ज्ञान और विवेक की कहानियां — राजकुमारी श्रीवास
8. महाभारत की बोध-कथाएं — राजकुमारी श्रीवास
9. उपनिषदों की कथा मुक्ताएं — राजकुमारी श्रीवास

हमारे गौरव ग्रंथ

1. रामायण — डा० कृष्णदत्त भार
2. महाभारत — राजेन्द्र मोहन भटना
3. कालिदास की महान् कृतियां — हरिवंश लू

पीताम्बर पब्लिशिंग कम्पनी

888, ईस्ट पार्क रोड, करोलबाग.
नई दिल्ली-110 005 (भारत)
तार : पीताम्बर नई दिल्ली

दूरभाष :
कार्यालय : 770067, 776058, 526933
आवास : 5715182, 586788, 5721321

ग्राहकों के लिए खुशखबरी

विज्ञान के प्रचार-प्रसार में सी.एस.आई.आर. द्वारा प्रकाशित

विज्ञान प्रगति (हिन्दी मासिक)

अब आकर्षक साज-सज्जा में विशेष छूट के साथ उपलब्ध

□ इसके एक अंक का मूल्य 2.50 रुपये और वार्षिक चन्दा 25.00 रुपये है।

परन्तु

□ एक वर्ष का ग्राहक बनने पर कुल चन्दा मात्र-25.00 रुपये अर्थात 5.00 रु. की बचत

□ दो वर्ष का ग्राहक बनने पर कुल चन्दा मात्र—40.00 रुपये अर्थात 20.00 रु. की बचत

□ तीन वर्ष का ग्राहक बनने पर कुल चन्दा मात्र—60.00 रुपये अर्थात 30.00 रु. की बचत

विशेष छूट का लाभ उठायें और चन्दे की राशि शीघ्र भेजें।

□ यदि आप मनीआर्डर द्वारा शुल्क भेजें तो अपना नाम व पता बड़े व साफ-साफ अक्षरों में लिखें। मनीआर्डर कूपन पर भी अपना पूरा पता पिनकोड नं. सहित लिखना न भूलें।

□ चैक तथा डिमान्ड ड्राफ्ट ''प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली'' के नाम भेजें।

□ विज्ञान प्रगति का प्रथम अंक वी.पी. द्वारा भी भेजा जा सकता है। यदि पाठक यह लिखित आश्वासन भेजें कि वह विज्ञान प्रगति के शुल्क से अतिरिक्त वी.पी. का खर्चा सहित अपनी वी.पी. छुड़ा लेंगे।

□ अधिक जानकारी के लिये सम्पर्क करें :-

वरिष्ठ बिक्री एवं वितरण अधिकारी प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय
सी.एस.आई.आर., हिलसाइड रोड नई दिल्ली-110 012

डा. जी.पी. फोंडके द्वारा प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय (सी.एस.आई.आर.) नई दिल्ली, के लिए तेज प्रेस, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110 002 में प्रकाशित और मुद्रित
Regd. No. D (C) 89
"U" Licence No. U. 119

मूल्य 2.50 रुपये
विज्ञान प्रगति के
40
वर्ष
विज्ञान प्रगति
नाभिकीय
भट्टियाँ

विशेष सूचना

प्रकाशन और सूचना निदेशालय (वै.औ.अ.प.) की लोकप्रिय मासिक पत्रिका 'विज्ञान प्रगति' और 'साइंस रिपोर्टर' की जुलाई 1990 से विज्ञापन की नई दरें

विज्ञान प्रगति

	एक बार रु.	छः बार रु.	बारह बार रु.
पूरा पृष्ठ	5,000.00	25,000.00	50,000.00
आधा पृष्ठ	3,000.00	15,000.00	30,000.00
चौथाई पृष्ठ	1,600.00	8,000.00	16,000.00
दूसरा तथा तीसरा आवरण पृष्ठ	6,000.00	30,000.00	60,000.00
चौथा आवरण पृष्ठ	7,000.00	35,000.00	70,000.00

साइंस रिपोर्टर

	एक बार रु.	छः बार रु.	बारह बार रु.
पूरा पृष्ठ	5,000.00	25,000.00	50,000.00
आधा पृष्ठ	3,000.00	15,000.00	30,000.00
चौथाई पृष्ठ	1,600.00	8,000.00	16,000.00
दूसरा तथा तीसरा आवरण पृष्ठ	6,000.00	30,000.00	60,000.00
चौथा आवरण पृष्ठ	7,000.00	35,000.00	70,000.00

विज्ञान प्रगति तथा साइंस रिपोर्टर की संयुक्त विज्ञापन की दरें

	एक बार रु.	छः बार रु.	बारह बार रु.
पूरा पृष्ठ	8,000.00	40,000.00	80,000.00
आधा पृष्ठ	4,500.00	22,500.00	45,000.00
चौथाई पृष्ठ	2,500.00	12,500.00	25,000.00
दूसरा तथा तीसरा आवरण पृष्ठ	9,500.00	47,500.00	95,000.00
चौथा आवरण पृष्ठ	11,000.00	55,000.00	110,000.00

रंगीन विज्ञापनों पर 75 प्र.श. अतिरिक्त

IIMS **JOIN THE MOST POPULAR INSTITUTE OF INDIA** IIMS

TO PREPARE FULLY FOR THE 1991-1992 COMPETITIVE EXAMINATIONS

TRAIN YOURSELF THROUGH

THE INDIAN INSTITUTE OF MANAGEMENT & SERVICES

TO MAKE YOUR FUTURE BRIGHT AND TO IMPROVE YOUR CAREER PROSPECTS

ACT TODAY AND JOIN OUR

CORRESPONDENCE COURSES FOR 1991-1992 COMPETITIVE EXAMINATIONS

WE IMPART SUCCESS ORIENTED & SPECIALISED COACHING THROUGH OUR CORRESPONDENCE COURSES PREPARED BY HIGHLY EXPERIENCED & QUALIFIED EXPERTS.

ADMISSIONS AND COACHING FOR 1991-92 COMPETITIVE EXAMINATIONS ALREADY STARTED.

JOIN TODAY AND AVAIL OF OUR SPECIAL OFFER OF FREE BOOKS WORTH RS. 250/-

- **I.A.S. (PREL.) EXAM. 1991 GENERAL STUDIES PAPER** — Rs. 800/-
- I.A.S. (PREL.) EXAM. 1991 OPTIONAL PAPERS 1. POLITICAL SCIENCE 2. INDIAN HISTORY 3. ECONOMICS 4. SOCIOLOGY 5. PHYSICS 6. CHEMISTRY 7. BOTANY 8. ZOOLOGY 9. PUBLIC ADMINISTRATION — Rs. 500/- Each Course
- **I.A.S. (PREL.) EXAM. 1991 GENERAL STUDIES AND AN OPTIONAL PAPER** — Rs. 1250/-
- **INDIAN FOREST SERVICE EXAM. 1991 (G.K. & ENGLISH ONLY)** — Rs. 850/-
- **S.B.I./BANK PROBATIONARY OFFICERS' EXAM.** — Rs. 700/-
- **R.B.I. OFFICERS' EXAM. GRADE 'A'/'B'** — Rs. 700/-
- REGIONAL RURAL (GRAMIN) BANK EXAM. (OFFICERS) — Rs. 700/-
- BANK MANAGEMENT TRAINEES/ PROBATIONARY OFFICERS EXAM. — Rs. 700/-
- **L.I.C./G.I.C., A.A.O.'s EXAM.** — Rs. 700/-
- S.S.C. DIVISIONAL ACCOUNTANTS/ AUDITORS/U.D.C. ETC. EXAM. — Rs. 700/-
- **INSPECTORS OF CENTRAL EXCISE/ INCOME TAX ETC. EXAM.** — Rs. 700/-
- **S.S.C. ASSISTANTS' GRADE EXAM.** — Rs. 700/-
- **COMBINED DEFENCE SERVICES EXAM. (I.M.A./C.D.S.E.) 1991** — Rs. 700/-
- **NATIONAL DEFENCE ACADEMY EXAM. (N.D.A.) 1991** — Rs. 700/-
- **N.T.S.E. EXAM. 1991** — Rs. 700/-
- **M.B.A. ENTRANCE EXAM.** — Rs. 700/-
- **I.I.T./J.E.E. ENTRANCE EXAM. 1991** — Rs. 900/-
- **M.B.B.S./P.M.T. ENT. EXAM. 1991** — Rs. 900/-
- **ALL INDIA PRE-MEDICAL PRE-DENTAL ENT. EXAM. 1991** — Rs. 900/-
- **C.A. ENTRANCE EXAM.** — Rs. 700/-
- S.S.C. CLERKS' GRADE EXAM. 1991 — Rs. 550/-
- R.B.I./BANK CLERKS' EXAM./ GRAMIN BANK CLERKS' EXAM. — Rs. 550/-
- G.I.C. ASSISTANTS'/TYPISTS/ STENOGRAPHERS EXAM. — Rs. 550/-
- BANK CLERK EXAM. — Rs. 550/-
- CLERK GRADE EXAM. OF RAILWAY RECRUITMENT BOARD — Rs. 550/-
- SUB-INSPECTORS OF POLICE, D.P., C.B.I. ETC. EXAM. — Rs. 700/-
- **ASSTT. COMMANDANT/D.S.P. ETC. IN B.S.F./C.R.P.F./I.T.B.P. EXAMS.** — Rs. 700/-
- **HOTEL MANAGEMENT ENTRANCE EXAM.** — Rs. 700/-

NOTE: 1. Books worth Rs. 250/- will be sent with the study material for the above mentioned courses. Full study material will be despatched to the students in two registered parcels only (including the free books) within 10 to 15 days of the receipt of the full fee to avoid postal delays and to help the students prepare for their exams well in time. Please send your full fee immediately.
2. While sending your fee please mention your name, your complete address and the name of the course clearly in capital letters on the M.O. coupon or in the letter. It will help us to send you the study material at the earliest. Please write your address clearly.
3. If possible please send your fee by bank draft only by registered A.D. However, you can send the fee by M.O. also.

DIRECTOR: GOPAL K. PURI, M.A. English & Pol. Sc. (Pub. Admn.), P.G. Dip. in Business Admn. (Famous Author of 40 Books)

Send your full Fee by Bank Draft/Money Order immediately to: Telephone No. 616915, 699106

IIMS **THE INDIAN INSTITUTE OF MANAGEMENT & SERVICES, 6/18, Jangpura Extension, (Double Storey), New Delhi-110014.**

JOIN IIMS COURSES AND READ IIMS BOOKS

ग्राहकों के लिए सूचना

विज्ञान प्रगति की एक प्रति का मूल्य 2.50 रुपये है। इस पत्रिका का वार्षिक मूल्य 25.00 रुपये, द्विवार्षिक मूल्य 40.00 रुपये, त्रिवार्षिक मूल्य 60.00 रुपये हैं। अर्थात् आप **एक वर्ष, दो वर्ष, तीन वर्ष का ग्राहक बनकर क्रमशः 5.00 रुपये 20.00 रुपये एवं 30.00 रुपये की बचत कर सकते हैं।** चन्दे की राशि अग्रिम रूप से मनी आर्डर, डिमांड ड्राफ्ट अथवा चैक द्वारा **प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय,** हिलसाइड रोड, नई दिल्ली-110012 को भेजी जानी चाहिये

विज्ञान प्रगति की पहली प्रति वार्षिक/द्विवार्षिक/त्रिवार्षिक ग्राहकों को, अगर वे चाहते हैं तब वी.पी.पी. से भेजी जा सकती है। वी.पी.पी. छुड़ाते समय एक/दो/तीन वर्ष के चन्दे की पूरी राशि तथा वी.पी.पी. शुल्क देना होगा।

चैक भेजते समय दिल्ली के बाहर के चैक पर, कृपया बैंक कमीशन 3.50 रु. भी जोड़ लें।

ग्राहक फार्म

मेरा नाम विज्ञान प्रगति के ग्राहकों/नए ग्राहकों की सूची में वर्ष के लिए (मास.... 199 से... 199 तक दर्ज कर लीजिए। इसके लिए मनी आर्डर/बैंक ड्राफ्ट

क्रमांक................दिनांक......................से

"प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, सी.एस.आई.आर.," नई दिल्ली-110012 के नाम भेजे जा रहे हैं।

-हस्ताक्षर

पूरा पता ____________________

____

____

____

वरिष्ठ बिक्री और वितरण अधिकारी,
'विज्ञान प्रगति'
पी.आई.डी. हिलसाइड रोड,
नई दिल्ली-110012

विषय सूची

वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् का हिन्दी विज्ञान मासिक

वर्ष : 40 फरवरी : 1991 माघ : 1912 अंक : 2 पूर्णांक : 441

विज्ञान प्रगति

फरवरी 1991

प्रमुख सम्पादक
डा. जी.पी. फोंडके

सम्पादक
दीक्षा बिष्ट

सहायक सम्पादक
मनोज कुमार पटैरिया

सम्पादन सहायक
ओम प्रकाश मित्तल

कला अधिकारी
दलवीर सिंह वर्मा

प्रोडक्शन अधिकारी
रत्नाम्बर दत्त जोशी

बिक्री और वितरण अधिकारी
आर.पी. गुलाटी
टी. गोपाल कृष्णा
एल.के. चोपड़ा
मो. आसीफ अख्तर

सहायक
फूल चन्द
बी.एस. शर्मा

आवरण
नीरू शर्मा

टेलीफोन : 585359 और 586301
लेखकों के कथनों और मतों के लिये प्रकाशन और सूचना निदेशालय उत्तरदायी नहीं है।
एक अंक का मूल्य : 2.50 रुपये
वार्षिक मूल्य : 25.00 रुपये

आज का युग अणु-परमाणु का युग है जहां रोज-रोज नये-नये अनुसंधान होते हैं, नयी-नयी खोजें होती हैं, नये-नये आविष्कार होते हैं। जिस क्षेत्र में जितनी अधिक प्रगति होती है उस क्षेत्र में आवश्यकताओं में भी उतनी ही बढ़ोत्तरी होती है। ऐसा ही एक क्षेत्र है-ऊर्जा का। आज विश्व भर में ऊर्जा के स्रोतों की खोज में वैज्ञानिक जुटे हुये हैं। ऊर्जा की संभाव्य कमी से निपटने के लिये अनेक दिशाओं में सतत प्रयास किये जा रहे हैं।

विकासशील राष्ट्रों की पंक्ति में बैठा भारत भी ऊर्जा संरक्षण के लिये हर संभव प्रयास कर रहा है। वर्ष 2000 तक 10,000 मेगावाट परमाणु बिजली उत्पादन के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये अनेक परियोजनायें आरंभ की गई जिनके अंतर्गत स्थापित तारापुर (महाराष्ट्र), राजस्थान (कोटा के निकट राणा प्रताप सागर पर), मद्रास (कलपक्कम), नरोरा (उत्तर प्रदेश) कक्रापार (गुजरात) परमाणु बिजलीघर प्रमुख हैं।

परमाणु ऊर्जा के क्षेत्र में नाभिकीय विज्ञान और तकनीकी अनुसंधान के लिये मुम्बई भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र की कार्यक्षमता सराहनीय रही है। इस क्षेत्र में नित नई खोजों के लिये इस अनूठे संस्थान में विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में अनुसंधान कार्य हो रहे हैं।

इस केन्द्र की नींव यहां स्थापित 'नाभिकीय भट्टियां' हैं। जिनमें कुछ ऊर्जा प्राप्ति के लिये हैं तो कुछ अनुसंधान कार्यों के लिये। केन्द्र के वैज्ञानिकों का मनोबल इतना ऊंचा है कि उन्होंने स्वदेशी तकनीक से निर्मित भट्टियों का निर्माण करके अपनी आत्मनिर्भरता को दर्शाया है। इसका ज्वलन्त उदाहरण है प्रसिद्ध 'नाभिकीय अनुसंधान भट्टी-ध्रुव' जिसने कार्य करते हुये सफल पांच वर्ष तो पूरे कर ही लिये हैं साथ ही नाभिकीय अनुसंधान में रत भारतीय वैज्ञानिकों को सम्बल प्रदान किया है।

वैज्ञानिकों के इन्हीं प्रयासों से भारत का स्थान परमाणु रिऐक्टर स्वयं बनाने वाले गिने चुने देशों में काफी पहले आ चुका है, इसका सबूत है भारत को अंतर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेन्सी के बोर्ड आफ गवर्नर्स का सदस्य बनाया जाना।

अपने सुविज्ञ पाठकों से हमें नये वर्ष की शुभ कामनायें व प्रशंसा पत्र निरन्तर प्राप्त हो रहे हैं, धन्यवाद। आशा है पाठकों का सहयोग हमें आगे भी मिलता रहेगा।

विदाई भेंट

पत्रिका का दिसम्बर 1990 अंक विशेष रूप से भाया। यदि इसे रत्न विशेषांक कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। बीते साल का यह अंक विदाई-भेंट स्वरूप रहा। हर सामग्री रोचक व ज्ञानवर्धक लगी। "बेशकीमती कंकड़ पत्थर" में परिचित-अपरिचित पत्थरों की वैज्ञानिक जानकारी ऐतिहासिक तथा भौगोलिक परिचय के साथ पायी।

इसके अतिरिक्त अस्सी का दशक, हिचकियां तथा जैवप्रौद्योगिकी के अंतर्गत अनुवंशिकता सभी लेख सराहनीय लगे।

आशा है नये वर्ष में यह और भी आकर्षक रूप में हमारे सामने होगी। लेकिन आपसे अनुरोध है कि कृपया इसकी कीमत न बढ़ायें। (नये वर्ष में ज्यादातर पत्रिकायें अपना मूल्य बढ़ा रही हैं)

नये वर्ष की मंगल कामना के साथ।

[अलख निरंजन कुशवाहा, माधोपुर, मुंगेर- 2 (बिहार), नरेन्द कुमार कुशवाहा, लोहियानगर, कोचस, रोहतास (बिहार)- 821 112 और अंजु सिंह, कमला नगर, आगरा (उ.प्र.)]

बेमिसाल पत्रिका

यूं तो वर्तमान में अनेक पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा है। परन्तु मैं एक विज्ञान वर्ग का छात्र होने के बावजूद न केवल मुझे परन्तु अन्य वर्ग के छात्रों हेतु यह पत्रिका वास्तव में एक सराहनीय प्रयास बन रही है।

मैं "विज्ञान प्रगति" का सन 1981 से एक नियमित पाठक हूं। आज के दौर में जब कि महंगाई दिन-दुगनी प्रगति पर है, अन्य पत्रिकाओं के दामों में धीरे-धीरे बढ़ना शुरू हो गया है। परंतु मुझे यह कहते हुये बड़ा हर्ष अनुभव हो रहा है "विज्ञान प्रगति" के अन्दर रंगीन चित्रों का स्पष्ट समायोजन मुद्रण की सफलता के तत्व हैं जो कि पत्रिका को एक नया रूप दे रहे हैं तथा जब कि कीमत वहीं है।

मैं तो विज्ञान प्रगति को एक "बेमिसाल पत्रिका" का नाम दूंगा क्योंकि इसमें वह सब कुछ है जो किसी अन्य वैज्ञानिक पत्रिकाओं में शायद ही........

आज तक विज्ञान प्रगति के जितने अंक मैंने पढ़े रोचक व ज्ञानवर्द्धक लगे, तथा भविष्य में आशा करता हूं कि विज्ञान प्रगति अपनी शान इसी तरह बनाये रखे। वर्ष 1991 के आगमन पर समस्त "विज्ञान प्रगति परिवार" को मेरी ओर से हार्दिक शुभकामनायें।

[भूपेन्द्र मोहन रौतेला, डा. देव सिंह बिष्ट संघटक कालेज, नैनीताल- 2]

सुनहरे रत्न

दिसम्बर माह का विज्ञान प्रगति अंक हमें प्राप्त हुआ। इस माह के मुख्य पृष्ठ ने हमें बहुत ही आकर्षित किया। इस अंक रूपी दर्पण में सबसे सुनहरा रत्न प्रश्न मंच, आमुख कथा, चित्रकथा, आरोग्य सलाह, साहित्य परिचय के साथ साथ उपग्रह प्रणाली अपने आप में गागर में सागर प्रतीत होते हैं। लेखक एवं कार्यरत सम्पादक मंडल को मसीहा रेडियो श्रोता संघ की ओर से नव वर्ष शुभ कामनाओं सहित ढेर सारी बधाई हो—आशा है भविष्य में भी ऐसे ही "विज्ञान प्रगति" प्रगति के पथ पर अग्रिम रहेगी।

[परशु राम, द्वारा मसीहा रेडियो श्रोता संघ, कुतुबपुर उजियार घाट, जिला बलिया (यू.पी.)- 277 501]

नई दिशा

हमारी परिचित पत्रिका विज्ञान प्रगति के दिसम्बर 90 का अंक अन्य अंकों की तरह एक आकर्षक साज-सज्जा एवं ज्ञानवर्धक लेखों के साथ हमारे हाथों में आया। इस अंक के सभी लेख प्रशंसनीय एवं ज्ञानवर्धक थे। विज्ञान प्रगति ने भारत में विज्ञान की पत्रिकाओं को एक नई दिशा प्रदान की है। इस पत्रिका ने विज्ञान के जटिल तथ्यों को बोधगम्य बनाकर जन-जन तक पहुंचाया है।

दिसम्बर अंक के लेख-बेशकीमती कंकड़ पत्थर भारतीय राष्ट्रीय उपग्रह प्रणाली व अस्सी का दशक....ने विशेष रूप से प्रभावित किया। नव वर्ष में विज्ञान प्रगति के नव लक्ष्य सम्पादन की कामना करता हूं।

[साधन सिंह, गोपालगंज, बिहार, बी.के. सिन्हा, दिनारा, रोहतास, बिहार, ओम प्रकाश कश्यप, सिद्धु मार्किट किच्छा (नैनीताल)- 263 148 तथा सुधीर कुमार सिन्हा, आरंगाबाद, घोंटा, बिहार]

प्रगति पथ पर

जब से "विज्ञान प्रगति" से मेरी मुलाकात हुई है तब से मैं इस पत्रिका को उत्तरोत्तर प्रगति करते हुये देखा हूं। प्रगतिशील विज्ञान के महत्वपूर्ण तथ्यों को अपने में समाये हुये यह पत्रिका न ही सिर्फ अपने नाम को सार्थक करती है बल्कि पूरे पाठकों में समाहत होकर लोकप्रियता का गौरव हासिल कर रही है।

यूं तो विज्ञान प्रगति का हर अंक अपने आप में बेमिसाल होता है। परंतु दिसम्बर 90 अंक काफी रोचक तथा ज्ञानवर्द्धक साबित हुआ।

प्रश्न मंच काफी लोकप्रिय हो रहा है। प्रश्नमंच का विकसित रूप "विशेष" देकर आपने पत्रिका में चार चांद लगा दिये। निस्संदेह इस पत्रिका के पाठकों की संख्या में वृद्धि होगी।

[कृष्ण कुमार निर्मलकर "अजनबी", देवभोग- 493 890 तथा कुमार पद्मनाभ, सहरसा, बिहार]

अगले अंक के आकर्षण

बच्चों का वैज्ञानिक तीर्थ ×

एलर्जी ×

एवं अन्य सभी

स्थायी स्तम्भ

आमुख कथा

आत्मनिर्भरता का प्रतीक ध्रुव

अनिल काकोडकर

नाभिकीय भट्टियां (रिऐक्टर) मुख्यतः दो प्रकार की होती हैं—एक तो वह जिसका उपयोग ऊर्जा प्राप्त करने के लिये किया जाता है, तथा दूसरी वह जो अनुसंधान कार्य के लिये बनाई जाती हैं। अनुसंधान कार्य के लिये बनाई जाने वाली नाभिकीय अनुसंधान भट्टियों के निर्माण में भारतीय वैज्ञानिकों ने महत्वपूर्ण कार्यकुशलता हासिल की है, उसका ही एक जीता जागता नमूना है-ध्रुव भट्टी।

— सम्पादक

ट्रॉम्बे (मुम्बई) स्थित भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र (भाभा एटोमिक रिसर्च सेन्टर (बार्क), भारत द्वारा अर्जित नाभिकीय विज्ञान और तकनीकी जानकारी की राष्ट्रीय शक्ति का एक अग्रणी संस्थान है। जहां एक ओर इस संस्थान ने परमाणु ऊर्जा अनुसंधान संबंधी अनेकों कार्यक्षेत्रों को जन्म दिया है जो आज स्वतन्त्र औद्योगिक इकाइयों के रूप में कार्य कर रहे हैं, वहीं स्वयं केन्द्र के वैज्ञानिक नाभिकीय विज्ञान और तकनीकी की नित नई खोजों में रत हैं। बार्क अपने आप में एक अनूठा अनुसंधान और विकास संस्थान है जहां एक ही स्थान पर बड़ी संख्या में विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में कार्य चल रहा है।

नाभिकीय विज्ञान और तकनीकों से संबंधित किसी भी अनुसंधान और विकास संस्थान के लिये नाभिकीय अनुसंधान भट्टी (रिऐक्टर) का होना अत्यन्त आवश्यक है।

ध्रुव रिऐक्टर

यह भट्टियां नाभिकीय विकिरण की स्रोत होती हैं। इन विकिरणों का प्रयोग नाभिकीय शक्ति रिऐक्टर में प्रयुक्त होने वाले ईंधन तथा अन्य पदार्थों की कार्य करने की क्षमता के परीक्षण के लिये आयुर्विज्ञान, कृषि, उद्योग आदि क्षेत्रों में प्रयोग में आने वाले विभिन्न प्रकार के समस्थानिक बनाने के लिये तथा न्यूट्रॉन किरण-पुंज अनुसंधान के लिये प्रयोगात्मक सुविधाएं प्रदान करने के लिये किया जाता है। छठे दशक के अन्त तक भारत में अप्सरा, जेरलीना, साइरस, तथा पूर्णिमा-1 नाभिकीय भट्टियों का निर्माण हो गया था। 40 मेगावाट शक्ति की विशाल नाभिकीय भट्टी साइरस को छोड़ कर शेष

ध्रुव की क्षैतिज किरण पुंज नलिका

भट्टियों का निर्माण भारत में उपलब्ध स्वदेशी जानकारी के आधार पर किया गया था। साइरस भट्टी कनाडा के सहयोग से स्थापित की गई थी और पहले इसका नाम 'कनाडा इण्डिया रिऐक्टर' रखा गया था। यह वहां की विख्यात NRX भट्टी से मिलती जुलती है। बार्क के वैज्ञानिकों के साथ-साथ अनेक संस्थानों के अनुसंधानकर्त्ता भी इन सब भट्टियों का उपयोग करते रहे हैं। अपने निर्माण के 30 वर्ष बाद भी अप्सरा और साइरस भट्टियां अनुसंधान और विकास के क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।

संस्थान केन्द्र में नाभिकीय अनुसंधान के आधुनिक क्षेत्रों में अनुसंधानों को जारी रखने के लिये नई सुविधाओं की आवश्यकताओं, तथा नाभिकीय ऊर्जा के बढ़ते हुये कार्यक्रमों को देखते हुये, सातवें दशक के आरंभ में एक नई अनुसंधान भट्टी की आवश्यकता महसूस की गई। इसकी आवश्यक उपलब्धियों को भांपते हुये बार्क के वैज्ञानिकों तथा अभियन्ताओं ने भारत में नाभिकीय कार्यक्रमों के जनक डा. होमी जहांगीर भाभा के जन्म दिन के अवसर पर 30 अक्तूबर, 1975 को एक नई अनुसंधान भट्टी का निर्माण कार्य आरंभ किया, जिसका नाम रखा R-5, क्योंकि यह भारत की पांचवीं अनुसंधान परियोजना थी। बाद में 29 सितम्बर, 1983 को तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने इसको नया नाम दिया, 'ध्रुव'।

ध्रुव नामक इस भट्टी की परिकल्पनां, रूपरेखा और निर्माण में पूर्ण रूप से केन्द्र के वैज्ञानिकों और अभियन्ताओं का योगदान है। 8 अगस्त, 1985 को पहली बार इस भट्टी को चालू किया गया और जनवरी 1988 से यह पूर्ण क्षमता पर कार्य कर रही है। वर्ष 1990 में 'ध्रुव' ने पांच और 'साइरस' ने तीस वर्ष पूरे कर लिये हैं। केन्द्र में किये गये अनुसंधान और विकास के परिणामों के फलस्वरूप ध्रुव की योजना में अनेकों नये कार्य शामिल किये गये हैं जो कि आगामी वर्षों में ऊर्जा भट्टियों में अपनी उपयोगिता सिद्ध करेंगे। भट्टी के विभिन्न भागों के निर्माण में अनेक भारतीय उद्योगों और केन्द्र ने कन्धे से कन्धा मिला कर कार्य किया है।

भारी जल द्वारा शीतल की जाने वाली 100 मेगावाट की यह तापीय अनुसंधान भट्टी—ध्रुव, विश्व की उच्च प्रवाह उत्पन्न करने वाली भट्टियों में से एक है। यह लगभग 1.8×10^{15} न्यूट्रॉन/प्रति वर्ग सेमी/सेकन्ड की दर से गर्म न्यूट्रॉन प्रवाह उत्पन्न कर सकती है।

आन्तरिक संरचना

ध्रुव में प्रकृति में मिलने वाला धात्विक यूरेनियम (U^{235}) ईंधन के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। गुरु जल मंदक अथवा मॉडरेटर और परावर्तक अथवा रिफलेक्टर, के साथ-साथ शीतलक अथवा कूलेण्ट के रूप में भी प्रयुक्त होता है। 1.27 सेमी. व्यास की 306 सेमी. लंबी ईंधन की छड़ें। मिमी. मोटी एल्युमिनियम की चादर से लिपटी होती हैं और 7 छड़ों के समूह में 5.23 सेमी. व्यास की एल्युमिनियम की ही नालिकाओं में अवस्थित रहती हैं। शीतलक के रूप में प्रयुक्त होने वाला गुरु जल इन 5.23 सेमी. व्यास की नलिकाओं में बहता रहता है। ईंधन की छड़ों के समूह को ज़िरकौलॉय गाइड नलिकाओं में रखते हैं। यह गाइड नलिकाऐं प्रतिस्थापित की जा सकने वाली शीतलक वाहिकाओं का एक भाग होती हैं। इन शीतलक वाहिकाओं को 387.5 सेमी. लंबे, 372 सेमी. व्यास और 1.9 सेमी. मोटे दीवार वाले स्टेनलेस स्टील के कैलेंन्ड्रिया में रखा जाता है। एक कैलेन्ड्रिया में ऐसे 146 वाहिकाओं को एक जाल के रूप में व्यवस्थित किया जाता है। जाल में एक वाहिका की दूसरी से दूरी 18 सेमी. होती है। वाहिकाओं के जाल में 127 जाल ईंधन के लिये तथा शेष 19 को अवरोधक छड़ों (समायोजक छड़ों, रेडियो-आइसोटोप तैयार करने वाली छड़ों) आदि के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

यूरेनियम 235 (U^{235}) के विखंडन से पैदा होने वाली 100 मेगावाट ऊष्मा गुरु जल द्वारा ले ली जाती है और यह फिर विखनिजित जल को स्थानांतरित कर दी जाती है जहां से यह अंत में समुद्री जल द्वारा अवशोषित कर ली जाती है। रेडियोधर्मिता को वातावरण में रिसने से बचाने के लिये भट्टी को 3 फीट मोटे कंक्रीट के एक पात्र में रखते हैं। भट्टी की इमारत के आस-पास से गुजरने वाली हवा को विशेष प्रकार के फिल्टर से गुजारने के बाद 100 मीटर ऊंची चिमनियों से वातावरण में छोड़ा जाता है।

प्रत्येक शीतलक चैनल में तापमान प्रवाह और रेडियोधर्मिता के साथ-साथ भट्टी के अन्य आवश्यक पैरामीटरों को बराबर जांचा जाता है। किसी भी पैरामीटर की एक निश्चित सीमा में परिवर्तन से भट्टी की क्रियायें स्वतः ही बंद हो जाती हैं।

शीतलक, मंदक तथा परावर्तक के रूप में गुरु जल इस्तेमाल करने के कारण ध्रुव भट्टी की ईंधन की खपत में साइरस की तुलना में 36.5% कमी आई है। हालांकि ऐसा समझा जाता है कि ध्रुव का अधिकतम न्यूट्रॉन प्रवाह साइरस की तुलना में केवल 2.7 गुना अधिक है, अनुसंधान और आइसोटोप की उत्पति के लिये यह प्रवाह इन आंकड़ों से कहीं अधिक है। वास्तव में ध्रुव का न्यूट्रॉन प्रवाह किसी भी तापीय भट्टी की प्रायोगिक सीमा के बराबर ही है।

प्रयोग के लिये विभिन्न प्रकार की सुविधायें प्रदान करने के कारण ध्रुव अपने आप में एक विलक्षण भट्टी है। भविष्य में इस्तेमाल किये जाने वाले ईंधन के परीक्षण के लिये इस भट्टी में विशिष्ट स्थान है। इस से अत्यधिक गर्म (2000^0 केल्विन) और ठण्डा (115^0 केल्विन) न्यूट्रॉन प्रवाह प्राप्त किया जा सकता है।

सुरक्षा तथा अर्थव्यवस्था

ध्रुव की संरचना ने यह सिद्ध कर दिया

कि उचित सुरक्षा व्यवस्था के लिये अत्यधिक खर्च होना आवश्यक नहीं है। शीतलक और मंदक प्रणाली के बीच के परस्पर संबंध के कारण मंदक के शीतलन, संचरण तथा संशोधन के लिये मंदक में एक अलग से प्रणाली की आवश्यकता नहीं है, तथा इस कारण भट्टी और अधिक सुरक्षित हो गई है। शीतलन के लिये प्रयुक्त नलियों में यदि टूट-फूट हो जाय तो मंदक, क्रोड में से बह जाने के कारण भट्टी स्वतः ही बन्द हो जायेगी और किसी यन्त्र आदि के सहारे की आवश्यकता नहीं होगी। सुरक्षा तथा अर्थव्यवस्था का एक और उदाहरण भट्टी का अन्तःकक्ष है। अन्तःकक्ष के पानी से भरे होने के कारण भट्टी के चारों ओर प्रयुक्त होने वाले जटिल तापीय आवरण की आवश्यकता को दूर कर दिया है। अन्तःकक्ष का पानी भट्टी से उत्सर्जित ऊर्जा क्षय को भी सोखता है। अन्तःकक्ष मुख्य भट्टी के चारों ओर 1.2 मीटर चौड़े गोलाकार मार्ग के रूप में होता है। इस मार्ग से भट्टी के पात्र तथा परस्पर जुड़े विकिरण पुंज छिद्र नलिका और पाईप प्रणाली का निरीक्षण भी किया जा सकता है।

रिऐक्टर ब्लाक तथा मुख्य शीतलन परिपथ

सुरक्षा तथा अर्थव्यवस्था के गठबन्धन का एक और उदाहरण सिरा-परिरक्षक (एण्ड शील्ड) है। इस्पात की गोलियों और पानी को कवच के रूप में प्रयुक्त करने के कारण कवच का निर्माण और ऊर्जा का निष्कासन सरल हो गया है। उच्च तथा निम्न द्रव्यमान वाले कवच पदार्थों के अधिक प्रयोग करने के कारण सिरा परिरक्षक विभिन्न प्रकार के अवांछित विकिरणों को क्षीण करने में सक्षम हैं। एक विशिष्ट प्रकार की बनावट कवच के भट्टी के सामने वाले तले पर पड़ने वाले दबाव को कम करती है। जहां तक संभव हो सका है, कवच के लिये कम खर्चीले पदार्थों का उपयोग किया गया है। उदाहरण के लिये सिरा परिरक्षक को घेरने वाले गोलाकार कवच में कंक्रीट को कवच पदार्थ के रूप में इस्तेमाल किया गया है। डेक प्लेट में प्रयुक्त होने वाले इस्पात की पट्टियों के अनुप्रयोगी टुकड़ों को इस्पात के स्थान पर कवच पदार्थ के रूप में प्रयुक्त किया गया है। कवच में सीसे का प्रयोग केवल नाम मात्र के लिये किया गया है।

अन्य जटिल संयंत्रों की भांति ध्रुव को भी प्रारंभ में अनेक आलोचनाओं का सामना करना पड़ा। कुछ प्रचार माध्यमों ने इस भट्टी के ढांचों पर आपत्ति की तो कुछ ने तो यहां तक कहा कि भट्टी केवल कबाड़े के अलावा और कुछ नहीं है। वास्तव में इन सब आलोचनाओं को केन्द्र के अभियन्ताओं तथा वैज्ञानिकों ने चुनौती के रूप में स्वीकारा और भट्टी के निर्माण में अपने आप को और अधिक समर्पित कर दिया।

भट्टी के चालू होने के साथ ही नाभिकीय भौतिकी, ठोसावस्था भौतिकी अथवा सॉलिड स्टेट भौतिकी, विकिरण रसायन आदि क्षेत्रों में प्रयोगों के लिये नये रास्ते खुले हैं। भट्टी द्वारा उपलब्ध कुछ उन्नत सुविधायें हैं : (1) विकिरणपुंज छिद्र के पास उपस्थित माइक्रोप्रोसेसर कंट्रोल स्पेक्ट्रोमीटर; (2) कोल्ड न्यूट्रॉन गाइड ट्यूब। इनके द्वारा कोल्ड न्यूट्रॉन विकिरणों को प्रयोगों के लिये किसी सुरक्षित स्थान पर स्थानांतरित भी किया जा सकता है। (3) भट्टी के चालू होने से विभिन्न प्रकार के उच्च विशिष्ट सक्रियता वाले रेडियो आइसोटोप के उत्पादन में भी बढ़ोत्तरी हुई है, जैसे आयोडीन-131, क्रोमियम-51, मॉलिब्डेनम-99, इरिडियम-92, कोबाल्ट 60 आदि। ये आइसोटोप चिकित्सा प्रणाली में निदान और उपचार में अत्यन्त उपयोगी होते हैं।

रिऐक्टर ब्लाक का सामान्य दृश्य

साइरस रिऐक्टर

ध्रुव के निर्माण ने भाभा परमाणु अनुसंधान संस्थान के अभियन्ताओं और वैज्ञानिकों में एक नई ज्योति का संचार किया है। भविष्य की अनुसंधान और गुरु जल भट्टी के निर्माण की तकनीकी संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये एक आत्मविश्वास को जन्म दिया है।

आशा है ध्रुव में इस्तेमाल की जाने वाली अनेक सुविधाओं को गुरु जल तकनीक वाली भट्टियों के रूपरेखा और निर्माण की आगामी योजनाओं में भी स्थान मिलेगा।

ध्रुव जैसी परियोजनाओं के कार्यन्वयन के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि अनुसंधान और विकास कार्य में एक तालमेल हो और ऐसे क्रार्यों को शीघ्र और समयबद्ध तरीके से लागू किया जाय। ऐसी योजनाओं में विभिन्न क्षेत्रों के अनेकों विशेषज्ञों का सामन्जस्य होना अनिवार्य है।

वास्तव में ध्रुव एक सामूहिक प्रयासों और कुशल योग्यता का नमूना है जो एक बेजोड़ यादगार के रूप में सदैव याद किया जायेगा। ऐसी योजनाओं के कार्यन्वयन से भागीदार न केवल अपने ज्ञान को बढ़ाते है बल्कि अर्जित भी करते हैं। आशा है ध्रुव विख्यात 'ध्रुव तारे' की तरह जिसके नाम पर इस भट्टी का नामकरण हुआ है, आने वाले समय में अभियन्ताओं और वैज्ञानिकों का पथ प्रदर्शन करती रहेगी और प्रेरणा देती रहेगी। □

[अनिल काकोडकर, निदेशक, रिऐक्टर डिजाइन और डेवलपमेन्ट ग्रुप, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द, ट्राम्बे, मुम्बई- 400 085; प्रस्तुतिः राजीव माथुर, प्रकाशन और सूचना निदेशालय, वै.औ.अ.प., नई दिल्ली- 110 012]

विट्ठलकुमार फरक्या

ऊर्जा मानव की प्रमुख आवश्यकता है। आधुनिक सभ्यता का विकास ऊर्जा साधनों के निरंतर विकास और उपभोग से संबद्ध है। किसी भी देश की विकास व्यवस्था में अधिक ऊर्जा संसाधन आवश्यक हो गये हैं। आज नि:संदेह किसी भी देश की प्रति व्यक्ति ऊर्जा खपत ही उसकी प्रगति का सूचकांक बन गया है।

आदि काल से मानव ऊर्जा आवश्यकताओं की पूर्ति लकड़ी, गोबर और अन्य साधनों से करता आया है। सभ्यता के विकास के साथ कोयला, पेट्रोलियम उत्पादन और जल प्रवाह को रोककर विद्युत उत्पादित करना इस शताब्दी के प्रारम्भ में प्रमुख ऊर्जा साधन रहे हैं। विश्व में कोयले और पेट्रोल के असमान वितरण और सीमित भंडारों ने इस शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विकसित और विकासशील देशों को सावधान कर दिया है। आज ऊर्जा उत्पादन, वितरण और प्रबन्ध, शोध के प्रमुख विषय बन गये हैं। विश्व के अधिकांश देशों में ऊर्जा के गैरपरंपरागत और नवीनीकृत होने वाले ऊर्जा के स्रोतों की खोज जारी है और इसमें भरपूर सफलता भी मिली है। आज नाभिकीय विखंडन ऊर्जा, सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, भू-तापीय ऊर्जा, जैव गैस ऊर्जा और अन्य विकसित विधियों से भी ऊर्जा प्राप्त की जा रही है

नाभिकीय विखंडन ऊर्जा

सन् 1939 में दो जर्मन वैज्ञानिकों ऑटोहॉन और स्ट्रॉसमैन ने पाया कि जब

विभिन्न प्रकार की नाभिकीय भट्टियां

235 परमाणु भार वाले यूरेनियम (U^{235}) के नाभिक पर मन्दगामी न्यूट्रॉन की बमबारी की जाती है तब वह लगभग दो समान भागों में विखंडित हो जाता है। इस प्रक्रिया में 3 न्यूट्रॉन तथा अत्यधिक मात्रा में ऊर्जा उत्सर्जित होती है। इस प्रक्रिया को 'नाभिकीय विखंडन' कहते हैं। 'नाभिकीय विखंडन' प्रक्रिया इस रासायनिक समीकरण द्वारा दर्शाई जाती है :

$$_{92}U^{235} + {}_{0}n^{1} \rightarrow Ba^{141} + Kr^{92} + 3\,{}_{0}n^{1} + 200\ \text{MeV}$$

(यूरेनियम) (न्यूट्रॉन) (बेरियम) (क्रिप्टन) (न्यूट्रॉन) (ऊर्जा)

नाभिकीय विखंडन की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें अत्यधिक ऊर्जा उत्पन्न होती है। अत्यधिक ऊर्जा उत्पन्न होने का प्रमुख कारण है यूरेनियम के विखंडन

से प्राप्त तत्वों का द्रव्यमान के इस प्रक्रिया में भाग लेने वाले प्रारंभिक द्रव्यमान से कम होना, अर्थात् विखंडन प्रक्रिया में कुछ द्रव्यमान लुप्त हो जाता है। यह लुप्त द्रव्यमान ही ऊर्जा के रूप में प्रकट होता है। प्राप्त ऊर्जा का मान आइन्सटीन के द्रव्यमान ऊर्जा समीकरण $E=mc^2$ से प्राप्त किया जा सकता है, जहां E ऊर्जा, m लुप्त होने वाला द्रव्यमान तथा c प्रकाश का वेग (मान 3×10^{10} सेंटीमीटर/सेंकड) है। यदि 1 पौंड यूरेनियम-235 के सभी परमाणु विखंडित हो जाएं तो प्राप्त ऊर्जा तीस लाख टन कोयले को जलाने से प्राप्त ऊर्जा के बराबर होगी।

प्राकृतिक यूरेनियम और विखंडन

प्राकृतिक यूरेनियम के तीन समस्थानिक (आइसोटोप) होते हैं, यथा; यूरेनियम 238, 99.28% यूरेनियम 235, 0.71%; यूरेनियम 234, 0.01%; कुल प्रतिशत 100.00। यहां यह जान लेना आवश्यक है कि निम्न चार भारी समस्थानिक ही नाभिकीय विखंडन प्रक्रिया द्वारा ऊर्जा उत्पादित कर सकते हैं। ये चारों इस प्रकार हैं: यूरेनियम-233, यूरेनियम-235, प्लूटोनियम-239, प्लूटोनियम-241।

इन चार समस्थानिकों में से केवल यूरेनियम-235 ही प्रकृति में बहुतायत में पाया जाता है। प्राकृतिक यूरेनियम में इसका प्रतिशत 0.7 होता है। शेष तीन समस्थानिक, थोरियम और यूरेनियम के कुछ समस्थानिकों द्वारा न्यूट्रॉन अवशोषित करने पर प्राप्त होते हैं।

यूरेनियम-235 (U-235) नाभिक का बेरियम, क्रिप्टान तथा तीन न्यूट्रानों (n) में विखण्डन और श्रृंखला अभिक्रिया क्रम जारी रखना।

नाभिकीय रिऐक्टर का एक स्वरूप मंदक तथा ईंधन क्रमशः बड़ी और छोटी छड़ों से दर्शाये गये हैं।

इसमें नाभिकीय विखंडन की नियंत्रित श्रृंखला प्रतिक्रिया के द्वारा ऊर्जा उत्पन्न की जाती है। आधुनिक परमाणु रिऐक्टरों में निम्न मुख्य भाग होते हैं:

ईंधन: यह पदार्थ विखंडन द्वारा नाभिकीय ऊर्जा उत्पन्न करता है। इस कार्य के लिये यूरेनियम-235 या प्लूटोनियम-239 प्रयुक्त किये जाते हैं। विखंडन प्रक्रिया रिऐक्टर के क्रोड में संपन्न होती हैं।

मंदक: इसका कार्य न्यूट्रॉनों की गति को मंद करना होता है। मंदक के रूप में भारी जल, ग्रेफाइट, दाबित जल आदि का उपयोग किया जाता है।

शीतलक: विखंडन के कारण अत्यधिक मात्रा में ऊष्मा उत्पन्न होती है जिसे शीतलक द्वारा हटाया जाता है। शीतलक के रूप में जल, कार्बन डाईआक्साइड, तरल सोडियम आदि का उपयोग किया जाता है।

परिरक्षक: परमाणु रिऐक्टर में नाभिकीय विखंडन प्रक्रिया के फलस्वरूप निकलने वाली गामा किरणों और न्यूट्रॉन से रिऐक्टर पर कार्य करने वालों और समीप रहने वाली जनता को बचाना आवश्यक है। इसके लिये रिऐक्टर के चारों ओर कंक्रीट की मोटी दीवारें बना दी जाती हैं जिससे विखंडन प्रक्रिया में बाहर निकलने वाली गामा किरणें और न्यूट्रॉन उसमें अवशोषित हो जाते हैं।

प्रमुख प्रकार के रिऐक्टरों के नाम, विखंडनीय पदार्थ, मंदक आदि का विवरण

रिऐक्टर का प्रकार	परमाणु ईंधन	मंदक	शीतलक
क्वथन जल रिऐक्टर	संवर्धित यूरेनियम ऑक्साइड	जल	जल
दाबित जल रिऐक्टर	संवर्धित यूरेनियम ऑक्साइड	दाबित जल	दाबित जल
गुरुजल रिऐक्टर	अल्प संवर्धित यूरेनियम ऑक्साइड	गुरु जल	भाप और जल
एडवांस्ड गैसकूल्ड रिऐक्टर	अल्प संवर्धित यूरेनियम ऑक्साइड	ग्रेफाइट	कार्बन डाइआक्साइड
मेगनॉक्स रिऐक्टर	प्राकृतिक यूरेनियम	ग्रेफाइट	कार्बन आक्साइड
तीव्र प्रजनक रिऐक्टर	प्लूटोनियम और यूरेनियम के ऑक्साइड	नहीं	तरल सोडियम

नियंत्रक: परमाणु विखंडन की गति पर नियंत्रण रखने के लिये कैडमियम की छड़ें उपयोग में लाई जाती हैं।

इस विवरण से स्पष्ट है कि यूरेनियम के नाभिकीय विखंडन से प्राप्त ऊर्जा (ऊष्मा) को न्यूट्रॉन शोषक पदार्थों से घेर कर नियंत्रित किया जाता है जिन्हें मंदक अथवा मोडरेटर कहते हैं। इस प्रक्रिया द्वारा नियंत्रित तापीय ऊर्जा प्राप्त कर पानी को भाप में बदला जाता है जिससे टरबाइन चलाकर जनरेटर की सहायता से विद्युत ऊर्जा प्राप्त की जाती है।

नाभिकीय ऊर्जा स्थिति

जून 30, 1989 तक संपूर्ण विश्व में 434 रिऐक्टर कार्यशील हैं जिनसे 316488 मेगावाट विद्युत ऊर्जा प्राप्त की जा रही है। इसके साथ ही 100 रिऐक्टरों का निर्माण कार्य जारी है जिनसे 80189 मेगावाट विद्युत शक्ति प्राप्त हो सकेगी।

आज विश्व में 434 परमाणु रिऐक्टर कार्यशील हैं तथा 100 रिऐक्टरों का निर्माण कार्य चालू है। इनका वर्गीकरण सारणी में स्पष्ट किया गया है।

सारणी

कार्यशील 434 रिऐक्टरों का विवरण

दाबित जल मंदित और शीतलित रिऐक्टर	=	238
क्वथन जल मंदित और शीतलित रिऐक्टर	=	87
गैस शीतलित और ग्रेफाइट मंदित रिऐक्टर	=	30
जल शीतलित और ग्रेफाइट मंदित रिऐक्टर	=	27
दाबित भारी जल मंदित और शीतलित रिऐक्टर	=	26
एडवांस्ड गैस शीतलित और ग्रेफाइट मंदित शीतलित रिऐक्टर	=	14
अन्य प्रकार के रिऐक्टर	=	12
कुल रिऐक्टर	=	434

निर्माणाधीन रिऐक्टरों का विवरण

दाबित जल मंदित और शीतलित रिऐक्टर	=	66
दाबित भारी जल मंदित और शीतलित रिऐक्टर	=	18
क्वथन जल शीतलित और मंदित रिऐक्टर	=	09
जल शीतलित और ग्रेफाइट मंदित रिऐक्टर	=	05
तीव्र प्रजनक रिऐक्टर	=	02
कुल रिऐक्टर	=	100

नाभिकीय ऊर्जा के अतिरिक्त परमाणु के शांति पूर्ण उपयोगों के शोध के लिये शोध रिऐक्टर होना आवश्यक है। आज विश्व में 326 शोध रिऐक्टर कार्यशील हैं। सर्वाधिक शोध रिऐक्टर संयुक्त राज्य अमेरिका में हैं जिनकी संख्या 99 है। दूसरा स्थान रूस का है जहां 24 शोध रिऐक्टर हैं। तीसरे और चौथे स्थान पर क्रमशः जर्मन संघीय गणराज्य तथा फ्रांस हैं जिनके यहां 21 तथा 20 शोध रिऐक्टर कार्यरत हैं। जापान तथा इंग्लैंड के पास क्रमशः 18 और 15 शोध रिऐक्टर हैं। विकासशील देशों में भारत में पांच पाकिस्तान में एक ईराक में दो ईरान में एक, फिलीपीन में एक, बंगलादेश में एक, लीबिया में एक तथा अन्य स्थानों में भी शोध रिऐक्टरों का विकास कार्य जारी है। भारत में मुम्बई स्थित ध्रुव अनुसंधान रिऐक्टर ने सफलतापूर्वक पांच वर्ष पूरे कर लिये है।

विश्व के महत्वपूर्ण रिऐक्टर

विश्व का सबसे बड़ा नाभिकीय रिऐक्टर चूज़-बी-1 फ्रांस में इस वर्ष तक कार्यशील होने की संभावना है। इसका निर्माण कार्य 1984 में शुरू हुआ था। इसकी क्षमता 1516 मेगावॉट विद्युत की होगी।

आज जापान में फुकूशीमा स्थित नाभिकीय पॉवर स्टेशन विश्व का सबसे बड़ा पॉवर स्टेशन है जहां दस रिऐक्टर इकाईयों द्वारा 8896 मेगावाट विद्युत एक ही स्थान से उत्पन्न की जाती है। दूसरे स्थान पर फ्रांस स्थित ग्रेवलीन पॉवर स्टेशन है जहां छः रिऐक्टरों द्वारा 5706 मेगावॉट विद्युत उत्पन्न की जाती है। तीसरा स्थान कनाडा के ब्रूस पावर स्टेशन का है जहां छः रिऐक्टरों द्वारा 4910 मेगावॉट विद्युत उत्पन्न की जाती है।

सन् 2000 तक नाभिकीय शक्ति

दिसम्बर 20, 1951 को संयुक्त राज्य अमेरिका में रिऐक्टर ईबीआर-1 द्वारा विश्व में पहली बार विद्युत ऊर्जा प्राप्त की गई; 26 जून, 1954 को रूस ने एपीएस-1 ऑबनिनस्क द्वारा विद्युत ऊर्जा प्राप्त की और तीसरे स्थान पर इंग्लैंड ने 27 अगस्त, 1956 को कल्डर हाल इकाई-1 द्वारा विद्युत ऊर्जा प्राप्त की। आज चालीस वर्ष से भी कम समय में विश्व में 434 रिऐक्टर कार्यशील हैं तथा 100 का निर्माण कार्य चालू है। सुनिश्चित है कि नाभिकीय रिऐक्टरों का विकास विकसित और विकासशील देशों में द्रुत गति से हो रहा है। विश्व की विकास योजनाओं से नाभिकीय ऊर्जा की धारिता वृद्धि अपेक्षित है। मोटे अनुमान के अनुसार सन् 2000 तक नाभिकीय रिऐक्टरों से प्राप्त विद्युत ऊर्जा 480000 मेगावॉट से 600000 मेगावॉट के मध्य होगी। इसका तात्पर्य यह है कि 90000 मेगावॉट से लगाकर 120000 मेगावॉट विद्युत ऊर्जा प्राप्ति के प्रयास इस शताब्दी के अंतिम दशक में किये जाने हैं। यह अनुमान विश्व के समस्त देशों की योजनाओं और कार्यविधि को देखकर लगाया गया है।

भारत का लक्ष्य

भारत में तारापुर रावतभाटा (कोटा, राजस्थान), कलपक्कम (मद्रास) तथा नरोरा (उत्तर प्रदेश) में कार्यशील रिऐक्टरों द्वारा विद्युत प्राप्त की जा रही है। ककरापार, गुजरात राज्य. में रिऐक्टर निर्माणाधीन हैं। भारत का लक्ष्य सन् 2000 तक नाभिकीय रिऐक्टरों द्वारा दस हजार मेगावॉट विद्युत उत्पन्न करने का है, जो कि कुल उत्पादित एक लाख मेगावॉट विद्युत का दस प्रतिशत होगा। □

[प्रोफेसर (डा.) विट्ठलकुमार फरक्या, 1170, मोदीबाड़ा,कैन्ट, जबलपुर- 482 001 मध्य प्रदेश]

"अरे यह क्या? ये कैसा अजूबा है। चश्मा पहने हुये फोटो, वो भी एक चूजे का? नहीं, ऐसा कैसे हो सकता है! हमें तो यह बिल्कुल संभव नहीं लगता। लेकिन क्या पता ऐसा हो भी सकता हो। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के युग में तो 'असंभव' शब्द ही श्ब्दकोशों में मिटता प्रतीत होता है।"

"हां, आपका सोचना सही है। वास्तव में यह संभव नहीं है। केवल मनुष्य ही दृष्टि दोष को ऐनक या कान्टेक्ट लेन्स लगाकर दूर करता है। किसी भी जन्तु या पक्षी को पास या दूर की वस्तु साफ या स्पष्ट दिखाई देती है या नहीं यह ज्ञात करना बड़ा ही कठिन है। इसी दिशा में वैज्ञानिकों ने अनेक शोध कार्य किये हैं और सीबा फाऊंडेशन द्वारा आयोजित संगोष्ठी में अपने विचार व्यक्त किये। इन्हीं शोध कार्यों पर आधारित एक रोचक लेख विश्व की ख्याति प्राप्त साप्ताहिक विज्ञान पत्रिका 'नेचर' में प्रकाशित हुआ है। आईये इन शोधों की रोचक जानकारी आप तक पहुंचायें।

आमतौर पर मनुष्य की आंख की बनावट इस प्रकार होती है कि बिना किसी परेशानी के वह दृश्यों का अनुभव या आभास करता है लेकिन यदि आंख अपनी दृष्टि-क्षमता से ज्यादा लम्बी हो जाये तो वह निकट दृष्टिक (मायोपिक) हो जाती है। फिर भी ज्यादातर आंखें ना तो निकट दृष्टिक होती हैं और ना ही दूर दृष्टिक क्योंकि आंख की वृद्धि इस प्रकार होती है कि विश्राम कर रही आंख के घटक दृष्टिपटल (रेटिना) पर दृश्य को केन्द्रित करते हैं। लेकिन कभी-कभी ऐसी वृद्धि नाकाम हो जाती है, ऐसा क्यों?

शोध कार्यों से कुछ ऐसे प्रमाण मिले हैं कि दृश्य प्रतिबिम्ब आंख की वृद्धि के लिये महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। यदि प्रतिबिम्ब को दृष्टिपटल पर बनने न दिया जाये तो आंख बढ़ कर निकट दृष्टिक हो जाती है। चूजों पर किये गये गहन अध्ययन से पता चला है कि यदि उनकी आंख को चापाकार पारभासी प्लास्टिक से ढक दिया जाये ताकि प्रतिबिम्ब दृष्टिपटल पर एक समान और आकृति विहीन बने तो फिर विट्रस चैम्बर प्रकोष्ठ (लेंस और दृष्टि पटल के बीच का भाग) बढ़ कर आंख को

निकट दृष्टिक बना देता है। ऐसा आंख की रचनात्मक आकृति बनाने की क्षमता खोने के कारण होता है न कि कम रोशनी (चमक) के कारण। अति निकट की वस्तु (अर्ध गोलार्ध) को केन्द्रित करना तो आंख के निकट दृष्टिक होने का कारण नहीं है? नहीं ! क्योंकि आंख के केन्द्र बिन्दु को जब बदला जाता है तो वंचित या डिप्रिवेशन निकट दृष्टि आ जाती है और यदि पारभासी अर्धगोलार्ध को इस प्रकार हिस्सों में बांटा जाये कि चूजा केवल एक तरफ ही देख सके तो जिस हिस्से पर रचनात्मक दृश्य नहीं बनता वह बढ़कर निकट दृष्टिक हो जाता है। इसी तरह आंख के जिस हिस्से की दृक-तंत्रिका अथवा आप्टिक नर्व (जो मस्तिष्क को संदेश पहुंचाती है) को काटा जाता है वहां स्थानीय निकट दृष्टि आ जाती है। इन शोधों से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि आंख की वृद्धि की प्रक्रिया भी उसी में विद्यमान है।

आंख की वृद्धि के साथ-साथ श्वेत पटल अथवा स्क्लेरा में डी.एन.ए., प्रोटीन और प्रोटियोग्लाइकैन अधिक मात्रा में बनते हैं। यदि दृष्टिपटल गुच्छिका की कोशिकाओं (जो मस्तिष्क तक संदेश पहुंचाती है) को निष्क्रिय किया जाये तो भी निकट दृष्टि पैदा होती है। बंदरों और चूजों पर अध्ययन करने से यह पता चला है कि दृष्टि पटल तंत्रिकाएं ही आंख की वृद्धि को संभवतः संचालित करती है। वैसे ही डोपामाईन (एक रासायनिक प्रसारी या ट्रांसमीटर जो कुछ दृष्टिपटल कोशिकाओं को आपस में संदेश पहुंचाने में मदद करती है वंचित निकटदृष्टि को रोक सकती है।

लेकिन अभी तक यह पता नहीं चल सका है कि ऐसा कोई अनुमानित कारक दृष्टिपटल से श्वेत पटल तक जाता है विशेषकर वह संकेत दृष्टिपटल के बाहर तो जाता है परन्तु किसी कारणवश दृष्टिपटल की रक्त नलिकाओं में पूर्णतया फैल नहीं पाता।

शोध कार्यों से यह भी पाया गया है कि पूरे दिन में 2 घंटे की सामान्य दृष्टि भी निकट दृष्टि को रोक सकती है। यह कैसे होता है। अभी तक रहस्य है। लेकिन इससे यह आशंका दूर हो गई है कि आवश्यक संकेत दृष्टिपटल का साधारण प्रतिबिम्ब बनाने का कार्य नहीं है वरन वास्तविक संचालन कार्य प्रणाली को प्राणियों में पास की वस्तु को केन्द्रित करते समय दृष्टिपटल के ज्यादातर भाग पर धुंधलापन आने की प्रतिक्रिया को दूर करना है।

लेकिन सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या ऊपर बताये गये वंचित दृष्टि के प्रभाव ऐसी प्रणाली से उत्पन्न हुये हैं जो आमतौर पर आंख की वृद्धि को इस प्रकार संचालित करती है कि वह सकेंद्रित होती है। एक अच्छी नियंत्रण प्रणाली आंख के ऊपर और नीचे की वृद्धि को बनाये रखती है परन्तु क्या यह प्रणाली पूर्णतया नेत्र में ही विद्यमान है? यदि चूजों की आंखों में वंचित दृष्टि जानबूझ कर पैदा की जाये और फिर सामान्य दृष्टि पैदा की जाये तो आंख के काचाभ प्रकोष्ठ की वृद्धि धीरे-धीरे होती है। चूजों को अंधेरे में रखने से दूरदृष्टि आ जाती है लेकिन उन्हें बाद में उजाले में रखने पर काचाभ प्रकोष्ठ की वृद्धि से सामान्य दृष्टि आ जाती है। दृक-तंत्रिकाओं को काटने पर निकट या दूर दृष्टि को कुछ हद तक दूर किया जा सकता है। वैसे ही आंख की इस जगह को, जहां वृद्धि हो सकती है, खत्म किया जाये तो दूर या निकट दृष्टि दूर हो सकती है। अब यह स्पष्ट हो गया है कि चूजे अपनी आंख की क्षमता को बदलते हैं और ऐनक या कान्टेक्ट लेन्स की जरूरत को दूर करते हैं। आंख की वृद्धि, जो थोपी गई निकट या दूर दृष्टि को अनुकूलित कर सके, तो विकेन्द्रीकरण संकेत पहचानने जरूरी हैं। तो क्या सिर्फ ऐसे संकेत दृष्टिपटल पर बने धुंधले प्रतिबिम्ब से आंख में ही मिल सकते हैं? वैसे तो आंख और मस्तिष्क मिलकर ही विकेन्द्रीकरण के संकेतों को पहचानते हैं तो क्या सिर्फ आंख अकेले ही ऐसा कार्य कर सकती है? यह आंख की वृद्धि की संचालन प्रणाली का एक कौतूहल पूर्ण प्रश्न है। □

[डा. के.वाई. कवठेकर, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली- 110012]

युद्ध जीतने के ल

नवम्बर 1990 के आखिरी दिन भारत के लगभग सभी समाचार पत्रों में भारतीय रक्षा विज्ञान की आधुनिक उपलब्धि पर ए. खबर सुर्खियों में छपी थी। विषय था—स्वेदशी एंटिटैंक मिसाइल को दागने का सफल परीक्षण। उस दिन 'नाग' मुख पृष्ठ पर मोटे अक्षरों में था। इसमें लगी जटिल इलेक्ट्रॉनिक मार्गदर्शन प्रणाली के द्वारा यह मिसाइल चार किलोमीटर दूर के शत्रु टैंक को नष्ट कर सकती है। महाद्वीपों के पार शत्रु के दूरवर्ती शहर पर गिराने के लिए, तथा उड़ते आक्रामक वायु यान को तुरंत गिराने के लिए उपयुक्त मिसाइलें भी भारतीय सैनिक हथियारों में शामिल हैं।

युद्धास्त्रों ने तीर-कमान और ढाल-तलवार युग से लेकर अब तक बड़ा लंबा सफर तय किया है। अब एक सैनिक को दुश्मन से आमना-सामना करने की जरूरत नहीं रही और न ही द्वंद-युद्ध करने की। अब वह आराम से बंकर में बैठ कर दूर स्थान पर हथियार गिरा सकता है। आज युद्ध में दांव पेंच या असंख्य मानव शक्ति का नहीं बल्कि प्रौद्योगिकी का महत्व है। यह बात हाल ही में (14-28 नवम्बर 1990) नई दिल्ली में आयोजित 'रक्षा और विज्ञान प्रदर्शनी' में खुलकर सामने आई कि वह युद्धास्त्र विज्ञान ही है, जो किसी युद्ध को जीतती है। एक पखवाड़े तक चली इस प्रदर्शनी में रक्षा से संबंधित सभी संगठनों ने अपनी उपलब्धियों और विकासों का प्रदर्शन किया। इसका आयोजन भारत के पहले प्रधानमंत्री पंडित नेहरू की याद में रक्षा अनुसंधान और विकास संगठन द्वारा तीनमूर्ति भवन में किया गया था। इसमें बंदूक की कुछ मि.मी. मोटी गोली से लेकर, धरती से धरती में मार करने वाली संपूर्ण भारतीय मिसाइल 'पृथ्वी' का भी प्रदर्शन किया गया। अनेक प्रकार के ब्रिजलांचर भी दिखाए गए थे। ये ब्रिजलांचर तुरंत पुल बनाने में काम आते हैं। कुछ घंटों में ही इससे पुल बनाया जा सकता है.

कारों और जीपों में लगने वाले चार घाती इंजनों और लेसर किरण उत्पादन आदि के मॉडलों का प्रदर्शन भी किया गया। भविष्य में उपयोग किए जाने के उद्देश्य से तैयार किए गए हल्के कॉम्बैट वायुयान और हल्के कॉम्बैट हैलीकॉप्टर तथा भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन द्वारा आयोजित उपग्रह प्रक्षेपण यान के मॉडलों का प्रदर्शन भी किया गया था। ये सभी हल्के लेकिन मज़बूत पदार्थ से बने थे। लेकिन सबसे ज्यादा रोमांचक बात यह थी कि लगभग सभी मशीनों और उपकरणों को प्रत्यक्ष तथा वास्तविक रूप में प्रस्तुत किया गया था, जिन्हें प्रतिदिन लगभग 6 हजार दर्शक देख कर प्रफुल्लित होते थे। क्योंकि इससे पहले अधिकांश दर्शकों ने ये चीजें सिर्फ तस्वीरों में देखी थीं।

प्रमुख प्रदर्श थे—सेना हैलीकॉप्टर का इंजिन व नियंत्रण, मिग-23 लड़ाकू विमान पायलट के प्रशिक्षणार्थ काकपिट सिमुलेटर, सिर्फ एक हैण्डल को दबाने पर पायलट को आपात काल से निकालने वाली सीट, बिना बाधा के देखने के लिए सेना और नावकों हेतु पेरिस्कोप, वह असली कैप्सूल जिसमें राकेश शर्मा अंतरिक्ष यात्रा से लौटे थे, आदि। इनसे यह भी पता चलता था कि ये उपकरण काम कैसे करते हैं। दर्शकों को रोमांच और प्रफुल्लता अनुभव करने के लिए वहां ऐसा बहुत कुछ था। यहां अदृश्य सुरंगों को दर्शकों द्वारा पार करने का प्रदर्शन भी उल्लेखनीय था। इनका प्रदर्शन इस प्रकार किया गया था, जब कोई टैंक—कई दासियों टोनर इन्हें दबाते हैं, तो विस्फोट होता है, ठीक उसी तरह जैसे चार किग्रा. भार वाले बच्चे द्वारा इस पर चढ़ने पर होता है। सुरंग संसूचक भी दर्शाए गए थे, जो एक बटन के आकार की धातु को भी जानने के लिए संवेदशील हैं और न पहचानने योग्य प्लास्टिक सुरंगों का भी पता लगा सकते हैं। दरअसल सुरंग प्लास्टिक में अंशमात्र धातु भी मिली होती है जिससे संसूचक इसका पता लगा लेता है। सुरंग और सुरंग सूचक ठीक

भूमि से भूमि पर मार करने वाली मिसाइल पृ

...लिये विज्ञान

दूर नियंत्रित लक्ष्य-भेदी यान का। यह यान दो लक्ष्यों पर आक्रमण करता है, जो सैनिकों द्वारा अभ्यास के दौरान भूमि पर गोलाबारी के रूप में होते थे। इसे प्रत्येक मार के बाद पुनः भरा जा सकता है और बारम्बार काम में लाया जा सकता है। केवल हथियार और प्रशिक्षण ही किसी व्यक्ति को सैनिक नहीं बनाते। विषम परिस्थितियों में जीवित और

चालक रहित, दूर नियंत्रित लक्ष्यभेदी विमान

उसी प्रकार होते हैं, जैसे कि राडार और राडार की पकड़ में न आने वाले वायुयान, जिन्होंने आज युद्ध को लुका-छिपी का खेल सा बना लिया है।

किसी हथियार के पीछे मनुष्य की उपस्थिति उसी प्रकार जरूरी है, जैसे कि किसी हथियार को जांचना, सैनिक को प्रशिक्षित और दक्ष बनाना। सैनिकों की बुद्धिमता का परीक्षण, अवसाद में उनके तंत्रिका आवेगों का परीक्षण और सैनिकों के मनोरंजन के लिए कंप्यूटर खेलों के माध्यम से युद्ध की हर स्थिति से निपटने के लिए उनकी क्षमता को परखने का प्रदर्शन भी दर्शनीय था। राडार और सोनार जैसी अन्य सुविधाओं के बारे में बताने वाले कंप्यूटर पाठ भी दर्शकों के आकर्षण का केन्द्र रहे। सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण और आकर्षण प्रदर्शन था—'लक्ष्य' नामक पायलट रहित

तटस्थ बने रहने की क्षमता भी बहुत जरूरी है। उनका भोजन, वस्त्र और अन्यों के साथ परस्पर संबंध भी समुचित होने चाहिए। भारतीय रक्षा अनुसंधान में इन बातों को नकारा नहीं गया है। जीवन रक्षक किटों के सहारे वे अलग पड़े रेगिस्तान और पहाड़ों पर भी आत्मविश्वास युक्त रह सकते हैं। इन किटों में दियासलाई से लेकर मच्छररक्षक तक की चीजें होती हैं।

ऐसी पोशाकें भी बनाई गई हैं, जिनमें लगे मास्क और सुरंग सूचकों के सहारे सैनिक जहरीली गैसों या विकिरण वाले स्थानों में भी निर्भीकता पूर्वक जा सकते हैं। रक्षा खाद्य अनुसंधान प्रयोगशाला में सैनिकों के लिए रोटी से लेकर बिरयानी तक के विभिन्न खाद्य, संसाधित कर के तैयार किए गए हैं जिन्हें तुरंत खाया जा सकता है। यहां तक कि आमतौर पर लोकप्रिय चिक्कीज़ भी सैनिकों की खाद्य सूची का मुख्य भाग है। तेज जेट विमान के पायलट के लिए डिजाइन की गई पोशाक बेशक भड़कीली न हो, लेकिन रक्त-दाब के साथ जोड़ों में होने वाले दर्द को रोकती है। रात के अंधेरे में देखने के लिए अवरक्त प्रकाश युक्तियां भी हैं, जिनसे रात में देखा जा सकता है।

रासायनिक प्रतिदीप्ति का उपयोग करके स्फुरदीप्ति वाली तीली के प्रयोग से बिना बैटरी के प्रकाश हो सकता है। कुछ ही घंटों में एक बोरे भर बोतलों के पानी में गंदगी, विष और अन्य रसायनों की जांच एक किट द्वारा की जा सकती है। पीने के लिए बनाई गई नए प्रकार की नली सभी रसायनों और जीवाणुओं को छान सकती है, जो किसी अपरिचित जगह में जीवित रहने के लिए मशीनगन की अपेक्षा कहीं ज्यादा उपयोगी है। इस प्रकार इस सारी की सारी प्रदर्शनी में युद्ध क्षेत्र में जाने वाली वैज्ञानिक सामग्री के साथ ही पीछे से सहायता देने वाली वैज्ञानिक सामग्री का भी प्रदर्शन किया गया। तट रक्षकों के लिए तेल परत को हटाने की तकनीक इसका उदाहरण है। विभिन्न स्तरों पर इसके लिए विकसित तीन तरीकों को दर्शाया गया। एक में साबुन जैसे पदार्थ का फुहारण हैलीकॉप्टर से किया जाता है, दूसरे में अवशोषक पॉलिथीन को तेल पर डालने पर तेल उसमें समा जाता है, और तीसरे में समीपस्थ जहाज में तेल आकर्षी रोटरों द्वारा तैरते तेल को पंप द्वारा चूषित कर लिया जाता है।

रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन ने स्कूली विद्यार्थियों द्वारा निर्मित, राज्य स्तरीय पुरस्कार प्राप्त विज्ञान के माडलों के प्रदर्शन की भी व्यवस्था की थी। इनमें प्रमुख थे—चोर घंटी, सरल सीज़्मोग्राफ, ओजोन छिद्र को दर्शाने वाला मॉडल, अग्नि प्रक्षेपण और स्वचालित पंच-निर्वापक आदि। सर्वाधिक चर्चित और आकर्षित मॉडल 'मंगल पर काल्पनिक सेना' विषय से संबंधित था, जिसे नेवल पब्लिक स्कूल, नई दिल्ली के बच्चों ने बनाया था। इसमें कृत्रिम जैव मण्डल से लेकर शीतल-संलयन ऊर्जा तक के भविष्यगत वैज्ञानिक विचारों का समावेश किया गया था।□

मनोज पटैरिया

बाल फोंडके

सर्दियों में ठण्ड से ठिठुरते बदन को ऊनी रेशों की गर्माहट बड़ी राहत प्रदान करती है। एक समय था, जब निचले स्तर पर रहने वाले बच्चे के लिए भी तीन थैले ऊन पूरी पड़ जाती थी। बहुत समय नहीं बीता, लेकिन जहां दुनियां की आबादी बढ़ने के साथ ही, लोगों की समृद्धि और खरीदने की क्षमता बढ़ी है, वहीं सापेक्षतया ऊन की मांग में भी बढ़ोत्तरी हुई है। सामान्यतया, जिसकी पूर्ति करनी बहुत मुश्किल है। ऊन को वस्त्रों के रूप में बुनने की प्रौद्योगिकी में भी बड़े परिवर्तन हुए हैं। बाजार में भड़कीले परिधानों के आने से उपभोक्ताओं द्वारा मांग बढ़ी है। वस्त्र उत्पादक ऊन की इस मांग को गुणवत्ता तथा तादाद की दृष्टि से पूरी करने के इच्छुक हैं।

आज प्रचलित तकनीकों से ऊन उत्पादन बढ़ाने के हर संभव प्रयास पूरी तरह चुक गए हैं। बड़ी संख्या में भेड़ों के प्रजनन से भी कमी पूरी नहीं हो सकती। इस दिशा में आमूल परिवर्तन लाने के लिए प्रति भेड़ ऊन की प्राप्ति में वृद्धि करनी होगी। यहां तक कि आज की सबसे अच्छी प्रजातियां भी अपनी उत्पादन क्षमता की आखिरी सीमा पर हैं। और यह सीमा घटेगी या बढ़ेगी, यह आज किए जाने वाले प्रयासों पर निर्भर करता है।

गर्म रेशे की माया

ऊन का रेशा भेड़ की त्वचा के बालों से पैदा होता है। अच्छे रेशे का एक समान व्यास 20 माइक्रोन या इससे कम होता है। उच्च श्रेणी की मैरिनो भेड़ के शरीर में कुल 10^8 बाल पुटिकाएं होती हैं। फिर भी उनमें से प्रत्येक बाल से ऊनी रेशा नहीं बनता है। ऐसी बात नहीं कि ऐसा असंभव है, बल्कि यह संभव है। दरअसल इसमें भेड़ की जटिल पाचन कार्यिकी आड़े आती है, जिससे यह हल्की सी संभावना एक व्यावहारिक संयोजन में बदल जाती है। प्रत्येक बाल को पूरी लंबाई में बढ़ने के लिए इसकी रचक कोशिकाओं को विभाजित होना पड़ता है। इसके लिए इतना ही पर्याप्त नहीं होता। इन कोशिकाओं को कैरेटिन नामक प्रोटीन तैयार करना पड़ता है, जिससे कोई बाल ऊन का रेशा बनता है। कैरेटिन एक प्रकार का प्रोटीन है, जिसमें सल्फर युक्त एमिनो अम्ल, सिस्टीन होता है। सल्फर अणु इन एमिनो अम्लों को जोड़कर उनके बीच पुल का काम करते हैं, जिससे रेशे की मजबूती बढ़ती है।

आज प्रचलित तकनीकों से ऊन उत्पादन बढ़ाने के हर संभव प्रयास पूरी तरह चुक गए हैं। बड़ी संख्या में भेड़ों के प्रजनन से भी कमी पूरी नहीं हो सकती। इस दिशा में आमूल परिवर्तन लाने के लिए प्रति भेड़ ऊन की प्राप्ति में वृद्धि करनी होगी।

फिर भी कोशिकाओं को पर्याप्त मात्रा [में] सिस्टीन या फिर कम से कम इसके उत्प[ादक] एमिनो अम्ल मेथियोनीन की आवश्यक[ता] होती है, जिससे सिस्टीन का संश्लेषण [हो] सके। साथ ही अन्य एमिनो अम्लों, य[था] लाइसिन, आर्जिनिन, हिस्टिडीन की [भी] अनुकूलतम आपूर्ति होनी चाहिए।

समस्या क्या है

यद्यपि इसके बारे में काफी जानकारी [है] तथापि वैज्ञानिकों को इस समस्या को ह[ल] करने में सक्षम होना चाहिए, यह एक तर्क [...] हो सकता है लेकिन कहने की अपेक्षा कर[ना] उतना आसान नहीं होता है। केवल [...] पोषकों की भरपूर आपूर्ति को बढ़ाने मात्र [से] ही भेड़ों की ऊन उत्पादन की जरूरत पू[री] नहीं हो जाती। तब बाल पुटिकाएं आवश्य[क] पोषकों की इष्टतम मात्रा से कम आपूर्ति [के] लिए आपस में प्रतियोगिता करती है[ं।] परिणामस्वरूप 10^8 पुटिकाओं में से कुछ [...] ही उचित लंबाई और मजबूती के रेशे प्रा[प्त] होते हैं। क्रमगत रूप से इनमें से सबसे रे[शा] बनता है, जो बहुत ही निम्न कोटि का हो[ता] है।

इस पूरी समस्या की जड़ है—भेड़ [की] वंशानुगत पाचन प्रणाली। जुगाली कर[ने] वाले जानवर होने के नाते भेड़ का भोजन [...] अवस्थाओं में पचता है। पहले तो खा[द्य] प्रथम आमाशय में जाता है, जिसे रोमंथि[का] कहते हैं, फिर इसका उत्पाद च[...] आमाशय मे गुजरता है। रोमंथिका [...] सूक्ष्मजीव अत्यधिक होते हैं। आवश्यक [...]

बढ़ सकता है यदि...

से इन नन्हे दोस्तों द्वारा कार्बोहाइड्रेट का किण्वन होता है, जिससे शरीर की कोशिकाओं की ऊर्जा जरूरतें पूरी होती हैं। ये सूक्ष्म कार्मिक इस ऊर्जा शोषण से स्वयं को दूर रखते हैं, ताकि पैदा की गई ऊर्जा का केवल एक भाग सीधे कोशिकाओं द्वारा ग्रहण किया जा सके। ग्लूकोजिनेसिस क्रिया द्वारा खाद्य में विद्यमान कार्बोहाइड्रेट से ग्लूकोस का निर्माण होता है, जोकि साधारण पाचन क्रिया का ही एक भाग है, इससे यह अवरुद्ध होती है। इस क्रिया में कुछ एमिनो अम्ल प्रयुक्त हो जाते हैं, विशेषतया जब भेड़ें खराब आहार लेती हैं।

प्रथम आमाशय के सूक्ष्मजीव, आहार के कार्बोहाइड्रेट का भी विघटन करते हैं। अक्सर ये घटकों का पुनर्समूहन कर देते हैं, लेकिन इनके उत्पाद पोषण की दृष्टि से निम्न होते हैं, क्योंकि इनमें कुछ आवश्यक एमिनो अम्लों का स्तर कम होता है। इन कोशिकीय फैक्ट्रियों को आवश्यक कच्चा माल दिए बिना, यहां तक कि उत्पादन स्तर को बनाए रखने और सिर्फ उनको बढ़ने देने के लिए उनसे अपेक्षाएं करना अनुचित है।

अब जैवप्रौद्योगिकीविदों ने इन कोशिकीय उत्पादन इकाइयों के व्यवधानों को दूर करने की दिशा में काम आरंभ किया है। उन्होंने कम से कम तीन विभिन्न तरीके सोचे हैं, जिनसे ऊर्जा और विशेषतया एमिनो अम्लों की आपूर्ति को बढ़ाया जा सके।

ऐडेलायडे विश्वविद्यालय, आस्ट्रेलिया के जार्ज रोजर्स ऊन का उत्पादन बढ़ाने के लिए इस जैवतकनीकी पर प्रमुखता से काम कर रहे हैं। उन्होंने पाया कि रोमंथिका के जीवाणु जब खाद्य प्रोटीन का किण्वन करते हैं, तब एमिनो अम्लों का सल्फर, सल्फाइड में बदल जाता है। फलस्वरूप इन जीवाणुओं द्वारा प्रोटीन के पुनर्संश्लेषण और उसे चतुर्थ

आमाशय से गुजारने के दौरान सल्फर उपलब्ध नहीं होता है। अतः इन प्रोटीनों में सिस्टीन या मेथियोनिन जेसे एमिनो अम्लों की कमी हो जाती है। रोजर्स ने आश्चर्य व्यक्त किया है कि क्या मुक्त सल्फाइड को
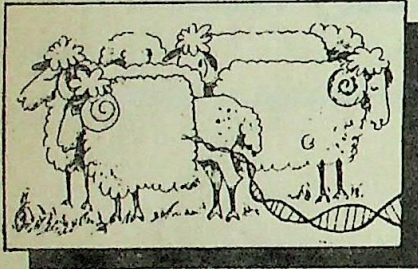
इकट्ठा करके, उसे आवश्यक ताजे एमिनो अम्लों के निर्माण में उपयोग नहीं किया जा सकता।

महत्वपूर्ण एंजाइम

उन्होंने देखा कि रोमंथिका की दीवार की त्वक् कोशिकाएं सल्फाइड को सोख सकती हैं, और सिस्टीन का संश्लेषण करती हैं, जिसमें दो महत्वपूर्ण एंजाइम, सेरिन एसिटिलट्रांस्फरेज (एसएटी) और O एसिटिल सेरिन सल्फाइड्रेस (डीएएस) उपलब्ध होते हैं। अतः उन्होंने **साल्मोनेला टाइफीमुरियम** जीवाणु से इन एंजाइमों के लिए जीन का पृथक्करण किया है।

इन्हें अन्य जीन के साथ संयुग्मित कराया गया, जो कि एक प्रमोटर था, जिसने इनको कार्यशीलन हेतु प्रेरित किया। तत्पश्चात् इस संयोजित जीन युग्म को भेड़ की कोशिकाओं में प्रविष्ट कराया गया, ये कोशिकाएं रोजर्स की प्रयोगशाला में पनपाई गई थीं। जब उन्होंने देखा कि भेड़ की कोशिकाओं ने इन नए आगंतुकों को स्वीकार किया है और सल्फर युक्त एमिनो अम्लों के निर्माण में उनका उपयोग भी किया है तब उन्हें यह यकीन हो गया कि इस दिशा में अगली कार्यवाही सुनिश्चित की जा सकती है।

अगले प्रयोगों में उन्होंने इस संयोजित जीनयुग्म को, संवर्धन घोल में रखे गए भेड़ के भ्रूणों में प्रविष्ट कराया। फिर इन भ्रूणों को ग्राही भेड़ में स्थापित कराया गया। इनसे जन्मे बच्चों में से एक में आगंतुक जीन विद्यमान था। इस विषमजीनी पशु की पूंछ के ऊतकों ने दोनों एंजाइमों की क्रियाशीलता दर्शाई।

रोजर्स जानते थे कि सामने के लंबे सफर का यह पहला कदम है। और अनेक बाधक कारक भी कम नहीं हैं। जिनमें विषमजीनीकरण की दर बहुत कम है, अर्थात प्रति 100 निषेचित अण्डों में जीन युग्म प्रवेशन के बाद 0.1 से 2.0 विषमजीनी पशु पैदा हुए। इसी प्रकार ग्राही माताओं में स्थापित किए गए ऐसे संयोजित भ्रूणों में से अधिकतम 20% जीवित बच्चे पैदा होते हैं।

लेकिन उन्होंने इन समस्याओं को दूर करने के तरीकों पर विचार किया। उनकी प्रयोगशाला के पी.जे. वर्मा और सहकर्मियों ने, संयोजित जीनयुग्म प्रवेशन के तीन दिन बाद भ्रूणों की जीवंतता को परखने की तकनीक विकसित की। इससे भ्रूण प्रत्यारोपण के बाद जीवित बच्चे पैदा होने की दर में वृद्धि हुई। इसी प्रकार यदि पहले से यह पता चल जाए कि प्रवेशित भ्रूण आगंतुक जीन को स्वीकार करता है, और उसे स्थापित हो जाने देता है, तो विषमजीनीकरण की दर भी बढ़ सकती है। इसे भी एक अत्यंत जटिल तकनीक से किया जा सकता है। निषेचित अण्डाणु, जो कि हर किसी की शुरूआत की पहली अवस्था होती है, के कोशिका विभाजन से वृद्धि होती है। एक कोशिका के विभाजन से दो कोशिकाएं
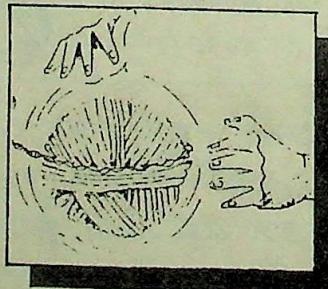
बनती हैं, फिर उनसे चार और इसी प्रकार यह क्रिया चलती रहती है। जब यह कोशिका समूह 8-16 कोशिकाओं का होता है, इसे काट कर दो भागों में बांटा जा सकता है। प्रत्येक हिस्सा संपूर्ण पशु में विकसित हो सकता है। अतः रोजर्स सोचते हैं कि 16 कोशिकी अवस्था में आधा हिस्सा तो वृद्धि कोष्ठ में रखा जाए और दूसरे को प्रतिस्थापित जीनों की क्रियाशीलता परखने के लिए काम में लाया जाए। यदि परीक्षण परिणाम सकारात्मक मिलते है, तो दूसरे हिस्से से विकसित भ्रूण को ग्राही के गर्भाशय में स्थापित कर दिया जाए।

वास्तव में रोजर्स की अपने विषमजीनीकरण प्रयोगों को इतना बारीकी से समायोजित करने की योजना है, ताकि प्रतिस्थापित जीन रोमंथिका में ही क्रियाशील रहें, अन्य ऊतकों में नहीं। ऐसा हो सकता है
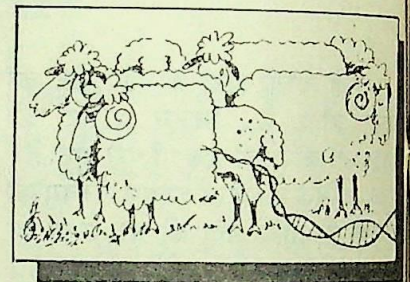
यदि दो एंजाइम—विशिष्टता वाले जीनों की क्रियाशीलता को नियंत्रित करने वाला प्रमोटर जीन रोमंथिका से ही हो और इसके प्रति विशिष्टता रखता हो। जैसे ही यदि ऐसा कोई जीन मिलता है, वह तुरंत प्रमोटर जीन का स्थान ले सकेगा, जिसे अभी क्रियाशील जीन के रूप में जीवाणु से प्राप्त किया गया है।

वे यह भी पता लगाने पर काम कर रहे हैं कि रक्त में निहित सल्फाइड की तुलना में रोमंथिका में विद्यमान सल्फाइड उसमें कितना ज्यादा या समीपता वाला है। यदि ऐसा है, तो रोमंथिका झिल्ली की अपेक्षा वाले पटिकाओं में सीधी क्रियाशीलता के लिए जीनों को संयोजित किया जा सकता है।

नया उपाय

ग्लूकोस संश्लेषण के लिए, उन्होंने गया नया उपाय खोजने के लिए एक दूसरा छोटा रास्ता चुना है ताकि एमिनो अम्लों के भण्डार को भेदे बिना पर्याप्त ग्लूकोस संश्लेषित हो सके। यहां पुनः यदि टी सी ए चक्र की अपेक्षा दो एंजाइम आइसोसिट्रेट लियेज और मैलेट सिंथेज उपलब्ध करा दिए जाएं तो ग्लू

उत्पादन केन्द्रित पाचन क्रिया को कुछ सीमा तक छोड़ा जा सकता है। अतः उन्होंने **ऐशेरिकिया कोलाई** सदृश्य अन्य जीवाणु से इन एंजाइमों को बनाने वाले जीन पृथक किए हैं, और जैव तकनीकें अपनाकर उनको भेड़ में स्थानांतरित किया है। अब वे आगे ऐसी तकनीक के विकास की फिराक में हैं, ताकि ये जीन सीधे लक्ष्य, अर्थात बाल पटिकाओं में बस जाएं।

एक पहलू यह भी

हालांकि रोजर्स भेड़ों से ज्यादा ऊन लेने के प्रयासों में प्रमुख हैं, लेकिन वे ऐसे एक मात्र व्यक्ति नहीं हैं। अन्य लोग भी इस लक्ष्य की ओर उन्मुख हैं, और अलग प्रकार के तरीके इस्तेमाल कर रहे हैं। उदाहरण के तौर पर आर.ए. लेंज और उनके साथी सोचते हैं, कि रोजर्स का कार्य बेहद परंपरागत है। उनके अनुसार रोमंथिका के जीवाणुओं द्वारा किण्वन

क्रिया के दौरान एमिनो अम्ल भण्डारों का क्षय होने देना और फिर कमजोर भेड़ कोशिकाओं से उसकी पूर्ति करना, एक तरह से ऊर्जा का अपव्यय है। वे इन रोमंथिका सूक्ष्मजीवों को इच्छानुसार ढालने पर विचार कर रहे हैं। यदि उनको आनुवंशिक रूप से बदला जा सके, तो वे ग्राही पशु में पाचन में भी मदद करेंगे, और पोषकों की गुणवत्ता या ग्राही को दी गई ऊर्जा की मात्रा में कमी नहीं आएगी।

लम्बा क्रम

यदि सिक्के का यह पहलू देखें तो लेंज का विचार ज्यादा आकर्षक है। यद्यपि
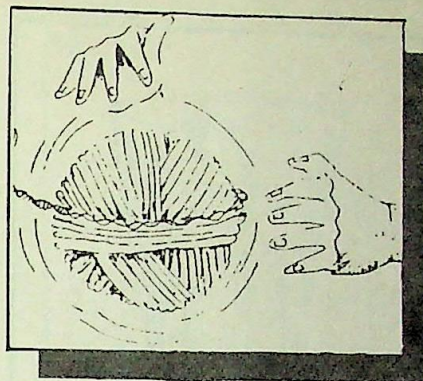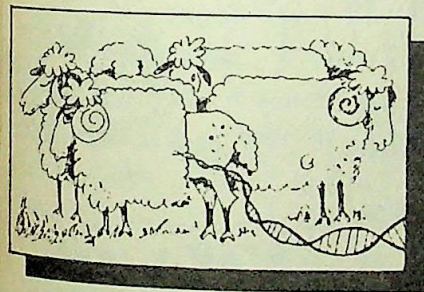
विषमजीनी पशुओं का उत्पादन अब काफी समय से कोई असंभव काम नहीं रहा, तथापि किसी जीवाणु के जीनों को किसी पशु में स्थानांतरित करना, जीवाणु से जीवाणु में स्थानांतरित करने से ज्यादा कठिन है। वैसे भेड़ की पाचन कार्यिकी से संबद्ध रोमंथिका के सूक्ष्मजीवों की तादाद संबंधी विषय पर ज्यादा जानकारी प्राप्त नहीं है। फलस्वरूप उनकी कार्यिकी या आनुवंशिकी संरचना को समझना तो दूर की बात है। रोजर्स ने एक सुपरिभाषित जीन के जोड़े के केवल स्थानांतरण का विरोध किया है। उधर लेंज ने शायद अनेक जीन स्थानांतरित किए हैं जोकि एक लंबा क्रम सिद्ध हो सकता है।

स्थानांतरित जीन यहां जब तक ग्राही में कोई उपापचयी लाभ नहीं दर्शाते, तब तक उनकी स्वीकारोक्ति आसान नहीं है। इसके लिए स्थानांतरित जीन की क्रियाशीलता और स्वांगीकरण को पहचानने की तकनीकों का विकास भी करना होगा। इसके बावजूद निर्णयात्मक रूप से लेंज का कार्य भी इस दिशा में एक गंभीर प्रयास है। यदि वे सफल होते हैं तो उनकी तकनीक रोजर्स की अपेक्षा संभवतया अधिक सक्षम और प्रभावी सिद्ध होगी।

प्रमुखतया इंग्लैंड के डिग्गिंस के नेतृत्व में एक अन्य दल आनुवंशिक रूप से तैयार सुधरी पोषण गुणवत्ता वाले चारे के उत्पादन का विचार कर रहा है। उनका तर्क है कि जब आहार में ही भरपूर एमिनो अम्ल होगा, तब पशुओं को स्वतः आवश्यक पोषक मिल जाएंगे, तब पाचन क्रिया कैसी भी हो, उससे फर्क नहीं पड़ता। उनके तर्कों में दम है। क्योंकि वांछित आनुवंशिक युग्मों वाले पौधों का उत्पादन अब काफी प्रचलित कला के रूप में स्थापित हो चुका है अतः उनका काम और भी आसान प्रतीत होता है। फिर भी उनकी सबसे बड़ी बाधा रोमंथिका के जीवाणु हैं, जिनकी वजह से भेड़ जो आहार लेती है, उसका प्रोटीन अंश उसे सीधे प्राप्त नहीं होता। उसे जीवाणुओं द्वारा छोड़े गए दूसरी श्रेणी के उपोत्पादों से संतोष करना पड़ता है। यदि प्रचुर एमिनो अम्लों युक्त प्रोटीन वाले पौधे आनुवंशिक रूप से तैयार कर भी लिए जाएं, पर जब यह आहार चतुर्थ आमाशय में पहुंचेगा तब इन जीवाणुओं द्वारा उसे विघटन का प्रतिरोध करना पड़ेगा। तब उसे चतुर्थ आमाशय या छोटी आंत में पाचन के लिए संघर्ष करना पड़ेगा। अन्यथा, वह सीधे मल के रूप में बाहर निकल जाएगा। यदि इसमें सफलता मिल भी गई तो भी वैज्ञानिकों को यह सुनिश्चित करना होगा कि प्रोटीन, चारा पौधों की पत्तियों और तनों में पाया जाता है या स्थानांतरित होता है, जिनको पशु खाते हैं। अब यह उतना दुरूह भी नहीं रहा, क्योंकि अब ऐसी तकनीकें स्थापित हो गई हैं जिनसे इस प्रकार जीनों के चयनात्मक लक्षण प्राप्त किए जा सकते हैं।
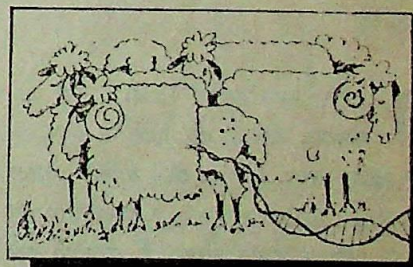
सत्य यह है कि रोजर्स को छोड़कर भेड़ की सहायता से ऊन प्राप्त करने के अन्य दावे बिल्कुल आरंभिक अवस्था में हैं, लेकिन तेजी से प्रगति अवश्य हुई है। आज जैवप्रौद्योगिकी जिस गति से विकसित हो रही है उससे लगता है कि इस ओर भी जल्दी परिणाम आएंगे। अतः यह तो निश्चित है कि अब लंबे समय तक ऊन का उच्च उत्पादन केवल सपना ही नहीं बना रहेगा, बल्कि साकार होगा।

[डा. बाल फोंडके, निदेशक, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, सी.एस.आई.आर., हिलसाइड रोड, नई दिल्ली-110012]

पुरस्कृत प्रश्न

ठण्डे पानी को धातु के बर्तन में रखने पर बर्तन की बाहरी दीवार पर बूंदें क्यों दिखाई पड़ती हैं?

(विजय सिंह चौहान, राजघाट, जालौन, उ.प्र.)

केवल धातु के ही नहीं, बल्कि कांच या प्लास्टिक आदि के बर्तनों में भी ठण्डा पानी रखने पर उनकी बाहरी दीवार पर बूंदें दिखाई पड़ती हैं। हां, लेकिन धातु के बर्तनों में ऐसा अधिक होता है, क्योंकि वे ताप के प्रति
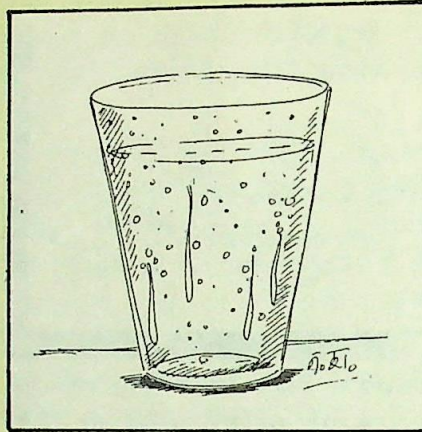
अधिक सुचालक होने के कारण उनमें भरे ठण्डे पानी से, जल्दी ठण्डे हो जाते हैं। इन बूंदों का संबंध हमारे वातावरण या वायुमण्डल की नमी से है। वातावरण में हवा के साथ कुछ मात्रा में पानी की भाप भी मिली होती है। वातावरण के ताप के अनुसार हवा में पानी की भाप की मात्रा कम या अधिक होती है। जैसा कि हम जानते हैं कि भाप को यदि ठण्डा किया जाए तो वह पानी में बदल जाएगी। अतः वातावरण की भाप जब ठण्डे पानी से भरे बर्तन की ठण्डी दीवार के संपर्क में आती है तो वह ठण्डी होकर पानी की छोटी-छोटी बूंदों के रूप में संघनित हो जाती है। पानी की ये बूंदें बर्तन की दीवार पर इकट्ठी हो जाती हैं और आकर्षक कणिकाओं के रूप में दिखाई पड़ती हैं। ज्यादा बूंदें इकट्ठी होने पर ये नीचे की ओर बहने लगती हैं।

मनोज पटैरिया

लाफिंग गैस और अश्रु गैस क्या हैं? लाफिंग गैस सूंघने पर हंसी आती है, जबकि अश्रु गैस से आंसू। ऐसा क्यों?

(वैद्यनाथ प्र. सिंह, आधारपुर, समस्तीपुर, बिहार)

नाइट्रस आक्साइड (N_2O) गैस का उपयोग रोगियों को अवचेतन करने के लिये किया जाता है। जब कोई व्यक्ति अधिक मात्रा में इस गैस को सूंघ लेता है तो वह उत्तेजित हो कर जोर से हंसने लगता है, इसलिये इसे लाफिंग गैस कहते हैं। यह गैस दरअसल रक्त में मिल कर मस्तिष्क के हंसी केन्द्र को उत्तेजित करती है। इसका असर बहुत जल्दी होता है और थोड़ी देर में खत्म हो जाता है। इसे ज्यादा मात्रा में सूंघने से कभी-कभी हल्का हिस्टीरिया का दौरा पड़ सकता है।

नाइट्रस आक्साइड का आविष्कार ब्रिटेन के जोसफ प्रीस्टले ने 1772 में किया था। 1844 में हेरेस वाल्स ने सबसे पहले इसे निश्चेतक के रूप में प्रयोग किया। इसके असर से उसने बिना दर्द महसूस किये अपना दांत निकाला। तबसे इसका प्रयोग निश्चेतक की तरह किया जाता है।

अश्रु गैस हैलोजनीकृत कार्बनिक यौगिक (नाइट्रिल ब्रोमाइड और एथिल आयोडोएसिटेट) है, जिससे आंखों में जलन होने लगती है। फलस्वरूप आंखों में से आंसू आने लगते हैं और
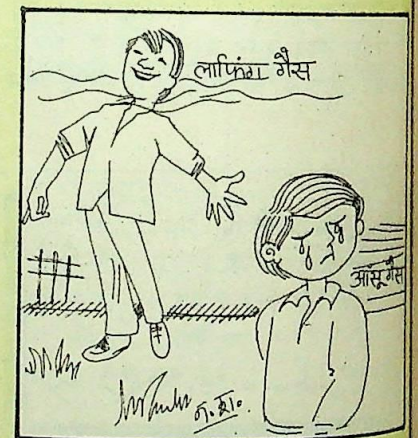
थोड़ी देर के लिये कुछ दिखाई नहीं देता। इसका उपयोग पुलिस द्वारा भीड़ को तितर-बितर करने के लिये या युद्ध के दौरान किया जाता है।

मधु साहनी

मनुष्य उबलते पानी की अपेक्षा वाष्प से अधिक क्यों जलता है?

(नरेन्द्र पाल सिंह, श्रीगंगानगर, राज.)

उबलते हुये पानी में प्रतिग्राम लगभग 100 कैलोरी ऊष्मा संग्रहीत होती है, जबकि वाष्प में 540 कैलोरी प्रतिग्राम ऊष्मा होती है। एक ग्राम द्रव को वाष्प अवस्था में परिवर्तित करने के लिए, ताप में परिवर्तन के बिना

एक निश्चित परिमाण में ऊष्मा की आवश्यकता होती है। इसे वाष्पन की ऊष्मा कहते हैं। इसलिये जब उबलता पानी शरीर की त्वचा के सम्पर्क में आता है तो वह 100 कैलोरी प्रतिग्राम जल के अनुपात से ऊष्मा त्वचा में स्थानान्तरित करता है, जबकि वाष्प की उतनी ही मात्रा त्वचा में 540 कैलोरी ऊष्मा स्थानान्तरित करती है। इसलिये उबलते पानी की तुलना में वाष्प से ज्यादा जलन होती है।

के.के. कक्कड़

पानी से भरी बाल्टी जब कुएं के पानी के भीतर से पानी के ऊपर आती है, तो वह अपेक्षाकृत अधिक भारी क्यों हो जाती है?

(संतोष आनंद, लोहिया नगर, बेगुसराय, बिहार)

पानी से भरी बाल्टी जब कुएं के पानी में होती है, उस समय दो बल कार्य करते हैं। पहला गुरुत्वाकर्षण बल, जो बाल्टी को नीचे की ओर खींचता है। दूसरा गुरुत्वाकर्षण बल के विपरीत, ऊर्ध्वाधर दिशा में पानी का उछाल कार्य करता है जिसे उत्प्लावन कहते हैं। आर्कमिडीज के सिद्धांत के अनुसार जब कोई वस्तु पूर्णतया या आंशिक रूप से किसी द्रव में डुबोई जाती है तो उसके भार में परोक्ष रूप से कमी आ जाती है, यह कमी उस वस्तु द्वारा हटाये गये द्रव के भार के बराबर होती है। वस्तु द्वारा हटाया गया द्रव का भार ही उत्प्लावन होता है। अतः पानी से भरी बाल्टी जब पानी में से खींची जाती है तो वह अपने भार के बराबर पानी विस्थापित करती है और कुएं के पानी के उछाल (उत्प्लावन) के कारण हल्की प्रतीत होती है, परन्तु जैसे ही वह पानी से बाहर आती है उस पर केवल गुरुत्वाकर्षण बल ही कार्य करता है जो उसे नीचे की ओर खींचता है। अतः अधिक भारी लगने के कारण बाल्टी को ऊपर लाने के लिये अधिक बल लगाना पड़ता है। वास्तव में पानी से भरी बाल्टी का भार पानी के अंदर व बाहर बराबर ही होता है।
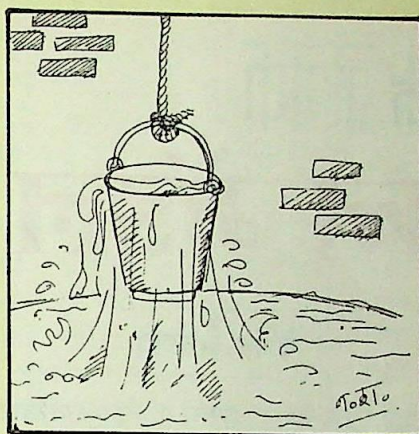
राजीव माथुर

खाना पकाने वाली गैस में कौन-कौन सी गैसें होती हैं?

(रामकृपाल वर्मा, अलीगंज, लखनऊ)

खाना पकाने वाली गैस जिसे लिक्वीफाइड पेट्रोलियम गैस (एल.पी.जी.) भी कहते हैं, पेट्रोलियम से प्राप्त होने वाले हाइड्रोकार्बनों का मिश्रण होती है। मुख्य रूप से इसमें प्रोपेन और ब्यूटेन गैसें होती हैं। इनके साथ प्रोपीन, ब्यूटीन तथा मीथेन जैसे अन्य हाईड्रोकार्बन भी मिले रहते हैं। इसे या तो प्राकृतिक गैस के विशेष यौगिकों द्वारा या फिर पेट्रोलियम के गैसीय यौगिकों से तैयार किया जाता है। पेट्रोलियम के कुओं से मिलने वाली प्राकृतिक गैसों के मिश्रण से अवशोषण द्वारा हल्के प्रभाजों का मिश्रण प्राप्त होता है। इसमें से हाइड्रोजन सल्फाइड, कार्बन डाईआक्साइड और पानी को निकालने के पश्चात प्राप्त गैस चूल्हों में उपयोग के लिये इस्तेमाल की जाती है। पेट्रोलियम क्रैकिंग (पेट्रोलियम हाइड्रोकार्बनों को गर्म कर के तोड़ कर अलग करना) द्वारा बड़े संयंत्रों में दूसरी विधि से भी एल.पी.जी. तैयार की जाती है। ये गैसें अत्यन्त प्रज्वलनशील व गन्ध हीन होती हैं। अतः रिसने पर इनका पता लगाना कठिन होता है, इसलिये सुरक्षा की दृष्टि से इनमें गन्धयुक्त थायो एल्कोहल (मरकैप्टन) मिलाया जाता है, जिसके कारण एल.पी.जी. की परिचित गन्ध आती है।

सामान्य ताप तथा दाब पर एल.पी.जी. में प्रयुक्त हाइड्रोकार्बन गैसीय अवस्था में होते हैं। घरों में प्रयुक्त किये जाने वाले सिलिन्डरों में इस मिश्रण को अत्यधिक दबाव पर भरा जाता है जिसके कारण यह द्रव और गैस की साम्यावस्था में रहता है।
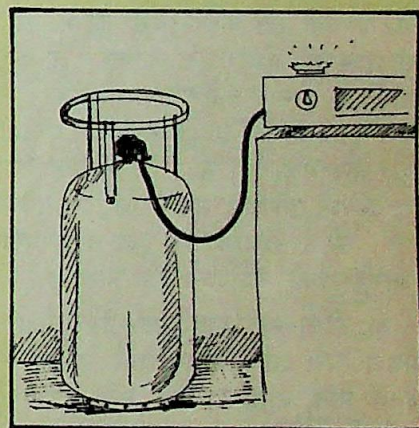
राजीव माथुर

घरेलू मक्खियां अपनी टांगों को रगड़ती क्यों रहती हैं?

(सुमन तोष महतो, रांची)

घरेलू मक्खियां अपने स्वयं के मामले में बहुत सफाई पसंद होती हैं, और इसके लिए तत्काल प्रतिक्रिया करती हैं। मक्खियां अपनी अगली टांगों और शुंडिका की नोंक द्वारा टोह लेकर अपना भोजन प्राप्त करती हैं, जिसमें स्वाद के प्रति प्रमुखतया संवेदनशीलता निहित होती है। इन संवेदनांगों की तेजी से पूरी सफाई आवश्यक होती है, अतः सामान्यतया मक्खियां नियमित रूप से इनको रगड़ती हैं। मक्खियों में सात विभिन्न प्रकार की स्वच्छता क्रियाएं देखी गई हैं: सिर की सफाई, शुंडिका की सफाई, अगली टांगों की सफाई, पिछली टांगों की सफाई, पंखों की सफाई, उदर की सफाई, और बीच की टांगों की सफाई। बीच की टांगों को साफ करने के लिए मक्खी अपनी बीच की एक टांग को पिछली या अगली टांगों के जोड़े के बीच में मारती है, जिससे पारस्परिक सफाई क्रिया होती है।

हालांकि यह मक्खी की सफाई प्रियता का एक संकेत हो सकता है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि इससे स्वास्थ्य का खतरा समाप्त हो जाता है। दरअसल यह अण्डे देने के लिए और भोजन के लिए ज्यादातर गंदा स्थान ढूंढती हैं। इसलिए मक्खी द्वारा लगातार अपनी सफाई करते रहने के बावजूद, असंख्य जीवाणु मक्खी की टांगों पर चिपक जाते हैं, और इस प्रकार हमारे भोजन तक पहुंचने का रास्ता ढूंढ लेते हैं।

हसन जावेद खान

आनुवंशिकी के जनक
ग्रेगर योहान मेंडल

देवेंद्र मेवाड़ी
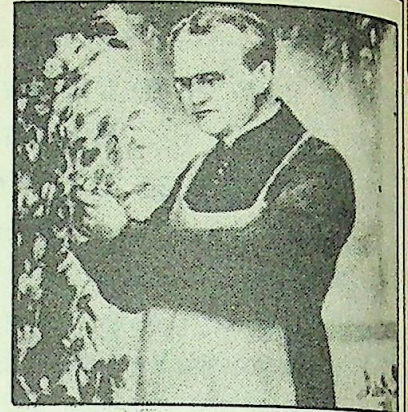
फरवरी 8, 1865 की उस सर्द शाम को जब वह सौम्य स्वभाव का हंसमुख पादरी ब्रुन की प्राकृतिक विज्ञान अध्ययन परिषद के सदस्यों को मटर के पौधों पर 8 वर्ष तक किये गये अपने खोज कार्य के परिणाम के बारे में बता रहा था तो किसी को भी कोई कौतूहल नहीं हुआ। एक व्यक्ति ने तो कह भी दिया—8 साल तक एक मामूली मटर के पौधे का अध्ययन? हद है, समय की बर्बादी की! और भला उस पादरी को भी कहा पता था कि जो परिणाम उसने उस दिन सामने रखे, उनसे विज्ञान की एक नई शाखा **'आनुवंशिकी'** का जन्म होने वाला है।

वह सीधा-सादा पादरी था—ग्रेगर योहान, मेंडल जिसे आज आनुवंशिकी विज्ञान का जनक माना जाता है। जब उसने अपनी 8 वर्षों की कड़ी तपस्या के परिणाम ब्रुन की प्राकृतिक विज्ञान अध्ययन की समिति के सामने रखे तो बैठक में उपस्थित सदस्य उनका महत्व नहीं जान पाये। बैठक के बाद निराश होकर ग्रेगर घर लौटा। उसने यह बुद्धिमानी की कि अपने अध्ययन के परिणाम परिषद् की पत्रिका में 1865 तथा 1869 में छपवा दिये। लोग उसे और उसके काम को भूल गये। लेकिन, इतिहास ने करवट ली और 35 वर्ष के बाद उसके अध्ययन को अभूतपूर्व कहा गया और उसे 'आनुवंशिकी विज्ञान का जनक' घोषित कर दिया गया।

योहान मेंडल का जन्म आस्ट्रिया के हीजेंनडोर्फ नामक गांव में 22 जुलाई 1822 को हुआ था। हीजेंनडोर्फ आज हेंसिके कहलाता है और आस्ट्रिया, चैकोस्लोवाकिया हो गया है। नन्हें मेंडल को घर में सभी लोग प्यार से हेंस्ले कह कर पुकारते थे। उसके पिता ऐंटन मेंडल किसान थे। मेंडल परिवार गरीब था। हेंस्ले खेतों और बाग में पिता का हाथ बंटाता। वह बड़े कौतूहल से पेड़-पौधों को देखता और पिता से नाना प्रकार के सवाल पूछता। पिता जब पेड़ों पर कलम चढ़ाते तो उसे ताज्जुब होता कि कम और घटिया फल देने वाले पेड़ पर जब बढ़िया पेड़ की कलम लगाई जाती है तो उस पर बढ़िया और अधिक फल क्यों लगते हैं? घटिया पेड़ का कोई असर कलम वाली डाली पर क्यों नहीं पड़ता? नन्हां हेंस्ले पिता से इसका कारण पूछता। लेकिन, तब इस सवाल का जवाब तो वैज्ञानिकों को भी मालूम नहीं था, भला पिता ऐंटन मेंडल क्या जवाब देते।

अपनी जिज्ञासा का समाधान करने के लिये योहान पौधों के बारे में पढ़ता रहता। मेंडल परिवार यद्यपि काफी गरीब था लेकिन मां-बाप ने योहान मेंडल को स्कूल भेजा। वे योहान को खूब पढ़ाना चाहते थे। पुत्री के दहेज के लिये संजोई हुई पूंजी भी उन्होंने योहान को पढ़ाने में लगा दी थी। अपने गांव के स्कूल में उसने बागवानी और मधुमक्खी-पालन की शिक्षा ली। मां-बाप केवल पढ़ाई का खर्चा दे पाते थे, इसलिये योहान मेंडल को कई बार भूखे पेट रहना पड़ता। लेकिन वह धैर्यवान था। उसने पढ़ना जारी रखा और अपना साहस नहीं खोया। त्रोपाउके हाईस्कूल में पढ़ाई पूरी करके उसने ओलमुट्ज इंस्टीट्यूट में दर्शनशास्त्र का दो वर्ष तक विशेष अध्ययन किया।

पादरी बना

उसके बाद आगे पढ़ना कठिन हो गया। मां-बाप के लिये इतना खर्च उठाना संभव नहीं था। तब उसके एक शिक्षक ने रास्ता सुझाया। अगर योहान मेंडल पादरी बन जाये तो वह आगे पढ़ सकता था। योहान मेंडल रोमन कैथोलिक परिवार में पैदा हुआ था। पादरी बनने पर उसे जीवन भर अविवाहित तो रहना पड़ता लेकिन गिरजे की ओर से उसे पढ़ने की सुविधा मिल जाती। गिरजे के ही किसी स्कूल में वह शिक्षक भी बन सकता था। उसने यही रास्ता अपनाया। 21 वर्ष की उम्र में 9 अक्तूबर 1843 को उसे ब्रुन (जो अब बरना कहलाता है) के संत आगस्टीन मठ में प्रवेश दिला दिया गया। मठ के नियमानुसार उसके जन्म के नाम योहान मेंडल के आगे ग्रेगर जोड़ दिया गया। वह ग्रेगर योहान मेंडल बन गया। वहां उसने पादरियों से शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की। फिर 1847 में उसे पादरी की दीक्षा दी गई। वह फादर ग्रेगर योहान मेंडल हो गया।

ग्रेगर मठ में अब गणित तथा यूनानी भाषा पढ़ाने लगा। 1850 में उसे हेडमास्टर ने शिक्षक के नियमित पद के लिये परीक्षा देकर प्रमाणपत्र लेने की सलाह दी। उसने प्राकृतिक विज्ञान और प्रारंभिक भौतिकी में अध्यापन के लिये परीक्षा दी। लेकिन, उस पर आरोप लगाया गया कि वह परम्परागत शब्दावली के बजाय अपने शब्दों में अपने विचार व्यक्त करता है। इसलिये उसे उत्तीर्ण नहीं होने दिया गया।

अपने एक प्रोफेसर की सिफारिश पर 1851 में उसे 2 वर्ष तक गणित, भौतिकी और प्राकृतिक विज्ञान के अध्ययन के लिये विएना भेज दिया गया। 1854 में वहां से लौट कर ग्रेगर मेंडल ने पुनः अध्यापन के प्रमाणपत्र की परीक्षा दी, लेकिन उसे सफलता नहीं मिली। यह उसके भाग्य की विडम्बना ही कही जायेगी कि मेधावी मेंडल

नियमित शिक्षक का पद न पा सका और स्थानापन्न शिक्षक के रूप में 14 वर्षों तक मात्र आधे वेतन पर पढ़ाता रहा। वरिष्ठ शिक्षक कहते ग्रेगर मेंडल में योग्यता नहीं है और मेंडल कहता कि प्रचलित परिभाषायें गलत और अवैज्ञानिक हैं।

मटर के ब्याह रचाये

वैज्ञानिक तरीके से उसने मटर पर अपने प्रयोग 1856 में शुरू किये। उसे प्रयोग के लिये अलग बगिया दे दी गई। अपने प्रयोग शुरू करते समय उसके मन में ये प्रश्न कौंधते रहे कि जीवों की एक ही जाति के रंग, रूप और आकार, प्रकार में अंतर क्यों होता है? वह जानना चाहता था कि मां-बाप के गुण संतान में कैसे पहुंचते हैं? उसने मटर को बहुत गौर से देखा था और इस बात पर ध्यान दिया था कि किसी किस्म के पौधे लम्बे होते हैं तो किसी के बौने। किसी पौधे में लाल फूल निकलते हैं, किसी में सफेद और किसी में बैंगनी। किसी के बीज गोल और चिकने होते हैं तो किसी के झुर्रीदार। बीजों का रंग भी किसी किस्म में हरा होता है तो किसी में पीला। वह जानना चाहता था कि ऐसा क्यों होता है। हर नई पीढ़ी में यह कौन तय करता है कि पौधों की कद-काठी, फूलों और बीजों का रंग कैसा होगा?

कहा जाता है कि मेंडल ने प्रयोग के लिये मटर के पौधे को चुना, इसीलिये उसे सफलता मिली। मटर में स्वपरागण होता है अर्थात इसके हर फूल में उसी फूल के पराग से बीज बनते हैं। फूलों की पंखुड़ियां कुछ इस तरह मुड़ी रहती हैं कि दूसरे फूलों का पराग उनके भीतर पहुंच ही नहीं सकता। फूल का नर भाग 'पुंकेसर' कहलाता है और मादा भाग 'स्त्रीकेसर'। पुंकेसर में पराग बनता है। जब यह स्त्रीकेसर में पहुंचता है तो परागण हो जाता है। इस तरह बीज बन जाते हैं। स्वपरागण होने के कारण मटर में आनुवंशिक शुद्धता बनी रहती है।

मेंडल ने अपने प्रयोग में अलग-अलग गुणों वाली मटर की किस्मों के ब्याह रचाये। वह एक किस्म की कलियों को धीरे से खोलता और पुंकेसर तोड़ कर उनमें दूसरी किस्म के पराग से परागण करा देता। उसके बाद फूल को कागज के लिफाफे से अच्छी तरह ढक देता ताकि हवा या कीड़े-मकोड़ों से किसी किस्म का पराग न पहुंच पाये। इस तरह अलग गुणों के रहस्य का पता लगाने के लिये उसने अलग-अलग प्रयोग किये। एक-एक प्रयोग में उसने करीब एक-एक हजार पौधों पर काम किया और इसका पूरा हिसाब अपनी कापी में रखा। उसने 8 वर्ष तक लगातार बिना थके-हारे करीब 80,000 मटर के पौधों पर अपने प्रयोग किये। इससे उसकी धुन, अपूर्व साहस और धैर्य का पता लगता है। उसने अपने प्रयोगों के लिये मटर की 34 किस्में इकट्ठा कीं और इनमें से 22 किस्मों को चुना। उसकी सफलता के कारण थे—सुनियोजित ढंग से प्रयोगों की योजना बनाना, उनका पूरा रिकार्ड रखना, गणित से परिणामों का विश्लेषण और वर्षों तक प्रयोग को जारी रख कर भरपूर आंकड़े जमा करना। पीले गोल बीजों वाले पौधों का हरे झुर्रीदार बीजों वाले पौधों से संकरण करके उसे दूसरी पीढ़ी में 556 बीज मिले थे। अनुपात निकालने के लिये ये काफी थे। पौधों में संकरण उससे पहले भी कई वैज्ञानिकों ने किये थे, लेकिन इतने वर्षों तक इतने आंकड़े किसी ने जमा नहीं किये थे। मेंडल के 7 विभिन्न गुणों के जोड़ों पर आधारित प्रयोगों के परिणाम इस प्रकार थे :

गुण	दूसरी पीढ़ी में परिणाम		अनुपात
बीज का आकार	5474 गोल	1850 झुर्रीदार	2.96:1
एल्बूमिन का रंग	6022 पीले	2001 हरे	3.91:1
बीजावरण का रंग	705 गोल	224 सफेद	3.15:1
फलियों का आकार	882 फूले हुये	299 सिकुड़े हुये	2.95:1
फलियों का रंग	428 हरी	152 पीली	2.82:1
फूलों की स्थिति	651 अक्षीय	207 अंतस्थ	3.14:1
तने का आकार	787 लंबे	227 बौने	2.84:1
सभी गुण मिलाकर	14889 प्रभावी	5010 अप्रभावी	2.98:1

पहला प्रयोग

मेंडल ने अपने एक प्रयोग में मटर की दो ऐसी किस्मों को लिया, जिनमें से एक के पौधों में शाखाओं के कोण से फूल निकलते थे अर्थात **अक्षीय** फूल थे। दूसरी किस्म के पौधों में शाखाओं के सिरे से फूल निकले थे अर्थात् **अंतस्थ** फूल थे। उसने इन दोनों किस्मों के बीजों को कई बार उगाया लेकिन हर बार यही पाया कि दोनों किस्में शुद्ध हैं। जिसके फूल **अक्षीय** हैं तो वह अक्षीय फूलों वाले पौधों को ही जन्म देती है। जिस किस्म के फूल **अंतस्थ** हैं उसके पौधों में तने के सिरे पर ही फूल निकलते हैं। मेंडल ने इन दोनों किस्मों का ब्याह रचाया। उसने 10 अलग-अलग पौधे चुन कर 34 संकरण किये। कुछ **अक्षीय** फलों का पराग लेकर उसने **अंतस्थ** फूलों के स्त्रीकेसर में परागण किया। और कुछ **अंतस्थ** फूलों का पराग लेकर **अक्षीय** फूलों में परागण किया। लेकिन, उसने देखा कि परिणाम बिल्कुल एक ही होता है। पहली पीढ़ी के सभी पौधों में **अक्षीय** फूल निकले उसने इनमें स्वपरागण होने दिया। बीज बने। इन बीजों को उसने बो दिया। वह यह देख कर हैरान रह गया कि दूसरी पीढ़ी के कुछ पौधों में अंतस्थ फूल वाले पौधे निकल आये।

तब उसने यह निष्कर्ष निकाला कि पहली पीढ़ी में अंतस्थ फूल निकलने का गुण गायब नहीं हुआ था बल्कि छिप गया था या दब गया था। दूसरी पीढ़ी में उसे 858 पौधे मिले, जिनमें से 651 में **अक्षीय** फूल निकले और 207 पौधों **में अंतस्थ** फूल खिले। इसका औसत अनुपात 3 : 1 है। इसका मतलब मटर के पौधों में फूल निकलने का गुण दो तरह का है—**अक्षीय** और **अंतस्थ**। जब दूसरी पीढ़ी में **अंतस्थ** फूलों का गुण प्रकट हो गया तो इसका अर्थ है—पहली पीढ़ी में भी यह गुण मौजूद था, मगर सामने नहीं आ सका। **अक्षीय** फूल का गुण प्रभावी था, इसलिये वह प्रकट हो गया। उसने अक्षीय फूल के गुण को **प्रभावी** या डोमीनैन्स और **अंतस्थ** फूल के गुण को **अप्रभावी** या रिसेसिव कहा। साथ ही यह भी
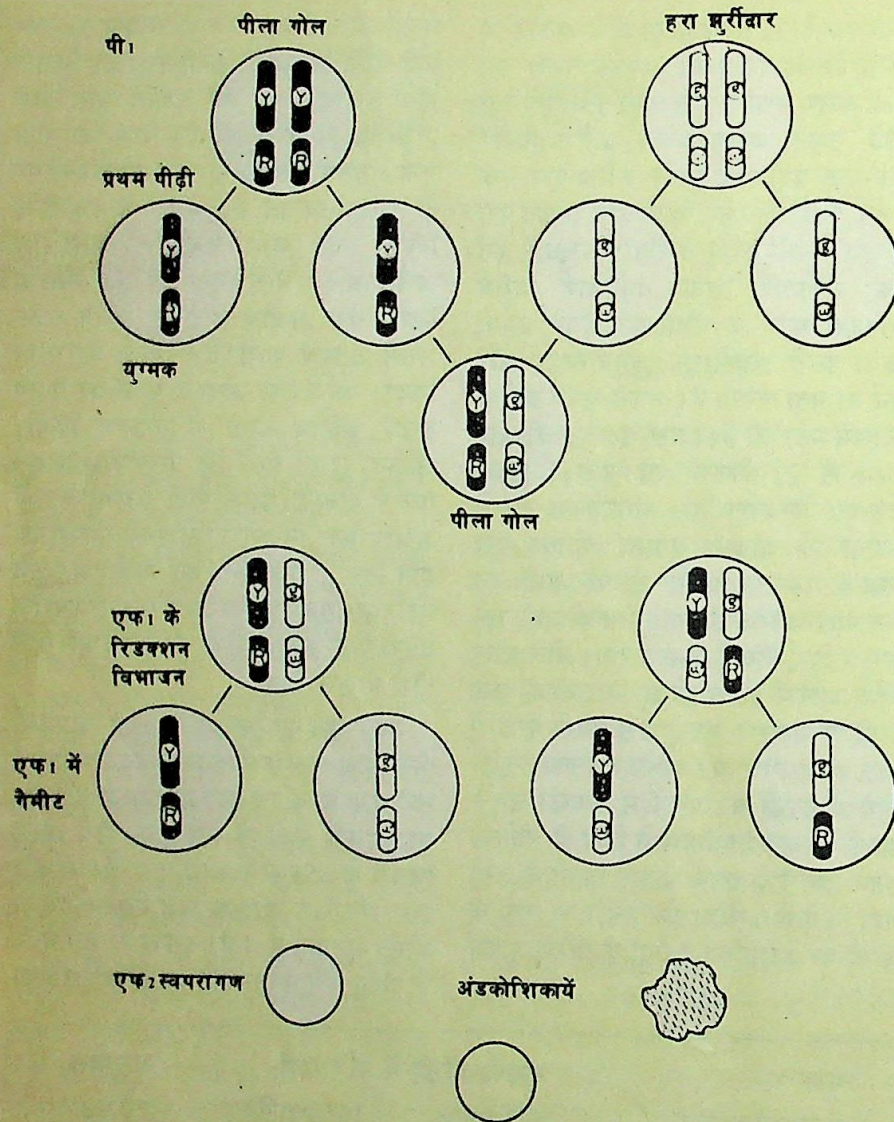
एक पीले गोल मटर का हरे झुर्रीदार बीज से संकरण

कहा कि ये दोनों गुण मां-बाप से अलग-अलग आये होंगे। मेंडल ने जब आंकड़ों का हिसाब लगाया तो देखा कि तीन-चौथाई (3/4) पौधों में **अक्षीय** फूल निकले और एक-चौथाई में (1/4) में **अंतस्थ** फूल। इसका अनुपात 3.14:1 निकला।

अपने प्रयोग से मेंडल इस नतीजे पर पहुंचा कि:

1. मां-बाप के गुणों को विशेष आनुवंशिक इकाइयां संतान में पहुंचाती हैं। इन्हें हम आज **जीन** कहते हैं।
2. प्रत्येक जीव में प्रत्येक गुण का जोड़ा होता है।
3. इनमें से एक गुण प्रभावी होता है और दूसरा अप्रभावी।
4. जिन पौधों में केवल **प्रभावी** गुण होता है उनकी अगली पीढ़ी में केवल **प्रभावी** गुण प्रकट होता है। केवल **अप्रभावी** गुण वाले पौधों की अगली पीढ़ी में अप्रभावी गुण प्रकट होता है।
5. संतान में गुणों के अनुपात का अनुमान लगाया जा सकता है।
6. जब किसी शुद्ध **प्रभावी** गुण वाले पौधे का शुद्ध **अप्रभावी** गुण वाले पौधे से संकरण किया जाता है तो उनकी पहली पीढ़ी में केवल **प्रभावी** गुण प्रकट होता है। लेकिन, संतान में **अप्रभावी** गुण छिपा रहता है। तीसरी पीढ़ी में एक **प्रभावी**, एक **अप्रभावी**, और दो **प्रभावी** तथा **अप्रभावी** दोनों गुण वाले पौधे मिलते हैं। अर्थात शुद्ध **लम्बे** गुण वाले पौधे से अगर शुद्ध **बौने** गुण वाले पौधे का संकरण किया जाये तो **शुद्ध** लंबा पौधा, एक शुद्ध **बौना** पौधा तथा दो संकर पौधे मिलेंगे जो लंबे तो होंगे लेकिन उनमें बौनेपन का गुण भी छिपा होगा।

दूसरा प्रयोग

मेंडल ने अपने एक अन्य प्रयोग में **पीले-गोल** बीजों वाले मटर के पौधों का **हरे-झुर्रीदार** बीजों वाले पौधों से ब्याह रचाया। पहली पीढ़ी में उसे सभी **पीले-गोल** बीज मिले। उसने इन्हें उगाया। तब उसने
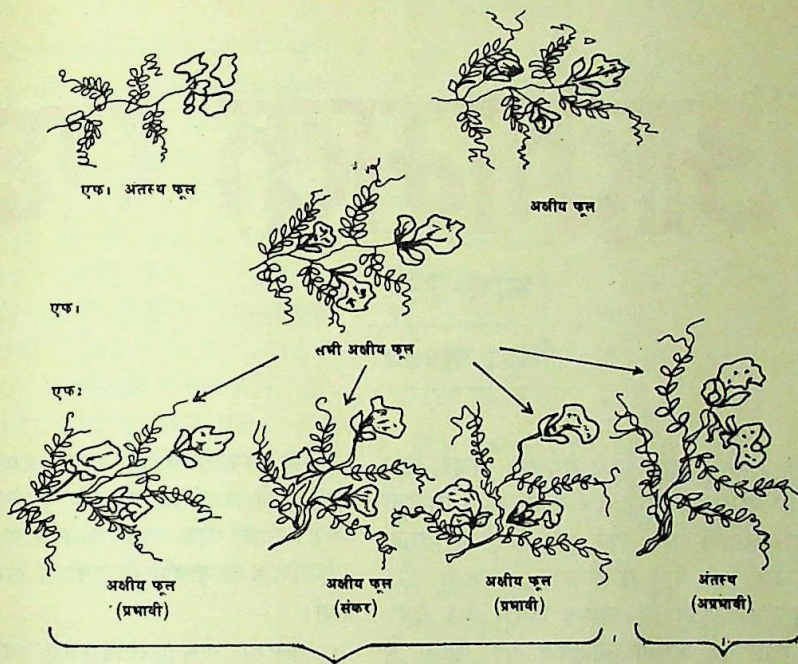
देखा कि दूसरी पीढ़ी के पौधों में 4 प्रकार के बीज बने। दूसरी पीढ़ी के कुल 15 पौधे थे। इनसे उसे 556 बीज मिले। इनमें से 315 **पीले-गोल**, 101 **पीले झुर्रीदार**, 108 **हरे-गोल**, और 32 **हरे-झुर्रीदार** बीज थे। इस तरह इन बीजों का अनुपात 9:3:3:1 होता है।

लेकिन, गौर से देखा जाये तो इनमें भी वही 3:1 का अनुपात है। तीन-चौथाई बीज **पीले** और एक-चौथाई हरे हैं (416 : 140)। इसी तरह 423 **गोल** और 133 **झुर्रीदार** बीज भी 3:1 के ही अनुपात में हैं। इसका अर्थ हुआ कि विशेष गुणों के दो-दो जोड़े होने पर भी वे 3:1 के अनुपात में ही प्रकट हुये। साथ ही दो नये प्रकार के बीज भी बने **पीले-झुर्रीदार** और **हरे-गोल**। इसका मतलब निकला कि जोड़े के दोनों गुण कोई ज़रूरी नहीं कि साथ-साथ रहें। वे अलग होकर भी जोड़ा बना सकते हैं, जैसे **पीले** गुण ने **झुर्रीदार** गुण के साथ जोड़ा बना लिया और **हरे** गुण ने **गोल** गुण का हाथ थाम लिया।

गणित का गोरखधंधा

इस तरह मेंडल ने आनुवंशिकी के नियमों की खोज की। वह अपनी इस चमत्कारी खोज से लोगों को चकित कर देने का मौका खोजने लगा। जल्दी ही उसे यह मौका मिल गया। उसने ब्रून की प्राकृतिक विज्ञान अध्ययन परिषद के सदस्यों की बैठक में 8 फरवरी और 8 मार्च को अपने प्रयोगों की रिपोर्ट पढ़ कर सुनाई। लेकिन, किसी ने ध्यान नहीं दिया। किसी को भी यह ध्यान नहीं था कि वह सीधा-सादा पादरी जो कुछ कह रहा है—उससे कल एक नये विज्ञान का जन्म होगा। मेंडल ने पौधों के संकरण संबंधी अपने दो अनुसंधान आलेख 1866 में ब्रून की प्राकृतिक विज्ञान अध्ययन परिषद् की पत्रिका में प्रकाशित कराये। यूरोप और अमेरिका के प्रमुख पुस्तकालयों में भी यद्यपि यह लेख पहुंचा लेकिन तत्कालीन वैज्ञानिकों ने इसे कोई महत्व नहीं दिया। म्यूनिख विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध वनस्पति विज्ञानी कार्ल-विलहेम नागेली ने मेंडल से पत्र व्यवहार किया, लेकिन वे भी मेंडल के गणित का गोरखधंधा नहीं समझ पाये, न उस पादरी की खोज के महत्व को आंक पाये।

मेंडल को 1868 में मठ का प्रधान पादरी चुन लिया गया। एक पादरी और सीधे-सरल इंसान के रूप में उसे अपने साथी पादरियों और लोगों का भरपूर प्यार मिला, लेकिन वैज्ञानिक के रूप में उसकी प्रतिभा को तब कोई नहीं पहचान सका। वनस्पति विज्ञान, मधुमक्खी-पालन आदि में उसकी जीवन के अंतिम समय तक गहरी रुचि बनी रही। जीवन के अंतिम दिनों में उसे सरकार ने मठ से संबंधित कर-भुगतान के लिये काफी परेशान किया।

समय पलटा

6 जनवरी, 1884 को उस प्यारे पादरी का निधन हो गया। वह अक्सर कहा करता था-"मेरा भी समय आयेगा।" और, उसका समय आया किन्तु उसकी मृत्यु के 17 वर्ष बाद। सन 1900 में जब यूरोप के तीन प्रसिद्ध वनस्पति वैज्ञानिकों—कार्ल एरिख कोरेंस, एरिख शेरमाक वॉन सेसेनेग तथा ह्यूगो द व्री को यह देखकर दंग रह जाना पड़ा कि पौधों के संकरण पर वर्षों मेहनत करके जो नतीजे उन्होंने निकाले हैं—वे 34 वर्ष पहले ही मेंडल द्वारा खोजे और प्रकाशित किये जा चुके हैं। ह्यूगो द व्री ने 25 वर्ष तक परिश्रमपूर्वक अनुसंधान किया था और अपने शोध प्रबंध की एक प्रति प्रसिद्ध वनस्पति वैज्ञानिक प्रोफेसर बेटसन को भेजी थी। प्रोफेसर बेटसन रायल हॉर्टिकल्चरल सोसाइटी में ह्यूगो द व्री के प्रयोगों पर भाषण देने जा रहे थे कि ट्रेन में उन्होंने मेंडल के 1865 में प्रकाशित अनुसंधान आलेख को पढ़ डाला। बैठक में उन्होंने सदस्यों को मेंडल के प्रयोगों के बारे में विस्तार से बताया। अंततः 24 मार्च 1900 को ह्यूगो द व्री (हालैंड), कोरेंस (जर्मनी) और एरिख शेरमाक वान सेसेनेग तीनों वैज्ञानिकों ने एक साथ घोषणा की कि उनकी खोजों का उत्तर योहान मेंडल 1865 में ही दे चुका था।

उसके बाद दुनियां भर में मेंडल के प्रयोगों की धूम मच गई। विश्व भर में उसकी खोजों को मान्यता मिली। उसका नाम **विज्ञान** के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखा गया। उसकी खोजों पर **आनुवंशिकी विज्ञान** की नींव पड़ी। सन 1910 में मेंडल के सम्मान में उसके शहर ब्रून में एक स्मारक स्थापित किया गया। इस तरह वह सीधा-सादा पादरी विश्व का एक महान वैज्ञानिक बन गया। □

[श्री देवेंद मेवाड़ी, 5/109—ए, कृष्णा नगर, सफदरजंग इन्क्लेव, नई दिल्ली- 110 029]

आक्रामक पक्षी

(भाग-2)

पीयूष पाण्डेय

जब हमने संरक्षक से यह अनुरोध किया तो वे हमें उस विशेष खंड में ले गये जहां पक्षियों के लिये तरह-तरह के कीड़े-मकोड़े पाले जाते थे तथा दाना आदि रखा जाता था। वहा रखी कुछ पेटियों पर मेरी दृष्टि पड़ी तो मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उन पेटियों पर "भारत से निर्यातित" लिखा हुआ था। मैंने संचालक महोदय से पूछा कि इन पेटियों में आप भारत से क्या मंगाते हैं तो वे बोले, "पहले तो जरूरत नहीं पड़ती थी, पर इधर दो साल से पता नहीं क्या हो गया है यहां कीड़े और इल्लियां मिलनी बन्द हो गयी हैं जो यहां के बहुत से पक्षियों का आहार हैं। अतः यह सब अब भारत से आयात होता है। पर इसमें बड़ा नुकसान होता है, रास्ते में बहुत से कीड़े मर जाते हैं।"

हम दोनों ने एक दूसरे की ओर बड़ी सार्थक दृष्टि से देखा। इसके बाद हम एक पल भी चिड़ियाघर में नहीं रुके। एक विचार ने दोनों के मन में आकृति लेनी आरंभ कर दी थी।

होटल में पहुंचने पर हम एक बड़ी औपचारिक किस्म की मीटिंग में व्यस्त हो गये। वन मंत्री जो लगभग एक घण्टे से हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे, उनसे भी हमें वे ही सूचनायें मिली जो हम अपने प्रधानमंत्री एवं उनके राष्ट्रपति से जान चुके थे। हमारे लिये अगले दिन घूमने के लिये जीप तथा हेलीकॉप्टर की व्यवस्था हो गयी थी। 'आर्मर्ड वैन' का उपयोग करने से मैंने साफ मना कर दिया था लेकिन दो पुलिसकर्मी तथा दो सशस्त्र सैनिक पूरे अभियान के दौरान हमारे साथ बांध दिये गये थे। अगले दिन फिर रात्रि को आठ बजे मंत्री जी से मिलना था। होटल पहुंच कर हम दोनों तरोताजा होकर दिन भर के विविध अनुभवों और सूचनाओं का विश्लेषण करने बैठ गये। सुमेधा ने अपनी नोटबुक पर संक्षेप में क्रमानुसार सूचनायें लिखनी आरंभ की।

1. प्राप्त सूचनानुसार पक्षी हिंस्र हो गये हैं (लेकिन ऐसा अभी हमने स्वयं नहीं देखा)।
2. राष्ट्रपति भवन का तोता बिल्कुल सामान्य था, उसने हम पर आक्रमण नहीं किया।
3. चिड़ियाघर के सभी पक्षी सामान्य प्रतीत होते थे, हम पर न बाजों ने आक्रमण किया और न मैनाओं ने।
4. चिड़ियाघर के पक्षियों को खिलाने के लिये कीट, इल्लियां आदि पिछले दो वर्षों से भारत से आयात किये जा रहे हैं क्योंकि इस देश में उनका अभाव हो गया है।

निष्कर्ष

1. केवल वन्य जीव (पक्षी) ही प्रभावित हुए हैं, मनुष्य की निगरानी में पल रहे पक्षी नहीं।
2. कहीं इसका सम्बन्ध आहार समस्या से तो नहीं, कीटों का अभाव किस ओर संकेत करता है? पता नहीं।

तत्पश्चात् भोजन करके हम दोनों जल्दी से अपने-अपने कमरों में जाकर सो गये। आगे एक लम्बा थकावटपूर्ण परन्तु रोमांचक दिन हमारी प्रतीक्षा कर रहा था।

मैंने डा. घोष द्वारा दिये हुए उपकरण जीप में रख लिये और उन्हें समायोजित कर चार स्पीकर जैसी आकृतियां जीप के बोनट तथा पिछले हिस्से पर लगा दीं। इनमें चुम्बक लगे थे जिससे वे स्वतः चिपक गयीं, इनमें लगे तारों को मैंने जीप पर रखे उपकरणों से जोड़ दिया।

मैंने सैनिकों की ओर दृष्टिपात करते हुए कहा, "आप हमारे पीछे वाली जीप में अपनी-अपनी लाइट-मशीनगन, अश्रु गैस आदि सामग्री लिये हुए हमारे पीछे-पीछे आयें, परन्तु मेरा संकेत मिलने पर अथवा किसी अत्यन्त विकट आपातस्थिति की दशा में ही आप इनका प्रयोग करेंगे। मुझे डा. घोष के शोध पर पूरा भरोसा है, इन उपकरणों के होते शायद आपको इन हथियारों का प्रयोग करने का कोई अवसर हाथ न आये।

"सुमेधा, इस उपकरण से पराश्रव्य तरंगें निकलती हैं जो आवर्धित होकर जीप पर लगे ट्रान्सड्यूसर से वायुमण्डल में फैलेंगी। इससे केवल एक ही आवृत्ति नहीं कई आवृत्तियों की पराश्रव्य तरंगें निकलती हैं जिन्हें हम तो नहीं सुन सकते परन्तु पशु-पक्षी इससे आतंकित हो जाते हैं। दूसरे इन कैसेट में पक्षियों की वे आवाजें ध्वनिमुद्रित की गयी हैं जिन्हें वे भयभीत और आतंकित होने की अवस्था में निकालते हैं तथा इनसे उसी जाति के ही नहीं बल्कि दूसरी जाति के पक्षी भी

खतरा भाँपकर पलायन कर जाते हैं। अच्छा अब चलें!''

हमारी जीप एक झील के समीप से गुजरी, नवम्बर का महीना था, साइबेरियाई सारसों का दक्षिण की ओर प्रव्रजन आरम्भ हो गया था, झील के किनारे सैकड़ों की संख्या में सारस डेरा डाले हुए थे। सारसों से हम दस मीटर की दूरी पर रहे होंगे कि दस बारह सारस यकायक पंख फड़फड़ाते हुए उड़ गये। हम सब भयभीत हो अपनी गर्दनें सिकोड़कर सिरों को हाथों से ढ़ककर एक दम जमीन पर लेट गये। इन सारसों की आहट से फिर 20 25 सारस और उड़े फिर सबके सब आकाश में एक वृत्ताकार मार्ग पर घूमते हुए पुनः तट पर विभिन्न जगहों पर आकर जम गये। किसी ने हम पर आक्रमण नहीं किया। हम सहज भाव से सारसों की पंक्ति की ओर बढ़े, हमसे करीब बीस मीटर के फासले पर अब हमारे गार्ड थे जो आगे नहीं बढ़ रहे थे।

सुमेधा ने यकायक एक सारस के पास दबे पांव जाकर उसे पकड़ लिया, वह आवाजें करता हुआ पंख तथा पैर फड़फड़ाने लगा, सुमेधा ने उसे धीरे-धीरे सहलाया और पुचकारा। उसका फड़फड़ाना कम हो गया मानों कोई पालतू पक्षी था, फिर सुमेधा ने उसे मुक्त कर दिया। उसने डायरी निकाली और लिखना शुरू किया।

साइबेरियाई प्रव्रजनशील सारस भी 'प्रभाव' से मुक्त।

जीप ज्यादा से ज्यादा पचास मीटर गयी होगी कि पिछली जीप में एक सैनिक बड़ी जोर से चिल्लाया और उसके बाद अंधाधुंध गोलियों की आवाज आई। न जाने कहां से एक मैना इतनी तेजी से आयी मानों कोई पत्थर फेंका गया हो और इसके पूर्व कि कोई समझ पाता कि क्या हो रहा है और संभल पाता कि वह उस सैनिक के कान का एक हिस्सा नोंचकर उसी गति से गायब हो गयी। गोलियों की बौछार संयोग से उसका कुछ न बिगाड़ सकी। हमने तुरन्त उसका प्राथमिक उपचार किया और आगे रवाना होने से पूर्व मैंने पराश्रव्य तरंग उत्पन्न करने वाले उपकरण को चालू कर दिया तथा उसमें ऐसी व्यवस्था कर दी कि वह दस सेकण्ड तक विविध आवृत्तियों की पराश्रव्य तरंगें फेंकता तथा फिर इतने ही समय के लिये शान्त हो जाता, यही चक्र चलता रहता। ध्वनि का आयाम (एम्प्लीट्यूड अथवा वोल्यूम) महत्तम से केवल आधे अंक पर था। पर जैसे ही उपकरण को चालू किया, आसपास के वृक्षों पर बैठे ढेर सारे पक्षी कलरव करते ऊंचा उड़ गये। एक झाड़ी के पीछे छिपी एक बिल्ली व उसके दो बच्चे बड़ी द्रुत गति से आवाजें करते हुए भागे। कुछ आगे सड़क के किनारे बैठा एक कुत्ता कुछ ऐसे अंदाज से टिटियाता हुआ भागा मानों उस पर किसी ने लाठी से प्रहार किया हो।

हमारे साथ के सैनिकों ने इस पर विद्रूप हास किया पर सुमेधा व मैं संजीदा थे तथा हमें मन ही मन ग्लानि हो रही थी कि हम अपनी सुरक्षा के लिये पशु-पक्षियों के जीवन के साथ छेड़छाड़ कर रहे हैं। तभी मेरे मन में

विचार आया कि यह समय भावनाओं में बहने का नहीं है क्योंकि असली समस्या इससे कहीं गंभीर है।

खेत में एक विचित्र दृश्य देखकर हमने दूर से ही जीप रोक दी। चार कौवे एक कुत्ते पर बार-बार टूट पड़ते थे और उन्होंने उसे लहूलुहान कर दिया था वे उसका मांस नोंचकर खा रहे थे। कुत्ते को जीप में डालकर हम आगे बढ़े। तभी हम एक सीढ़ीनुमा विशाल खेत के बगल से गुजरे, उसमें चटख हरे रंग की कोई फसल खड़ी थी तथा सुर्ख लाल रंग के कई फल उन पौधों में लगे थे ड्राइवर नें बताया कि वह मिर्च का खेत है जो उनके देश की एक प्रमुख फसल थी। इतने बड़े खेत में मिर्च लगी मैंने पहले नहीं देखी थी। ड्राइवर बताता जा रहा था कि कौवे इस फसल को बहुत नष्ट करते हैं।

"सुमेधा, देखो कैसी अज़ीब बात है, यहां गौरैया बिल्कुल नज़र नहीं आती।" इससे पहले कि वह कुछ कहती ड्राइवर बोल उठा, "गौरैया कहां से बचतीं, जब से पक्षी बिगड़े हैं, सबसे पहले उन्होंने इन्हीं का सफाया किया।"

जीप को खेत की मेंड़ पर लगाकर तथा पराश्रव्य तरंगों के आयाम के महत्तम करके और पक्षियों की चीखों वाले कैसेट को हल्के आयाम पर चालू कर हम दोनों खेत में आगे बढ़े, सैनिक जीप में ही बैठे रहे।

खेत का दृश्य बड़ा ही चौंका देने वाला था, वहां कीट-पतंगे, तितलियों, मक्खियों, मकड़ियों का लगभग पूर्ण अभाव था। "सुमेधा, मेरे विचार से अब एक और खेत देखने के बाद तुरंत वापस चला जाय तथा वन मंत्री और कृषि मंत्री से भेंट की जाय।"

राजधानी लौटकर हम लोगों ने उच्च-स्तरीय समिति में विचार विमर्श किया मैंने कहा, "हम लोग पक्षियों के विभिन्न व्यवहार का कारण खोज चुके हैं तथा उसका समाधान लेकर यहां आये हैं, पर उसे बताने से पूर्व मैं वन तथा कृषि मंत्री से कुछ जानकारी लेना चाहता हूं। क्या पिछले चार-पांच वर्षों में आपने कृषि क्षेत्र में कोई नयी नीति अथवा किसी नये प्रयोग को लागू किया है?"

इससे पूर्व कि कृषि मंत्री बोलते अध्यक्ष

महोदय ने मुझे सूचित किया, "जनरल डिसूजा ने पूरी स्थिति पर विचार करने के बाद प्रस्ताव रखा है—कि इसका केवल एक समाधान है— सैनिक सही निशाना लगाकर पक्षियों को मार दें। आरम्भ में हम उन पक्षियों के शवों को शहर में जगह-जगह लटका सकते हैं जिससे दूसरे पक्षी डर जायें। हम पचास हजार सैनिकों के लियेअनुरोध कर चुके हैं।"

जिस बात का मुझे संदेह था वही होने जा रही थी, मुझे आभास हो चुका था कि मेरा प्रस्ताव सुनने की इच्छा यहां किसी में नहीं है क्रियान्वयन तो दूर की बात है। मैं ऐसा सोच रहा था कि वन मंत्री बड़े साहस का परिचय देते हुए बोले, "निर्णय हो जाने के बाद भी यदि प्रोफेसर पाण्डेय की बात सुन ली जाय तो मेरी राय में इससे हमें शायद भविष्य में कोई लाभ मिल जाय।"

अध्यक्ष का इशारा पाकर कृषि मंत्री ने झिझकते हुए बताया, "प्रोफेसर आप सही नीतजे पर पहुंचे हैं। हमने अवश्य ही विगत पांच वर्षों में कृषि क्षेत्र में एक क्रांति ला दी है जिसके लिये हम संयुक्त राष्ट्र संघ के आभारी हैं। हमें कृषि की उन्नति और विकास के लिये संयुक्त राष्ट्र संघ के खाद्य व कृषि संगठन द्वारा चार अरब डालर का अनुदान मिला था। यह अनुदान हमें कृषि उपकरण, नये अधिक उपज देने वाले संकर बीज तथा कृषि अनुसंधान हेतु मिला था। हमने इस धन से उर्वरक तथा कीटनाशक रसायन भी खरीद लिये, आधा-आधा धन दोनों में व्यय किया गया। मेरा अनुमान है इतने धन से हमारे देश में लगभग एक करोड़ मीट्रिक टन उर्वकर खरीदे जा सकते हैं तथा विभिन्न प्रकार के कीटनाशकों की भारी मात्रा।

"एक क्षण रुकिये, मैं बताता हूं कि उर्वरकों तथा कीटनाशकों की इतनी मात्रा आपके लिये कितने वर्ष के लिये पर्याप्त होगी।" मैंने अपना कम्प्यूटर निकाल कर गणना शुरू की।

"इस देश का क्षेत्रफल लगभग पचास हजार वर्ग किलोमीटर है तथा कृषि में प्रयुक्त भूमि इसका लगभग पांच प्रतिशत यानि पांच हजार वर्ग किलोमीटर है और उर्वरक आपने खरीदे हैं उनका तो आप जीवन पर्यन्त तक उपयोग नहीं कर पायेंगे।"

"क्यों?", क्यों?" कहते हुए कृषि तथा वनमंत्री चौंकते हुए से उठे।

क्योंकि केवल 20 ग्रा. प्रतिवर्ग मीटर के हिसाब से विभिन्न उर्वरकों के मिश्रण का प्रयोग आपके लिये कम से कम दस वर्ष का काम दे जायेगा, क्योंकि उसका उपयोग सर्वत्र बड़े व्यापक पैमाने पर होगा।"

सभी परेशान से नज़र आने लगे।

सुमेधा ने इस बीच कुछ और गणनायें मेरे कम्प्यूटर पर कर डाली थीं। मेरा इशारा पाकर वह बोली, "अनुदान की बची आधी धनराशि से यदि विभिन्न प्रकार के कीटनाशक खरीद लिये जायें तथा उनसे सही घोल तैयार किये जायें और उनका प्रयोग इस वर्ष पूरे कृषि क्षेत्र पर किया जाय तो पूरे क्षेत्र पर कीटनाशकों के घोल की ढाई सेण्टीमीटर ऊंची तह बन जायेगी। इतना कीटनाशक औसतन बीस वर्ष में उपयोग किया जा सकता है वह भी तब जब आवश्यक हों तथा पिछली बार के छिड़काव का प्रभाव समाप्त हो चुका हो।"

सारा मामला कुछ-कुछ साफ होता जा रहा था, दोनों मंत्रियों की चुप्पी बहुत कुछ कह रही थी। अध्यक्ष के स्वर ने कमरे का मौन भंग किया।

"कृषि मंत्री कृपया बतायें कि उर्वरकों तथा कीटनाशकों का उपयोग किस प्रकार किया जा रहा है और अब उनमें से कितनी सामग्री शेष है।"

कृषि मंत्री की आवाज सुनने के लिये अब विशेष यत्न करना पड़ रहा था, काफी देर रुककर वे बोले, "श्रीमान जी को सम्भवतः याद नहीं पड़ रहा, लगभग छः मास पूर्व हमने अपनी रिपोर्ट भेजी थी कि सभी उर्वरक तथा कीटनाशक डेढ़ वर्ष के अन्दर विभिन्न चरणों में सरकारी योजनाओं के अन्तरात "कृषि-उन्नति-कार्यक्रम" के तहत पूरी तरह इस्तेमाल कर लिये गये।"

(क्रमशः)

[श्री/ पीयूष पाण्डेय, निदेशक, जवाहर प्लैनेटेरियम, आनन्द भवन, इलाहाबाद- 2 उ.प्र.]

वर्ष पहले

सितम्बर १९५२

सिरका बनाने का छोटा उद्योग

देश में, विशेषकर नगरों में, सिरका बनाने के उद्योग के लिये काफ़ी क्षेत्र है। सिरका बनाने का एक सरल यंत्र सैंट्रल फ़ूड टैकनोलॉजिकल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, मैसूर, में तैयार किया गया है। यह यंत्र २४ घंटे में १०-१५ बोतल सिरका तैयार कर देता है। एक बोतल सिरके की लागत १०-१२ आने पड़ती है। बाज़ार में साधारण सिरका इससे लगभग दूने मूल्य पर बिकता है। एक यंत्र को बनाने वाली आवश्यक वस्तुएं लगभग पन्द्रह रुपये में ख़रीदी जा सकती हैं।

घरेलू सिरका यंत्र

नेशनल कैमिकल लेबोरेटरी

नेशनल कैमिकल लेबोरेटरी, पूना, वह कड़ी है जो देश की वैज्ञानिक संस्थाओं और देश के उद्योगों को आपस में जोड़ती है। देश के औद्योगिक विकास में रसायनिक तरह की खोजबीनों से सहायता देने वाली यह सबसे महत्त्वपूर्ण संस्था है। नेशनल कैमिकल लेबोरेटरी, पूना नगर से पांच मील दूर पर्वतों की मोहक प्राकृतिक शोभा के बीच हवादार ऊंचाई पर गनेशखिंड रोड से पश्चिम की ओर बनाई गई है। लेबोरेटरी की शानदार चौमंजिली इमारत ६४० फ़ीट लम्बी और २०० फ़ीट चौड़ी है और उसकी ४७५ एकड़ भूमि उसके चारों ओर फैली हुई है।

पेटेन्ट

कमाये चमड़े का रंग हल्का करने में हर्र का नई रीति से उपयोग

भारतीय पेटेन्ट नं० ४३५४३; २५ जुलाई, १९५०

कमाये हुए चमड़े तथा किप्स (कम आयु के पशुओं का चमड़ा) के विदेशी व्यापार से भारत को लगभग २५ करोड़ रुपये प्रतिवर्ष की आमदनी होती है। कमाने के बाद इनका रंग जितना हल्का और प्राकृतिक रंग के निकट होता है उतना ही इनका मूल्य अधिक होता है। वनस्पति छालों से चमड़ा कमाने के बाद उसके रंग को हल्का करने के लिये हर्र के पानी का इस्तेमाल किया जाता है। हर्र का पानी बनाने के लिये हर्रों को कूट-पीस कर गर्म पानी की काफ़ी मात्रा में भिगो देते हैं और रात भर उसी में रहने देते हैं। दूसरे दिन इसमें इतना और पानी मिलाते हैं कि निथरा हुआ हर्र का पानी ४०° बार्कोमीटर शक्ति का हो जाये। कमाई हुई खालों को इस पानी में डुबो-डुबो कर एक गड्ढे में रख देते हैं और उन पर शेष पानी को डाल देते हैं। छत्तीस घंटे रखा रहने के बाद खालों को निकाल कर धो लिया जाता है।

ऊपर लिखे तरीके से चमड़े का रंग जितना हल्का हो जाता है उससे भी हल्का रंग प्राप्त करने के लिये हर्र का पानी बनाने की एक नई विधि निकाली गई है।

खराब गुर्दों का सहारा

अरुण जोशी

डाक्टर साहब आज सवेरे से ही व्यस्त थे। दो एक डायलिसिस वे अब तक कर चुके थे। नीना डायलिसिस रूम के बाहर बने प्रतीक्षालय में अपनी सहेली के साथ चिंतातुर बैठी थी क्योंकि अब जिस मरीज का डायलिसिस होना था वो उसकी सहेली उमा के पिताजी ही थे। उसके पिता के पास उमा की मां परेशान-सी बैठी थी। तभी डा. साहब ने उमा के पिताजी को डायलिसिस रूम में आने को कहा। डाक्टर की आवाज से मां-बेटी दोनों के ही चेहरे पीले पड़ने लगे। उनकी हालत देखकर नीना ने डाक्टर से उनको ढाढस बंधाने का आग्रह किया जिससे वे मानसिक रूप से परेशान न होती रहें।

नीना का इशारा समझ कर मुस्कराते हुये डाक्टर बोले, "मैं जरा मरीज को डायलिसिस रूम में ठीक तरह से व्यवस्थित कर आऊं फिर आपसे मिलता हूं।"

लगभग आधे घंटे बाद डाक्टर डायलिसिस रूम से बाहर आये और बोले "हां, नीना तुम कुछ पूछ रही थीं।"

नीना एकदम बोल पड़ी "डाक्टर साहब, यह डायलिसिस क्या है? इसका क्या अर्थ है?"

"डायलिसिस शब्द की खोज थामस ग्राहम ने अपने अध्ययनों के दौरान की थी। उन्होंने अपने शोध कार्यों में पाया कि ऐल्बुमिन लेपित चर्म पत्र से केवल क्रिस्टलीकृत पदार्थ ही विसरित होकर बाहर पानी में जाते हैं। इस क्रिया को उन्होंने डायलिसिस (यह शब्द ग्रीक भाषा से लिया गया है जिसमें 'डाय' का अर्थ है आर-पार और 'लेसिन' का अर्थ जाना) नाम दिया। हिन्दी में इसे अपोहन कहते हैं। आज डायलिसिस गुर्दे की बीमारी में काम आने वाली एक सुस्थापित तकनीक है। गुर्दे के कार्यों में व्यवधान आने पर या गुर्दों की कार्यक्षमता घट जाने पर या गुर्दों के खराब होने की स्थिति में इसका प्रयोग किया जाता है।"

"डाक्टर साहब डायलिसिस कैसे की जाती है?" नीना ने पूछा।

"इसकी प्रायः दो विधियां हैं—हीमोडायलिलिस और पेरिटोनियल डायलिसिस।"

नीना बीच में ही बोल पड़ी, "मैंने सुना है कि पेट में एक नली डालकर भी डायलिसिस की जा सकती हैं, क्या ऐसा हो सकता है डाक्टर।"

"हां! इस क्रिया को ही तो 'पेरिटोनियल डायलिसिस' कहते हैं। इसमें उदर की झिल्ली यानि पेरिटोनियम झिल्ली का डायलिसिस झिल्ली के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसमें पेट की त्वचा के अन्दर प्रवेश कराई गई नली की सहायता से पेट में डायलिसिस द्रव डाला जाता है। एक बार में पेट में 3-4 लीटर द्रव आ सकता है। इसके बाद बाहय कोशिकीय द्रव तथा पेरिटोनियल गुहा में भरे द्रव के बीच संतुलन बनाने के लिये रोगी उचित समय के लिये वैसे ही छोड़ दिया जाता है, जैसा कि डायलिसिस मशीन में। यह तकनीक दर्द रहित है और आवश्यकता पड़ने पर इसे वर्षों तक चालू रखा जा सकता है। लेकिन इसके लिये मुलायम कैथेटर का प्रयोग आवश्यक होता है। इस विधि को 'कांटिन्युअस एंबुलेटरी पेरिटोनियल डायलिसिस' कहते हैं। इस विधि में रोगी की पेरिटोनियल गुहा में द्रव भेजकर कैथेटर को बंद किया जा सकता है और एंबुलेटरी मोड़ में क्रिया जारी रख कर 'डायलाइजर' या अपोहक को बदला जा सकता है।"

"तो हीमोडायलिसिस में क्या करना होता है, डाक्टर?"

"हीमोडायलिसिस तकनीक में अर्ध-पारगम्य झिल्ली (युक्ति) की सहायता से खून में से मूत्र के विषैले तत्वों को बाहर निकाला जाता हे। अब इस तकनीक को अति पारगम्य झिल्लियों के प्रयोग से अति विकसित किया गया है। ये झिल्लियां कोशिका गुच्छ के स्तर की झिल्लियों के समान होती हैं। इनके प्रयोग से बड़े अणुभार वाले पदार्थों को भी बाहर निकाला जाता है। इसके बारे में मैं तुम्हें विस्तार से बताऊंगा।"

"लेकिन डाक्टर साहब आपको कैसे पता चलता है कि रोगी की डायलिसिस कब करनी चाहिये?"

"हां, तुमने यह बहुत अच्छा प्रश्न पूछा है। जब रोगी में यूरेमिक कोमा (सम्मूर्छा), पेरिकॉर्डाइटिस तथा हृदय प्रवाह, हाईपरकेलेमिया—बारम्बार तथा अनियंत्रित, द्रव अतिभरण या पल्मोनरी एडेमा, तीव्र ओलिगिरिया अथवा ऐलुरिया, (पेशाब का काफी कम होना या बिल्कुल बन्द हो जाना) परिवर्ती उपांग के बिना, अनियंत्रित सांघानिक उच्च रक्तचाप, लाक्षणिक परिधीय तंत्रिका चिकित्सा कुछ निश्चित औषधिविषाक्तता, बार्बिट्यूरेट जैसे स्पष्ट संकेत दिखायी दें तो डायलिसिस करना अति आवश्यक हो जाता है।

कुछ रोग निरोधी संकेत इस प्रकार हैं :

महत्वपूर्ण यूरेमिक लक्षण : मितली आना, उल्टियां होना, हड्डियों की बीमारियां, अपर्याप्त वृद्धि एवं अपर्याप्त लैंगिक विकास, जीवन के रहन-सहन में परिवर्तन। असाधारण प्रयोगशाला परिणाम इस प्रकार हैं: अति अम्लरक्तता, ऐजोटेमिया, सामान्यतः क्रियेटिनिन की मात्रा 8-12 मिग्रा. से अधिक, रक्त यूरिया नाइट्रोजन 100-120 मिग्रा., रक्त यूरिया 200 मिग्रा. क्रियेटिनिन पृथक्करण 5 घन सेंमी. प्रति मिनट से कम।"

"हां! डा. साहब अब आप मुझे हीमोडायलिसिस के बारे में बताइये।"

"इस पद्धति में विसरण क्रिया द्वारा किसी अर्ध पारगम्य झिल्ली (सेलोफेन, सेल्युलोस एसिटेट, पोलीएक्रिल नाईट्रिल या पोलीमिथाईल मेथाक्राईलेट) द्वारा अवांछित पदार्थ रक्त से निकाले जाते हैं तथा वांछनीय पदार्थ मिलाये जाते हैं। इस झिल्ली के एक ओर से निरंतर रक्त प्रवाहित होता रहता है और दूसरी तरफ सफाईकारी द्रव–डायलाइसेट या अपोहक द्वारा गंदे, अवांछित पदार्थ बाहर निकाले जाते हैं। यह क्रिया बिल्कुल ग्लोमेरुलस निस्यंदन के समान ही होती है।"

"डा. साहब डायलिसिस मशीन कितनी बड़ी होती है।"

"हीमोडायलिसिस उपकरण में 3 घटक होते हैं-रक्त प्रसारित करने की प्रणाली, कम्पोजिशन तथा डायलाइसेट को प्रवाहित करने वाली प्रणाली और डायलाइजर। रक्त को (200-250 मिली./मिनट) रोलर पम्प की सहायता से डायालाइजर में पहुंचाया जाता है। डायलाइसेट का संघटन प्लाज्मा द्रव के समान होता है। नलिकाओं से प्रसारित होने वाले रक्त में हिपैरिन मिलाया जाता है, ताकि रक्त का थक्का न बन जाये। इसका संवहन निम्न प्रकार से किया जा सकता है 1. फीमोरल शिरा का केनुलेशन (आपातकालीन डायलिसिस), 2. धमनी शिरा का शंट तैयार करके और 3. धमनी शिरा फिस्टुला से, ये दोनों पुरानी बीमारी के लिये प्रयुक्त किये जाते हैं?"

"डा. साहब एक मरीज को डायलिसिस पर कितनी बार रखने की आवश्यकता होती है।"

फिस्टुलायुक्त इस रोगी की नस में डायलिसिस के लिये सुई लगाई गई है।

"अधिकतर रोगियों को हर सप्ताह 10-15 घंटे के लिये विभाजित डायलिसिस की आवश्यकता होती है। हीमोडायलिसिस का एक लाभ यह भी है कि इसमें कम समय लगता है तथा रोजमर्रा की जिंदगी में कोई ज्यादा व्यवधान नहीं आता है। अब तो हीमोडायलिसिस घर पर भी किया जा सकता है परन्तु इसके लिये रोगी को किसी की सहायता लेनी पड़ती है। इस सुविधा के कारण ही हीमोडायलिसिस अधिक प्रचलित है। हां, अब तो पोर्टेबल डायलिसिस मशीनें भी उपलब्ध हैं जिन्हें मरीज इधर-उधर जाते समय अपने साथ रख सकते हैं। लेकिन वर्तमान समय में यह मशीन भारत में उपलब्ध नहीं है।"

यूरिमिया से ग्रस्त रोगियों के लिये प्रायः हीमोडायलिसिस ही ठीक होती है। इसके उपचार से गुर्दे की लंबी बीमारी पर काबू पाया जा सकता है। हालांकि आजकल कृत्रिम गुर्दे भी उपलब्ध हैं, लेकिन कृत्रिम गुर्दा आंशिक रूप से ही असली गुर्दे के समान काम कर सकता है। इससे बहुत से अवांछित पदार्थ बाहर आ जाते हैं, फिर भी कुछ अंतःस्रावी अपापचयी तकलीफें रोगी को होती रहती हैं जिन्हें दूर करने के लिये पारम्परिक तरीके अपनाने ही पड़ते हैं।"

"डा. साहब, क्या हीमोडायलिसिस के कुछ दुष्प्रभाव भी होते हैं?"

"हां, अवश्य। हीमोडायलिसिस से होने वाले दुष्प्रभाव को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है–डायलिसिस से ही संबंधित तीव्र समस्यायें और बहुत ज्यादा समय तक डायलिसिस लेने से उत्पन्न पुरानी समस्यायें। पहले प्रकार की समस्याओं में निम्न रक्त चाप, रक्त स्राव, मांसपेशियों में खिंचाव, पायरोजन प्रतिक्रिया, डायलिसिस का असंतुलन तथा दूसरे प्रकार में रक्त की कमी, आस्लियोडिस्ट्रोफी और मानसिक विकार की समस्यायें पैदा हो सकती हैं।"

"क्या पेरिटोनियल डायलिसिस से भी ऐसे ही विकार उत्पन्न होते हैं?"

"जहां तक पेरिटोनियल डायलिसिस का प्रश्न है इसका उपयोग स्टायलेट प्रकार के कैथेटर की सहायता से 24से72 घंटों तक

किया जा सकता है। इसके द्वारा 1-2 लीटर तक अवांछनीय पदार्थ शरीर से बाहर निकाले जा सकते हैं। आवश्यकता पड़ने पर नैदानिक या रासायनिक सुधार भी किये जा सकते हैं। इस प्रकार के डायलिसिस में एंटी-कोएगुलेशन और वेस्कुलर शल्य क्रिया की आवश्यकता नहीं होती। इस प्रकार की डायलिसिस तकनीक आज असंख्य रोगियों को जीवनदान दे रही है।''

डा. साहब के चुप होते ही उमा बोल पड़ी, ''डा. साहब, क्या डायलिसिस पर रखे गये व्यक्ति को विशेष भोजन देना चाहिये।''

''हां, डायलिसिस पर रहने वाले मरीजों के लिये भोजन के बारे में कुछ प्रतिबंध आवश्यक हैं। विशेषकर उच्च रक्त चाप वाले मरीजों को नमक और प्रोटीन (मांस, मछली) कम मात्रा में तथा कार्बोहाइड्रेट उचित मात्रा में लेने चाहिये।''

कैसे होती है डायलिसिस : डायलिसिस मशीन में दाबमापी , बुलबुला ग्राही , हिपैरिन , कृत्रिम गुर्दा या हीमोडायलाइजर पंप और ऊष्मक , उपयोग किये गये डायलिसिस द्रव का टैंक , कनस्तर , कांच तंतु को सहारा देती , सेलोफेन नली , रोगी के रक्त से भरी सेलोफेन नली होती हैं।

पोर्टेबल डायलिसिस मशीन, जिसे रोगी अपनी कार में और घर में साथ रख सकता है। यह बैटरी की सहायता से कार्य करती है।

नीना ने फिर पूछा, ''जो मरीज एक बार डायलिसिस करवा चुका हो क्या उसे जिंदगी भर डायलिसिस पर निर्भर रहना पड़ता है।''

''संभवतः हां। लेकिन प्रत्यारोपण के लिये यदि उपयुक्त गुर्दा मिल जाये तो समस्या हल हो सकती है। लेकिन अधिकांश रोगी प्रत्यारोपण की अपेक्षा डायलिसिस करवाना उचित समझते हैं और अपने को उसी के अनुरूप ढाल लेते हैं। नीना, तुम्हें और कुछ पूछना है क्या?''

''हां! डाक्टर साहब, सिर्फ एक प्रश्न और जैसा कि आपने बताया कि घर पर भी डायलिसिस मशीन द्वारा रोगी की डायलिसिस की जा सकती है लेकिन मैंने सुना है कि इस स्थिति में रोगियों को प्रायः संक्रमणकारी हिपेटाइटिस या यकृत शोथ हो जाता है। क्या यह परिवार के अन्य सदस्यों के लिये भी हानिकारक हो सकता है?''

''हां नीना, मैं तुम्हें यही बताने जा रहा था और दुर्भाग्यवश इसका उत्तर है हां। यह घर के अन्य सदस्यों के लिये हानिकारक हो सकता है। इस का कारण यह है कि 4 प्रतिशत रोगी जो मेन्टनेंस डायलिसिस पर होते हैं उन्हें वाइरसीय हिपेटाइटिस का संक्रमण हो जाता है। यद्यपि यह संक्रमण बहुत हल्का और परोक्ष होता है लेकिन रोगी के संपर्क में रहने वालों के लिये हानिकारक हो सकता है। इससे बचने के लिये रोगी के रक्त के संपर्क में आने वाली वस्तुओं यथा सुई, रेजर, ब्लेड तथा अन्य उपकरणों से बचना चाहिये। लेकिन याद रखें बहुत से रोगी वर्षों से डायलिसिस मशीन पर बिना किसी परेशानी के अपना उपचार करवा रहे हैं।''

इतना कह कर डाक्टर साहब डायलिसिस रूम में चले गये और नीना ने कृतज्ञ मन से उनका धन्यवाद किया। □

[डा. अरुण जोशी, राम मनोहर लोहिया अस्पताल, नई दिल्ली- 110001]

[प्रस्तुति : श्रीमती माधुरी, 51, राजा इनक्लेव सोसायटी, रोड नं. 44, पीतमपुरा, दिल्ली- 34]

खिलाड़ी की पहचान सुदृढ़ शरीर

सुभाष लखेड़ा

इस तथ्य से हम परिचित हैं कि उच्च-स्तरीय खिलाड़ियों की शारीरिक बनावट सामान्य लोगों से कुछ अर्थों में भिन्न होती हैं। इतना ही नहीं, विभिन्न खेलों से जुड़े खिलाड़ियों में भी यह भिन्नता देखने को मिलती है। यही कारण था कई सौ वर्षों तक खेल अनुशिक्षक (कोच) विभिन्न खेलों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुये शरीर की बाह्य आकृति के आधार पर अपने शिष्य खिलाड़ियों का चयन करते रहे।

हमारा शारीरिक आधार-कंकाल : 1. खोपड़ी या स्कल, 2. क्लेविकल, 3. स्केपुला, 4. स्टर्नम या उरोस्थि, 5. रिब्स, 6. ह्यूमरस, 7. कशेरुक दंड, 8. पेल्विस या अंस मेखला, 9. रेडियस, 10. अल्ना, 11. प्यूबिक या श्रोणिमेखला, 12. फीमर, 13. मेटाकार्पेल्स, 14. फैलेन्जेन्स, 15. पटेल्ला, 16. टिबिया, 17. फीबुला, 18. मेटाटार्सेल्स, 19. फैलन्जेज.

बहरहाल, यद्यपि किसी युवा की कद-काठी का मात्र दृष्टि से मूल्यांकन कर मोटे तौर पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वह किस खेल विशेष के लिये उपयुक्त है, मानवमिति या नृमिति विज्ञान के कारण अब यह कार्य दृष्टि के बजाय शारीरिक मापों के माध्यम से नियमबद्ध तरीकों से किया जा सकता है। आज किसी बच्चे, किशोर या वयस्क व्यक्ति का शारीरिक मूल्यांकन करने के लिये नृमिति वैज्ञानिक (एन्थ्रोपोमीट्रिस्ट) उसकी ऊंचाई, भार, सभी शारीरिक अंग-खण्डों की लंबाई, चौड़ाई तथा परिधि तथा शरीर के विभिन्न अंगों में मौजूद वसा भंडारों का साइज मापते हैं। तत्पश्चात, वे इन मापों का उपयोग कर एक ऐसा सरल सूचकांक प्राप्त करते हैं जो उस व्यक्ति

विशेष के शारीरिक गठन के विषय में जानकारी देता है। यह विशिष्ट सूचकांक कायप्ररूप (सोमेटोटाइप) कहलाता है।

उपरोक्त संदर्भ में यह जानना आवश्यक है कि मुख्य रूप से तीन प्रकार के कायप्ररूप होते हैं—लंबकाय (एक्टोमॉर्फ), मध्यकाय (मीजोमॉर्फ) और स्थूलकाय (एन्डोमॉर्फ)। वैज्ञानिकों के अनुसार कोई भी व्यक्ति कायप्ररूप की दृष्टि से किसी एक तरह का नहीं होता है। उसके शरीर के गठन में सामान्यतया तीनों प्रकार के कायप्ररूपों की साझेदारी होती है।

बहरहाल, खेलों की दृष्टि से किसी मनुष्य का कायप्ररूप जांचने के लिये वैज्ञानिक उसके शरीर के विभिन्न अंगों को मापकर उसे तीनों तरह के कायप्ररूपों के लिये बनाये गये एक से लेकर छह अंक वाले पैमानों पर स्कोर देते हैं। तत्पश्चात, उस व्यक्ति द्वारा प्राप्त किये गये इन तीन स्कोरों को काय चार्ट पर दर्शाया जाता है। इस काय चार्ट से यह अनुमान लग जाता है कि व्यक्ति विशेष की शारीरिक बनावट कौन से खेल या खेलों के लिये अनुकूल है।

यद्यपि खेल वैज्ञानिकों को काय चार्टों की मदद से खिलाड़ियों के शारीरिक संघटन के विषय में लाभदायक जानकारी मिलती है किन्तु इनसे खेलों के दौरान संभावित शारीरिक प्रदर्शन के विषय में कोई महत्वपूर्ण जानकारी नहीं प्राप्त की जा सकती है। दरअसल, आधुनिक खेल वैज्ञानिकों का लक्ष्य खिलाड़ी को उसकी कमियां बताते हुये उसे बेहतर खेल प्रदर्शन संबंधी योग्यता प्राप्त करने में सहायता करना है। 'गति-मानवमिति विज्ञान' की बदौलत अब वैज्ञानिक इस लक्ष्य की पूर्ति कर सकते हैं। यही कारण है कि इस लेख में शरीर के अस्थिपंजरों, पेशियों, संयोजी ऊतकों और वसा भंडारों के खेल से संबंधित उन पहलुओं पर सामग्री दी जा रही है जिनसे 'गति मानवमिति विज्ञान' का संबंध है।

खिलाड़ी की शारीरिक वसा की मात्रा ज्ञात करने के लिये विशिष्ट उपकरण से त्वचा की मोटाई मापी जाती है

कंकालतंत्र

शारीरिक ढांचे के हड्डियों से बने उस भाग को कंकाल या अस्थिपंजर कहते हैं जो पेशियों, वसा और आन्तरिक अंगों को आधार प्रदान करता है। इसका आकार मोटे तौर पर खेलों का सीमा निर्धारक है। उदाहरणार्थ, एक बास्केटबाल सेन्टर खिलाड़ी की लंबाई अधिक हो तो बेहतर होगा। इसी प्रकार से मैराथन धावकों का अस्थिपंजर हल्का होना चाहिये तो कुछ खेलों के लिये अस्थिपंजर का बड़ा एवं घना होना जरूरी है। इतना ही नहीं, विभिन्न खेलों के लिये अस्थिपंजर के विभिन्न भागों के बीच अलग-अलग आदर्श अनुपात होते हैं। उदाहरणार्थ, धावकों की टांगों को उनके शरीर के ऊपरी भाग की तुलना में सामान्य से अधिक लंबा होना चाहिये। मुक्केबाजों के लिये लंबी भुजायें, तैराकों के लिये लंबे हाथ-पैर और नौकायन करने वालों तथा क्रास कन्टरी स्कीयरस के लिये बड़ा सीना लाभप्रद रहता है।

शरीर के अस्थिपंजर के विभिन्न हिस्से पेशियों द्वारा जुड़े रहते हैं और इनके

गतिशील होने के लिये उनसे संबद्ध पेशियों का संकुचन द्वारा छोटा होना आवश्यक है। हमारे मस्तिष्क के प्रेरक प्रान्तस्था (मोटर कार्टक्स) में पैदा होने वाली विद्युत धाराओं से उद्दीपन के कारण पेशियां संकुचित होती हैं। यह धारा पेशी तन्तुओं तक उनसे जुड़ी प्रेरक तंत्रिकोशिका (मोटरन्यूरान) के माध्यम से पहुंचती है। पेशी तंतुओं के विभिन्न संख्याओं वाले समूह से जुड़ी एक प्रेरक तंत्रिकोशिका से मिलकर एक प्रेरक एकक (मोटर यूनिट) बनता है।

पेशियां

पेशियों द्वारा पैदा किया जाने वाला बल एवं वेग उनमें मौजूद प्रेरक तंत्रिकोशिकाओं के साइज के अनुसार होता है। प्रेरक तंत्रिकोशिकायें धातुओं के तारों की तरह विद्युत धारा का चालन करती हैं और जिस तंत्रिकोशिका का व्यास जितना बड़ा होता है वह उसी अनुपात में विद्युत धारा का चालन करती है। हमारा शरीर धीमी और कमजोर गतियों को पैदा करने हेतु काम व्यास वाली प्रेरक तंत्रिकोशिकाओं का और गति की तीव्रता एवं शक्ति में वृद्धि होने पर बड़े व्यास की तंत्रिकोशिकाओं को उपयोग में लाता है।

तंत्रिकोशिकाओं के समान मनुष्य के शरीर में दो तरह के पेशी तन्तु होते हैं। बड़ी तंत्रिकोशिकाओं से जुड़े तन्तुओं को 'स्प्रिन्ट' तन्तु कहते हैं और अपेक्षाकृत छोटी तंत्रिकोशिकाओं से जुड़े तन्तुओं को 'इन्ड्योरेन्स' तन्तु कहते हैं। चूंकि प्रेरक तंत्रिकोशिकाओं का आकार ही उनसे जुड़ने वाले तंतुओं की किस्म को निर्धारित करता है अतः किसी व्यक्ति के शरीर में इन पेशियों का आनुपातिक संघटन उस व्यक्ति में आनुवंशिक रूप से मौजूद बड़ी एवं छोटी प्रेरक तंत्रिकोशिकाओं के सापेक्ष अनुपात पर निर्भर करता है।

यूं मनुष्य की किसी भी संपूर्ण पेशी का संघटन मिश्रित होता है जिसमें स्प्रिन्ट एवं इन्ड्योरेन्स तंतुओं की संख्या बराबर भी हो सकती है और एक ही तरह के तन्तुओं का प्रतिशत शून्य से लेकर सौ तक भी हो सकता है।

स्प्रिन्ट पेशियां इन्ड्योरेन्स पेशियों की तुलना में अत्यधिक मात्रा में शक्ति पैदा करने के लिये तेजी से ऊर्जा पैदा करने में सक्षम होती हैं। ऊर्जा उत्पादन के लिये इनका प्रमुख जैव रासायनिक ईंधन शर्करा है जो इनमें ग्लाइकोजन के रूप में मौजूद रहता है। यद्यपि ऊर्जा आपूर्ति के लिये स्प्रिंट पेशियां इन्ड्योरेन्स प्रेशियों की तुलना में ग्लाइकोजन (ग्लूकोज अणुओं से बना एक बड़ा अणु) का भंजन दस गुना तेजी से कर सकती हैं, इन्हें इसकी कीमत चुकानी पड़ती है। ये तंतु ईंधन का दहन तो तीव्रता से करते हैं किन्तु इस कार्य को ये अपूर्ण रूप से करते हैं। फलस्वरूप, ग्लाइकोजन भंजन का अवशेष लैक्टिक अम्ल के रूप में बच जाता है। इन पेशियों में लैक्टिक अम्ल के जमाव के कारण उनकी जैवरासायनिक प्रतिक्रियायें एक सीमा के बाद पूर्णतया रुक जाती हैं। फलस्वरूप, पेशियां संकुचन नहीं कर पाती हैं। यही कारण है कि स्प्रिन्ट पेशियां केवल अल्प समय तक ही कार्य कर सकती हैं।

'इन्ड्योरेन्स पेशी तंतु' स्प्रिन्ट तंतुओं के विपरीत अपने ईंधन का दहन पूर्ण रूप से करते हैं, अतः ये लैक्टिक अम्ल के जमाव के हानिकारक प्रभावों से बचे रहते हैं। श्रम की दृष्टि से सामान्य से लेकर मध्यम स्तर तक के कार्यों के लिये शरीर इन्ड्योरेन्स पेशियों का ही उपयोग करता है। चूंकि ये सदैव धीमी गति से सीमित ऊर्जा पैदा करती हैं अतः ये ईंधन के रूप में वसा का उपयोग करके शरीर की सीमित ग्लाइकोजन मात्रा का बचाव कर सकती हैं। लंबे समय के खेलों में इन्ड्योरेन्स पेशियों के इस गुण से प्रशिक्षित खिलाड़ी लाभ उठाते हैं। इनकी वसा भंडारण क्षमता स्प्रिन्ट कोशिकाओं से तीन गुना अधिक होती है।

संयोजी ऊतक

शरीर की प्रत्येक संपूर्ण पेशी के कई हजार तंतुओं को उनके संयोजी ऊतक आपस में बांधे रखते हैं। ये ऊतक पेशियों के दोनों सिरों पर संघनित होते हैं जिन्हें कंडरा (टैन्डन) कहते हैं। कंडरा पेशियों को अस्थियों से जोड़ती हैं। 'संयोजी ऊतक' पेशियों का लचीलापन निर्धारित करते हैं। कोई भी धावक जिसकी उपरिस्थर्पिडिका पेशियां और एकिलिज कंडरायें कम लचीली होती हैं, अत्यधिक तेजी से नहीं दौड़ सकता है।

खेलों में अंगों के जोड़ों की लोच का बहुत महत्व है। वैज्ञानिक भाषा में इसे 'संधि लोच' कहते हैं। बास्केटबाल, फुटबाल एवं टैनिस जैसे खेलों में जिनमें खिलाड़ियों को अपनी गति की दिशा एवं त्वरण में तेजी से परिवर्तन करने होते हैं, अत्यधिक संधि लोच खेल प्रदर्शन क्षमता को घटाता है। दूसरी तरफ संधि लोच के अत्यल्प होने से जिमनास्टों एवं फिगर स्केटरों का खेल कुप्रभावित होता है। इसी तरह कुछ संधियों की लचक खेल विशेष की दृष्टि से अधिक महत्व रखती है। उदाहरणार्थ, तैराकी में स्कन्धों की लचक एवं टैनिस में कूल्हों की लचक का बहुत अधिक महत्व है।

किसी पेशी से संबंधित कंडरायें हड्डी पर जिन बिंदुओं पर जुड़ती हैं, उनसे पेशी की उत्तोलकता (लीवरेज) निर्धारित होती है। खेलों की दृष्टि से पेशियों की उत्तोलकता का अत्यधिक महत्व है क्योंकि यह किसी पेशी की कार्यनिष्पादन क्षमता को घटा या बढ़ा सकती है। लंबी कूद और बाधा दौड़ के दौरान टांगों की उपरिस्थर्पिडिका पेशियों की उत्तोलकता का एवं गोला फेंक जैसे खेलों में भुजा के पिछले भाग की त्रिशिरस्का पेशी (ट्राइसेप्स) की उत्तोलकता का अत्यधिक महत्व है।

लोच एवं उत्तोलकता के अतिरिक्त किसी पेशी का व्यास जितना अधिक होता है वह उतनी ही अधिक गति एवं शक्ति पैदा कर सकती है। अधिकतम व्यास वाली पेशियां विस्फोटक बल पैदा कर सकती हैं। यही कारण है मुक्केबाजों, भारोत्तोलकों, स्पीड स्केटरों, जिमनास्टों एवं साइकिल धावकों के शरीर की पेशियां अधिक मोटी होती हैं। किसी भी पेशी का अधिकतम बढ़ाया जा सकने वाला व्यास आनुवंशिक घटकों पर निर्भर करता है और इसका पेशी की लंबाई से सीधा संबंध है। यूं यदि कोई अंग बहुत लंबा है तो यह आवश्यक नहीं है कि उससे संबद्ध पेशी भी लंबी हो।

संपूर्ण पेशियों की कार्यक्षमता संबंधी विशेषताओं एवं गुणों को समझने के लिये पेशी संकुचन के दौरान बल एवं गति के बीच के संबंधों की जानकारी आवश्यक है। इन संबंधों को बल-गति वक्र नामक चार्ट की

सहायता से समझा जा सकता है। प्रशिक्षण के द्वारा किसी पेशी के बल-गति वक्र में सुधार किया जा सकता है यानि किसी निश्चित गति के लिये पेशी द्वारा पैदा किये जाने वाले बल की मात्रा को बढ़ाया जा सकता है।

कुल मिलाकर, किसी पेशी की कार्यक्षमता की तीन प्रमुख विशेषतायें गति, बल और त्वरण हैं और ये पेशी के तन्तुओं की किस्म, उसके बल-गति वक्र, उसके तापमान, साइज एवं प्रत्यास्थता (लचक) पर निर्भर हैं। किसी संपूर्ण पेशी में स्प्रिन्ट तंतुओं की मात्रा (संख्यात्मक) का प्रतिशत जितना अधिक ऊंचा होता है उसकी गति उतनी ही अधिक तेज होती है और वह श्रांति से उतनी ही शीघ्रता से उबरने की योग्यता रखती है।

शारीरिक गति में तेजी से त्वरण के लिये पेशियों में स्प्रिन्ट पेशी तंतुओं की संख्या अधिक होनी चाहिये; किसी भी अवरोध पर ऊंचे गति के बल-गति वक्र होने चाहिये और पेशियां उचित तापक्रम पर होनी चाहियें। आराम के दौरान पेशी का तापमान 37 डिग्री सेल्सियस होता है और शरीर में 'गरमाहट' पैदा करके यह 43 डिग्री तक पहुंचाया जा सकता है। इस तापमान पर पेशी की शक्ति में 50 प्रतिशत की वृद्धि हो जाती है। तापमान में वृद्धि के कारण पेशी का लचीलापन (प्रत्यास्थता) बढ़ जाता है और इसकी टूट-फूट की संभावनायें कम हो जाती हैं।

वसा

वसा, शरीर का सबसे बड़ा ऊर्जा स्रोत भंडार है। स्वस्थ मनुष्य में वसा की मात्रा पांच से लेकर चालीस प्रतिशत तक होती है और प्रत्येक खेल के लिये इसकी शरीर में एक आदर्श प्रतिशतता होती है। लंबी दूरी के तैराकों को वसा की ऊंची प्रतिशतता तैराकी के दौरान अतिरिक्त एवं लाभदायक 'प्लवन' प्रदान करती है और इसके कारण पानी में शरीर से ऊष्मा हानि कम होती है। अति लंबी दूरी की दौड़ में धावक के शरीर में वसा का प्रतिशत अत्यधिक अल्प होने से ईंधन अभाव के कारण खेल प्रदर्शन में गिरावट आ सकती है। गोल्फ, बेसबाल, भारोत्तोलन, हॉकी एवं कई अन्य खेलों में शारीरिक वसा की सापेक्ष दृष्टि से ऊंची मात्रा का होना अर्थहीन है।

अधिकांश खेलों में शारीरिक वसा की अत्यधिक मात्रा खेल प्रदर्शन क्षमता का ह्रास करती है। साइकिल दौड़, पर्वतारोहण, जिमनास्टिक्स एवं दौड़ में वसा खिलाड़ी के लिये स्वाभाविक रूप से बाधक है क्योंकि उसे व्यर्थ में ही इस अतिरिक्त भार को ढोने में ऊर्जा व्यय करनी पड़ती है। □

[श्री सुभाष लखेड़ा, एक्स- 360, सरोजिनी नगर, नई दिल्ली- 110023]

युवा वैज्ञानिकों को भटनागर पुरस्कार

प्रधान मंत्री श्री चंद्र शेखर ने 10 जनवरी, 1991 को राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला सभागार, नई दिल्ली में 10 युवा वैज्ञानिकों को विज्ञान और प्रौद्योगिकी से संबंधित विभिन्न विषयों पर श्रेष्ठ अनुसंधान के लिए वर्ष 1989 हेतु शांति स्वरूप भटनागर पुरस्कार प्रदान किए। प्रधानमंत्री, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद के पदेन अध्यक्ष भी हैं। ये पुरस्कार देश के 45 वर्ष से कम आयु के वैज्ञानिकों को इन क्षेत्रों में श्रेष्ठ अनुसंधान पर वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद द्वारा प्रति वर्ष दिए जाते हैं: भौतिकी विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान, प्रौद्योगिकी, चिकित्सा विज्ञान, गणित, भू-वायु मण्डल, महासागर और खगोल विज्ञान।

परिषद के महानिदेशक डा. ए.पी. मित्रा ने प्रशस्तियों की घोषणा की। जीव विज्ञान में श्रेष्ठ कार्य के लिए बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रो. एस.सी. लखोटिया और जादवपुर विश्वविद्यालय के फार्मेसी विभाग की डा. मंजू राय को पुरस्कृत किया गया। प्रो. लखोटिया का कार्य कोशिका आनुवंशिकी और कोशिका विज्ञान से संबंधित है। जबकि डा. राय ने मेथिलग्लायोक्सल नामक जैव रसायन के रहस्यों को उजागर किया है। रसायन विज्ञान में उत्कृष्ट कार्य हेतु भारतीय विज्ञान संस्थान, बंगलौर के प्रो. श्रीनिवासन चंद्रशेखरन और नार्थ ईस्टर्न हिल विश्वविद्यालय, शिलांग के प्रो. मिहिर कांति चौधरी को पुरस्कार दिया गया।

उपग्रह के द्वारा माइक्रोवेव सुदूर संवेदन की तकनीक विकसित करने पर अंतरिक्ष उपयोग केन्द्र, अहमदाबाद के डा. प्रेम चंद पांडेय को भू-विज्ञान के अंतर्गत पुरस्कार मिला। उन्होंने माइक्रोवेव और अवरक्त किरणों के संयोग से मेघ प्राचल व्युत्पन्न करने में सफलता पाई है।

अभियांत्रिकी विज्ञान में, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र मुम्बई के डा. श्रीकुमार बनर्जी तथा विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केन्द्र, तिरूअनंतपुरम के डा. जी वेंकटेश्वर राव को यह सम्मान मिला। गणितीय विज्ञान का पुरस्कार टाटा मौलिक विज्ञान अनुसंधान संस्थान, मुम्बई के प्रो. गोपाल प्रसाद को दिया गया। भौतिक विज्ञान में यह पुरस्कार पाने वाले हैं—भारती देशन विश्वविद्यालय, तिरूचिरापल्ली के प्रो. एम. लक्ष्मणन और रामन अनुसंधान संस्थान, बंगलौर के प्रो. एन.वी. मधुसूदन।

इन पुरस्कारों की स्थापना, वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद के संगठन कर्ता एवं प्रथम महानिदेशक सर शांति स्वरूप भटनागर की स्मृति में 1957 में की गई थी। अब तक 237 वैज्ञानिकों को यह सम्मान मिल चुका है। प्रत्येक पुरस्कार में एक प्रशस्ति पत्र एक प्रतीक चिन्ह और पचास हजार रुपए की राशि प्रदान की जाती है।

पुरस्कार वितरण समारोह के अवसर पर बोलते हुए प्रधानमंत्री ने वैज्ञानिकों से कहा कि वे आम आदमी की रोजमर्रा की जरूरतों पर ज्यादा ध्यान दें और विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का लाभ गरीबों तक पहुंचाएं।

रसायनों से जुड़ी जीवनधारा

रायल सोसायटी ऑफ केमिस्ट्री (लंदन) की स्थापना की 150 वीं वर्षगांठ के संदर्भ में, दिल्ली विश्वविद्यालय, के रसायन विभाग में 8-9 जनवरी 1991 को अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। भारत सहित अमेरिका, ब्रिटेन, और जर्मनी के वैज्ञानिकों ने इसमें भाग लिया।

इस अवसर पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के उपाध्यक्ष प्रो. एस.के. खन्ना ने कहा कि रसायन के क्षेत्र में हमें अपने अनुसंधानों को और गहन तरीके से बढ़ाना होगा, अन्यथा हम इक्कीसवीं सदी में पिछड़ जाएंगे। उन्होंने जैव रसायन का उल्लेख करते हुए कहा कि रसायन विज्ञान प्रत्यक्ष रूप से मनुष्य, पौधों और अन्य प्राणियों से जुड़ा हुआ है। इसीलिए इसमें होने वाले अनुसंधान का जीवन के हर क्षेत्र में असर पड़ता है।

हैदराबाद विश्वविद्यालय के प्रो. गोवर्धन मेहता ने बताया कि उन्होंने ऐसे कार्बनिक यौगिक बनाए हैं, जो प्रकृति में नहीं मिलते। ये बीजगणितीय यौगिक हैं, इसे षट्कोणीय गठन तक प्राप्त कर लिया गया है और अष्टकोणीय गठन तक करने के प्रयोग जारी हैं। 'गेरूऐण' नामक इन रसायनों का उपयोग ऊर्जा के स्रोत के रूप में हो सकेगा। अमेरिकी वैज्ञानिक डेविड लवेले ने स्वविकसित दो दवाओं का हवाला देते हुए बताया कि इनको शरीर में भेजकर एन.एम.आर. इमेजिंग विधि से शरीर के भीतर कैंसर या अर्बुद का पता लगाया जा सकेगा।

वैज्ञानिक सुखदेव ने प्राकृतिक यौगिकों से नया कीटनाशी बनाने में सफलता पाई है। उन्होंने बताया कि इसके द्वारा कीटों को जन्मते ही समाप्त किया जा सकेगा। इससे कीटों से उत्पन्न होने वाली अनेक प्रकार की समस्याएं स्वतः ही समाप्त हो जाएगीं। बताया गया है कि इन प्रयोगों के फलस्वरूप पायरेथोराइड्स नामक दवा का निर्माण आरंभ हो गया है। उन्होंने हृदय रोग के निवारण हेतु, डैसमियोविसिन नामक दवा का विकास भी किया है।

एक वक्ता प्रो. इंदिरानाथ ने कुष्ठ रोग के लिए भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा खोजी गई नवीनतम औषधियों के बारे में बताया। अंत में प्रो. खन्ना ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के फैसलों में संगोष्ठी की सिफारिशों का उपयोग करने की बात कही, जोकि ऐसी संगोष्ठियों की सफलता के लिए बहुत आवश्यक है।

मेलजोल में जीवन

अकड़ धकड़ कर चली हवा, बोली मैं ही जीवन हूं।
इठलाकर बोला पानी, मैं औषधि संजीवन हूं।।
लाल आंख कर गर्मी बोली, कण कण देखा भाला।
जीव-जन्तु, जड़-चेतन सबमें, जीवन मैंने डाला।।
चौंक पड़ा वैज्ञानिक बोला, मैं निर्णय कर दूंगा।
बिना प्रयोग बात तीनों की, मैं न कभी मानूंगा।।
बीकर एक उठाया उसने, एक पट्टिका ले ली।
देख परीक्षा सबके मन पर, भर की रेखा डोली।।
जीवित लेकर तीन बीज पट्टी पर बांधे ऐसे।
ऊपर नीचे मध्य बराबर की दूरी हो जैसे।।
बीकर में रख उनको, पानी उसमें डाला इतना।
मध्य बीज आधा पानी में, डूब सके बस उतना।।
बीकर उठा खुले में, विधिवत ध्यानपूर्वक रखा।
पांच-सात दिन बाद, उसे फिर वैज्ञानिक ने परखा।।
ऊपर नीचे किसी बीज ने, जरा न अंकुर फोड़ा।
मध्य नीचे में हरित-पीत सा, अंकुर निकला थोड़ा।।
नूतन जीवन विकसित होकर, मध्य बीज में आया।
हुआ प्रफुल्लित मन, वैज्ञानिक निर्णय पा हर्षाया।।
बोला तीनों सुनो, हवा गर्मी और भाई पानी।
हार-जीत की तुम तीनों की, बनी नवीन कहानी।।
ऊपर वाला बीज बिचारा, पानी बिना न फूटा।
हवा ताप दोनों का मिलकर, जल बिन साहस टूटा।।
नीचे वाला बीज, हवा के कारण उगा नहीं था।
ताप और पानी ने उसको, बिल्कुल ठगा नहीं था।।
मध्य बीज को हवा, ताप, पानी, तीनों ने पोसा।
हुआ प्रस्फुटित प्रमुदित होकर उसका गोसा-गोसा।।
अलग-अलग तो तुम तीनों ही, हारे निश्चित हारे।
मिलकर लेकिन जीते ही हो, पारस्परिक सहारे।।
जीत किसी की नहीं किंतु, कोई भी है कब हारा।
मध्य बीज के उगने में, तीनों का रहा सहारा।।
कोई हारा नहीं, जीत तुम सबकी ही होती है।
मेल-जोल है प्रमुख, मेल ही जीवन का मोती है।।

[श्री शेष लाल सिंह "शेष" श्रीमहात्मा दूधाधारी इ. कालेज, नगला, विष्णु, आगरा- 19]

राष्ट्रीय विज्ञान दिवस

नयी प्रगति, नर आशा, नवगति देता है विज्ञान हमें;
दुनिया नयी, नयापन, नव युग, देता अद्‌भुत ज्ञान हमें।
नयीं मशीनें नये स्रोत, परिणाम नये देता हमको,
उदघोष नयां, नव स्पष्ट नीति, आयाम नये देता हमको।
तन ढकने को वस्त्र नये, खाने को लाखों चीज़ नयी,
कल-पुर्जे दे, नयी मोटरें, उड़ने की तकनीक नयी।
अतिचालकता, प्रतिरोधकता, जैव-प्रौद्योगिकी, ऊर्जा-निधि;
पी.ई.टी., लेसर, पाल्यूमर, एन.एम.आर. चित्रणविधि,
धरती से आयन-मण्डल, आयन-मण्डल, से अन्तरिक्ष;
ऊतक-संवर्धन की विधि है अब, परखनली में शिशु जन्मे;
विज्ञान जनित यह दुनियां, अब शायद परखनली में ही पनपे।
बच्चा-बच्चा विज्ञान पढ़े यह देश लगाये है आशा,
विज्ञान कभी बन पायेगा क्या जन साधारण की भाषा?

(राष्ट्रीय विज्ञान दिवस, 28 फरवरी के अवसर पर)

[धारा, बी. धौलाखण्डी, संघटक महाविद्यालय, अलमोड़ा- 263601]

खर्राटों का इलाज – करायें या नहीं : विश्व की सम्पूर्ण जनसंख्या के लगभग 50 प्रतिशत व्यक्ति 50 साल की उम्र के बाद गहरी नींद में प्रायः खर्राटे भरते हैं।

खर्राटे जो दूसरों की नींद हराम करते हैं, वे नाक के पिलरों के मोटे हो जाने, साफ्ट पैलेट तथा अधिजिह्वा तालू में कम्पन से

उत्पन्न होते हैं। सांस द्वारा अंदर ली गई वायु जब पिलरों से गुजरती है तो अधिजिह्वा तालू (वुवुला पैलेटिना) में कम्पन होने लगता है जिस कारण 300 हर्ट्ज की असहनीय सीटी जैसी ध्वनि नाक से निकलने लगती है। इस स्थिति से निपटने के लिये नोज पिलर तथा अधिजिह्वा तालू के बीच की जगह को किसी लेसर द्वारा (उदाहरण के तौर पर गाजर मूली की तरह) खुरच कर दूर किया जा सकता है।

इस अनहोने आविष्कार का श्रेय फ्रांस के ई.एन.टी. विशेषज्ञ डा. कामामी को जाता है। डा. कामामी ने चिरकारी गले के शोथ एवं संक्रमण से पीड़ित किसी रोगी के कार्बनडाइआक्साइड लेसर से आपरेशन के बाद पाया कि रोग ठीक होने के साथ-साथ रोगी की खर्राटे लेने की समस्या भी एकदम ठीक हो गई थी। उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

इसके बाद उन्होंने खर्राटे भरने वाले 80 प्रतिशत रोगियों का आपरेशन किया और पाया कि वे बिल्कुल ठीक हो गये। डाक्टर के अनुसार यह उपचार सरल, संभाव्य तो है ही साथ ही इसमें ज्यादा शल्य चिकित्सा भी नहीं करनी पड़ती, लेकिन लेसर के उपयोग के समय सामान्य ऐनेस्थीसिया दिया जाता है। इसके लिये मरीज को 2-3 सप्ताह तक लगभग 10 मिनट तक 5 से 7 बार लेसर से आपरेशन करवाना पड़ता है लेकिन इसके लिये उसे पूर्णतः डाक्टर की देखरेख में रहना पड़ता है।

डाक्टर के अनुसार खर्राटे को मजाक में नहीं लेना चाहिये। कभी-कभी ये खर्राटे भयानक बीमारियां पैदा कर सकते हैं। इनके कारण कभी-कभी रोगी की हालत ऐसी हो जाती है कि वे खुद को ही नहीं पहचान पाते। विशेषज्ञों के अनुसार खर्राटों से उच्च रक्तचाप, कोरोनरी थ्रॉम्बोसिस, चिरकारी वक्ष शोथ, पालीग्लोब्युलिया जैसे रोग हो सकते हैं। डा. कामामी के अनुसार हालांकि खर्राटे हल्की शल्य चिकित्सा से बन्द किये जा सकते हैं लेकिन वुवुला पेलेटिना का आकार कम करना किसी रोगी के लिये खतरनाक भी हो सकता है। उसे दर्द हो सकता है, कमजोरी आ सकती है और उसका वजन घट सकता है और हां! यदि वुवुला पैलेटिना का आकार बहुत छोटा कर दिया जाता है तो नाक में खाद्य पदार्थ फंसने का खतरा बढ़ जाता है और रोगी को लेने के देने पड़ सकते हैं।

दंत चिकित्सा में भी लेसर : दक्षिण फ्रांस के मार्सिली फैकल्टी ऑफ डेन्टल सर्जरी के प्रोफेसर गे लेवी ने पांच वर्ष के गहन अध्ययन के बाद एक ऐसा आडोण्टोलॉजीकल

लेसर विकसित किया है जो दंत चिकित्सा, विशेष रूप से दंतक्षय के उपचार में बहुत उपयोगी है। उन्होंने इस लेसर को एनडी–वाई ए जी (*ND–YAG*) नाम दिया है।

गे लेवी के अनुसार इस आविष्कार से दंतचिकित्सक दांतों की ड्रिलिंग बन्द कर देंगे। इसकी एक खूबी यह है कि आपरेशन के दौरान आसपास के ऊतकों पर इसका कोई दुष्प्रभाव नहीं होता तथा दांतों में एकत्रित गंदगी को भी यह अवशोषित कर बाहर निकालने में सक्षम है। इस समय इसकी कीमत 60,00,000 रुपये है। इसके प्रयोग से समय की बचत तो होती ही है क्योंकि सिर्फ 2 से 3 मिनट में इससे एक आपरेशन हो जाता है, साथ ही इससे बच्चों में दंतक्षय को रोका जा सकता है।

आ गया रोब्यूटर : गतिशील रोबोटिक्स के क्षेत्र में फ्रांस की एक रोबोट बनाने वाली कम्पनी रोबोसाफ्ट ने एक ऐसा बहु उद्देशीय रोबोट बनाया है जो अन्य कार्यों

के साथ-साथ शैक्षिक और अनुसंधान कार्य करने में भी माहिर है। कम्पनी ने इस रोबोट को 'रोब्यूटर' नाम दिया है।

रोब्यूटर में एक एकीकृत कैलकुलेटर युक्त गतिशील प्लेटफार्म होता है जो 'वी एम इ बस' पर आधारित होता है। विभिन्न कार्यों जैसे सफाई, सामान उठाने, प्रतिकूल वातावरण में कार्य करने आदि के लिये इस प्लेटफार्म पर उसके उपसाधनों और उपकरणों को जोड़ा जा सकता है। इसमें लगी चार बैटरियों की सहायता से चलने वाली मोटर द्वारा यह 150 किग्रा. तक का भार उठा सकता है और और 5 सेमी./सेकण्ड से 3.6 किमी./घंटे की गति से चलता है। लगातार 4 से 10 घंटे तक कार्य कर सकता है लेकिन कार्य करने की क्षमता कार्य की स्थितियों पर निर्भर. करती है। इसके बोर्ड पर लगा कम्प्यूटर इसके सभी संचालनीय कार्य

(प्रथमापन और अल्ट्रासाऊंड) इसकी सुरक्षा तथा नियंत्रण की देख रेख करता है। रोब्यूटर का संचालन सुदूर नियंत्रण (रिमोट कंट्रोल) द्वारा किया जा सकता है।

संतुलित तेल: फ्रांसीसी-वैज्ञानिकों के एक दल ने सूरजमुखी की नयी किस्म के पौधों से एक ऐसा तेल निकाला है जिसका संघटन संतुलित आहार के लिये अत्युत्तम है। यह तेल एक वरणात्मक विधि से प्राप्त किया गया और इसका व्यापारिक नाम रखा गया 'ओलिसॉल' क्योंकि इस तेल का ओलीक अम्ल अंश 60-80 प्रतिशत है जो पारम्परिक रूप से मिलने वाले सूरजमुखी के तेल से 20-25 प्रतिशत अधिक है। इस तेल की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें संतृप्त वसाम्ल अंश 12 प्रतिशत से कम ही हैं। इस तेल का एक अन्य रचक है लिनोलीक अम्ल, जो पोषण के लिये अत्यावश्यक है।

इस उत्पाद को बनाने वाले अनुसंधान दल के प्रमुख के अनुसार यह तेल रक्त चाप तथा हृदय रोगियों के लिये बहुत लाभदायक है। अतः इसके अधिक उत्पादन के लिये विदेशी बीजों को बोकर उच्च ओलीक अम्लांश वाली नई किस्में उगानी चाहिये, जो ओलीसोल के उत्पादन में सहायक होंगीं।

[श्रीमती दीक्षा बिष्ट, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली]

प्रश्न मंच के पाठकों से निवेदन

"प्रश्न मंच" में भाग लेने वाले पाठकों से निवेदन है कि वे प्रश्न केवल पोस्टकार्ड पर ही लिख कर भेजें। कूपन लगे लिफाफे व अन्तर्देशीय पत्रों पर भी विचार नहीं किया जायेगा। एक बार में सिर्फ एक ही प्रश्न भेजें। बिना कूपन वाले पोस्टकार्ड को प्रतियोगिता में शामिल नहीं किया जायेगा। प्रश्नकर्ता अपना नाम व पूरा पता साफ-साफ स्पष्ट शब्दों में लिखें।

सम्पादक "प्रश्न मंच"
विज्ञान प्रगति
प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय
सी.एस.आई.आर., हिलसाइड रोड,

एकता परेड
हम सब, पुरुष, स्त्री और बच्चे हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, बौद्ध, जैन, पारसी.... पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण से हजारों की संख्या में गणतंत्र दिवस समारोह में शामिल होते हैं।
और एक बार फिर प्रदर्शित करते हैं अपनी एकता की भावना।
जाति, धर्म, क्षेत्रीय और भाषायी बंधन तोड़ने के लिये समर्पित करते हैं अपने आपको, और करोड़ों भारतीयों के उत्थान के लिये प्रेरणा देते हैं पूरे राष्ट्र को।
एकता परेड की इस भावना को सफल बनायें
एक जुट होकर आगे बढ़ें
डीएवीपी 90/751

पीताम्बर द्वारा प्रकाशित भारतवर्ष के किशोरों के लिए अनुपम भेंट
भारत में प्रथम बार

न्यू जूनियर एनसाइक्लोपीडिया (विश्वकोष)

हेमालन द्वारा प्रकाशित मूल अंग्रेजी का हिन्दी अनुवाद • जहाँ-तहाँ भारतीयकरण • एक खंड में सभी विषयों पर प्रामा[णिक] सामग्री • सरल भाषा का प्रयोग • हजारों रंगीन चित्र • आर्ट पेपर पर मुद्रित • कपड़े की मजबूत जिल्द।

मूल्य 200 रु[पये]

200 रुपये अग्रिम भेजकर बिना डाक-खर्च घर बैठे विश्वकोष प्राप्त करें।

• • • • • • • •

पीताम्बर द्वारा प्रकाशित उत्तम बाल साहित्य

जीवनी संस्मरण

1. रवीन्द्रनाथ ठाकुर — श्री व्यथित हृदय
2. मौलाना आज़ाद — श्री व्यथित हृदय
3. अब्दुल गफ्फार खां — श्री व्यथित हृदय
4. राष्ट्र नायक और निर्माता—जवाहर लाल नेहरु — ब्रज भूषण
5. ऐसे थे जवाहर — अक्षय कुमार जैन
6. यादें जो सांसों में बसी है भाग 1 व 2 — श्री व्यथित हृदय
7. बालक जो अमर हो गए भाग 1 से 3 — राजकुमार अनिल
8. अच्छे बच्चे अच्छी कहानियां — श्री व्यथित हृदय
9. बच्चे हिन्दुस्तान के भाग 1 व 2 — श्री व्यथित हृदय
10. स्वतन्त्र भारत के वीर बच्चे भाग 1 से 3 — श्री व्यथित हृदय

ज्ञान-विज्ञान

1. जगदीश चन्द्र बोस — विमल कुमारी
2. टामस अल्वा एडीसन — श्याम कपूर
3. अलबर्ट आइनस्टाईन — श्याम कपूर
4. महान भारतीय वैज्ञानिक — श्री व्यथित हृदय
5. भारत का प्रथम अन्तरिक्ष यात्री — जयप्रकाश भारती
6. दैनिक जीवन में विज्ञान — श्री व्यथित हृदय
7. ऊर्जा की कहानी — कृष्ण गोपाल रस्तोगी
8. क्या और कैसे? — मनोहर लाल वर्मा
9. धरती के खेल तमाशे — रामस्वरूप वशिष्ठ
10. होमी जहांगीर भाभा — श्याम कपूर
11. चन्द्रशेखर वेंकट रमन — श्याम कपूर
12. शक्ति का विकास — ब्रह्म प्रकाश गुप्त

राष्ट्रप्रेम, एकता और स्वतंत्रता संग्राम

1. एकता के प्रकाश दीप भाग 1 व 2 — श्री व्यथित हृ[दय]
2. शहीदों की शौर्य गाथाएं भाग 1 व 2 — श्री व्यथित हृ[दय]
3. स्वतन्त्रता संग्राम की कहानी भाग 1 से 3 — राजेन्द्रमोहन भटना[गर]
4. भारत का स्वतंत्रता संग्राम — दुर्गा प्रसाद गु[प्त]
5. राष्ट्र के प्रतीक — जयप्रकाश भार[ती]

कथा साहित्य

1. लो उपहार भाग 1 व 2 — जयप्रकाश भार[ती]
2. गरीब परी तथा अन्य कहानियां — लक्ष्मीनारायण ला[ल]
3. नीली रोशनी का महल — स्नेह अग्रवा[ल]
4. अनुपम प्रेरक कथाएं — श्रीनिवास व[त्स]
5. हीरों का हार — जयप्रकाश भार[ती]
6. नन्हें बने महान — ब्रह्मप्रकाश गु[प्त]
7. ज्ञान और विवेक की कहानियां — राजकुमारी श्रीवास्त[व]
8. महाभारत की बोध-कथाएं — राजकुमारी श्रीवास्त[व]
9. उपनिषदों की कथा मुक्ताएं — राजकुमारी श्रीवास्त[व]

हमारे गौरव ग्रंथ

1. रामायण — डा० कृष्णदत्त भारद्वा[ज]
2. महाभारत — राजेन्द्र मोहन भटनाग[र]
3. कालिदास की महान् कृतियां — हरिवंश लूथ[रा]

पीताम्बर पब्लिशिंग कम्पनी

888, ईस्ट पार्क रोड, करोलबाग,
नई दिल्ली-110 005 (भारत)
तार : पीताम्बर नई दिल्ली

दूरभाष :
कार्यालय : 770067, 776058, 526933
आवास : 5715182, 586788, 5721321

NOW AVAILABLE
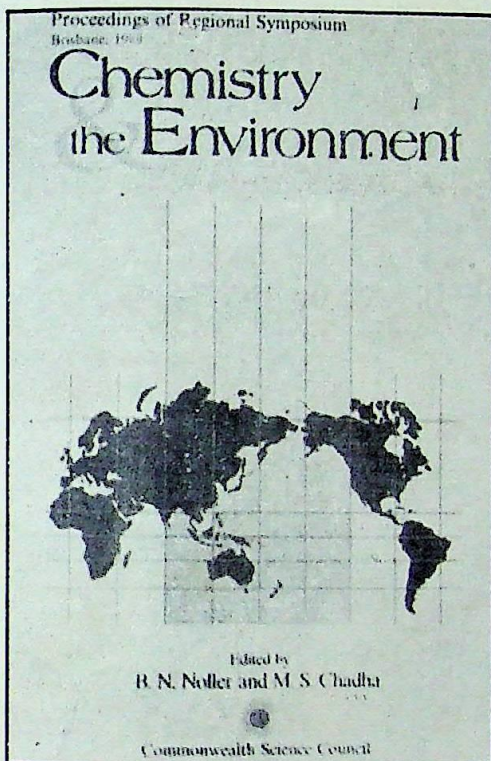
Proceedings of Regional Symposium Brisbane 1989

Chemistry & the Environment

Edited by
B.N. Noller
M.S. Chadha

Published by
Commonwealth Science Council

The eighteen articles included in this book, contributed by distinguished scientists from Australia, Canada, New Zealand, U.K., Malaysia and India, provide up-to-date information on various aspects of the fossil fuels utilization, ozone hole, green house gases and effects, environmental effects of several chemicals, atmospheric and urban air modelling, major chemical accidents and environmental monitoring aspects. Examples of the topics covered are: Interactive processes in the atmospheric environment; The international geochemical mapping project - A contribution to environmental studies; Photosynthesis and the green house effect; Ozone puzzles - Will a hole occur outside polar regions?; Urban air pollution modelling etc.

The essential idea in publishing these proceedings is to catalyse activities in the Asia - Pacific Region which not only faces the same problems as the rest of the globe but also has to contend with high population and uncontrolled generation of pollutants. The proceedings could help in the formulation of effective strategies for containing environmental problems.

The volume should be recommended reading for scientists, meteorologists, technology managers, policy planners, industrialists and futurologists.

pp 324 + xii; Price Rs.125/-; $ 45; £ 30

ORDERS MAY BE PLACED WITH

Senior Sales and Distribution Officer,
Publications & Information Directorate, Hillside Road, New Delhi-110012.

ग्राहकों के लिए खुशखबरी

विज्ञान के प्रचार-प्रसार में सी.एस.आई.आर. द्वारा प्रकाशित

विज्ञान प्रगति (हिन्दी मासिक)

अब आकर्षक साज-सज्जा में विशेष छूट के साथ उपलब्ध

□ इसके एक अंक का मूल्य 2.50 रुपये और वार्षिक चन्दा 25.00 रुपये है।

परन्तु

□ एक वर्ष का ग्राहक बनने पर कुल चन्दा मात्र-25.00 रुपये अर्थात 5.00 रु. की बचत

□ दो वर्ष का ग्राहक बनने पर कुल चन्दा मात्र–40.00 रुपये अर्थात 20.00 रु. की बचत

□ तीन वर्ष का ग्राहक बनने पर कुल चन्दा मात्र–60.00 रुपये अर्थात 30.00 रु. की बचत

विशेष छूट का लाभ उठायें और चन्दे की राशि शीघ्र भेजें।

□ यदि आप मनीआर्डर द्वारा शुल्क भेजें तो अपना नाम व पता बड़े व साफ-साफ अक्षरों में लिखें। मनीआर्डर कूपन पर भी अपना पूरा पता पिनकोड नं. सहित लिखना न भूलें।

□ चैक तथा डिमान्ड ड्राफ्ट "प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली" के नाम भेजें।

□ विज्ञान प्रगति का प्रथम अंक वी.पी. द्वारा भी भेजा जा सकता है। यदि पाठक यह लिखित आश्वासन भेजें कि वह विज्ञान प्रगति के शुल्क से अतिरिक्त वी.पी. का खर्चा सहित अपनी वी.पी. छुड़ा लेंगे।

□ अधिक जानकारी के लिये सम्पर्क करें :-

वरिष्ठ बिक्री एवं वितरण अधिकारी प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय
सी.एस.आई.आर., हिलसाइड रोड नई दिल्ली-110 012

डा. जी.पी. फोंडके द्वारा प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय (सी.एस.आई.आर.) नई दिल्ली, के लिए तेज प्रेस, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110 002 में प्रकाशित और मुद्रित
Regd. No. D (C)-89
Licence No. U. 119

अप्रैल 1991 चैत्र 1913
विज्ञान प्रगति के
40
वर्ष
मूल्य 2.50 रुपये
विज्ञान प्रगति
DUPLICATE
खतरे में है
समुद्री जीवन

"रैपिडैक्स इंगलिश स्पीकिंग कोर्स"
अंग्रेज़ी-हिन्दी डिक्शनरी सहित
बेजटक अंग्रेज़ी बोलने का प्रभावी व सरल कोर्स
Added Feature LETTER WRITING
• बड़ा आकार • 400 से अधिक पृष्ठ
• मूल्य 40/- • डाकव्यय 6/-
It is really a good book to learn Spoken English.
— Kapil Dev
पत्र-पत्रिकाओं एवं शिक्षाविदों द्वारा प्रशंसित
13 भारतीय भाषाओं में अलग-अलग उपलब्ध
4,00,00,000 (चार करोड़) से अधिक पाठकों की पसंद
बिक्री के क्षेत्र में सनसनी फैला देने वाली एक अनूठी पुस्तक
नई ऊँचाइयों की ओर निरन्तर अग्रसर
अपने निकट व ए.एच. व्हीलर के रेलवे व बस अड्डों के बुकस्टालों पर मांगें। वी.पी.पी. द्वारा मंगाने के पते:—
पुस्तक महल
1. खारी बावली, दिल्ली -110006. फोन:239314
2. 10-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002. फोन: 3268292

पूरी दुनियां की सेहत का सवाल

सात अप्रैल 1948 को जब पहली बार विश्व स्वास्थ्य संगठन का झण्डा लहराया तो बीमारियों, महामारियों और शारीरिक व मानसिक कमजोरी से जूझती दुनियां की बहुसंख्यक आबादी को इस बात की आशा बंधी थी कि उनके कल्याण के लिए विश्व स्तर पर सोचने और काम करने की पहल की गई है। देखते ही देखते अनेक जानलेवा महामारियों को मिटा दिया गया, विभिन्न छूत रोगों पर विजय पा ली गई और यहां तक कि पीढ़ी दर पीढ़ी चलने वाले कुछ रोगों पर भी काबू पाया जा सका।' आखिर पूरी दुनियां की सेहत का सवाल था। हर बच्चे, औरत और पुरुष को स्वस्थ बनाने के लिए और भयंकर रोगों को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन ने सन् 2001 मुकर्रर किया है। हैजा, प्लेग, मलेरिया और पेचिस जैसे रोगों पर नियंत्रण के बाद आज कैंसर और एड्स जैसे असाध्य रोगों के विरुद्ध संघर्ष जारी है

इस साल का प्रतीक चित्र

सन् 1948 में विश्व स्वास्थ्य संगठन की शुरूआत होने के बाद, 1950 से हर साल 7 अप्रैल का दिन पूरी दुनियां में विश्व स्वास्थ्य दिवस के रूप में मनाया जाता है। यह संगठन संयुक्त राष्ट्र संघ के अंतर्गत एक विशिष्ट संस्था है, जो सबका शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य सुधारने में मदद देता है। संगठन राष्ट्रीय स्वास्थ्य योजनाओं की पुष्टि करता है। इन परियोजनाओं में स्वास्थ्य संस्थानों की स्थापना, विशिष्ट रोगों के विरुद्ध अभियानों का संचालन, स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण आदि कार्य शामिल हैं।

लोगों में स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता पैदा करने और उनमें स्वास्थ्य संबंधी जानकारी के प्रसार हेतु विश्व स्वास्थ्य दिवस के अवसर पर हर साल एक विशेष विषय निर्धारित किया जाता है और उसे प्रचारित करने के लिए संक्षेप में नारा दिया जाता है।

इस वर्ष का विषय आपातकाल हेतु पूर्व तैयारियों से संबंधित है। दरअसल दुर्घटनाएं दो प्रकार की होती हैं। एक तो प्राकृतिक आपदाएं और दूसरी मानवकृत। विश्व स्वास्थ्य संगठन की परिभाषा के अनुसार "कोई भी ऐसी घटना जिससे नुकसान, आर्थिक क्षति, मानव जीवन की क्षति और स्वास्थ्य में गिरावट इस अनुपात में होती है कि प्रभावित समुदाय या क्षेत्र पर अप्रत्याशित रूप से लोगों का ध्यानाकर्षित हो, आपदा कहलाती है।" इस प्रकार लगभग हर दिन दुनियां में कहीं न कहीं, कोई न कोई आपदा अवश्य आती रहती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के महानिदेशक डा. हिरोशी नाकजिमा कहते हैं कि "दुर्भाग्यवश ये आपदायें उन देशों में ज्यादा आती हैं, जिनके पास सामाजिक और स्वास्थ्य संबंधी परेशानियों से निबटने के लिए साधनों की कमी है, लेकिन यदि पहले से तैयारी रखी जाए और दुर्घटना के पहले और बाद में उचित कदम उठाए जाएं तो विनाश को कम किया जा सकता है। साथ ही दुर्घटना के बाद पुनर्निर्माण और पुनर्स्थापना में भी मदद मिल सकती है।"
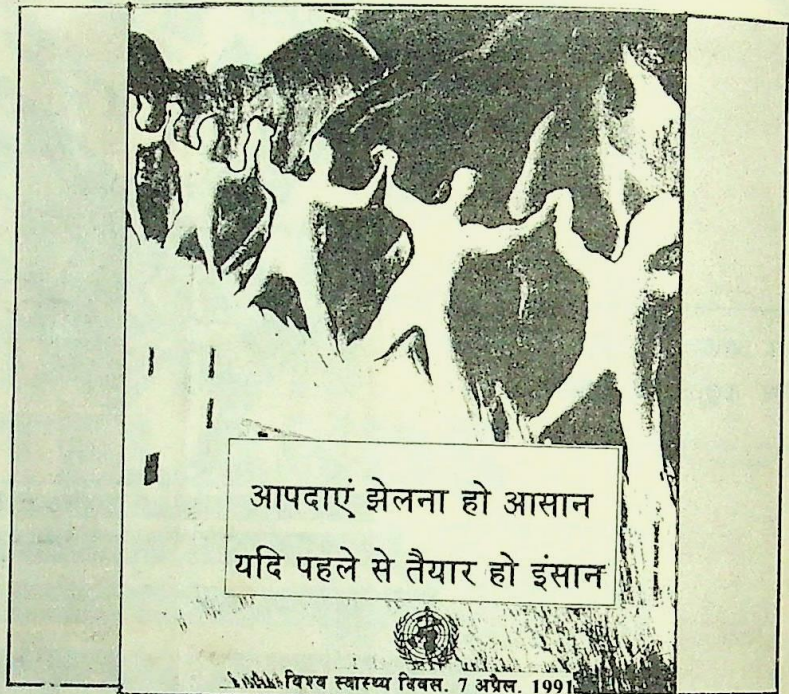
मानव हमेशा से इन आपदाओं को झेलता आया है। कभी भूकम्प तो कभी चक्रवात, कभी तड़ित बिजली तो बाढ़ और तूफान। आपदा कई प्रकार से मानवता को प्रभावित करती हैं, जिसमें प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष नुकसान के अलावा तात्कालिक और दीर्घकालिक क्षति भी शामिल होती है। यद्यपि दुर्घटनाओं को प्रायः रोका नहीं जा सकता है, लेकिन पूर्व तैयारी से और आवश्यक जानकारी से उनके प्रभाव को कम किया जा सकता है। मसलन पर्याप्त चिकित्सा सुविधाओं, आवश्यक तकनीकी जानकारी, उपकरणों आदि की पूर्व व्यवस्था से आपदाओं के उपरांत त्वरित कार्रवाई की जा सकती है। ऐसी ही आधारभूत बातों पर केन्द्रित है इस वर्ष का विश्व स्वास्थ्य दिवस, जिसका नारा है—आपदाएं झेलना हो आसान, यदि पहले से तैयार हो इंसान। □

[श्री मनोज पटैरिया, प्रकाशन और सूचना निदेशालय, नई दिल्ली- 12]

ग्राहकों के लिए सूचना

विज्ञान प्रगति की एक प्रति का मूल्य 2.50 रुपये है। इस पत्रिका का वार्षिक मूल्य 25.00 रुपये, द्विवार्षिक मूल्य 40.00 रुपये, त्रिवार्षिक मूल्य 60.00 रुपये हैं। अर्थात् आप एक वर्ष, **दो वर्ष, तीन वर्ष का ग्राहक बनकर क्रमशः 5.00 रुपये 20.00 रुपये एवं 30.00 रुपये की बचत कर सकते हैं।** चन्दे की राशि अग्रिम रूप से मनी आर्डर, डिमांड ड्राफ्ट अथवा चैक द्वारा **प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय**, हिलसाइड रोड, नई दिल्ली-110012 को भेजी जानी चाहिये

विज्ञान प्रगति की पहली प्रति वार्षिक/द्विवार्षिक/त्रिवार्षिक ग्राहकों को, अगर वे चाहते हैं तब वी.पी.पी. से भेजी जा सकती है। वी.पी.पी. छुड़ाते समय एक/दो/तीन वर्ष के चन्दे की पूरी राशि तथा वी.पी.पी. शुल्क देना होगा।

चैक भेजते समय दिल्ली के बाहर के चैक पर, कृपया बैंक कमीशन 3.50 रु. भी जोड़ लें।

ग्राहक फार्म

मेरा नाम विज्ञान प्रगति के ग्राहकों/नए ग्राहकों की सूची में वर्ष के लिए (मास.... 199 से... 199 तक दर्ज कर लीजिए। इसके लिए मनी आर्डर/बैंक ड्राफ्ट

क्रमांक.................दिनांक.......................से

"प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, सी.एस.आई.आर.," नई दिल्ली-110 012 के नाम भेजे जा रहे हैं।

-हस्ताक्षर

पूरा पता ________________________________

____

____

____

वरिष्ठ बिक्री और वितरण अधिकारी,
'विज्ञान प्रगति'
पी.आई.डी. हिलसाईड रोड,
नई दिल्ली-110012

विषय सूची

वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् का हिन्दी विज्ञान मासिक

वर्ष : 40 अप्रैल : 1991 चैत्र : 1913 अंक : 4 पूर्णांक : 443

पृष्ठ 10

पृष्ठ 13

पृष्ठ 21

पृष्ठ 26

पृष्ठ 34

विज्ञान प्रगति

अप्रैल 1991

प्रमुख सम्पादक
डा. जी.पी. फोंडके

सम्पादक
दीक्षा बिष्ट

सहायक सम्पादक
मनोज कुमार पटैरिया

सम्पादन सहायक
ओम प्रकाश मित्तल

कला अधिकारी
दलवीर सिंह वर्मा

प्रोडक्शन अधिकारी
रत्नाम्बर दत्त जोशी

बिक्री और वितरण अधिकारी
आर.पी. गुलाटी
टी. गोपाल कृष्ण
एल.के. चोपड़ा
मो. आसीफ अख्तर

सहायक
फूल चन्द
बी.एस. शर्मा

आवरण
नीरू शर्मा

टेलीफोन : 585359 और 586301
लेखकों के कथनों और मतों के लिये प्रकाशन और सूचना निदेशालय उत्तरदायी नहीं है।
एक अंक का मूल्य : 2.50 रुपये
वार्षिक मूल्य : 25.00 रुपये

हालांकि खाड़ी युद्ध अब समाप्त हो गया है लेकिन छोड़ गया है, भयावह परिणाम। युद्ध को तो मानव झेलता ही है और उससे होने वाले दुष्परिणामों को भुगतता भी है, लेकिन इस खाड़ी युद्ध से जो भयंकर विनाश हुआ है वह है—समुद्री पारिस्थितिकी का, खाड़ी के पर्यावरण का। पर्यावरण क्षतिग्रस्त हुआ है भयानक बमबारी से तेल कुंओं में लगी आग से। लेकिन सुमद्र में तेल फैलने की घटना ने पर्यावरण विशेषज्ञों को अन्तर्मन तक हिलाकर रख दिया है क्योंकि तेल फैलने से सऊदी अरब और संयुक्त अरब अमीरात के पर्यावरण तथा जल शुद्धिकरण संयंत्रों के लिये गंभीर खतरा उत्पन्न हो गया है। समुद्र में फैले इस तेल की मात्रा अलास्का तट पर समुद्री चट्टान के एक्सानवाल्डेज सुपर टैंकर के टकराने से हुये तेल के रिसाव की मात्रा से 27 गुना अधिक है और उस समय इस टैंकर के पांच जगह से फट जाने से इससे 110 लाख गैलन तेल पानी में फैल गया था। उस समय भी सबसे अधिक प्रभावित समुद्री जीव जन्तु ही हुये थे। प्रायः इस तरह के प्रदूषण से प्रभावित होते हैं दुर्लभ समुद्री पशु-पक्षी।

वर्ष 1989 की अलास्का की दुर्घटना में लगभग 150 दुर्लभ पंखहीन गरुड़ असमय काल कवलित हो गये थे और असंख्य सीलें और समुद्री ऊदबिलाव भी तड़प-तड़प कर असमय में काल का ग्रास बन गये थे। लेकिन आज के इस तेल के फैलाव ने समुद्री जीवों के लिये विकट परिस्थिति खड़ी कर दी है। यद्यपि इस तेल के फैलाव को रोकने के हर संभव प्रयास किये जा रहे हैं लेकिन लहरों के साथ यह तेल दिनानुदिन अपने पैर पसारता ही जा रहा है और लील रहा है—समुद्री जीवों को, क्योंकि तेल के ऐसे फैलाव को रोकने के लिये पर्याप्त साधन उपलब्ध नहीं हैं। कोई अनुमान भी नहीं है कि कितने जीव-जन्तु इससे प्रभावित हुये होंगे। हां! एक बात अवश्य है कि इस विनाश से खाड़ी का मत्स्य उद्योग जरूर ठप्प पड़ जायेगा क्योंकि जीवित बची हुई मछलियां स्वास्थ्य के लिये हानिकारक ही सिद्ध होंगी, कारण त्वचा द्वारा विषाक्त हाइड्रोकार्बनों आदि का अवशोषण।

अन्त में प्रश्न उठता है कि भारत के तटीय क्षेत्र खाड़ी के तैलीय प्रदूषण से कितने प्रभावित होंगे। इसका उत्तर दिया है अमेरिकी दूतावास के विज्ञान काउंसिलर डा. पीटर हाइडमैन ने। उनके अनुसार इस क्षेत्र की लहरों के उठने की पद्धति के कारण इस क्षेत्र में तेल नहीं पहुंच पायेगा और तब तक तो प्राकृतिक बैक्टीरिया द्वारा यह तेल विघटित भी हो जायेगा। लेकिन परिणाम क्या रहेंगे यह तो भविष्य ही बतायेगा।

दुर्लभ पत्रिका

फरवरी 1991 अंक पढ़ा। इस अंक में सभी रचनाएं ज्ञानवर्धक एवं पठनीय रही। यह पत्रिका उच्च प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए भी काफी उपयोगी प्रतीत हो रही है। "परमाणु रिऐक्टर 2000 ईसवी तक" जानकारी देने के लिए लेखक बधाई के पात्र हैं। प्रश्न मंच तो इस पत्रिका को बहुत ही दुर्लभ बना देता है। इसके लिए आप निश्चय ही बधाई के पात्र हैं। विज्ञान प्रगति की निरंतर प्रगति होती रहे।

[विजय कुमार नौटियाल, टिहरी, गढ़वाल, उ.प्र. और राजेश कुमार 'इण्डियन', वीरपुर, बिहार]

आकर्षक आवरण

फरवरी 1991 का अंक प्राप्त हुआ। इस अंक के आवरण का पृष्ठ आकर्षक है। साथ ही साथ नाभिकीय भट्टियों से सम्बन्धित लेख "आत्मनिर्भरता का प्रतीकः ध्रुव" तथा "परमाणु रिएक्टर 2000 ईसवी तक" जिसे अनिल काकोडकर एवं विट्ठल कुमार फरक्या ने लिखा है, अत्यन्त ज्ञानवर्धक, रुचिकर एवं श्रेष्ठत्तम लगे। रंगीन चित्र देकर आपने इस लेख को इत्र की भांति खुशबु प्रदान की है। आप लोगों की मेहनत व लगन के कारण यह पत्रिका तारे की चमक की तरह, हर पाठक, जो विज्ञान में थोड़ी भी रुचि रखता है, के मस्तिष्क में चमकती रहती है।

इस अंक में एक कमी गणित से सम्बन्धित कोई भी स्तम्भ नहीं रहने के कारण लग रही है।

अंत में यदि मैं इस अंक को "परमाणु रिएक्टर" विशेषांक कहूं तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

[ख्वाजा असलमुज्जमाँ, शेरघाटी, गया, बिहार]

संदेश

हम आपकी सुप्रसिद्ध पत्रिका 'विज्ञान प्रगति' के पुराने पाठक हैं। इस रोचक एवं ज्ञानवर्धक पत्रिका की प्रशंसा शब्दों में नहीं की जा सकती है। प्रश्न मंच तो मैं सबसे पहले पढ़ता हूं। विज्ञान प्रगति में आप "हम सुझायें आप बनायें" नियमित रूप से दें, तथा इस स्तम्भ में मिनी ट्रांसमीटर का परिपथ फिर से प्रकाशित करें।

कविताओं ने तो हमारा मन ही मोह लिया। इनके लेखकों को हमारी ओर से विशेष धन्यवाद!

आपने 1991 के शुरू होते-होते हमें जो नई श्रृंखलायें दी (विज्ञान जिनका ऋणी है तथा खेल और विज्ञान), उनमें अपार ज्ञान है। आशा करता हूं अपने विज्ञान प्रगति के पाठक मित्रों से कि इन दो श्रृंखलाओं को ध्यान से पढ़ें, इनका अध्ययन करें इनमें अपार ज्ञान समाया हुआ है।

[राजेश कुमार सिंह, न्यू बहादुरपुर, पटना]

कवितायें एवं प्रदर्शनी

फरवरी अंक हमें प्राप्त हुआ। जिस प्रकार आपने नये सिरे से कविता एवं प्रदर्शनी देकर हमारे ज्ञान में वृद्धि की, ठीक इस प्रकार आप माह के प्रत्येक अंके में महत्वपूर्ण तिथियों को भी स्थान दें तो हमारा ज्ञान भंडार और बढ़ेगा। आशा है इस ओर सम्पादक जी अधिक ध्यान देंगे। विज्ञान प्रगति की तारीफ के लिए शब्दकोश के शब्द भी फीके पड़ जायेंगे। हमें मुख्यत विज्ञान जिनका ऋणी है, आरोग्य सलाह, आमुख कथा, चित्रकथा, प्रश्न मंच एवं खेल विज्ञान विशेष रूप से रुचिकर लगते हैं। सम्बन्धित कार्यरत सदस्यों को मसीहा रेडियो श्रोता संघ की ओर से ढेर सारी बधाई।

[मसीहा रेडियो श्रोता संघ, कुतुबपुर, बलिया, उ.प्र.]

वस्तुनिष्ठ प्रश्न दें

मैं विज्ञान प्रगति का एक नया पाठक हूं। पत्रिका का हर अंक बेहद रोचक एवं ज्ञानवर्द्धक होता है। निसंदेह विज्ञान प्रगति हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका है। उसने यह सिद्ध कर दिखाया है कि हिन्दी भाषा भी उच्चविज्ञान को सरलता से समझा सकती है। जो लोग यह सोचते हैं कि बिना अंग्रेजी के उच्चविज्ञान को कोई नहीं समझ सकता वे अंग्रेजी की मानसिकता से रोगग्रस्त हैं। अथवा हिन्दी के शत्रु हैं। पत्रिका के स्तम्भ प्रश्नमंच, आपके पत्र के माध्यम से पाठकों की भागीदारी पत्रिका में चार-चांद लगा देती है। पत्रिका का आवरण पाठक को आकर्षित कर झकझोर देने वाला होता है। मेरा इस पत्रिका के बारे में सुझाव है कि इसमें वस्तुनिष्ठ प्रश्न के स्तम्भ को शामिल करना बेहद जरूरी है ताकि विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं की वर्तमान व्यवस्था के अनुरूप यह मार्गदर्शन कर सके।

[रवीन्द कुमार श्रीवास्तव, छतरपुर, म.प्र.]

उत्कृष्ट पत्रिका

वैसे तो पत्रिकाएं बहुत छपती हैं पर किफायती एवं ज्ञान का सर्वोत्तम भंडार तो एक ही है और वह है हमारी "विज्ञान प्रगति"। मैं इस पत्रिका की जितनी भी प्रशंसा करूं कम हैं। फरवरी का अंक काफी ज्ञानवर्द्धक एवं मनमोहक रहा। मैं आशा करता हूं कि भविष्य में भी आप ऐसी ही ज्ञानोपयोगी अंक छपवाएंगे। विज्ञान प्रगति के अंदर छपा हुआ चित्र मुझे ही नहीं मेरे ढेर सारे मित्रों को अपनी ओर आकर्षित किये बिना नहीं रहते। मैं ईश्वर से यही कामना करता हूं कि आपकी पत्रिका दिन दुगनी रात चौगुनी प्रगति करे। अंत में मैं आपसे एक शिकायत करने जा रहा हूं कि प्रश्न मंच स्तम्भ के पृष्ठ बहुत कम हैं इसलिए पृष्ठ बढ़ायें।

[शंकर चौधरी एवं मित्र, समस्तीपुर, बिहार, इन्दल सिंह गोले, रामपुर उ.प्र. और सुरेन्द्र कुमार पाण्डेय, रोहतास, बिहार]

गागर में सागर

विज्ञान प्रगति का फरवरी 91 अंक प्राप्त हुआ। इस अंक में आमुख कथा "आत्मनिर्भरता का प्रतीक ध्रुव, परमाणु रिऐक्टर 2000 ईसवी तक एवं युद्ध जीतने के लिए विज्ञान" तीन लेख सर्वाधिक पसन्द आयें। इन लेखों में आपने न्यूक्लियर रिऐक्टर्स, यूरेनियम का विखण्डन नाभिकीय विखण्डन प्रक्रिया, विभिन्न देशों की नाभिकीय ऊर्जा के क्षेत्र में स्थिति, सन 2000 तक न्यूक्लियर पावर, भारत का लक्ष्य एवं (14-28) नवम्बर 1990 को आयोजित प्रदर्शनी "रक्षा और विज्ञान प्रदर्शनी" नई दिल्ली में प्रदर्शित आधुनिक युद्ध सम्बन्धी जानकारी दी गई। यह वास्तव में गागर में सागर भरने के बराबर है। मात्र 2.50 रु. में मुझे सारी जानकारी प्राप्त हुई।

[मनीष गुप्ता, रूरा, कानपुर और एहसान राज, मुजफ्फरपुर, बिहार]

फैलता तेल और समुद्री जीवन

हसन जावेद खान

तेल में नहाये दसियों हजार समुद्री पक्षी तटों पर कांप-कांप कर मर रहे हैं। कम से कम एक हजार समुद्री ऊद्बिलाव, तेल के प्रभाव से यकृत और गुर्दों की असमर्थता के कारण अस्तित्व के लिये संघर्ष कर रहे हैं। असंख्य, सील, व्हेल और सूंसों में जहर फैल गया है। अलास्का के तटों पर फैले दुर्दांत तेल की दुःखद समृतियां विलुप्त होने के पहले ही, फिर से तेल फैलने की घटना दिलोदिमाग पर छा गई है, जो कि पहले की तुलना में बहुत अधिक है। खाड़ी में फैली तेल की पर्त, अलास्का दुर्घटना से 27 गुना ज्यादा है, जिससे अपूर्व पारिस्थितिक विनाश होने का खतरा है, और इसका प्रभाव दूर होने में कई दशक लग जायेंगे।

ये कैसा मजाक है कि वही तेल जो दुनियांभर में लाखों वाहनों को चलाता है, आज अनगिनत समुद्री प्राणियों को अवश्यंभावी निर्दयी मौत बांट रहा है। कच्चे तेल के शोधन के बाद उससे गाड़ियां, वायुयान, फैक्ट्रियां और कृषि यंत्र चलाये जाते हैं, ताप और खाना पकाने के लिये गैस मिलती है, और औषधि प्रसाधन सामग्री तथा उर्वरक निर्माण का भी यह एक स्रोत है। लेकिन यही कच्चा तेल जब समुद्र में फैल जाता है, तब इसके कारण समुद्री जीवों की मृत्यु होने लगती है, और महासागरीय पारिस्थितिकी का नाश होता है।

औद्योगिक और तापन प्रयोजनों हेतु तेल को ले जाने में सुपर टैंकरों के इस्तेमाल में हुई वृद्धि से तटीय क्षेत्रों में व्यापक तेल फैलने का खतरा हमेशा रहा है। इनमें से अनेक भारी जहाजों के टकराने या उसमें दरार पड़ने से, उनमें भरा विशाल तेल बाहर आकर महासागरों की सतह पर तेल की व्यापक पर्त फैला देता है, और इसके पहले कि यह विकीर्णित हो और सागर तल में समा जाये, लहरें इसको मीलों दूर तक फैला देती हैं। कभी-कभी जल धारायें तेल को भूमि की ओर धकेल देती हैं, जिससे सागर तट प्रदूषित हो जाते हैं और समुद्री जीवों की मृत्यु हो जाती है।

इन विनाशकारी दुर्घटनाओं के फलस्वरूप दुनियां पहली बार तब चेती थी, जब 18 मार्च 1967 को इंगिलश चैनल में घुसते समय ग्रेट ब्रिटेन के दक्षिण पश्चिमी किनारों के पास उथले समुद्र में जा रहे टेरी केन्योन नामक लाइबेरियाई टैंकर से समुद्र में 60,000 टन कच्चा तेल बिखर गया था। तटीय किनारों पर 160 किमी. तक फैले इस तेल से अनगिनत मछलियां और पक्षी मर गये थे। दो साल बाद जनवरी 1969 में संयुक्त राज्य में सान्ता बार्बेरा के तटों पर दूसरी बार व्यापक मात्रा में तेल फैला था, जब एक निकटवर्ती तटीय तेल कुएं के उफनने से 1,000 गैलन प्रति घंटे की दर से तेल निकलने लगा था। इसके कारण तटों पर भारी नुकसान हुआ था।

सन् 1978 में बहु प्रचारित एम्को कैडिज़ दुर्घटना में पूरे फ्रेंच तटों पर 680 लाख गैलन तेल समा गया था। इसके बाद 24 मार्च 1989 को विश्व की सबसे बड़ी पेट्रोलियम कम्पनी एक्सॉन कार्पोरेशन का सुपर टैंकर एक्सॉन वाल्डेज अलास्का तट पर समुद्री चट्टान से टकरा गया था। इसका खोल 5 जगह से फट जाने के कारण 30,000 टन के सुपर टैंकर से अलास्का के प्रिंस विलियम जलडमरुमध्य के साफ पानी में 110 लाख गैलन तेल फैल गया था। तटवर्ती 1930 किमी. दूर तक तेल पहुंचने के कारण 100,000 समुद्री पक्षी मर गये थे, जिनमें दुर्लभ प्रजातियों के 150 पंखहीन गरुड़ पक्षी भी शामिल थे। अज्ञात संख्या में मरी सील महासागर तल में जमा हो गई थीं और कम से कम 1000 समुद्री ऊदबिलाव प्रभावित हुये थे। यहां तक कि कुछ हिरन और भालुओं का एक जोड़ा जो किनारे पर भोजन ग्रहण करता था, मरा पाया गया।

अपने यहां भी भारतीय तटों पर कुछ टैंकर दुर्घटनायें देखने को मिलीं। हालांकि वे इतनी गंभीर नहीं थीं। जुलाई 1973 में, गुजरात तट पर उथले समुद्र में बढ़ते एक तेल टैंकर कासमास पायोनियर से 3000 टन तेल बह गया था। 1974 में एक अमेरिकी तेल टैंकर ट्रांशुरान लक्षदीव के एक मूँगावलय से टकरा गया था, जिससे 5000 टन विशेष भट्टी तेल के फैलने से समुद्री जीवन को भारी क्षति हुई थी। इसी तरह की एक दुर्घटना में मुंबई तट पर लाजपत नामक
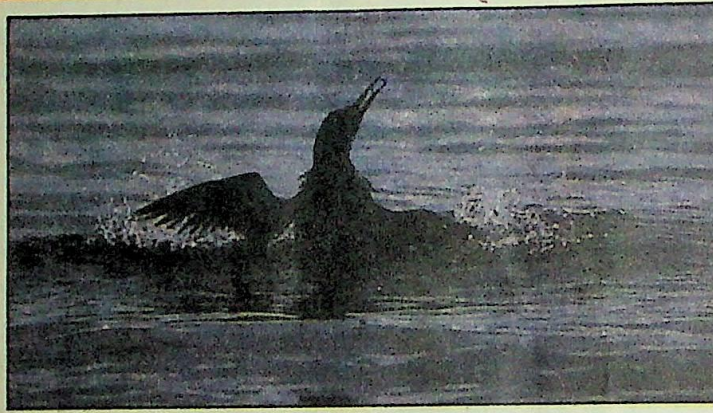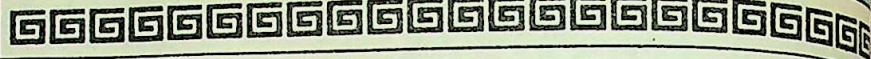
जीवन के लिये जारी है संघर्ष

टैंकर से हजारों टन तेल बिखर गया था। भारतीय तट पर तेल फैलने की अब तक की अंतिम दुर्घटना जून 1989 को हुई, जब एक माल्टीज़ टैंकर एम.टी. पप्पी एक ब्रिटिश जहाज से टकरा गया। इस माल्टीज टैंकर से मुंबई के खुले सागर में 5,500 टन से ज्यादा फर्नेस तेल फैल गया था। उस समय मछलियों में संदूषण के डर से लोगों ने मछली खरीदना बंद कर दिया था, क्योंकि इससे कैंसर होने का खतरा था। इससे मछली व्यवसाय में भारी अवरोध आया।

लेकिन सागरीय पर्यावरण में व्याप्त सारा पेट्रोलियम, दरअसल यूं फैला हुआ तेल ही नहीं होता। लाखों वर्षों से सागरीय पर्यावरण में प्राकृतिक रिसाव द्वारा तेल जा रहा है, जो कि वर्तमान सागरीय तेल निष्कर्षण क्रियाओं के परिणामस्वरूप रिसने वाले तेल की अपेक्षा कहीं अधिक है। पूरी दुनियां में 200 से अधिक उपसागरीय तेल रिसावों को पहचाना जा चुका है। ऊपर निकली हुई अवसादी चट्टानों के क्षरण से भी समुद्र में लगातार पेट्रोलियम पहुंचता रहता है, इन चट्टानों में लेश मात्र पेट्रोलियम रहता है। समुद्र में रहने वाले ऐसे जीवों के भी प्रमाण हैं जो जैविक रूप में हाइड्रोकार्बन पैदा करते हैं, जो कि पेट्रोलियम के मुख्य घटक होते हैं। राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी, वाशिंगटन द्वारा दुनियां के सागरों में व्याप्त पेट्रोलियम प्रदूषण के अनुमान के अनुसार 17 से 88 लाख मीट्रिक टन तेल हर साल समुद्रों में जाता है। दुर्घटनाओं में फैला तेल तो इस प्रकार के प्रदूषण में बहुत दूर की बात है। आज जबकि अन्य प्रकार के प्रदूषण में 50 प्रतिशत तक कमी दिखाई देती है, वहीं, तेल के फैलने की दर बढ़ी है।

फिर वह क्या है, जिससे समुद्र तटों पर घातक रूप से कच्चा तेल जमा हो रहा है? तटवर्ती कुओं से उत्पादित कच्चे तेल को ज्यों का त्यों बहुत कम काम में लाया जाता है, लेकिन शोधशालाओं में इसको विभिन्न प्रकारों के उत्पादों में बदला जाता है, जैसे गैसोलिन, केरोसिन, डीजल ईंधन, जेट ईंधन, घरेलू और औद्योगिक ईंधन तेल तथा पेट्रोरासायनिक संभरण पदार्थ। शोधन के पहले तेल में अत्यधिक घातक पदार्थ शामिल होते हैं।

प्राथमिक तौर पर कच्चा तेल कार्बन और हाइड्रोजन के यौगिकों का बना होता है जिनको हाइड्रोकार्बन कहते हैं। पैराफिन (पैराफिन तेल को ऊष्मकों और दीपों में ईंधन के रूप में इस्तेमाल किया जाता है), साइक्लोपैराफिन (नैफ्थीन्स), और विभिन्न अनुपातों में सगंध यौगिक होते हैं। संयुक्त राज्य के पूर्वी और मध्य पश्चिमी भागों में मिलने वाला कच्चा तेल मुख्यतया पैराफिन युक्त होता है जबकि खाड़ी के किनारों पर मिलने वाला कच्चा तेल नैफ्थीन युक्त होता है।

कच्चे तेल में विभिन्न अनुपातों में गंधक के यौगिक, अल्प मात्रा में नाइट्रोजन और अत्यल्प आक्सीजन या ओलेफिन भी होते हैं, जो कि असंतृप्त हाइड्रोकार्बन हैं। सभी प्रकार के कच्चे तेलों में निकेल और वैनेडियम उच्च अनुपात में मिलते हैं। उत्पादन और आवागमन के दौरान प्रयुक्त पाइपों और कंटेनरों के क्षरण के फलस्वरूप भी तेल में अकार्बनिक अवस्था में लौह भी मिल जाता है।

मीथेन और ईथेन जैसे पैराफिन श्वास रोधी होते हैं, जिनसे घुटन होती है। कुछ पैराफिन केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र पर प्रभाव डालते हैं। तरल पैराफिन त्वचा पर डालने से तेल सोख लेते हैं और डर्मिटाइटिस या फेफड़ों के ऊतकों में न्यूमोनिया पैदा करते हैं। तथापि ये हाइड्रोकार्बनों से कम विषांक्त होते हैं। संतृप्त चक्रीय पैराफिनों की अपेक्षा असंतृप्त चक्रीय पैराफिन अधिक हानिकारी होते हैं, लेकिन इनके अलावा चक्रीय पैराफिनों के प्रभाव पैराफिनों के समान होते हैं। इनकी वाष्प को अधिक मात्रा में सूंघने पर चिड़चिड़ापन और बेहोशी आ सकती है। सर्वाधिक विषाक्त हाइड्रोकार्बन, ऐरोमैटिक हाइड्रोकार्बन होते हैं। वाष्प को भीतर लेने पर घातक विषाक्तन हो सकता है। विशेषतया बेंजीन विषैली होती है और यहां तक कि अल्प मात्रा में भी लम्बे समय तक इसके संपर्क में आने से रक्ताल्पता और श्वेत रक्त कणिकाओं में कमी हो सकती है।

कच्चे तेल में विद्यमान गंधक के यौगिक भी विषैले हो सकते हैं। कार्बोनिल सल्फाइड घातक रूप से जहरीला होता है। यह 2900 अंश प्रति दस लक्षांश की दर से घातक है। विषालुता क्रिया की शुरूआत इसके हाइड्रोजन सल्फाइड में टूटने के साथ होती है। मुख्यता यह केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र पर असर डालता है, जिससे मृत्यु तक हो सकती है, इससे श्वसनांग काम करना बंद कर देते हैं। ऐरोमैटिक थियोफींस, बेंजोथियोफींस आदि के रूप में सल्फर मध्यम तौर पर विषैली होती है। इनसे यकृत और गुर्दों को नुकसान होता है। मर्केप्टान जैसे कुछ सल्फर यौगिक भी घातक हो सकते हैं।

यद्यपि तेल फैलने के दीर्घकालिक प्रभाव ज्यादा ज्ञात नहीं हैं, तथापि अलास्का तेल फैलाव से अल्प कालिक प्रभावों का अध्ययन किया जा सका है। एक्सॉन वाल्डेज से फैले 110 लाख गैलन तेल के तटों पर पहुंचने से समुद्री पक्षी कांपने और मरने लगे थे। इस तेल ने पक्षियों को पानी से बचाने वाले

उनकी प्राकृतिक तेल और मोम की पर्त को घोल दिया था। फलस्वरूप पक्षियों का शारीरिक ताप अत्यंत कम हो जाने से वे मरने लगे थे। पंखहीन गरुड़ पक्षियों की लगभग 150 दुर्लभ जातियां भी तेल युक्त समुद्री पक्षियों के सड़े-गले ढांचे खाने से प्रभावित हुई थीं। पक्षियों पर से तेल साफ करने में भी ज्यादा सफलता नहीं मिली, क्योंकि इससे पक्षियों में अत्यधिक तनाव रहता है। फिर भी ब्रिटिश वन्य जीवन रक्षण संघ ने ऐसे ऊनी स्वेटर विकसित किए हैं, जो प्रभावित पक्षियों में से तेल सोख लेते हैं। उत्तरी सागर में पहले ही इन स्वेटरों से पक्षियों को साफ किया जा चुका है, और ये अपमार्जकों की तुलना में ज्यादा प्रभावी सिद्ध हुए।

लगभग 1000 समुद्री ऊर्दबिलाव के तेल से संतृप्त हो जाने, और कोई आवरण न बचने के कारण मर गए। अन्यों के फेफड़ों की झिल्लियां तेल में विद्यमान वाष्पशील घटकों के प्रभाव से कमजोर पड़ जाने से श्वासरोध पैदा हो गया। कुछ अपने चोल साफ करते समय तेल पी जाने के कारण और गुर्दे खराब हो जाने से प्रभावित हुए।

मछलियां सबसे कम प्रभावित हुई थीं। जहां तेल फैला था, जब वहां की मछलियों का परीक्षण किया गया, तो उनके मांस में कोई हाइड्रोकार्बन नहीं मिला। मछलियां हाइड्रोकार्बन को उपापचयी पदार्थों में बदलने में सक्षम होती हैं, इन उपापचयी पदार्थों को यकृत के द्वारा पित्ताशय में भेज दिया जाता है। साथ ही मछलियां अपनी गतिशीलता के कारण बड़ी मात्रा में संदूषण से भी अलग रहती हैं, क्योंकि इस प्रकार वे अत्यंत संदूषण युक्त क्षेत्रों से बच सकती हैं। तथापि मरने वालों में कवचधारी मछलियां और सीपियां भी थीं, क्योंकि वे हाइड्रोकार्बनों को परिवर्तित करने में सक्षम नहीं होतीं।

महासागर के पानी में तेल बिखरने के साथ ही तेजी से सतह पर पसर जाता है। गुरूत्वाकर्षण बल हल्के तेल की पर्त को अपेक्षाकृत भारी पानी की सतह पर एक समान फैला देता है। तेल के फैलने की गति पर वायु, सतह धाराओं, तरंगों और ज्वार भाटे की क्रिया का संयुक्त प्रभाव पड़ता है। सामान्यतया पानी पर तेल वायु की गति के सापेक्ष लगभग 1/30वीं दर से फैलता है। दुर्घटनाओं में बड़ी मात्रा में बिखरे तेल का बहाव काफी हद तक तेल के आयतन, अपसरण या मौसम के प्रभाव पर निर्भर करता है। तेल परत के पतले भाग की अपेक्षा मोटे भाग का बहाव अधिक तेजी से होता है, अतः ज्यादा तेल गिरने से किनारों तक तेल की बहुत बड़ी पर्त फैल जाती है।

तेल जैसे-जैसे पसरता जाता है, वैसे ही इस पर विभिन्न मौसमी क्रियाओं का प्रभाव पड़ता है, और समय के साथ अंततोगत्वा तेल की पर्त फट जाती है। इनमें से पहला है वाष्पन, जो तेल गिरने के साथ ही प्रभावी हो जाता है। इससे हाइड्रोकार्बनों के घटक तरल अवस्था से वाष्प अवस्था में बदल जाते हैं। यह वाष्पन वायु के वेग, तेल की प्रकृति, पर्त के पतले होने की दर, सागर की स्थिति और ताप पर निर्भर करता है। तेल की पर्त के पूरे समय में लगभग 50 प्रतिशत तेल वाष्पन द्वारा उड़ जाता है। कुछ हल्के, अल्प क्वथन हाइड्रोकार्बन जैसे बैंजीन, टॉल्वीन, और जाइलीन वाष्पन में उड़ जाते हैं। इनके उड़ जाने से समुद्री जीवन में विषालुता घट जाती है। अधिकांश वाष्पीकृत तेल वायुमण्डल में प्रकाश-आक्सीकृत हो जाता है और इसका कुछ भाग वायुमण्डलीय धूल के रूप में पुनः समुद्र में लौट आता है।

प्रारम्भ में जब तेल पानी में बिखरता है तो उसका छोटा-सा भाग भी पानी में घुल जाता है। निम्न आणविक भार वाले यौगिक अत्यधिक घुलनशील होते हैं। हालांकि यह प्रक्रिया बहुत मामूली है। प्राकृतिक प्रंसार से भी कुछ तेल पानी से निकल जाता है। इस प्रक्रिया में तेल की छोटी-छोटी बूंदे जो कि धुले हुये अणुओं से बड़ी होती हैं, पानी में मिलकर पतले तेल और पानी का निलंबन तैयार करती हैं। कच्चे तेल में नाइट्रोजन, सल्फर तथा आक्सीजन के यौगिक बहुत अल्प मात्रा में मिले होते हैं, जो प्राकृतिक पृष्ठकारक की भांति काम करते हैं। पानी पर तैरते हुये ये यौगिक तेल व पानी के अंतरावर्ती तनाव को कम कर देते हैं, जिससे तेल छिटक कर छोटी बूंदों के रूप में बिखर जाए।

तेल का एक भाग जीवाणुओं द्वारा विघटित हो जाता है। पानी में जो सूक्ष्म जीव होते हैं उनमें एक ऐसी अद्भुत क्षमता होती
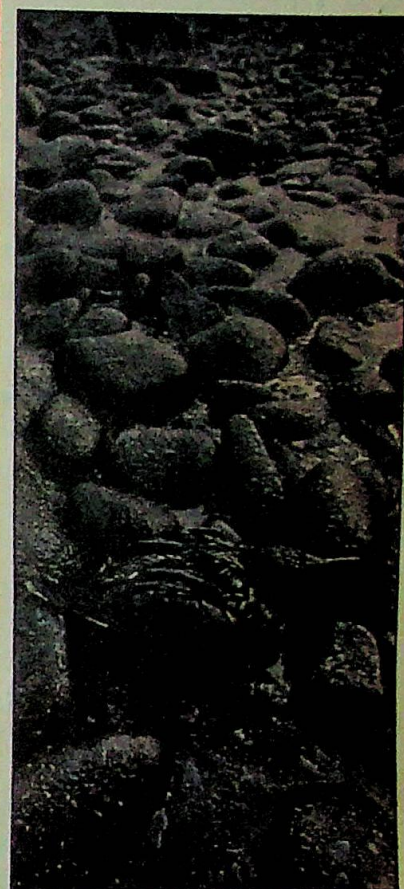
समुद्र के किनारे तेल से भीगी चट्टानों के बीच अन्तिम सांसें ले रहा समुद्री पक्षी-गिलीमॉट

है कि वे तेल में उपस्थित हाइड्रोकार्बन को प्रोटीनयुक्त भोजन में बदल देते हैं। तेल के प्रसार के साथ ही यह प्रक्रिया विशेषरूप से बढ़ जाती है। कुछ जीव तो बिखरी हुई तेल की बूंदों को खा जाते हैं और उनको बीट के रूप में निकालते रहते हैं। तेल का पायसीकरण भी मौसम के प्रभाव से उत्पन्न एक अन्य प्रक्रिया है। इस तैरते हुए तेल में पानी घुस जाता है, इससे तेल में पानी मिला हुआ पायस बन जाता है। ऐसे पायसों मे 20 से 80 प्रतिशत पानी हो सकता है और ये प्रायः लसदार होते हैं। इन्हें "बरफ मलाई (मूस)" कहा जाता है। एक बार जब मूस का बनना प्रारम्भ हो जाता है तो सफाई अभियान में बाधायें आने लगती हैं क्योंकि इसको पंप से खींच कर नहीं निकाला जा सकता। अंततोगत्वा वायु तथा लहरों की

क्रिया से मूस विखंडित होकर कोलतार की गेंदों की शक्ल धारण कर लेते हैं और ये समुद्र तट पर उतरते रहते हैं।

बहरहाल, बिखरे हुये तेल को विघटित होने में समय लगता है और जितने ज्यादा समय तक तेल पानी में तैरता रहेगा, यह समुद्री पर्यावरण के लिए उतना ही अधिक हानिकारक होगा। इसलिए जैसे ही तेल समुद्र तल पर बिखरता है उसको हटाने के लिए तुरन्त सफाई अभियान प्रारम्भ हो जाना चाहिए। रासायनिक तथा सूक्ष्मजीवी सतहकारकों वाले पदार्थों या तेल की

खाड़ी में तेल फैलने से कितना विना...

सत्रह जनवरी, 1991 से शुरू हुआ खाड़ी युद्ध एक बड़े विनाश का कारण बना है। इस कारण से उत्पन्न प्रमुख संकट है समुद्र में तेल का फैलना और उसकी परत बनते रहना। फारस की खाड़ी में यह परत पूर्व-पश्चिम में 60 किमी. और उत्तर-दक्षिण में 300 किमी. तक फैल गई है। गत 26 जनवरी को समुद्र में तेल की धार अल अहमादी से रस अल खाफ़जी की ओर जब फैलनी शुरू हुई तब इसकी चौड़ाई 10 किमी. (पूर्व-पश्चिम) तथा लंबाई 60 किमी. (उत्तर-दक्षिण) थी। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन ने अपने सुदूर संवेदन उपग्रह आई.आर.एस.-1 तथा इनसेट से तेल की परत की नापजोख की और बताया कि शुरू में यह परत बीच में 2 मिमी. मोटी थी।

इतिहास में तेल फैलने की अब तक की यह सबसे बड़ी घटना है। वाशिंगटन में वर्ल्डवाच इंस्टीट्यूट के लेस्टर ब्राउन के अनुसार समुद्र में तेल की परत का दुष्प्रभाव कई पीढ़ियों तक रहेगा। विशेषज्ञों ने यह बात तो शुरू में ही स्पष्ट कर दी थी कि समुद्री तेल के फैलने से सऊदी अरब और संयुक्त अरब अमीरात के पर्यावरण तथा जल शुद्धिकरण संयंत्रों के लिये गंभीर खतरा पैदा हो गया है। इसके अतिरिक्त दुर्लभ समुद्री जीवन जिसमें कई ऐसे जन्तु भी सम्मिलित हैं, जिनकी कुछ जातियां तो विलुप्त हो ही गई हैं और कुछ विलोपन की कगार पर खड़ी हैं, पर अभूतपूर्व संकट आन पड़ा है। हरा कछुआ यानि ग्रीनटर्टिल और कई समुद्री पक्षी इससे मुख्यतः प्रभावित हुये हैं;जहां तक हरे कछुये का प्रश्न है, वह पहले ही संकटापन्न घोषित किया जा चुका है और खाड़ी में तेल फैलने से उसे प्रलयकारी प्रजनन विफलता का सामना करना पड़ रहा है क्योंकि तेल के फैलाव से वह अपने प्रजनन स्थल तक पहुंच पाने में सक्षम नहीं हो पायेगा। परिणाम स्वरूप पूर्णतः लुप्त हो जायेगा।

इस कारण समुद्र के अंदर और बाहर रहने वाले पक्षियों और जीव-जंतुओं पर तेल की धार गजब ढा रही है। गत वर्ष जनवरी के अंत में एक पक्षी का चित्र कई पत्र-पत्रिकाओं में छपा था, जो खाड़ी तट पर तेल में लिपटा मरा पड़ा था। एक पक्षी हांफता हुआ बार-बार चट्टान पर चढ़ने का प्रयत्न कर रहा था। अनेक जीव-जंतु तो विषाक्त पदार्थ अंदर जाने के कारण तड़प-तड़प कर मर ही गये। लेकिन पेंग्वंस उड़ नहीं सकते, इसलिये उनकी तथा अन्य जलीय जन्तुओं को सबसे ज्यादा क्षति हुई। मछलियों के विनाश का तो अनुमान लगाना ही बड़ा कठिन कार्य है। न जाने कितनी मछलियां असमय ही काल का ग्रास बन गईं।

समुद्र में तेल फैलने के दस दिन बाद यह देखकर आश्चर्य

लील गया है समुद्री तेल-मृत समुद्री पक्षी "ग्रीब"

हुआ कि परत थम गई है। इसे थमे पांच-छः दिन हो गये। बताया गया कि रिसे तेल की मात्रा एक करोड़ 10 लाख बैरल के बराबर थी। तेल का बहाव दो-चार दिन के लिये रुका होगा। लेकिन इसका फैलना अब तक जारी है। बताया जाता है कि समुद्र में तेल की यह मात्रा 1989 में अलास्का में एक्सान वाल्डेज टैंकर से रिसे तेल से दस गुना ज्यादा है और वह भी खाड़ी में यह सबसे ज्यादा विनाश का कारण बन सकती है। इतने बड़े स्तर पर तेल के इस फैलाव को रोकने के लिये अब तक कोई विधि ईजाद नहीं की गई है। लेकिन प्रश्न यही उठता है कि भारतीय तट तक तेल फैलने से भारतीय समुद्री जीवन कितना प्रभावित होगा।

महासागरों तथा तटीय क्षेत्रों के लिये संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम के अंतर्गत कार्यरत एशियाई समुद्री संरक्षण संगठन ने चेतावनी दी है कि खाड़ी में तेल रिसने से भारतीय तट पर समुद्री जीवन को बहुत क्षति पहुंच सकती है। समुद्री वनस्पति भी नष्ट हो सकती है। एक अनुमान के अनुसार अप्रैल से तेल भारतीय तट की ओर बढ़ना शुरू हो जायेगा और तब पश्चिमी व दक्षिण-पश्चिमी भारतीय तट बुरी तरह प्रभावित होंगे। इस संगठन के महासचिव श्री अनुपम घोष समुद्री प्रदूषण तथा तेल फैलाव को रोकने की

चिकनाई को जला कर ऐसा किया जा सकता है।

यदि तेल पानी की सतह पर थोड़े से भाग में फैला हुआ हो तो इसको बड़ी सरलता से हटाया जा सकता है। तेल को और अधिक फैलने से रोकने के लिए फैले हुये तेल के चारों ओर यांत्रिक बल्लियां अथवा अवरोधक फैला दिये जाते हैं इससे तेल तट तक नहीं पहुंच पाता। लेकिन कभी-कभी ऊंची धारायें तेल को बल्लियों के परे फेंक देती हैं। तेल जब अवरोधकों के सामने जमा हो जाता है तो यह बल्लियों के नीचे से भी गुजर सकता

विनाश

हरीश अग्रवाल

समुद्र में फैला तेल

योजनाओं के विशेषज्ञ हैं। उन्होंने कलकत्ता में बताया कि पानी में मोटी तेल परत के कारण प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया में बाधा पड़ेगी। यह क्रिया 90 प्रतिशत तक कम हो जायेगी। यही पौधों में ऐसी प्रक्रिया है जिसके कारण हमें पर्याप्त मात्रा में जीवनदायिनी आक्सीजन मिलती है जिसके परिणाम-स्वरूप जनजीवन भी प्रभावित होगा। उनके सुझाव के अनुसार रबड़ की दीवारें जिन्हें 'बूम' कहते हैं, बना कर तेल का प्रसार अब भी रोका जा सकता है।

विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी विभाग के सचिव डा. वसंत गोवारीकर के अनुसार खाड़ी में तेल के फैलाव से समुद्री जीवन बहुत प्रभावित होगा, कितना? इसका अभी कुछ अंदाज नहीं लगाया जा सकता। लेकिन इस तेल फैलाव से मानसून पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। अरब सागर उस नापजोख में नहीं आता जिनसे मानसून की भविष्यवाणी की जाती है। डा. गोवारीकर के अनुसार मानसून तिब्बत पठार तथा बंगाल की खाड़ी में होने वाली घटनाओं पर निर्भर करता है।

भारतीय तट रक्षक विभाग के महानिदेशक वाइस एडमिरल एस.डब्ल्यू. लाखड़ के अनुसार मार्च-अप्रैल में समुद्र की गरमाहट के कारण तेल का कुछ भाग तो वाष्पित हो जायेगा और कुछ भाग अलकतरा गोलों के रूप में फिर भी रह जायेगा। ये गोले महाराष्ट्र या गुजरात तट तक फिर भी पहुंच सकते हैं, जो तट पर विनाश का कारण बन सकते हैं। लेकिन इनको पहले ही इकट्ठा करके जलाया जा सकता है। उनके अनुसार यदि तेल की परत अरब सागर तक फैल गई, तो इसके विघटन की संभावना बढ़ जायेगी और अधिकांश तेल समुद्र की तली में चला जायेगा। फिर भी यदि मान लिया जाये कि तेल की धार फिर भी ऊपर रहती है तो उससे भी निबटने के लिये तट रक्षकों के पास संभावित उपाय हैं। तट रक्षक, भारतीय तट से 400 समुद्री मील दूर से ही धार का निरीक्षण करना आरंभ कर देंगे। यह स्थान अरब सागर में मुरे रिज है। विमानों से परत के फैलने की गति और दिशा का पता लगा लिया जायेगा। यही नहीं तेल की पूरी संरचना भी ज्ञात कर ली जायेगी। फिर इस पर विशेष प्रकार के रसायनों का छिड़काव किया जायेगा, जिससे परत शीघ्रातिशीघ्र समुद्र में डूबती जायेगी। सामान्यतः गरम प्रदेशों में परत को डूबने में 24 घंटे लगते हैं। हां! परत को दूध से मलाई की तरह अलग भी किया जा सकता है।

हाल ही में भारत में आये वैज्ञानिक डा. आनंद चक्रवर्ती ने खाड़ी में तेल फैलने को रोकने के लिये प्रकाश डाला था। अमेरिका में रहकर उन्होंने एक ऐसा जीवाणु बनाया था जो पानी में मिले तेल को विघटित कर देते हैं लेकिन इस विधि से खाड़ी के समुद्र में फैले तेल को अलग नहीं किया जा सकता क्योंकि करोड़ों अरबों जीवाणु बनाने में दो-तीन महीने का समय तो आसानी से लगेगा। यहां यह भी उल्लेख करना आवश्यक है कि डा. चक्रवर्ती ने ऐसे जीवाणुओं के बनाये जाने की संभावना प्रकट की जो रासायनिक गैसों के प्रभाव को भी समाप्त कर सकते हैं। तेल की परत को जीवाणु-उत्पादों के द्वारा साफ किया जा सकता है। इन्हें "सूक्ष्मजैविक पृष्ठ सक्रियक" (माइक्रोबियल सर्फेक्टेंट) कहते हैं। ये बड़ी तेजी से पानी में मिले तेल को नष्ट करते हैं। डा. चक्रवर्ती के अनुसार यदि इन्हें तट पर छोड़ दिया जाये तो तेल वहां जमा ही नहीं होगा और समुद्र में वापस चला जायेगा।" इन जीवाणुओं का प्रयोग सर्वप्रथम 1989 में अलास्का में तेल की बची परत को साफ करने के लिये किया गया था। यदि ये जीवाणु भारी मात्रा में उपलब्ध हों, तो खाड़ी में फैले तेल को अलग करने के लिये इनका सफलतापूर्वक उपयोग किया जा सकता है। लेकिन फिर भी विनाश की संभावनाओं से इंकार नहीं किया जा सकता। □

[श्री हरीश अग्रवाल, डी- 40, गुलमोहर पार्क, नई दिल्ली- 110 049]
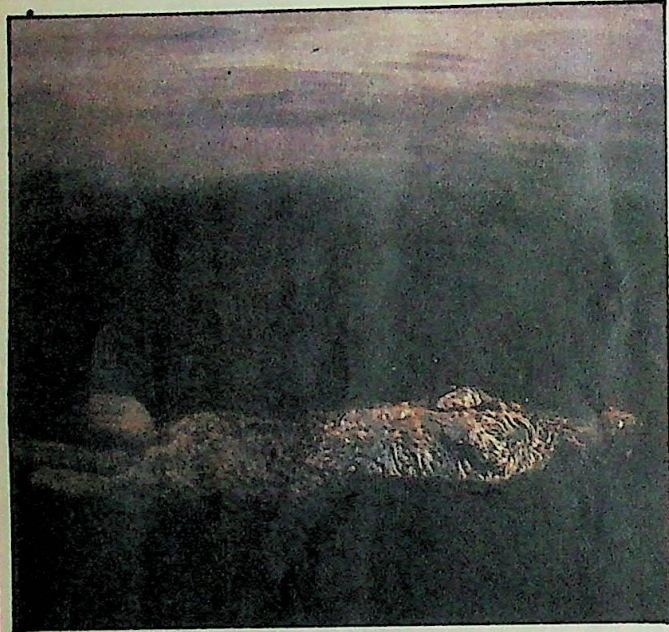
तेल विषाक्तता अथवा हाइपोथर्मिया का शिकार समुद्री ऊदबिलाव

है। इसलिए तेल को बल्लियों द्वारा सीमाबद्ध करके 'स्किमर' नामक जहाजों द्वारा समुद्र की सतह से तेल को खींच लिया जाता है। आजकल जो 'स्किमर' उपलब्ध हैं वे प्रायः एक या दो प्रकार के होते हैं। पहला यांत्रिक सतह स्किमर समुद्र तल से पानी तथा तेल की ऊपरी पर्तों को हटाता है। लेकिन उस समय यदि समुद्र में ऊंची-ऊंची लहरें उठ रही हों तो यह स्किमर अधिक कारगर नहीं होता है। ये स्किमर पानी की बहुत बड़ी मात्रा को तब तक खींचते जाते हैं जब तक कि पानी खींचने वाले यंत्र का छोर पानी की सतह छूता रहता है। दूसरे प्रकार के स्किमर का सिद्धांत यह है कि वे समुद्र तल से पानी की अपेक्षा तेल अधिक उठाते हैं। इस स्किमर की धातु की घूमती हुई डिस्क अथवा यांत्रिक पट्टा फैले हुये तेल के बीच में डुबाई जाती है। यह मथती हुई डिस्क पानी से बाहर खींच जाने पर सतह पर फैले तेल की परत को खींच लेती है।

समुद्र तल पर फैले हुये तेल को हटाने में विकीर्णनकारकों की भी मदद ली जाती है। इस प्रक्रिया के अंतर्गत वायुयानों अथवा जहाजों से समुद्र में रसायनों का छिड़काव किया जाता है। इससे तेल समुद्र में दूर-दूर तक इस प्रकार फैल जाता है जैसे कि हाथ में लगे तेल को छुड़ाने के लिए जब कोई साबुन से हाथ धोता है और तेल पायसीकृत होकर पानी के साथ धुल जाता है। किसी प्रकीर्णक में एक सतहकारी, एक विलायक और एक स्थाई कारक होता है। विलायक प्रायः बिखरे हुये तेल की बड़ी मात्रा को अपने में मिला लेता है और सतह सक्रिय या सतहकारी पदार्थ को तेल के साथ मिलने और तेल के भीतर घुस कर पायस बनाने में सहायता करता है। स्थाईकारी पदार्थ पायस को स्थिर कर देता है और एक बार स्थिर हो जाने पर इसे फिर से पानी में नहीं आने देता है। तेल के प्रसार के कारण इसकी चिकनाई सतह पर दूर-दूर तक फैल जाती है, जिससे सूक्ष्मजीवी अपघटन की दर तेजी से बढ़ जाती है। यद्यपि विकीर्णनकारी रसायन कारगर ढंग से तेल की पर्त को छिन्न-भिन्न कर देते हैं लेकिन ये रसायन समुद्री जीवों के लिए विषाक्त होते हैं। और जब तेलयुक्त बूंदें सागर में समा जाती हैं तो तेल बैंजीन तथा टॉल्वीन जैसे विषाक्त घटकों के साथ पानी में बना रह जाता है। ये विषाक्त घटक खाद्य श्रृंखला में प्रवेश करके लम्बे समय तक प्रभावित करते हैं।

बिखरे हुये तेल को हटाने के लिए अवशोषकों का भी प्रयोग किया जाता है। फैले हुये तेल पर जब इनको डाला जाता है तो ये तेल को सोख लेते हैं और इसको फैलने से रोक देते हैं। जब अवशोषक पदार्थ पानी से निकाले जाते हैं तब इनके साथ तेल भी बाहर आ जाता है। सड़ी गली वनस्पतियां, मॉस, तिनके, लकड़ी का बुरादा तथा देवदार की छाल प्राकृतिक अवशोषक का काम करते हैं। पॉलीएथिलीन, पॉलीस्टीरिन, पॉलीप्रॉपीलीन तथा पॉलीयूरीथेन आदि कृत्रिम अवशोषक हैं। सभी कृत्रिम अवशोषकों में से पोलीयूरीथेन के परिणाम सबसे अधिक सभावनापूर्ण हैं।

खुले सागर में तेल को जलाना प्रायः अधिक अच्छा नहीं रहा है। इसका कारण यह है कि तेल का अधिकतर हल्का भाग तेल में से भाप बन कर जल्दी ही उड़ जाता है। इसके अतिरिक्त आग के जोर पकड़ने से पहले ही पानी उसकी गर्मी को हटा देता है। फैले हुये तेल को जलाने से वायु प्रदूषण में बहुत अधिक वृद्धि होती है। समुद्र में फैले हुये तेल को हटाने के लिए जैवीय कारकों का प्रयोग सबसे अधिक सुरक्षित है। इन जीवाणु जन्य सतहकारकों की हवाई जहाज से बौछार की जाती है। ये तेल में मिलकर इसका पायसीकरण कर देते हैं और इसको पूरे समुद्र में इतने सूक्ष्म रूप में तितर-बितर कर देते हैं कि यह हानिकारक नहीं रह जाता है।

फिर भी किसी भी तरीके से पूरी तरह तेल को हटाया नहीं जा सकता। तेल को हटाने का तरीका विभिन्न परिस्थितियों में भिन्न प्रकार का चुना जाता है। लेकिन महत्वपूर्ण बात यह है कि जैसे ही यह पता चले कि समुद्र में तेल फैल गया है, उसको हटाने के तुरन्त प्रयत्न किये जाने चाहिए—भले ही तरीका कोई भी अपनाया जाये; क्योंकि तेल को हटाने में जितनी अधिक देर की जाएगी तेल उतनी अधिक दूरी तक फैलता जाएगा और जब तेल अपनी विनाशकारी क्रियाविधि में आएगा, तो समुद्र तट प्रभावित होंगे, समुद्री प्राणी मरेंगे और खाद्य श्रृंखला संदूषित हो जाएगी।□

[श्री हसन जावेद खान, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, सी.एस.आई.आर., हिलसाइड रोड, नई दिल्ली- 110012]

क्या होगा पेट्रोल का विकल्प

नीरू सलूजा

खाड़ीं संकट से आक्रांत तीसरी दुनियां के लोग। पेट्रोल पम्पों पर तेल के लिये लगी वाहनों की कतारें। रोजमर्रा की जिन्दगी में आवागमन और ईंधन तेल आधारित अन्य कार्यों पर प्रश्न चिन्ह लगाते सुर्खियों वाले समाचार और तेल की कमी की आशंकाओं में घिरा जनसमुदाय।

यह तस्वीर है उन आशंकाओं की जो ईंधन तेल को लेकर उत्पन्न हुई हैं, आज प्रबलतापूर्वक इन आशंकाओं ने वैज्ञानिकों और नीति निर्माताओं को पेट्रोल आदि के व्यावहारिक विकल्प खोजने को मजबूर कर दिया है।

यह तो सर्वविदित है कि दुनियां का पेट्रोल भंडार अब धीरे-धीरे समाप्त हो रहा है। ऐसा नहीं है कि यह कुछ ही वर्षों में या कुछ ही दशकों में समाप्त हो जायेगा, पर यह भी निश्चित है कि यह हमेशा हमारा साथ नहीं देगा। यह कोई नई बात नहीं है। इसका पता तभी से है जब से खनिज तेल को परिष्कृत कर के उसका प्रयोग किया जाना आरंभ हुआ था।

सन् 1973 में आई तेल की कमी ने वैज्ञानिकों को इस समस्या का हल ढूंढ़ने के लिये प्रेरित किया और तब से ही बड़े पैमाने पर पेट्रोल का व्यावहारिक विकल्प ढूंढ़ने का काम शुरू हो गया।

यह तो विश्वास किया जाता है कि पेट्रोल का विकल्प मिल जायेगा, परन्तु आम आदमी इसका उपयोग तभी कर पायेगा, यदि यह सभी जगह आसानी से उपलब्ध हो सके। उसके दाम आम आदमी की जेब के अनुकूल हों और वह हमारे पर्यावरण के लिये सुरक्षित हो। इस दिशा में काफी काम हो रहा है और हो भी चुका है और कुछ वैज्ञानिकों ने पेट्रोल के स्थान पर अन्य रसायनों का प्रयोग करने के सुझाव भी दिये हैं, जैसे एथेनाल (ग्रेन एल्कोहल) कई तरह के जैविक तत्वों से

पश्चिमी तटीय एक शहर में 1990 से पूर्व विद्युतिकृत पथ पर परीक्षण हेतु चलाई गई प्रोटोटाईप बस, जो पहली बार में एक मील तक चली

बनाया जाता है। इसी तरह गैसोहॉल जिसमें 90% पेट्रोल और 10% एथेनॉल होता है, काफी समय से ईंधन के रूप में प्रयोग हो रहा है।

ब्राजील जैसे देश जिनके अपने तेल भंडार केवल नाम मात्र के लिये हैं, पिछले लगभग एक दशक से एथेनॉल को अपनी कारों में प्रयोग कर रहे हैं। एथेनॉल और मेथेनॉल दोनों ही रासायनिक रूप से क्रियाशील हैं इसलिये इनकी रासायनिक ऊर्जा को काम में लाने के लिये इस्तेमाल किये जाने वाले उपकरणों में बहुत ही कम अंतर होता है। एथेनॉल मेथेनॉल से कम जहरीला होता है। परन्तु यह मेथेनॉल से तीन चार गुना ज्यादा महंगा है। इसी तरह दाबित प्राकृतिक गैस (सीएनजी) और द्रवीकृत पेट्रोलियम गैस (एलपीजी) का भी प्रयोग कर सकते हैं। सीएनजी का आयतनात्मक ऊर्जा घनत्व बहुत कम है, इसलिये इसे वाहनों में प्रयोग करने के लिये बहुत बड़े टैंक की आवश्यकता होगी, जो कि वाहन के साथ-साथ चलेगा। ब्रिटिश कोलम्बिया में करीब 8,000 गाड़ियां इस तरह से प्राकृतिक गैस का प्रयोग कर रही हैं तथा कैलिफोर्निया, वाशिंगटन और न्यूयार्क में नये-नये तरीकों पर विचार किया जा रहा है।

सीएनजी को सीमित स्थान में चलने वाले वाहनों में प्रयोग किया जा सकता है ताकि वह आसानी से केन्द्रीय भरण स्टेशन तक पहुंच सकें। एलपीजी को बहुत अधिक दबाव में एकत्र किया जाता है। पर यह प्राकृतिक गैस और शोधन प्रक्रिया से जुड़ी हुई है। साथ ही, यह गैसोलिन से 10 गुनी ज्यादा महंगी भी है।

एक ओर जहां सीएनजी और एलपीजी पर पेट्रोल विकल्प के रूप में प्रयोग चल रहे हैं, वहीं दूसरी ओर हाइड्रोजन को भी ईंधन के रूप में प्रयोग करने की कोशिश की जा रही है। बीएमडब्ल्यू और मरसिडीज़ कंपनियां इस दिशा में काम कर रही हैं और उनको कुछ सफलता भी मिली है।

बीएमडब्ल्यू की प्रयोगशाला में हाइड्रोजन को तरल पदार्थ के रूप में एकत्र करके प्रयोग किये गये हैं। इसका ऊर्जा घनत्व सबसे अधिक है, परन्तु तरल हाइड्रोजन को −253° सेंग्रे. ताप पर बनाये रखने के लिये जटिल प्रणाली की आवश्यकता होती है। इसी तरह मरसिडीज़ प्रयोगशाला में हाइड्रोजन को धातु हाइड्राइड के रूप में एकत्र करके प्रयोग किये गये और इसके द्वारा मरसिडीज़ गाड़ियों को 200 किमी. तक चला कर देखा गया है, परन्तु इसके लिये गाड़ियों में मूलभूत परिवर्तन करना होगा।

समस्यायें अनेक हैं और विकल्प कुछेक हैं, लेकिन फिर भी विभिन्न विकल्पों को आजमाया जा रहा है। अनेक देशों में विद्युत से चलने वाली गाड़ियों को भी प्रयोग में लाया जा रहा है। पर ये भी अप्रत्यक्ष रूप में पेट्रोलियम पर ही निर्भर करती हैं तथा इन गाड़ियों में बहुत बड़ी पुनः आवेशनीय बैटरी की जरूरत पड़ती है।

कुछ वैज्ञानिकों का विचार है कि इन समस्याओं को देखते हुये मेथिल एल्कोहल को संभवतया सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है जिसे वुड ऐल्कोहल के नाम से भी जाना जाता है।

मेथिल एल्कोहल को कोयले से या प्राकृतिक गैस (मीथेन) से बनाया जाता है। इससे पेट्रोल की तरह ही कार्बन डाईआक्साइड, कार्बन मोनोआक्साइड तथा नाइट्रोजन आक्साइड निकलते हैं, परन्तु कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा पेट्रोल की अपेक्षा 7 से 10% तक कम होती है। लेकिन इसमें पेट्रोल के समान बगैर जले हाइड्रोकार्बन नहीं निकलते हैं। मेथेनॉल वायुमण्डल में भी कम सक्रिय है। परन्तु इसके जलने से एल्डिहाइड, मुख्यतः फार्मेल्डिहाइड बनते हैं, जो कि हमारे लिये हानिकारक हैं। इस पर वैज्ञानिकों का कहना है कि इसे नियंत्रित किया जा सकता है। इसमें किसी तरह के कण भी नहीं बनते। अतः यह वातावरण को उतना दूषित भी नहीं करता। इसके प्रयोग से इंजिन भी साफ रहता है, जबकि डीजल या पेट्रोल इंजिन बहुत बड़े कणिकीय प्रदूषक हैं। यद्यपि मेथेनॉल का ऊर्जा घनत्व पेट्रोल से लगभग आधा है, इसलिये यह दुगनी मात्रा में चाहिये, तथापि इसकी दक्षता 25% तक बढ़ाई जा सकती है। मेथेनॉल एक जहरीला रसायन है और यह हमारी त्वचा के संपर्क द्वारा भी हमारे शरीर के अंदर जा सकता है। इसके जलने से गंध नहीं आती और यह इंजिन के अंदर ही ज्वलनशील मिश्रण बना सकता है। प्राकृतिक गैस द्वारा बने मेथेनॉल से कम कार्बन डाइआक्साइड निकलती है, लेकिन कोयले द्वारा उत्पादित मेथेनॉल से पेट्रोल की अपेक्षा दुगुनी कार्बन डाइआक्साइड गैस निकलती है। अतः मेथेनॉल उपयोगी होते हुये भी पूर्ण रूप से समस्यामुक्त विकल्प नहीं कहा जा सकता है, लेकिन वैज्ञानिक अब भी इसके सुरक्षित इस्तेमाल हेतु अनुसंधान कर रहे हैं।

एक ओर जहां पेट्रोल के विकल्प ढूंढे जा रहे हैं, वहीं कुछ पौधों जैसे **जोजोबा**, से भी पेट्रोल बनाने के सफल प्रयोग किये गये हैं, लेकिन इसमें संदेह है कि जीवाश्म तेल भंडारों की तुलना में यह कृत्रिम पेट्रोल कितना पूरा पड़ सकेगा।

हाइड्रोजन से भी ज़ीवाश्म ईंधन के विकल्प की ओर एक निश्चित दिशा मिलती प्रतीत होती है। पानी इसका विशाल भंडार है। पानी हाइड्रोजन व आक्सीजन का यौगिक है, लेकिन इसे तोड़ने में बिजली जरूरी होती है, जिसके द्वारा पानी के विद्युत विच्छेदन से हाइड्रोजन और आक्सीजन गैसें मुक्त होती हैं। हाइड्रोजन ज्वलनशील है तथा आक्सीजन जलने में सहायक।

इनके मिश्रण से हाइड्रॉक्सी ज्वाला बनती है, जिसका ताप 2,500° सेंग्रे. होता है। इसके प्रयोग से कार चलाने के प्रयोग भी किये गये हैं। लेकिन पानी के विच्छेदन के लिये विद्युत के इस्तेमाल की बात फिर से इस तकनीक की उपयोगिता पर प्रश्न चिन्ह लगाती है। यद्यपि इस तकनीक की अपरिमित संभावनायें हैं।

वैज्ञानिकों ने जीवाणुओं की मदद से भी पानी के अणुओं को हाइड्रोजन और आक्सीजन में तोड़ने में सफलता पायी है। इन सभी अनुसंधानों से यह आशा तो बंधती है कि पेट्रोल के बगैर मानवता पेट्रोल की बूंद को तरसती नहीं रहेगी लेकिन फिर भी हमें समय रहते इसका कोई न कोई व्यवहार्य और सुलभ विकल्प अवश्य ढूंढना होगा। ☐

[कु. नीरू सलूजा, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, हिलसाइड रोड, नई दिल्ली- 110 012]

विज्ञान कथा

शापित संकेत

रामजी लाल दास

पूरे दस वर्षों बाद डा. सक्सेना इस शहर में लौटे थे। यह शहर उनका पुराना कार्य क्षेत्र था। अध्ययन के कुछ वर्ष, अध्यापन के कुछ वर्ष और शोध के कुछ वर्ष–सही कहा जाय तो डा. सक्सेना इस शहर की यादों से मुक्त नहीं पा सकेंगे। दस वर्षों तक अज्ञात रूप से देहात के अपने पुराने बंगले में शोध परीक्षण और अध्ययन को दे चुकने के बाद कुछ दिनों तक घूमने के ख्याल से वे शहर आए थे।

डा. सक्सेना ने अपने मित्र प्रोफेसर चक्रवर्ती के मकान में लगी घंटी का बटन दबाया।

''किससे मिलना चाहते हैं? दरवाजा खोलने वाले युवक ने पूछा।

''प्रोफेसर चक्रवर्ती से कहो–डा.आर.एल सक्सेना मिलना चाहते हैं।''

युवक चौंका–''सक्सेना अंकल! अंकल, अंदर आइए न! मैं विनय हूं, प्रोफेसर चक्रवर्ती का बड़ा लड़का।''

''...ओह तुम.... बड़े लम्बे-चौड़े हो गए हो, भाई! मैं तो पहचान ही नहीं सका,'' डा. सक्सेना आश्चर्य मिश्रित स्वर में बोल रहे थे–'' ...दुनियां दस वर्षों में बहुत तेजी से बदली है लेकिन तुम और ज्यादा तेजी से बदले हो...।''

घर में प्रोफेसर चक्रवर्ती, उनकी पत्नी उनके दोनों बेटे, सभी डा. सक्सेना को देखकर खुश थे लेकिन उन्हीं क्षणों में डा. सक्सेना ने महसूस किया कि खुशी के आवरण के पीछे इस घर में गहरी उदासी तैर रही है। वे सोचने लगे कि ऐसा क्यों है, कि अचानक उन्हें प्रोफेसर की बेटी की याद हो आयी। प्रोफेसर चक्रवर्ती की बेटी विजयिता जो अत्यन्त सुंदर और मेधावी थी, डा. सक्सेना को अपने प्रश्नों से उन दिनों घेरे रहती थी।

''विजयिता ने तो डाक्टरेट करने के बाद शादी कर ली थी न... कहां है आजकल वह?'' सक्सेना ने चक्रवर्ती से सीधा प्रश्न पूछा। सक्सेना को क्या पता था कि इसी प्रश्न के साथ उदासी के इस माहौल का रहस्य भी खुल जायेगा।

''यहीं है वह....'' प्रोफेसर चक्रवर्ती, भारी आवाज में बोल रहे थे, ''..... उसका एक दो साल का बच्चा भी है.... मिलोगे... उससे?

''मैं समझा नहीं... क्यों नहीं मिलूंगा...?'' डा. सक्सेना चकित थे।

''विनय... बुला लाओ... ऊपर के कमरे में विजयिता बच्चे के साथ सोयी हुई है...।''

विजयिता जब प्रो. सक्सेना के सामने आयी तो वे बुरी तरह चौंके। विजयिता की गोद में जो बच्चा था वह विजयिता से भी ज्यादा सुंदर था किंतु उसकी बांयी टांग आधी थी। इतना सुंदर बालक और अपंग, डा. सक्सेना की मुद्रा गंभीर हो आयी।

''यह क्या और कैसे हुआ... बेटी?''

''अंकल, कुछ महीने पूर्व एक कार एक्सीडेंट में हम सभी घायल हो गए थे लेकिन सबसे गंभीर चोट इसी के पैर में थी और बाद में डाक्टरों को मजबूर होकर एम्प्टेशन करना पड़ा। अंकल......मेरे साथ एक ट्रेजेडी और भी हुई है। मेरा यह एक ही बच्चा रहेगा, दूसरा नहीं हो सकता.... दरअसल इसी के जन्म के कुछ दिन बाद कैंसर की संभावना का पता चलते ही हिस्टेरेक्टॉमी करानी पड़ गयी थी। एक तो एक ही संतान और वो भी विकलांग.... ऊपर से पति भी बिल्कुल निराश हो गये हैं। हमेशा गुमसुम रहते हैं क्या हम सदा दुखी नहीं रहेंगे, अंकल....?'' विजयिता के आर्द्र स्वर ने डा. सक्सेना को विचलित कर दिया था।

डा. सक्सेना चुप थे। वे गहरी सोच में डूबे हुए लग रहे थे। सोचते हुए वे बच्चे के पैर की ओर टक-टकी बांधे हुए थे।

थोड़ी देर बाद डा. सक्सेना का मौन टूटा–''एक संतान तो अच्छी होती है, बेटी... इतना सुंदर लड़का है और तुम जैसी प्रतिभाशालिनी का पुत्र है तो बड़ा आदमी तो बनेगा ही। हम सब का आशीर्वाद इसके साथ है। ...... और एक बात यह भी कि इसकी विकलांगता से मैं भी दुखी हूं और मैं वादा करता हूं कि मैं इसे विकलांग नहीं रहने दूंगा। मैं इसका पैर वापस लाऊंगा।''

प्रोफेसर चक्रवर्ती की आंखें चमकने लगी। वे गौर से सक्सेना को देख रहे थे। अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के इस वैज्ञानिक को वे बहुत अच्छी तरह जानते थे। डा. सक्सेना की खासियत यह थी कि वे उसी दिशा में सोचते थे जिस दिशा में आगे बढ़ना असंभव लगता था। हां, अन्य वैज्ञानिकों और उनकी 'थिंकिंग' में यह अंतर था कि उनके सोचने की दिशा में मानव कल्याण की किसी भावना का तीव्रप्रकाश

होता था। "दि साइंटिस्ट" पत्रिका को इंटरव्यू देते हुए एक बार उन्होंने कहा भी था कि "मानवीय हित ही वैचारिक गतिशीलता की शर्त होनी चाहिए, यही वह चीज है जो मेरी असंभव वाले रास्ते से अवरोधों को हटाने में मदद करता है।"

"सक्सेना, क्या तुम भावुकता के वशीभूत होकर ऐसा कह रहे थे", प्रोफेसर ने धीमे स्वर में कहा।

"कह तो रहा हूं भावुकता के वशीभूत होकर ही, लेकिन तुम जानते हो कि मेरी बातें विज्ञान की परिधि में ही होती हैं। वैसे भी मेरे—तुम्हारे जैसे लोगों के भावुक कथनों में भी तो तर्क और विज्ञान मिला ही रहता है।"

"क्या आपने कभी ऐसा कोई प्रयोग किया है अंकल?" विजयिता पूछ रही थी।

"हां किया है। मेरे नौकर के बेटे की एक पूरी उंगली पशुओं के लिए चारा काटने की मशीन से कट गयी थी और मैंने उस पूरी उंगली को 'रिजेनरेट' करने में सफलता पा ली थी।"

डाक्टर सक्सेना के इस कथन के साथ ही सभी के चेहरों पर चमक छा गयी। नौकर कॉफी लाने के लिए दौड़ा। प्रोफेसर चक्रवर्ती, विनय, विजयिता सभी सक्सेना के और निकट आ गए।

काफी पीते हुए सक्सेना बोल रहे थे—"तुम लोगों ने सैलामैन्डर नामक जानवर का नाम सुना होगा, गिरगिट की शक्ल का उभयचर प्राणी है। इसकी एक टांग काट कर देखो, उसकी नई टांग फिर उग आती है। रिजेनरेट कर अंगों को प्राप्त करने की शक्ति का प्रदर्शन प्रकृति इस जानवर के माध्यम से लगातार करती आ रही है। प्रकृति के इस संकेत को हमने समझने की कोशिश ही नहीं की, और न इस शक्ति की व्याख्या ही की। इसी कारण हम अपंगता को भयंकर शाप की तरह ढोने को बाध्य हैं।"

सभी मंत्रमुग्ध हो सक्सेना की ब्रीफिंग सुन रहे थे। डा. सक्सेना ने विनय की ओर देखा और कहा—"तुम इलेक्ट्रॉनिक इंजीनियर हो, तुम इसे समझो। तुम्हारी जरूरत मुझे अपने परीक्षणों के दौरान सदा रहेगी, तुम्हीं को मेरी सहायता करनी पड़ेगी, विजयिता तुम भी ध्यान दो।"

"हम सब जी-जान से आपकी मदद करने के लिए तैयार हैं अंकल, आप कृपया ब्रीफिंग जारी रखिए...."।

".... हां तो मैं सैलामैन्डर की रिजेनरेट करने की शक्ति के बारे में कह रहा था। इसी को देखकर न्यूयार्क विश्वविद्यालय के प्रो. बेकर ने कई प्रयोग किए और उन्होंने मेंढ़क की टांग काट कर प्रयोगों द्वारा उसे रिजेनरेट कर नई टांग प्राप्त कर लेने के लिए बाध्य किया। .... विनय ... जानते हो, ... कोई भी अंग काट दोगे तो पाओगे कि उसके चारों ओर एक वैद्युत क्षेत्र उत्पन्न हो गया है। किसी घाव के भरने की प्रक्रिया में भी इस वैद्युत क्षेत्र का महत्व है..... बेकर ने प्रायोगिक अध्ययन के दौरान पाया था कि घाव के समीप कुछ दिनों तक तो धनात्मक वैद्युत क्षेत्र उत्पन्न होता है, लेकिन बाद में यह बदल जाता है और ऋणात्मक क्षेत्र उत्पन्न होता है। सैलामैन्डर में यह परिवर्तन ही नए अंग के बनने की प्रक्रिया शुरू कर देता है।"

डा. सक्सेना का बोलना जारी था और प्रोफेसर चक्रवर्ती के परिवार का दुःख नए सुखद सपनों की परिधि से टकरा रहा था।

"बेकर के इन्हीं प्रयोगों का मैंने गंभीरता से अध्ययन किया और उन्हें कमोबेश अपने यहां दुहराया ताकि वैद्युत क्षेत्र के परिवर्तन को नियंत्रित कर सकूं और उसके कारण होने वाले कोशिका जनन को समझ सकूं। इसी अध्ययन के दौरान नौकर के लड़के की अंगुली कटी, मैंने इलाज प्रारंभ किया, यंत्रों की मदद से वैद्युत क्षेत्र को कटे अंग के पास परिवर्तित किया और उस लड़के ने दो महीने बाद अपनी अंगुली प्राप्त कर ली।"

प्रोफेसर चक्रवर्ती का परिवार सुखद आश्चर्य में डूबा हुआ था।

"विनय अगर तुम इलेक्ट्रिकल पोटेन्शियल को एकाएक परिवर्तित करने और उसे नियंत्रित करने में मेरी मदद कर सको तो मैं निश्चित रूप से इस बच्चे के पैर को पूर्ववत करने में सफल हो जाऊंगा और इस बार मैं इस शक्ति की व्याख्या पूरे संसार के सामने करूंगा ताकि अपंगता का अभिशाप सदा के लिए दूर हो जाय।"

विनय ने तुरंत दृढ़ स्वर में उत्तर दिया, "अंकल मैं अपनी सम्पूर्ण क्षमता तथा पूरा ज्ञान लगा दूंगा। आप प्रयोग प्रारंभ करें तो सही।"

कुछ दिनों तक डा. सक्सेना और विनय कटे हुए अंग के समीप उत्पन्न होने वाले वैद्युत क्षेत्र की माप के लिए, पोटेन्शियल परिवर्तित करने के लिए तथा समय-समय पर उसे नियंत्रित करने की तकनीक पर विचार करते रहे और उपकरणों को तैयार करते रहे।

सभी तैयारियों के बाद डा. सक्सेना ने बच्चे का आपरेशन किया। टांग के कटे हुए सिरे के समीप विनय के उपकरणों का जाल फैला था। तारों और मानीटरों पर दोनों की निगाहें थी। घाव भरने की प्रक्रिया आरंभ होते ही डा. सक्सेना ने वैद्युत क्षेत्र को धनात्मक से ऋणात्मक कर दिया।

यह विनय और डा. सक्सेना के लिए तो गहन परीक्षा का समय था और प्रोफेसर चक्रवर्ती और उसके परिवार के सदस्यों के लिए भगवान से प्रार्थना करने का समय।

चौबीस घंटे बीत गए। ओरल फीडिंग तथा एंटीबॉयटिक इंजेक्शन दिए जा रहे थे। डा. सक्सेना बडे इलेक्ट्रानिक माइक्रोस्कोप के द्वारा कटे हुए भाग के सूक्ष्म निरीक्षण में लगे हुए थे। परिणाम आशानुकूल निकला। डा. सक्सेना की आंखें चमक उठीं। घाव के पास तंत्रिका कोशिकाएं जन्म लेने लगीं। कोशिकाओं का नया नेटवर्क बनना शुरू हो गया था।

इसके बाद के कई महीने विनय, विजयिता और डा. सक्सेना की मेहनत और साधना की अकल्पनीय कथा के रूप में माने जाने चाहिए। रात-दिन एक कर दवाएं, फीडिंग, देखभाल और मानीटरों और यंत्रों पर झुके रहकर इन लोगों ने विजयिता के बच्चे की अपंगता का इतिहास बदल डाला। विजयिता के पति की चुप्पी यकायक न जाने कहां गायब हो गयी।

और फिर जिस दिन इस बच्चे ने डा. सक्सेना के सामने पहली बार धरती पर दोनों पैर रखे, सक्सेना ने उससे हाथ मिलाया, उसके माथे को चूमा और प्रोफेसर चक्रवर्ती के परिवार के सदस्यों की कृतज्ञता छलकाती आंखों के सामने से तुरंत अपने देहात के पुराने बंगले में रहने के लिए विदा हो गए। □

[श्री रामजी लाल दास, वाटर वेज कॉलोनी, लहेरियासराय, जिला-दरभंगा (बिहार)]

पेट्रोलियम समस्याः हे जीवाणु तेरा सहारा

पल्लव बागला

पेट्रोलियम उद्योग में पारम्परिक रूप से सूक्ष्म जीवों को तेल निष्कर्षण के लिये काम में लाया जाता रहा है। आधुनिक समय में हाइड्रोकार्बन उद्योग के अंतर्गत अन्य कार्यों में विशेषतया तेल पीने वाले जीवाणुओं का प्रयोग बढ़ा है। विशेष जीवाणुओं के प्रयोग द्वारा तेल के कुओं से तेल की प्राप्ति बढ़ानी संभव है। **स्यूडोमोनास** जैसे कुछ जीवाणुओं को तेल की सफाई में उपयोग किया गया है। इन सफाईकारी क्रियाओं में या तो जीवाणु को सीधे या फिर उनसे प्राप्त उत्पाद को काम में लाया जाता है। पेट्रोलियम उद्योग को बढ़ाने में सक्षम उत्तम और अधिक दक्ष सूक्ष्म जीवों के विभेद तैयार करने के लिये आनुवंशिक इंजीनियरी और जैवप्रौद्योगिक तरीकों को बड़े स्तर पर अपनाया गया है, ताकि कुछ तत्संबंधी जटिल समस्यायें हल हो सकें—इनमें से कुछ गैर पारम्परिक तरीके निःसंदेह बहुत सफल सिद्ध हो रहे हैं। हाइड्रोकार्बनों पर आश्रित जीवाणु मिट्टी और पानी में सर्वव्यापी रूप से पाये जाते हैं। ये प्रचुर तेल वाले इलाकों में बड़ी संख्या में मिलते हैं, वहां निक्षलन के कारण सतह पर कुछ तेल हमेशा बना रहता है। प्रकृति में मिलने वाले ये जीवाणु, इस मुक्त रूप से उपलब्ध हाइड्रोकार्बन को ऊर्जा के लिये और कार्बन जैसी रचना सामग्री के स्रोत के रूप में उपयोग करते हैं।

इन प्राकृतिक रूप से प्राप्त जीवाणुओं के साथ एक कठिनाई यह है कि इनकी आनुवंशिक क्रिया इस प्रकार की है कि ये कच्चे माल के रूप में बड़ी सीमित संख्या में ही हाइड्रोकार्बनों का उपभोग कर सकते हैं। साथ ही इन प्राकृतिक जीवाणुओं द्वारा हाइड्रोकार्बनों के उपभोग और अपघटन की गति भी अपेक्षाकृत बहुत धीमी है। इन बाधाओं को दूर करने के लिये हाइड्रोकार्बन जैवप्रौद्योगिकीविदों को विस्तृत पेट्रोलियम उद्योग की जरूरतों के लिये उपयुक्त जीवाणु प्राप्त करने हेतु इन प्राकृतिक रूप से मिलने वाले जीवाणुओं में आनुवंशिक हेर-फेर करना पड़ा।

तेल उत्पादन में जीवाणु

रसायन उद्योग हेतु ईंधन और कच्चे माल के लिये बाजार में जैवप्रौद्योगिकी और तेल उद्योग में भयंकर प्रतियोगिता है। स्पष्ट रूप से बड़े तेल भंडारों से तेल निकालने में जैवप्रौद्योगिकी की बहुत संभावनायें हैं। जैसे ही छेदक प्रचुर तेल तक पहुंचता है, तेल की धारा सतह पर आ जाती है, लेकिन दुर्भाग्यवश किसी प्रारूपी तेल क्षेत्र के आधे से भी कम संघटक तेल कुंए के ऊपर तक आते-आते मंद पड़ जाते हैं। इस शेष भाग को संभालने के लिये पर्याप्त बुद्धि और प्रवीणता की आवश्यकता होती है। संयुक्त राज्य में उत्पादित लगभग 50 प्रतिशत तेल तथा कथित द्वितीयक निष्कर्षण विधियों द्वारा प्राप्त किया जाता है। जैसे कि चट्टानी रचनाओं में पानी को पम्प करना, ताकि भूमिगत छिद्रों में से निकल कर तेल एकत्रण कुओं में पहुंच जाये। तीसरे प्रकार की तेल निकालने की विधियां भी इस असाधारण स्रोत से तेल निकालने के लिये आवश्यक हैं, और यहीं जैवप्रौद्योगिकी का महत्व प्रकाश में आता है। किसी तेल भण्डार में अधिकांशतया तेल विस्तृत तरल के रूप में नहीं होता, बल्कि चट्टानों के कणों के ऊपर मढ़ा हुआ होता है। तेल की पर्त इन कणों के साथ संलग्न होती है, और इसे सतह तक लाने के पहले अलग करना जरूरी होता है। साधारण पानी भी प्रायः इस तेल को हटाने में पतला द्रव सिद्ध होता है। ये तो तेल मढ़े कणों के पीछे की ओर बहता है। तृतीयक तेल निष्कर्षण, जिसे वर्धित प्राप्ति के रूप में भी जाना जाता है, हेतु पानी को अधिक गाढ़ा करने के लिए उसमें कुछ पदार्थ मिलाये जाते हैं, इनमें से एक पदार्थ है—जैथन गोंद।
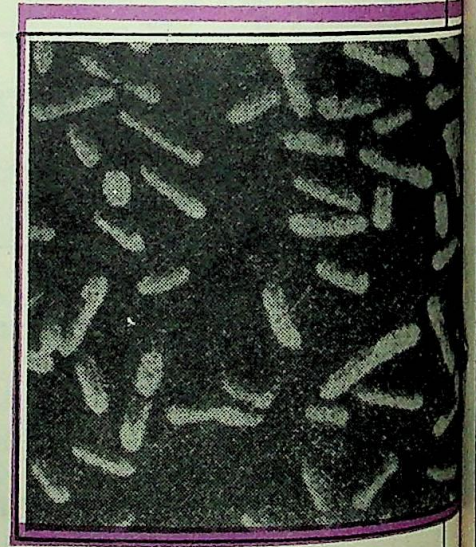
आनंद चक्रवर्ती द्वारा विकसित 'सुपरबग'

जैंथन गोंद एक पालीसैकेराइड है, जो **जैंथोमोनास कैम्पेस्ट्रिस** जीवाणु से मिलता है, यह अनेक ग्लूकोस इकाइयों का बना होता है, जो नियमित अंतराल की अन्य प्रकार की शर्करा शाखाओं की श्रृंखला में संयोजित

होती हैं। इस जटिल संरचना के कारण ही जैंथन गोंद गाढ़ा करने वाला एक सक्षम कारक है, जिससे पानी और गोंद के मिश्रण को पिस्टन के रूप में काम करने में सहायता मिलती है और उसके दबाव से तेल कुओं की ओर आ जाता है। उपेक्षित तेल भण्डारों से तेल को निकालने में इसकी लागत बहुत आड़े आती है। निकट भविष्य में जैवप्रौद्योगिकी युक्तियों के सफलतापूर्वक प्रयोग द्वारा अन्य सूक्ष्म जीवों के प्रयोग द्वारा आसानी से जैंथन गोंद की लागत में काफी कमी आ सकती है।

सूक्ष्म जीवों से प्राप्त जैंथन गोंद और अन्य समान पदार्थों को पहले ही प्रगाढ़क पदार्थों के रूप में पेट्रोलियम उद्योग में उपयोग किया गया है। गहरी खुदाई में छेदक द्वारा चट्टान को बेधने के लिये चिकनाईकारी की आवश्यकता होती हे और इस काम में विभिन्न प्रकार का कीचड़ काम आता है। पानी, मिट्टी और अन्य पदार्थों के मिश्रण से बना यह छेदन कीचड़ तेल के ऊपर की ओर के दबाव के संतुलन को भी प्रतिसंतुलित करता है। सूक्ष्म जैविक पालीसैक्रेराइड प्रगाडक पदार्थों के रूप में अत्यंत उपयुक्त सिद्ध हुये हैं।

यदि जैंथन गोंद तृतीयक तेल निष्कर्षण में इतना प्रभावी है, तो फिर फैक्ट्रियों में जीवाणुओं को संवर्धित करने, उनसे गोंद निकालने, और फिर उसे तेल क्षेत्रों में पंप करने का झंझट क्यों? सीधे इन जीवाणुओं को भूगर्भ में क्यों नहीं भेज दिया जाता?

कुछ तेल कंपनियां वाकई इस विचार पर बल दे रही हैं। **जैंथोमोनास** की अपेक्षा **बेसिलस** और **क्लोस्ट्रीडियम** जीवाणुओं के प्रयोग से पहले ही परीक्षण किये जा रहे हैं, जिनसे उत्साहवर्धक परिणाम मिले हैं। जब ये जीवाणु भूमि में काफी गहराई पर होते हैं इनको शर्करा और अन्य पोषक पदार्थ दिये जाते हैं। वहां ये संवर्धित होते हैं और तेल को मुक्त करने वाले रसायन पैदा करते हैं, जिनसे तेल को सतह तक लाने में सहायता मिलती है। ध्यान देने वाली बात यह है कि ये जीवाणु अधिक दाब और ताप, पानी व आक्सीजन की कमी तथा लवण और गंधक की अधिकता वाली परिस्थितियों में भी पनप सकते हैं, हालांकि ये सभी सूक्ष्म जीवों के लिये हानिकारक हैं। इससे पुनः यह स्पष्ट हो
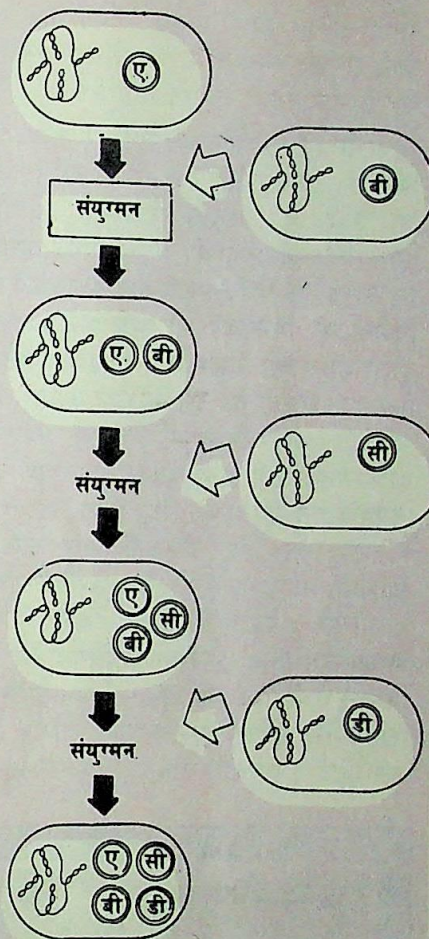
जीवाणु कोशिकाओं का यह चित्र दर्शाता है कि 'सुपरबग' का विकास कैसे हुआ। प्रत्येक कोशिका में दो जगह आनुवंशिक सूचनाएं निहित होती हैं: दो लंबी पट्टियों वाले वलय, जिन्हें गुण सूत्र, तथा छोटे वलय, जिन्हें प्लाज्मिड कहते हैं। लैंगिक संयुग्मन की भांति एक तकनीक द्वारा विभिन्न तेल-भक्षी जीवाणु विभेदों से ए बी सी और डी प्लाज्मिडों को लेकर उनको एक विशिष्ट विभेद ए बी सी डी में संयुग्मित कराया गया।

जाता है कि सूक्ष्मजीवों की प्रतिरोधकता और परिस्थितियों के अनुकूल ढलने की क्षमता को कम नहीं आंका जाना चाहिये और आवश्यकतानुसार जैवप्रौद्योगिकीविदों द्वारा इन गुणों को बढ़ाकर इन्हें जल्दी ही तेल उद्योग में वाणिज्यिक उपयोग हेतु इस्तेमाल किया जा सकता है।

पहले कच्चे तेल को पम्प से खींच कर जमीन से ऊपर लाया जाता है, फिर आगे इसको शोधन और विभिन्न प्रकार के पेट्रोलियम उत्पादों को प्राप्त करने से पहले बड़े टैंकों में इकट्ठा किया जाता है। यह पाया गया है कि इन संभरण टैंकों और तेलवाहक टैंकरों की तली में कुछ मोमीय पर्त सी जम जाती हैं।

इस तलछट को हाथों से साफ करना बहुत ही दुरूह होता है, साथ ही कच्चे तेल के बहुत से संघटक कैंसरकारी होते हैं, इसीलिये ये काम खतरनाक भी हैं। यहां तक कि इसे साफ करने के बाद भी इस तलछट को निपटाने की भी समस्या आती है, क्योंकि यह आनुवंशिकी विषाक्तकारी होता है। वैज्ञानिकों ने सूक्ष्मजीवों की सहायता से ऐसे पायसीकारक पदार्थ विकसित किये हैं, जिनकी सहायता से इस तलछट को साफ किया जा सकता है। इन जैविक पायसीकारकों को स्वच्छ या खारे पानी में मिला कर थोड़े से कच्चे तेल के साथ तलछट वाले टैंकों में प्रवाहित किया जाता है। तत्पश्चात टैंकों को मंथन उपकरण से जोड़ दिया जाता है, जिससे तलछट का पायसीकरण हो जाता है। समझा जाता है कि इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप करीब 90 प्रतिशत मोमीय तलछट को शोधनयोग्य कच्चे तेल में बदला जा सकता है।

शिकागो स्थित पेट्रोजेन नामक कंपनी ने टैंकों का तलछट साफ करने की जैविक पायसीकरण विधि को पेटेन्ट कराया है, उनका दावा है कि इससे वे कुवैत तेल कंपनी के टैंकों के उपचार द्वारा शोधनयोग्य कच्चा तेल प्राप्त करके एक सौ बीस हजार डालर की बचत कर सके हैं। अतः सूक्ष्मजीवी उत्पादों अर्थात् सतहकारी तरल द्वारा काफी धन बचाया जा सकता है। साथ ही निपटान की समस्या भी हल हो सकती है।

सफाईकारक जीवाणु

खाड़ी में बड़ी मात्रा में तेल के बिखराव से हमें और पर्यावरण को प्रदूषण का खतरा पैदा हो गया है, जिससे आज क्षितिज पर विनाश की उन्मरीचिका परिलक्षित होती है। तेल का फैलाव, नाशक कीटनाशी, शाकनाशी, रासायनिक निष्कर्ष तथा सीसा और पारा जैसी भारी धातुएं इनमें से कुछ प्रमुख हानिकारक पदार्थ हैं। दो प्रकार से
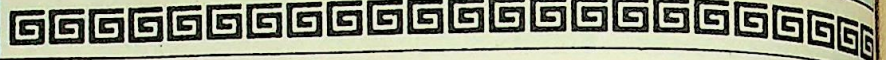
जैवप्रौद्योगिकी इस समस्या को हल कर सकती है। पहला तो यह कि मूल कारणों पर अधिक जैवप्रौद्योगिकी उत्पादन विधियों के प्रवर्तन द्वारा आक्रमण किया जा सकता है, जो सापेक्षतया कम प्रदूषणकारी हैं। उदाहरणार्थ, जैवप्रौद्योगिकी की सहायता से प्लास्टिक उद्योग हेतु रसायनों के उत्पादन में, अहानिकर कच्चे माल पर सूक्ष्मजीव पाले जाते हैं, जैसे कि शर्करा जिससे जैव बहुलक बनते हैं, और जिनके लिए पारंपरिक तौर पर तेल आधारित कच्चा माल काम में आता है, उनमें से कुछ पदार्थ न चाहते हुए भी छूट जाते हैं और पर्यावरण में प्रदूषण फैलाते हैं। दूसरा यह कि सूक्ष्मजीवों को सभी प्रकार के प्रदूषकों के साफ करने के लिए कचरा भक्षी के रूप में छोड़ा जा सकता है।

स्यूडोमोनास वर्ग ऐसे जीवाणुओं के रूप में जाना जाता है, जिनमें जटिल यौगिकों को तोड़ने की क्षमता होती है, जो अधिकांश जीवाणुओं में नहीं होती। विशेषतया स्यूडोमोनास के विभिन्न विभेद हाइड्रोकार्बनों को पचा सकते हैं, जो अधिकांशतया तेल और पेट्रोल होता है। प्रत्येक विभेद केवल एक या कुछ विभिन्न प्रकार के हाइड्रोकार्बनों का उपयोग करता है। हाइड्रोकार्बनों पर आक्रमण करने वाले एंजाइम की सूचना वाले वंशाणु, जीवाणु के मुख्य गुणसूत्र में नहीं पाए जाते हैं, बल्कि प्लाज्मिड में होते हैं, जोकि डीएनए के सूक्ष्म अर्ध स्वनियंत्रित वलय हैं। सभी प्रकार के हाइड्रोकार्बनों को पीने में सक्षम सुपरबग के निर्माण के प्रयासों में, भारतीय मूल के अमेरिकी वैज्ञानिक आनंद चक्रवर्ती (तब जनरल इलेक्ट्रिक कंपनी में कार्यरत थे) ने स्यूडोमोनास के विभिन्न प्रकार के अनेक विभेदों के प्लाज्मिडों को एक कोशिका में प्रविष्ट कराया। इसके पीछे यह विचार था कि पुनर्योजी जीवाणुओं को प्रयोगशाला में संवर्धित किया जाए, और उनको तिनकों में मिला कर सुखा लिया जाए। ये जीवाणुधारी तिनके जब तक जरूरत हो भण्डारित किए जा सकते हैं, और इन्हें तेल की पर्त पर फैलाने पर तिनका तेल को सोख लेगा और जीवाणु, तेल को अहानिकर और गैर प्रदूषणकारी पदार्थों में बदल देगा। महत्वपूर्ण बात यह है कि चक्रवर्ती द्वारा संयोजित यह पहला मानव निर्मित जीव है जिसे संयुक्त राज्य अमेरिका के इतिहास में पहली बार पेटेन्ट कराया गया है।

अभी भी वाणिज्यिक स्तर पर चक्रवर्ती द्वारा तैयार सूक्ष्मजीवों को उपयोग नहीं किया जा रहा है, अनेक वैज्ञानिक इसकी भविष्यगत संभावनाओं पर भी संदेह करते हैं। उनका तर्क है कि **स्यूडोमोनास** के स्वजात विभेदों को मिलाकर भी इसी प्रकार तथा इससे भी अच्छी प्रकार से तेल को अपघटित किया जा सकता है। इस विशिष्ट जीवाणु में भले ही अन्य महत्वपूर्ण गुण हों, लेकिन सामान्यतया इसे अन्य प्रकार के प्रदूषण के नियंत्रण हेतु महत्वपूर्ण सिद्ध होना चाहिए।

सन् 1981 में, चक्रवर्ती और उनके साथियों ने घोषणा की कि उन्होंने एक सामान्यतः प्रयोग किये जाने वाले शाकनाशी 2, 4, 5-टी, तथा वियतनाम के विस्तृत क्षेत्रों में जंगलों को नष्ट करने के लिए छिड़के गए प्रमुख संघटक एजेंट ऑरेंज को अपघटित करने वाले जीवाणु विकसित किए हैं। ये क्लोरीनीकृत हाइड्रोकार्बन, सूक्ष्म जीवों द्वारा आसानी से विघटित नहीं होते, क्योंकि उनमें से अधिकांश कृत्रिम रूप से संश्लेषित किए गए होते हैं, और जीवाणु तंत्र उनका उपभोग करने में सक्षम नहीं हो पाता। नया विकसित जीवाणु संश्लेषित क्लोरीनीकृत हाइड्रोकार्बनों को खाने में दक्ष है और हमारे पर्यावरण में व्याप्त अनेक प्रकार के विषैले रसायनों को साफ करने में सहायक है।

आनंद चक्रवर्ती द्वारा तैयार सुपर बग और अन्य जीवाणुओं का कभी भी क्षेत्र परीक्षण नहीं किया गया है। इन आनुवंशिक रूप से इंजीनियरीकृत जीवाणुओं में एक कमी यह भी है कि ये हमेशा केवल दिन की रोशनी में ही सक्षम होंगे। निकट भविष्य में इस बात को लेकर तीव्र विवाद है कि इनको खुले पर्यावरण में छोड़ा जाए या नहीं।

सुपर बग के निर्माता आनंद चक्रवर्ती का विचार है कि जब तक इन सूक्ष्मजीवों का क्षेत्र परीक्षण नहीं कर लिया जाता, तब तक

एक्सॉन दुर्घटना के फलस्वरूप तट में फैल तेल पर नाइट्रोजन फास्फोरस उर्वरकों का छिड़काव करते तकनीशियन-तेल भक्षी जीवाणुओं की क्रियाविधि में तेजी लाने की आशा
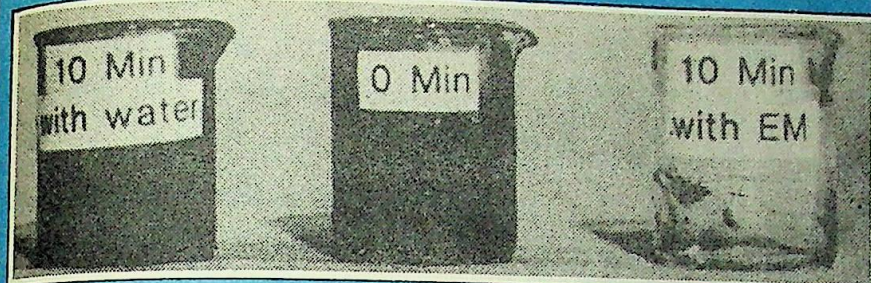
आनंद चक्रवर्ती द्वारा विकसित सूक्ष्मजीवी सतहकारक ई एम, तेल को आसानी से हटा देते हैं

निश्चित रूप से इनके बारे में कोई ये कैसे कह सकता है कि क्या ये पूरा काम करेंगे, और दूसरा यह कि इनसे पारिस्थितिक तंत्र को कोई खतरा तो नहीं होगा। चक्रवर्ती कहते हैं कि इस प्रकार के अनेक खतरे केवल सैद्धांतिक हैं, लेकिन फिर भी वे सोचते हैं कि जब तक यह सुनिश्चित नहीं हो जाता है कि ये सूक्ष्मजीव कोई पारिस्थितिक हानि नहीं पहुंचाएंगे, तब तक उन्हें खुला छोड़ना अत्यंत कठिन है।

संयुक्त राज्य सरकार ने 1990 के आरंभ में एक महत्वपूर्ण कार्यवाही के तहत टेक्सास राज्य में पानी में फैली तेल पर्त को साफ करने के लिए प्राकृतिक रूप से तेल पीने वाले सूक्ष्मजीवों के प्रयोग की अनुमति दी। यहां तक कि अलास्का में एक्सोन वाल्डेज दुर्घटना में प्राकृतिक तेलभक्षी जीवाणुओं को बचाने के लिए बहुत बड़े क्षेत्र में नाइट्रोजन और फास्फोरस युक्त ओलियोफिलिक उर्वरकों का फुहारण किया गया था। इन उर्वरकों का फुहारण इस आशा से किया गया था कि प्राकृतिक रूप से तेलभक्षी जीवाणुओं की तादाद बढ़ने से, तेल का विघटन अधिक तेजी से हो जाएगा।

आनुवंशिक रूप से परिवर्तित जीवाणुओं की कार्यप्रणाली की सीमाओं को महसूस करते हुए अनुसंधानिकों ने अपने अनुसंधान कार्य को तेल सफाईकारी क्रियाओं हेतु सूक्ष्मजीवी उत्पादों के प्रयोग की ओर बदल दिया।

हालांकि सूक्ष्मजीवी उत्पाद (जैव रासायनिक पदार्थ न कि जीवित सूक्ष्मजीव) बड़ी मात्रा में आनुवंशिकतया परिवर्तित सूक्ष्मजीवों (प्रयोगशाला के नियंत्रित पर्यावरण में) से प्राप्त किए जा रहे हैं, और पेट्रोलियम उद्योग में इनका प्रयोग बढ़ा है। इन आनुवंशिक रूप से परिवर्तित जीवाणुओं को खुले पर्यावरण में छोड़ने पर इनके उत्पाद उतने हानिकारक नहीं जितने कि समझे जाते हैं।

चक्रवर्ती ने **स्यूडोमोनास ऐरूजिनोसा** के विभेद विकसित किए हैं, जो सतहकारी नामक सतह क्रियाशील कारक उत्पादित करते हैं। यह सतहकारक श्यानता व तेल और पानी की मध्यावस्था पर पृष्ठ तनाव कम करने में मदद करते हैं, और इस प्रकार तेल की पर्त पर तेल के विकीर्णन में सहायक होते हैं।

पारंपरिक तौर पर तेल पर्त को विकीर्णित करने के लिए रासायनिक पृष्ठकारक प्रयोग किए जाते हैं, लेकिन ये रसायन बहुत विषैले होते हैं और जैव अपघटनशील नहीं होते हैं। काफी हद तक इन दोनों खामियों के कारण इन रासायनिक पृष्ठीयकारकों का प्रयोग सीमित हो गया है। दूसरी ओर चक्रवर्ती द्वारा विकसित सूक्ष्मजीवी पृष्ठकारक विषैले नहीं होते और अत्यधिक जैव विघटनशील होते हैं। उनके अनुसार ये पारिस्थितिक रूप से संवेदनशील क्षेत्रों में फैले तेल को साफ करने में उपयुक्त सिद्ध होंगे, जबकि रासायनिक पृष्ठकारकों से फायदे की बजाय नुकसान अधिक हो सकता है।

हाइड्रोकार्बन उद्योग में नए प्रतिमान स्थापित करने के लिए जैवप्रौद्योगिकी के प्रयोग की प्रगाढ़ संभावना है। वह दिन दूर नहीं जब तेल निष्कर्षण, उत्पादन और यहां तक कि दुर्घटनावश फैले तेल को साफ करने की हर अवस्थाओं में क्रमिक रूप से सूक्ष्म जीवाणुओं का इस्तेमाल होने लगेगा। □

ग्रिड में (बायें) प्राकृतिक जीवाणु द्वारा तेल के अपघटन को बढ़ाने हेतु उर्वरक द्वारा उपचारित क्षेत्र तथा (बायें) अनुपचारित क्षेत्र दिखाया गया है

[श्री पल्लव बागला, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, हिलसाइड रोड, नई दिल्ली- 110 012]

पुरस्कृत प्रश्न

चेहरे खुशी में लाल व भय अथवा दुःख में पीले क्यों पड़ जाते हैं?

[दीपेन्द्र सिंह सिकरवार, बाल निकेतन रोड, गोपालपुरा, त्रिवेदी धर्मशाला के पास, मुरैना (म.प्र.)-202 135]

खुशी व भय अथवा दुःख में चेहरे की रंगत बदलने के पीछे अन्तःस्रावी ग्रंथि **(एन्डोक्राइन ग्रंथि) एड्रीनिल का हाथ** होता है। भय अथवा दुःख जैसी भावनात्मक क्षणों में केन्द्रीय तंत्रिका तन्त्र से निर्देश मिलने के कारण एड्रीनल से एड्रीनेलीन नामक हारमोन का रक्त में **रिसाव बढ़ जाता है। जिस कारण हृदय की** धड़कन बढ़ जाती है और त्वचा के समीप की रक्त वाहिकाऐं संकुचित हो जाती हैं। इन दोनों के **सम्मिलित प्रभाव से रक्त चाप बढ़ जाता है और रक्त का बहाव हृदय की ओर अधिक हो जाता है, जिस कारण रक्त वाहिकाओं में रक्त का प्रवाह कम हो जाता है और चेहरा पीला पड़ा दिखाई देता है।**

दूसरी ओर खुशी में तन्त्रिका तन्त्र से विपरीत प्रकार के निर्देश मिलते हैं। वाहिका विस्फारक या

वैसोडायलेटर तन्त्रिकाओं द्वारा एसीटिलकोलीन के रिसाव के कारण रक्त वाहिकायें फैल जाती हैं और एड्रीनल ग्रन्थि से एड्रीनेलिन का रिसाव कम हो जाता है। इस प्रभाव से रक्तवाहिकाओं में और अधिक रक्त प्रवाहित होने लगता है। चेहरे की समीप की वाहिकाओं में अधिक रक्त प्रवाह के कारण चेहरा लाल दिखाई देता है।

राजीव माथुर

उपग्रह छोड़ते समय उल्टी गिनती क्यों गिनी जाती है?

[अमित बजाचार्य, काठमांडू, नेपाल]

यूं तो उपग्रह छोड़ते समय उल्टी गिनती गिनने का कोई वैज्ञानिक कारण नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय तौर पर शून्य से गिनती शुरू की जाती है जो कि 100 फिर 101 से 1000 और

फिर आगे चलती रहती है। शून्य एक निश्चित बिन्दु है जिसके पीछे या आगे बढ़ने से पहले रुकावट होती है और किसी सन्देह की संभावना नहीं रह जाती है कि आगे भी गिनती हो सकती है। **इस निश्चित बिन्दु शून्य पर प्रमोचित्र (लान्चर)** जोकि उपग्रह को पृथ्वी की कक्षा में छोड़ता है को प्रमोचन मंच (लान्चिग पैड) से छोड़ दिया जाता है। यह गिनती एक निश्चित बिन्दु से प्रमोचित्र छोड़ने के कई दिन पहले से शुरू कर दी जाती है। प्रत्येक सेकन्ड प्रत्येक गिनती पर प्रमोचित्र के विभिन्न संक्रियात्मक कार्य चलते रहते हैं। जैसे-जैसे गिनती घटती जाती है प्रमोचित्र छोड़ने **का समय घटता जाता है और शून्य पर पहुंचते ही** उसको छोड़ दिया जाता है। प्रमोचित्र की सारी **प्रक्रियाऐं इस प्रकार से निर्धारित की जाती हैं कि शून्य के आते ही वह स्वतः ऊपर उठने लगता है, यदि** वह शून्य पर प्रमोचन मंच से ऊपर नहीं उठता तो संभव है कि प्रमोचित्र की प्रणाली में कहीं दोष है।

नीलू श्रीवास्तव

क्या कारण है कि सभी प्रकार के धातु चुम्बकीय नहीं होते केवल एक प्रकार का लोह जिसे हम चुम्बक कहते हैं चुम्बकीय होता है?

[तजम्मुल हुसैन, देवबन्द, सहारनपुर]

एक प्रकार का लोह जिसे प्राकृतिक चुम्बक कहते हैं, आज के आधुनिक युग में लोह अयस्क या मैग्नेटाइट के नाम से जाना जाता है। यह प्राकृतिक चुम्बक अपनी ओर लोह, स्टील, निकेल और कोबाल्ट को आकर्षित करता है। इन **धातुओं को चुम्बकीय पदार्थ कहते हैं।** लेकिन कुछ धातुयें ऐसी भी हैं जिन्हें यह अपनी ओर आकर्षित नहीं करता जैसे ताम्र, पीतल, एलुमिनियम, कांच इत्यादि। इन धातुओं को हम अचुम्बकीय धातुयें कहते हैं। ऊपर दी गई चुम्बकीय धातुओं को चुम्बकीय बनाया जा सकता है लेकिन जो धातुयें प्राकृतिक चुम्बक की ओर आकर्षित नहीं होतीं उन्हें चुम्बक नहीं बनाया जा सकता। इसका कारण यह है कि चुम्बकीय धातुओं के परमाणु एक प्रकार के छोटे-छोटे चुम्बक होते हैं जिनके अपने उत्तर और दक्षिण ध्रुव होते हैं। साधारण अवस्था में ये परमाणु बड़ी ही छितरी अवस्था में होते हैं जिससे एक परमाणु का उत्तरी ध्रुव दूसरे परमाणु के दक्षिणी ध्रुव के पास होने पर वह एक दूसरे को उदासीन करते रहते हैं और चुम्बकीय धातुयें जैसे लोह, स्टील, निकेल इत्यादि एक अचुम्बकीय

अवस्था में रहती हैं। जैसे ही किसी चुम्बक को इन धातुओं के पास लाया जाता है तो इनके परमाणु अपने आपको ऐसी स्थिति में ले आते हैं कि प्रत्येक

परमाणु का उत्तरी ध्रुव एक दिशा में और दक्षिणी ध्रुव दूसरी दिशा में हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप साधारण धातु (लोहा, स्टील इत्यादि) जोकि पहले अचुम्बकीय अवस्था में थी सारे परमाणुओं के उत्तरी दक्षिणी ध्रुव के एक क्रम में आने से स्वयं एक चुम्बक की तरह कार्य करने लगती हैं।

जे.बी. धवन

ऊंची मीनार से नीचे देखने पर चक्कर क्यों आते हैं?

[भूपेश गुप्ता, मनोहरी भवन, हाथरस]

अपने दैनिक जीवन में हम देखते हैं कि कभी-कभी रास्ते में चलते-चलते किसी को चक्कर आया और वो व्यक्ति या तो गिर पड़ता है या फिर वहीं बैठ जाता है। बहुत तेज गर्मी में अगर किसी को बाहर जाना पड़े तो कई बार पानी पीने से व्यक्ति को बड़ी राहत मिलती है, नहीं तो एक घबराहट का सा अनुभव होता है। बिल्कुल इसी तरह की हल्की घबराहट या एक हल्का सा चक्कर एक स्वस्थ व्यक्ति को किसी ऊंची मीनार पर चढ़ने के बाद, जब वह नीचे देखता है, अनुभव होता है।
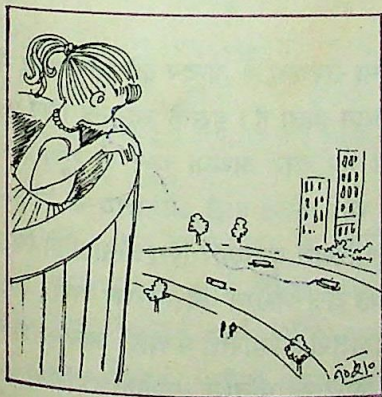
इन सभी अवस्थाओं में चक्कर आना हमारे शरीर में रक्त चाप में परिवर्तन के कारण होता है। साधारण अवस्था में हमारा रक्त चाप, वायुमण्डलीय दाब के लगभग बराबर ही रहता है और हमें चक्कर नहीं आता लेकिन जब हम ऊंची मीनार पर पहुंचते हैं तो वहां वायुमण्डलीय दाब कुछ कम हो जाता है। इस कारण उत्पन्न दाबान्तर से शरीर को एक असाधारण अवस्था का आभास होता है। ऐसी अवस्था में हम जब मीनार से नीचे की ओर देखते है तो हमें चक्कर आने लगते हैं।

जे.बी. धवन

यदि बन्द कमरे में फ्रिज को चालू करके फ्रिज का दरवाजा खोल दिया जाय तो क्या कमरा ठंडा हो जायेगा? नहीं, तो क्यों?

[मो. राशिद, 51, घासपुरा, खण्डवा, म.प्र.]

वास्तव में बन्द कमरे में चालू फ्रिज का दरवाजा खोलने से ताप में कोई अन्तर नहीं आयेगा। इसका कारण बहुत ही साधारण है। आपने देखा होगा कि फ्रिज के पिछले भाग में एक जाली नुमा यंत्र लगा होता है जो कि ऊष्मा विकिरक का काम करता है। फ्रिज के खुले

दरवाजे से जहां हमें ठण्डक मिलती है फ्रिज के पिछले भाग से ऊष्मा भी उसी अनुपात में उत्सर्जित होती रहती है। जब फ्रिज अपने खुले दरवाजे से कमरे से ठण्डक फेंकता है तो उसी अनुपात में फ्रिज का पिछला भाग जहां ऊष्मा विकिरक लगा होता है, उष्मा कमरे में छोड़ता रहता है। यहां पर ऊष्मा का वही सिद्धांत लागू होता है जिसके अनुसार किसी वस्तु के द्वारा उष्मा का ह्रास दूसरी वस्तु के द्वारा अवशोषित उष्मा की मात्रा के बराबर होता है। इसलिये कमरे का ताप फ्रिज के खुले होने पर भी एक सा ही बना रहेगा।

जे.बी. धवन

चन्द्रमा घटता, बढ़ता है तथा किसी दिन छुप भी जाता है, ऐसा क्यों होता है?

[श्री यादवेन्द्र शर्मा, कसीसौ अलीगढ़-202 135]

वास्तव में चन्द्रमा घटता, बढ़ता व छुपता नहीं है, हमें केवल पृथ्वी से देखने पर ही ऐसा प्रतीत होता है। चन्द्रमा स्वयं प्रकाशमान उपग्रह नहीं है, परन्तु सूर्य से प्रकाशित होकर यह उस प्रकाश को पृथ्वी पर परावर्तित करता है। सूर्य, चन्द्रमा व पृथ्वी की परस्पर बदलती हुई स्थिति के कारण प्रकाशित चन्द्रमा का कुछ भाग ही पृथ्वी पर परावर्तित हो पाता है। चन्द्रमा का घटना व बढ़ना भी इस कारण से ही हमें प्रतीत होता है।

जब चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर घूमता है, तब हम प्रकाशित चन्द्रमा के पूरे भाग को एक साथ नहीं देख पाते। जब चन्द्रमा पृथ्वी व सूर्य के मध्य में होता है, तब चन्द्रमा का प्रकाशित भाग पृथ्वी के दूसरी तरफ होता है। इस स्थिति में चन्द्रमा पृथ्वी से बिल्कुल दिखाई नहीं देता। इसे हम अमावस्या कहते हैं (अर्थात चन्द्रमा छुप जाता है)। धीरे-धीरे चन्द्रमा का प्रकाशित भाग दिखाई देना आरंभ होता है और अमावस्या के 14 दिन के पश्चात पृथ्वी, चन्द्रमा व सूर्य के मध्य में आ जाती है। अब हम चन्द्रमा के पूरे प्रकाशित भाग को देख सकते हैं इसे पूर्णिमा कहते हैं। अमावस्या से पूर्णिमा तक के 14 दिन के समय में चन्द्रमा हमें बढ़ता हुआ प्रतीत होता है तथा पूर्णिमा से अमावस्या तक के 14 दिन के समय में चन्द्रमा घटता हुआ प्रतीत होता है।

स्नेह प्रभा मेहता

भू SSSत ! भू SSSत !"

"अरे, ये आप चिल्ला क्यों रहें हैं।"

"क्या कहा ? चिल्ला क्यों रहे है।" अजी, चित्रकथा का पृष्ठ सामने आते ही आज तो हमारी घिग्घी ही बंध गई। बचपन में दादी मां की कहानियों में भूत का जिक्र तो अनेकों बार आया, परन्तु लगता है, उस काल्पनिक आकृति का ही आज आपने वास्तविक चित्रण कर दिखाया है।

"जी नहीं यह भूत नहीं है, विज्ञान तो भूत जैसी किसी चीज के अस्तित्व में विश्वास ही नहीं करता।"

"चलिये ये मान लेते हैं कि भूत कुछ नहीं होता और केवल मन का भ्रम है तो फिर यह चित्र किसका है ? हां !एक विचार मस्तिष्क में कौंध रहा है कि कहीं यह भयानक आकृति का कोई मुखौटा तो नहीं है, जिसे पहन कर बच्चे एक दूसरे को डराते हैं।"

"नहीं, नहीं, यह भयानक मुखौटा भी नहीं है। हां आपकी सुविधा के लिये हम आपको अवश्य बता दें कि यह चित्र एक खतरनाक सजीव वस्तु का ही है, अब अनुमान लगाइये।"

"अरे आप किस सोच में पड़े गये ? कुछ समझ में नहीं आ रहा क्या ? चिन्तित मत होइये, हम ही आपको इस डरावने चित्र के बारे में बताते हैं।"
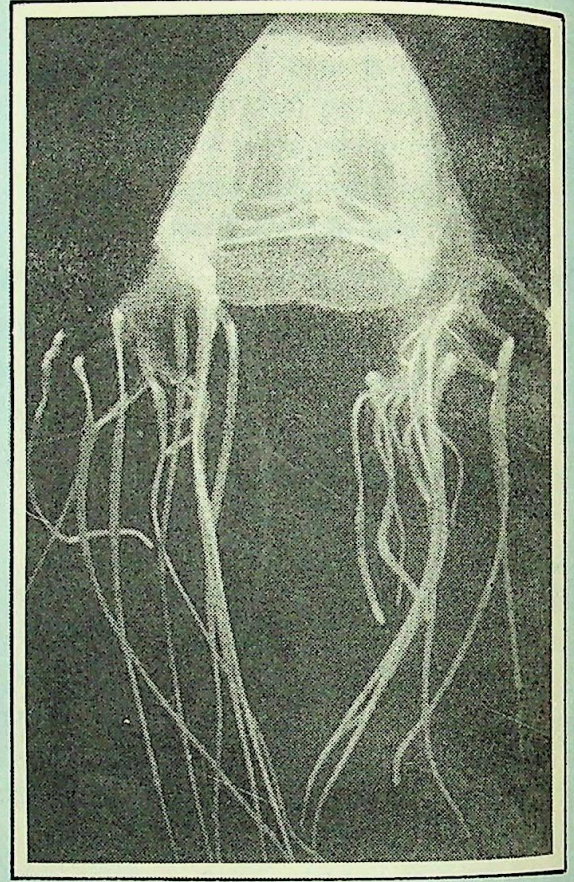
प्राणी जगत को विभिन्न फाइलम या संघों में बांटा गया है। फाइलम नीडेरिया, जिसे सीलेन्ट्रेटा भी कहते हैं, के क्लास या वर्ग स्काइफ़ोज़ोआ के जन्तुओं का सामान्य नाम जैली फ़िश है। यह चित्र एक जैली फ़िश का ही है। जैली फ़िश का नामकरण इन प्राणियों की संरचना के आधार पर किया गया है। इन जन्तुओं का शरीर दो परतों का बना होता है। प्रत्येक परत कोशिकाओं की बनी **होती है और इन परतों के बीच में जैली सदृश पदार्थ भरा होता है।** यह पदार्थ जन्तु के लचीले शरीर के लिये कंकाल का कार्य करता है और साथ ही जैली फिश को पानी में तैरने के लिये आवश्यक उछाल भी प्रदान करता है।

जैली फिश जलीय प्राणी है। यह अरीय या द्विअरीय सममित होते हैं। यह प्रायः सभी महासागरों में पाए जाते हैं और गर्म उष्णकटिबन्धी समुद्रों में बहुतायत में मिलते हैं। इनकी 200 जातियों की खोज की जा चुकी है। जैली फिश की छतरी अथवा **घन्टेनुमा शरीर की परिधि 1.5 मिमी.- 2 मी. तक हो सकती है। इनका जीवन चक्र प्रायः 1 से 3 महीने का होता है, कुछ जातियों** की आयु 1 वर्ष भी होती है। जैली फिश के शरीर का 99% भाग जल होता है। इन्हें पानी से बाहर निकाल कर किसी सूखे स्थान **पर रख देने से, शरीर का जल, वाष्प बन कर उड़ जाने के कारण यह तुरन्त मर जाती है।**

जैली फिश की छतरीनुमा संरचना में अन्दर की ओर केन्द्र में नली के आकार का मैन्यूब्रियम होता है। इसके स्वतन्त्र सिरे पर जैली फ़िश का मुख होता है। चार अथवा चार के गुणज में उपस्थित अरीय नलिकायें चार कोष्ठ वाले आमाशय से निकल **कर छतरी की परिधि पर उपस्थित वृत्ताकार रिंग कैनाल से मिल** जाती हैं। नलिकाओं का यह तंत्र भोजन को समस्त शरीर तक पहुंचाने का कार्य करता है। छतरी की परिधि में चारों ओर स्पर्शक लटके होते हैं। छतरी की ऊपरी सतह तथा स्पर्शकों के सिरों पर एक कोशीय दंश कोशिकायें निमेटोसिस्ट पाई जाती हैं। ये दंश कोशिकायें गोल अथवा बेलनाकार होती हैं। इनके अंदर **सर्पिलाकार, खोखली, बारीक धागेनुमा रचना होती है।** आवश्यकता पड़ने पर धागा दंश कोशिकाओं से पलट कर बाहर निकल आता है। दंश कोशिकाओं के अंदर विषैला द्रव भरा होता है। भोजन ग्रहण करने के लिये दंश कोशिकाओं द्वारा आक्रमण

करके जैली फ़िश अपने भोजन को निष्क्रिय बना देती है और स्पर्शकों की सहायता से मुख में लाती है। निमेटोसिस्ट का उपयोग सुरक्षा के लिये भी किया जाता है। जैली फ़िश की छतरी के निचले किनारे पर उपस्थित पेशियां, छतरी को थोड़ी-थोड़ी देर बाद संकुचित करती रहती हैं जिसके कारण यह धीमी नोदक गति के साथ पानी में आगे बढ़ती है।

प्रजनन के लिये, अन्डे और शुक्राणु मुख द्वारा पानी में छोड़ दिये जाते हैं। निषेचन पानी में ही होता है। निषेचन के बाद बनने वाला रोएंदार लार वा-प्लेन्यूला किसी ठोस आधार पर अपने रोओं के सहारे स्थापित हो जाता है। कुछ समय बाद यह एक खाली बेलनाकार आकृति स्ट्रोबाइला में परिवर्तित हो जाता है। इस अवस्था को पौलिप कहते हैं। पौलिप के स्वतंत्र सिरे पर मुख और स्पर्शक होते हैं। कुछ अंतराल के बाद स्ट्रोबाइला अपने आधार से अलग होकर स्वच्छन्द विचरण करता है, इस अवस्था को यूफाइरूला कहते हैं। यही यूफाइरूला आगे चल कर जैली फ़िश बन जाता है।"

"परन्तु यह तो आपने बताया नहीं कि इस छतरी नुमा जीव जैली फिश का खतरे से क्या संबंध है?"

"सीलेन्ट्रेटा फाइलम में, जहां एक ओर हाथ के पंखे की आकृति का गोरगोनिया जैसा आकर्षक जीव और लाल चट्टानों जैसे कोरल जिनका उपयोग आभूषणों में किया जाता है, सम्मिलित हैं वहीं अनेक हानिकारक जन्तु भी इस वर्ग में सम्मिलित हैं, जैसे-फ़ाइसेलिया। इसी प्रकार सभी जैली फ़िश अत्यन्त खतरनाक होती हैं। इनके स्पर्शक पर उपस्थित निमेटोसिस्ट में विषैले रसायन भरे रहते हैं जिनका उपयोग दुश्मन के ऊपर किया जाता है।"

अभी तक ज्ञात जैली फ़िश में, जिसे समुद्री बर्र भी कहते हैं, चित्र में दिखाई गई जैली फ़िश, काइरोनेक्स फ्लैकेरी, सबसे अधिक विषैली घोषित की गई है। आस्ट्रेलिया के आसपास जहां यह बहुतायत में पाई जाती है, समुद्र में शौकिया तैरने वालों और नहाने वालों को इस जैली फ़िश से खतरा महसूस होने लगा है। एसिटैस आस्ट्रेलिस झींगी, जो काइरोनेक्स फ्लैकेरी का भोजन है, की तलाश में यह जैली फ़िश तटों पर आ जाती है और अनजाने में तैराकों के सम्पर्क में आने पर काइरोनेक्स में मौजूद विषैला द्रव निमोटोसिस्ट द्वारा मनुष्य में प्रवेश कर जाता है। अब तक प्राप्त आंकड़ों के अनुसार लगभग 50 व्यक्ति काइरोनेक्स फ्लैकेरी के दंश के कारण काल का ग्रास बन चुके हैं।

"तब तो वास्तव में यह बहुत खतरनाक जैली फ़िश है। क्या भारत के तटों पर भी इस का खतरा है?"

हिन्द महासागर में भी काइरोनेक्स की उपस्थिति सूचित की गई है। लेकिन् भारतीय तटों पर इसकी उपस्थिति की अभी तक कोई स्पष्ट जानकारी नहीं है। इनमें उपस्थित विषैला पदार्थ हृदय के लिये विषैला होता है। जैली फ़िश का दंश भयानक पीड़ादायक होता है। दंश के स्थान पर जलन होती है। जिस-जिस स्थान पर काइरोनेक्स के स्पर्शक शरीर से स्पर्श करते हैं वहां लाल रंग के निशान पड़ जाते हैं। विष के प्रभाव से बेहोशी छाने लगती है। रक्त का प्रवाह भी प्रभावित होता है जिस कारण सांस लेने में कठिनाई होती है। अधिकांश मामलों में मृत्यु बहुत जल्दी हो जाती है। वैसे भी अभी तक काइरोनेक्स के दंश की प्रभावहीन बनाने के लिये किसी प्रतिविष की खोज नहीं हो पाई है।

दंश के स्थान पर मेथेनॉल का लेप, अथवा रक्त चाप बढ़ाने वाली दवाइयों द्वारा तात्कालिक सहायता से मरीज की जान बचाई जा सकती है। इस सब के बावजूद घाव को भरने में हफ्तों लग सकते हैं और दंश के निशान जीवन पर्यन्त बने रहते हैं। □

[श्री राजीव माथुर, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली- 110 012]

क्या आप जानते हैं?

- साइबेरिया की बैंकॉल झील पृथ्वी की सबसे गहरी झील है। इसकी गहराई 2300 फीट है।
- सुपीरियर झील पृथ्वी पर सबसे बड़ी स्वच्छ पानी की झील है। इसका क्षेत्रफल 31,200 वर्ग मील है।
- मौना लोआ (हवाई) ज्वालामुखी पृथ्वी का सबसे बड़ा ज्वालामुखी है। इसके मुख (क्रेटर) का व्यास 12,400 फीट है।
- पृथ्वी का 29.22% भाग (1490 लाख वर्ग किमी.) स्थल है।
- पृथ्वी का 156 लाख वर्ग किमी. क्षेत्रफल भाग बर्फ से ढका हुआ है।
- पृथ्वी का कुल क्षेत्रफल 5100 लाख वर्ग किमी. है।

[श्री संदीप मित्तल, भू-विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली- 110 007]

संख्यायें और रोचक तथ्य

नरोत्तम जोशी

जोशी जी प्राइमरी कक्षाओं के विद्यार्थियों को गणित पढ़ाया करते थे और पढ़ाते इतना अच्छा थे कि एक बार जो वे पढ़ा दें, बच्चे भूलते नहीं थे। एक दिन उन्होंने सोचा कि मैं बच्चों को प्रतिदिन जोड़, घटाना, गुणा, भाग आदि ही करवाता रहता हूं। आज क्यों न बच्चों को दो अंकों वाली संख्याओं संबंधी कुछ रोचक बातें बताऊं। यही सोचकर वे कक्षा में प्रविष्ट हुये और चुपचाप बैठ गये। बच्चों को उनका इस तरह बैठना अखरने लगा।

हिम्मत करके रमेश ने पूछा "मास्टर साहब, आज क्या आप हमें पढ़ायेंगे नहीं?" उत्तर मिला, "नहीं! आज मैं तुम्हें दो अंकों वाली संख्या संबंधी कुछ रोचक बातें बताऊंगा। रमेश पहले तुम्हीं बताओ "दो अंकों की पहली संख्या कौन सी है?"

रमेश ने फटाक उत्तर दिया, "10" मास्टर साहब बोले "बिल्कुल ठीक, इसमें 1 दहाई का अंक और 0 इकाई का अंक कहलायेगा। ऐसा तुम सभी जानते ही हो। अब यदि इस संख्या के अंकों के स्थान बदल दिये जायें तो प्राप्त संख्या 01 हुई। इन दो संख्याओं का योग 10+01=11 अर्थात् 11(1+0) और अन्तर 10-01=9 आया।"

इसके बाद मास्टर साहब ने अहमद से पूछा, "दो अंकों की कोई और संख्या बताओ जिसमें इकाई और दहाई के अंकों का अन्तर (इनमें जो भी बड़ा हो-छोटा हो)।"

अहमद ने उत्तर दिया, "12"

"इसके अंकों के स्थान बदलने पर संख्या बन जायेगी 21 इनका योग 12+21=33 अर्थात् 11(1+2) और अन्तर 21-12=9 ही आया", मास्टर साहब ने समझाया।

आज वे छात्र भी, जो अन्य दिनों एक-दो सवाल करने के बाद ही इधर-उधर देखने लगते थे, बड़ी तन्मयता से जोशी जी की बातें समझने में लगे थे। अब जोशी जी ने विद्यार्थियों को ऐसी ही और संख्यायें लेकर उक्त प्रक्रिया अपनाते हुये परिणाम ज्ञात करने को कहा।

फेफड़े दुरुस्त तो खिलाड़ी चुस्त

सुभाष लखेड़ा

फेफड़े हमारे शरीर के महत्वपूर्ण अंग हैं। यह शरीर के एकमात्र ऐसे आन्तरिक अंग हैं जिनका बाहरी वातावरण से सीधा सम्पर्क है। हम अपने फेफड़ों द्वारा वायुमंडल से वायु प्राप्त करते हैं। इस वायु का 20.94 प्रतिशत भाग ऑक्सीजन है। हमारे जीवन के लिए ऑक्सीजन अति आवश्यक है। ऑक्सीजन के पूर्ण अभाव में हम दो, तीन मिनट में ही काल का ग्रास बन सकते हैं।

वास्तव में हमें कार्य करने के लिए ही नहीं अपितु मात्र जीवित रहने के लिए भी ऊर्जा चाहिए। हमारे शरीर को यह ऊर्जा मुख्य रूप से कार्बोहाइड्रेट्स एवं वसा के चयापचय से प्राप्त होती है। चयापचय की जटिल रासायनिक क्रियायें हमारे शरीर की सभी कोशिकाओं में निरन्तर चलती रहती हैं। इन क्रियाओं में ऑक्सीजन गैस खर्च होती है और कार्बनडाइ ऑक्साइड गैस बनती है। यह कार्बनडाइ ऑक्साइड गैस फेफड़ों के द्वारा ही सांस छोड़ते समय शरीर से बाहर निकलती है। इस प्रकार से हमारे फेफड़ों का सबसे प्रमुख कार्य वायुमंडल से शरीर की कोशिकाओं में होने वाली चयापचय की क्रियाओं के लिए ऑक्सीजन प्राप्त करना और बदले में इन कोशिकाओं में पोषाहार के चयापचय (मेटाबॉलिज्म) के कारण पैदा होने वाली कार्बनडाइ ऑक्साइड को शरीर से बाहर निकालना है।

यद्यपि फेफड़ों का कुल भार उनमें मौजूद रुधिर एवं अन्य द्रवों की मात्राओं पर निर्भर करता है किन्तु औसतन सामान्य और स्वस्थ वयस्क पुरुष के फेफड़ों का भार 1100 ग्राम और महिला का 900 ग्राम होता है। संरचना की दृष्टि से हमारे फेफड़े दायें और बायें दो भागों में बंटे होते हैं। दायें फेफड़े का भार बायें फेफड़े से पांच प्रतिशत अधिक होता है और यह तीन खण्डों में बंटा रहता है। बायें फेफड़े में दो ही खण्ड होते हैं। आकार की दृष्टि से ये दोनों फेफड़े शंक्वाकार और त्रिपृष्ठीय होते हैं। इनमें से प्रत्येक का एक शीर्ष और एक आधार होता है। इन फेफड़ों की सबसे छोटी इकाई को वायुकोश (ऐल्वियोल्स) कहते हैं। इन वायुकोशों की बाहरी सतह पर उपस्थित फुप्फुस कोशिकाओं में दिल के दायें निलय (वैंट्रिकल) से फुप्फुस धमनी में पम्प किया गया 'शिरारक्त' बहता रहता है।

फेफड़ों के वायुकोशों की संख्या में जन्म से लेकर आठ वर्ष की आयु तक वृद्धि होती है, तत्पश्चात यह संख्या जीवन पर्यन्त स्थिर बनी रहती है। एक वयस्क व्यक्ति के फेफड़ों में कुल मिलाकर लगभग तीस करोड़ वायुकोश होते हैं और इनका सम्पूर्ण पृष्ठीय क्षेत्रफल 70 से लेकर 80 वर्ग मीटर तक होता है जबकि इन वायुकोशों की सतह पर फैली फुप्फुस कोशिकाओं का पृष्ठीय क्षेत्रफल कुल मिलाकर 45 वर्ग मीटर के आसपास होता है।

सांस की प्रक्रिया के दौरान फेफड़ों द्वारा ग्रहण की गई वायु में मौजूद ऑक्सीजन वायुकोशों में पहुंचकर समीपस्थ फुप्फुस कोशिकाओं में बहने वाले रक्त में विसरित (डिफ्यूज़) होती है और उस रक्त में मौजूद कार्बनडाइ ऑक्साइड गैस वायुकोशों में विसरित होती है जिसे फेफड़े निःश्वसन (एक्सपिरेशन) के दौरान वायुमंडल मे विसर्जित करते रहते हैं। फुप्फुस केशिकाओं में मौजूद रक्त में जितनी अधिक लाल रक्त कणिकायें होती हैं उतनी ही अधिक ऑक्सीजन इनमें मौजूद हीमोग्लोबिन के साथ ऑक्सीहीमोग्लोबिन बनाकर दिल के बायें भाग में पहुंचती है। तत्पश्चात दिल इस ऑक्सीजन समृद्ध रक्त को पेशी कोशिकाओं सहित सम्पूर्ण शरीर में 'पम्प' करता है।

किसी भी शारीरिक परिश्रम के दौरान जब अधिक ऊर्जा पैदा करने के लिए हमारे शरीर की पेशियों की आक्सीजन आवश्यकता बढ़ती है तब फेफड़े अधिक सक्रिय होकर शरीर के लिए और अधिक ऑक्सीजन जुटाने का प्रयास करते हैं।

चूंकि खिलाड़ियों को अपने खेल अभ्यासों एवं प्रतियोगिताओं के दौरान अधिक शारीरिक ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है अतः ऐसी स्थितियों में उन्हें अधिक ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है। फलस्वरूप, सामान्य अवस्था में वायुमंडल से प्रति मिनट छः, सात लीटर वायु प्राप्त करने वाले खिलाड़ियों के फेफड़े, खेलों के दौरान चरम अवस्था में प्रति मिनट 180 लीटर तक वायु प्राप्त करते हैं। यही वजह है कि कठिन शारीरिक कार्यों एवं खेलों के दौरान सांस लेने की रफ्तार एवं गहराई दोनों में वृद्धि होती है।

यहां यह उल्लेखनीय है कि फेफड़ों द्वारा ली जाने वाली इस अधिक वायु में उपस्थित ऑक्सीजन की अधिक मात्रा का रक्त में पहुंचना बहुत जरूरी है अन्यथा इस संपूर्ण प्रक्रिया का कोई लाभ नहीं है। खेल व्यायाम के दौरान एक सक्षम खिलाड़ी के फेफड़ों से फुप्फुस कोशिकाओं में बहने वाले रक्त में प्रति मिनट सामान्य व्यक्तियों की तुलना में
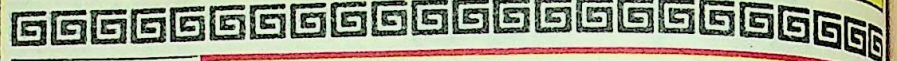
कहीं अधिक ऑक्सीजन प्रवेश करती है।

दरअसल, लंबे समय के शारीरिक परिश्रम वाले खेल खेलने वालों के फेफड़े आयतन की दृष्टि से सामान्य व्यक्तियों की तुलना में अधिक बड़े होते हैं। फलस्वरूप, आवश्यकता पड़ने पर ये जहां एक ओर शरीर में अधिक ऑक्सीजन पहुंचा सकते हैं, वहीं दूसरी ओर शरीर की कोशिकाओं में ऊर्जा बनने के दौरान उत्पन्न होने वाली कार्बनडाइ ऑक्साइड की अधिक मात्रा को भी शरीर से बाहर निकाल सकते हैं।

जहां एक ओर खिलाड़ियों के फेफड़े आकृति अथवा आयतन की दृष्टि से बड़े होते हैं, वहीं उनकी सांस लेने एवं छोड़ने की क्रिया से जुड़ी पेशियां भी अधिक शक्तिशाली एवं लंबे समय तक कार्य करते रहने में सक्षम होती हैं। यद्यपि हमारे शरीर के इन अंगों पर काफी अधिक सीमा तक आनुवंशिक प्रभाव होता है तथापि किशोर अवस्था से खेल संबंधी नियमित प्रशिक्षण से फेफड़ों के आयतन एवं सांस की क्रिया से जुड़ी पेशियों की शक्ति एवं सामर्थ्य में वृद्धि की जा सकती है। यहां यह जानना जरूरी है कि किशोर अवस्था के बाद फेफड़ों के आयतन में व्यायाम करने से कोई विशेष वृद्धि नहीं होती है किन्तु सांस प्रक्रिया से जुड़ी पेशियों की शक्ति को बढ़ाया जा सकता है।

वयस्क मनुष्य का श्वसनी वृक्ष (ब्रांकियल ट्री)
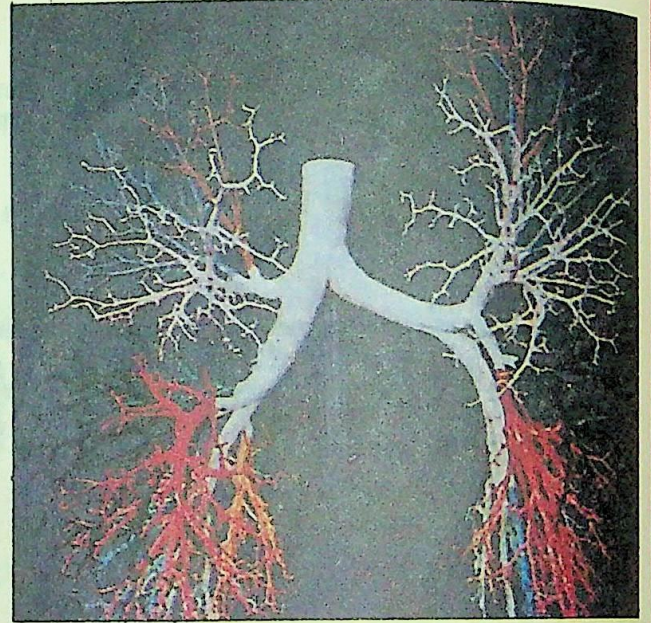
इस प्रकार से एक सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी का फेफड़ा आयतन की दृष्टि से बड़ा होता है और उसकी श्वासधारिता भी अपेक्षाकृत अधिक होती है। किसी व्यक्ति के फेफड़ों की श्वासधारिता का अर्थ वायु के उस आयतन से है जिसे वह अधिकतम सांस लेने के बाद अधिकतम सांस छोड़ कर अपने फेफड़ों से बाहर निकाल सकता है। जिस व्यक्ति की श्वासधारिता जितनी अधिक होती है, वह अपने खेल के दौरान उसी अनुपात में उतनी ही अधिक गहरी सांस ले और छोड़ सकता है। उसकी सांस संबंधी पेशियां भी सामान्य मनुष्यों से अधिक सक्षम होती हैं। इन विशेषताओं के कारण ही अच्छे खिलाड़ी आवश्यकता पडने पर प्रति मिनट वायु की बड़ी मात्रा फेफड़ों से ले और छोड़ सकते हैं।

खेल प्रदर्शन के दौरान दिल एवं फेफड़ों के कार्यों के बीच सामंजस्य होना जरूरी है। ये दोनों उस परिसंचरण प्रणाली के सहभागी हैं जिनके दो महत्वपूर्ण कार्य शरीर में ऑक्सीजन पहुंचाना और कार्बनडाइ ऑक्साइड गैस को हटाना है।

सन् 1930 से वैज्ञानिक एवं अनुशिक्षकों ने व्यायाम के दौरान दिल एवं फेफड़ों की परिसंचरण संबंधी क्षमता को दर्शाने के लिए 'अधिकतम ऑक्सीजन उपभोग' नामक सूचकांक का उपयोग शुरू किया। यह (पैरामीटर) व्यक्ति विशेष की ऑक्सीजनी क्षमता (एयरोबिक पॉवर) को बताता है। आज यह शब्द खेल की दुनिया में इतना अधिक प्रचलित हो चुका है कि अब यह खिलाड़ियों एवं अनुशिक्षकों की शब्द

(शेष पृष्ठ 36 पर)
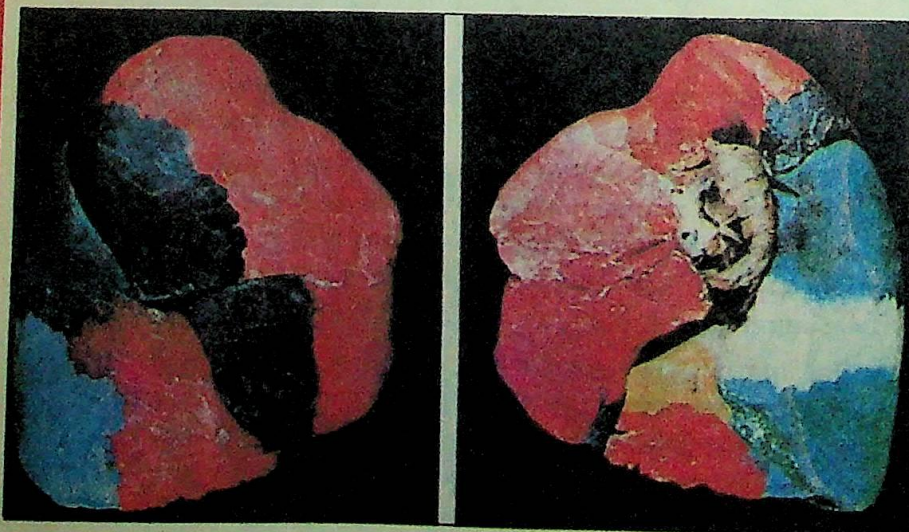
दांयें फेफड़े का पार्श्व पृष्ठ एवं फुफ्फुस मध्यावकाश

वर्ष पहले

नवम्बर १९५२

सूचना-समाचार

मसालों की सहायता से घी-तेल की सुरक्षा

घी और खाने के काम में आने वाले तेल कुछ दिनों रखे रहने के बाद एक प्रकार की गंध देने लगते हैं, उनका स्वाद बिगड़ जाता है और वे अरुचिकर हो जाते हैं। इस परिवर्तन का कारण यह है कि वायु की आक्सीजन घी और तेलों के एक भाग के साथ रसायनिक रूप से संयोग कर लेती है और ऐसे पदार्थ बना देती है जो गंध देने वाले और अरुचिकर होते हैं। दुर्भाग्य की बात यह है कि इनके जो भाग शरीर के लिये सबसे अधिक पोषक और स्वादिष्ट होते हैं वे ही आक्सीजन के साथ सब से पहले रसायनिक संयोग करते हैं।

भारत में खाद्य तेलों और घी को इस प्रकार बिगड़ने से बचाने के लिये लाल मिर्च, प्याज, लहसन, और पान का उपयोग पुराने समय से किया जा रहा है।
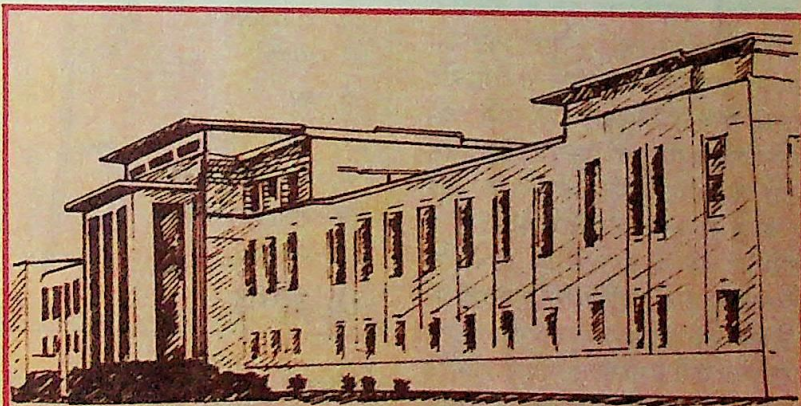
नेशनल मेटलर्जिकल लेबोरेटरी

नेशनल मेटलर्जिकल लेबोरेटरी रिसर्च के सब महत्वपूर्ण साधनों से सम्पन्न अनुसंधान केन्द्र है। यहां भौतिकी, रसायन शास्त्र, इंजीनियरिंग, आदि के ज्ञान को सैद्धांतिक और व्यावहारिक धातु निर्माण के क्षेत्र में खोज-बीन करने के लिये इस्तेमाल किया जाता है। लेबोरेटरी का वैज्ञानिक कार्य अभी छः मुख्य विभागों द्वारा किया जा रहा है : १. जनरल मेटलर्जी (सामान्य धातु निर्माण), २. कैमिस्ट्री (रसायन) ३. ओर ड्रेसिंग एण्ड मिनरल बेनीफिसियेशन (कच्ची धातु की संवार और खनिजों में सुधार), ४. रिफ्रेक्टरीज़ (दुर्गलनीय पदार्थ), ५. फिज़िकल मेटलर्जी (भौतिक परीक्षणों से खनिज और धातुओं का अध्ययन), और ६. मेकेनिकल मेटलर्जी एण्ड टेस्टिंग (मशीनी परीक्षणों से खनिज और धातुओं का अध्ययन और परख)।

गलीचा और कालीन उद्योग

भारत में गलीचे बुनने का सब से पहला लिखित वर्णन "आईन-ए-अकबरी" में मिलता है, जिससे पता चलता है कि १६वीं सदी में गलीचे बुनने की कला भारत में उन्नति के शिखर तक पहुंच गई थी और उस समय के बने भारतीय गलीचों की तुलना ईरानी और तातारी गलीचों से की जा सकती थी। सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में गलीचा उद्योग की दशा बिगड़ती गई और उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भिक भाग में तो वह केवल काश्मीर में ही सीमित हो गया। १८६० के बाद पंजाब और दूसरे प्रान्तों ने गलीचा बुनने का काम कुछ जेलों में शुरू किया और इस उद्योग को नई ज़िन्दगी प्रदान की। तब से गलीचा बनाने का उद्योग उत्तर भारत में आगे ही बढ़ता गया है और आज वह इस क्षेत्र के घरेलू और छोटे उद्योगों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।
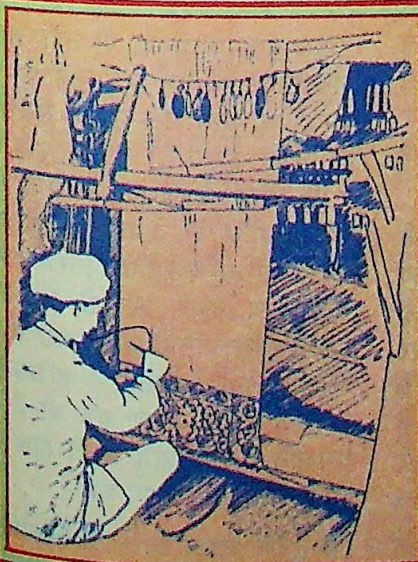
(पृष्ठ 34 का शेष)
सम्पदा का एक हिस्सा बन गया है। दरअसल, परिश्रम के दौरान व्यक्ति विशेष के शरीर द्वारा प्रति मिनट उपभोग की जाने वाली ऑक्सीजन की अधिकतम मात्रा को 'अधिकतम ऑक्सीजन उपभोग' कहते हैं। 'अधिकतम ऑक्सीजन उपभोग' दिल और फेफड़े दोनों की अधिकतम ऑक्सीजन-वहन धारिता का परिचायक होने के साथ-साथ कंकाल पेशियों की ऑक्सीजन को उपयोग करने की क्षमता को भी दर्शाता है। यद्यपि दिल एवं फेफड़ों का बड़ा होना 'अधिकतम आक्सीजन उपभोग' क्षमता के ऊंचा होने के लिए जरूरी है, इसके लिये यह भी जरूरी है कि शरीर के विभिन्न पेशी समूह ऑक्सीजन का उपयोग उच्चतम स्तर पर करने योग्य हों। दरअसल, खेलों के लिए शरीर की शक्ति को प्रदर्शित करने के लिए 'अधिकतम ऑक्सीजन उपभोग' एक श्रेष्ठ शक्ति-माप है। यह लंबे समय के खेलों यानि 'इन्ड्योरेन्स' खेलों में खिलाड़ी की उच्चतम गति की सीमा को सुनिश्चित करता है। यदि किसी खिलाड़ी की ऑक्सीजन को उपभोग करने की धारिता ऊंचे स्तर की नहीं है तो वह इन्ड्योरेन्स खेलों में विश्व स्तर पर नहीं आ सकता है। हमारी ऑक्सीजन उपभोग करने की अधिकतम क्षमता आनुवंशिक होती है। कोई किशोर या नौजवान ऑक्सीजनी प्रशिक्षण (एयरोबिक ट्रेनिंग) द्वारा अपनी इस क्षमता में अधिक से अधिक तीस प्रतिशत की वृद्धि कर सकता है।

यूं भी कोई भी खिलाड़ी सात मिनट से अधिक अपनी 'अधिकतम ऑक्सीजन उपभोग' की सीमा पर नहीं टिका रह सकता। दरअसल, लंबे समय के खेलों के लिए किसी खिलाड़ी में 'अधिकतम ऑक्सीजन उपभोग' का वह प्रतिशत भाग अधिक महत्त्वपूर्ण है जिसका उपयोग वह निरंतर कर सकता है क्योंकि पेशियों की ऊंची सक्रियता के कारण बनने वाली कार्बनडाइ ऑक्साइड गैस एवं लैक्टिक अम्ल के जमाव के कारण पेशियों की कार्य करने की प्रणाली एक सीमा के बाद मंद होने लगती है।

किसी भी ऑक्सीजनी खेल (एयरोबिक स्पोर्ट) में कोई खिलाड़ी अपनी गति को कई मिनटों में बढ़ाता है। पेशी सक्रियता की तीव्रता के एक क्रान्तिक स्तर पर पहुंचने के बाद, जब पेशियों से पैदा होने वाली

श्वसन तंत्र :
1. नासिका गुहा
2. मुख गुहा
3. श्वासनली
4. दायां फेफड़ा
5. ग्रसनी
6. कंठ
7. बायीं श्वसनी
8. श्वसनिका शाखायें
9. रक्त वाहिकायें
10. श्वसनिका
11. कूपिकायें
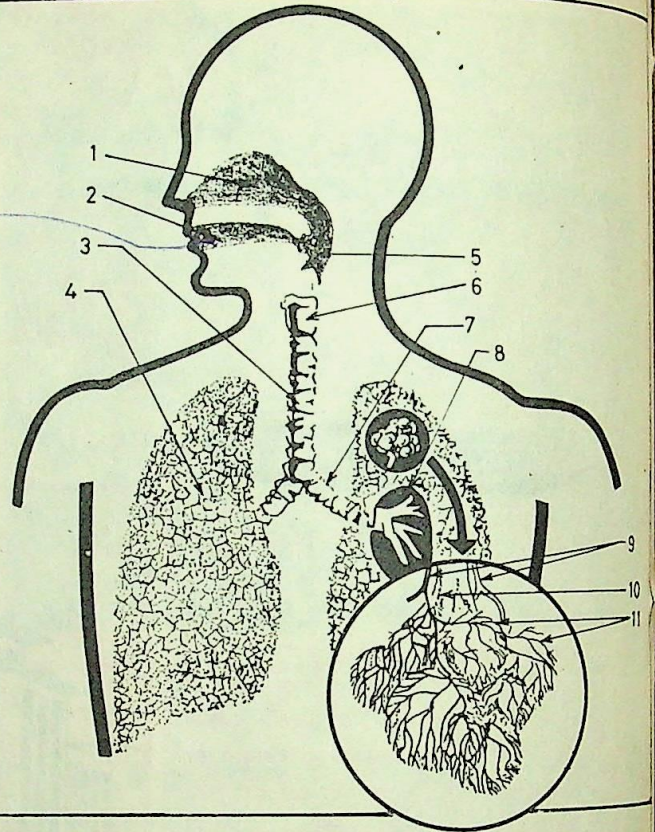
कार्बनडाइ ऑक्साइड गैस रक्त में जमा होने लगती है तो इस बिन्दु को 'अनाक्सी प्रभाव सीमा' कहते हैं।

एक ऊंचे दर्जे के प्रशिक्षित विशिष्ट खिलाड़ी के फेफड़े अपने द्वारा प्रतिमिनट सांस में ली एवं छोड़ी जाने वाली वायु की मात्रा में वृद्धि करने में सक्षम होते हैं और 'अनाक्सी प्रभाव सीमा' की स्थिति में पहुंचने पर 30-35 मिनटों तक अपनी श्वसन पेशियों के तीव्र संकुचनों की सहायता से 'मिनिट संवातन' (फेफड़ों द्वारा प्रतिमिनट ग्रहण की जाने वाली वायु का आयतन) के ऊंचे स्तर को बनाए रख सकते हैं।

जब धूम्रपान तथा श्वसन संबंधी किन्हीं अन्य कारणों से हमारे फेफड़ों तक वायु पहुंचाने वाले मार्ग का प्रतिरोध बढ़ता है तो उस अवस्था में श्वसन पेशियों पर अलाभकारी भार बढ़ता है। ऐसी स्थिति में ये पेशियां जल्दी थकान का शिकार बन जाती हैं। फलस्वरूप, एक अच्छे खिलाड़ी की खेल-प्रदर्शन क्षमता में गिरावट आ जाती है।

दुनियां के श्रेष्ठ खिलाड़ी अपने खेलों के दौरान चरम क्षणों में अपने फेफड़ों से 160 से लेकर 180 लीटर वायु प्रति मिनट तक खींचते और छोड़ते हैं। ऑस्ट्रिया का महान पर्वतारोही रीनहोल्ड मैस्सनैर जब एवरेस्ट की चोटी पर वहां के अल्प वायुमंडलीय दबाव में खड़ा था तो उस समय उसके फेफड़े ऑक्सीजन की आवश्यक मात्रा को लेने के लिए 200 लीटर वायु प्रति मिनट की दर से ले और छोड़ रहे थे।

इस बात में तनिक भी संदेह नहीं है कि खिलाड़ियों का दम-खम सर्व प्रथम उनके फेफड़ों की सांस लेने-छोड़ने संबंधी क्षमता पर निर्भर करता है। तुलनात्मक अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि अमेरिकी एवं रूसी खिलाड़ियों के फेफड़े भारतीय खिलाड़ियों की अपेक्षा अधिक बड़े होते हैं। संभवतया पोषण जैसे अन्य दूसरे कारणों के साथ-साथ भारतीय खिलाड़ियों की तुलना में इन देशों के खिलाड़ियों के फेफड़ों के अधिक बड़ा होने का एक प्रमुख कारण यह भी है कि उन्हें अपेक्षाकृत कम आयु से ही खेल प्रशिक्षण दिया जाता है। □

[श्री सुभाष लखेड़ा, एक्स- 360, सरोजिनी नगर, नई दिल्ली- 110 023]

सुरेश नाडकर्णी

"डाक्टर! डाक्टर! मुझे अभी-अभी कुत्ते ने काट लिया है, मुझे बहुत डर लग रहा है।"

"कहां पर काटा? जरा दिखाओ तो!"

"यहां डाक्टर, इस पेर में।"

"आओ आओ! आराम से सोफे पर बैठो!"

"किसलिये? आप यह क्या कर रहे हैं, डाक्टर साहब?"

"क्योंकि मुझे तुम्हारी प्राथमिक चिकित्सा करनी है। इस लिये मैं साबन तथा पानी से घाव को अच्छी तरह धोऊंगा तथा इसको एण्टिबायोटिकों की सहायता से संक्रमण रहित करूंगा।"

"क्या आप घाव में टांके लगायेंगे?"

"नहीं, तुम्हारे घाव में टांके लगाने की आवश्यकता नहीं है। इसमें केवल दांतों के निशान हैं। लेकिन एक बात और भी महत्व की यह है कि जानवरों के काटने से बने घावों पर कभी भी टांके नहीं लगाये जाते।"

"शुक्र है भगवान का।"

"तुम्हें किस कुत्ते ने काटा?"

"हमारे पड़ौसी के कुत्ते - ब्रूनो ने।"

"उसको जानवरों के अस्पताल में ले जाओ।"

"किस लिये डाक्टर?"

"क्या उन्होंने अपने कुत्ते को रेबीजरोधी टीका लगवाया हुआ है? यदि हां, तो डाक्टर बतायेगा कि तुम्हें कितने रेबीजी रोधी टीके या नयी—ह्यूमन डिप्लयड सेल-वैक्सीन" लगवानी पड़ेंगी।"

"क्या मतलब? क्या मुझे इंजेक्शन लगवाने पड़ेंगे?"

"हां, क्योंकि जब भी कोई कुत्ता काटता है तो हमेशा रेबीज रोग होने का खतरा बना रहता है।"

"रेबीज, ये रेबीज क्या होता है?"

"रेबीज एक भयानक रोग है। यह मस्तिष्क तथा तंत्रिका तंत्र को प्रभावित करता है। इस रोग को "हाइड्रोफोबिया" भी कहते हैं।"

"यह तो बड़ा डरावाना रोग हैं, डाक्टर।"

"यह डरावना ही नहीं बलिक घातक भी है। रेबीज से प्रभावित रोगी ठीक भी नहीं होते हैं।"

"आपकी इस बात ने तो मुझे बुरी तरह परेशान कर दिया। मुझे क्या करना चाहिये, डाक्टर?"

"देखो, रोओ नहीं। हम तुम्हारी प्राथमिक चिकित्सा करके तुम्हें इंजेक्शन लगवाने शुरू कर देते हैं।"

"यह ठीक है, लेकिन डाक्टर मुझे एक बात बताइये, क्या 'रेबीज' केवल कुत्तों के काटने से ही होता है?"

"नहीं, यह जरूरी नहीं है कि 'रेबीज' केवल कुत्तों के काटने से होता है। यह मनुष्यों में समतापी रक्त वाले जानवरों द्वारा फैलता है।"

"इसका अर्थ तो यह हुआ कि बंदर अथवा ऊंट के काटने से भी 'रेबीज' हो सकता है।"

"हां, लेकिन कुत्ते का काटना सामान्य कारण है।"

"हमारे देश में आवारा घूमने वाले कुत्तों की संख्या लगभग 8 करोड़ है और इनकी पहचान करना लगभग असंभव है। जब भी कोई आवारा कुत्ता काटता, चाटता है, या खरोंच पड़ने पर भी रेबीज रोधी टीका लगवा लेना चाहिये। डाक्टर प्रायः हमेशा इसकी सलाह देते हैं।"

"रेबीज कैसे होती है, डाक्टर? और काटने की प्रक्रिया में क्या होता है? इसका क्या प्रभाव होता है?"

"रेबीज रोग का वाहक वाइरस प्रायः रोग-ग्रस्त जानवरों की लार में रहता है जो मुख्यतः काटने से हुये घाव के माध्यम से शरीर में पहुंचता है और कभी-कभी यह खुले छोड़े गये घावों या फीड़े-फुन्सियों के माध्यम से भी शरीर में पहुंच जाता है।"

"अच्छा! इस प्रकार यह वाइरस शरीर में प्रवेश करता है।"

"हां. यह वाइरस तंत्रिकाओं से होकर मस्तिष्क तक पहुंच जाता है। इस प्रकार सिर घाव से जितना अधिक दूर होगा उतना ही अधिक समय वाइरस को मस्तिष्क तक पहुंचाने में लगेगा।"

"वाइरस को मस्तिष्क तक पहुंचने में वास्तविक रूप से समय कितना लगता है?"

"मस्तिष्क तक पहुंचने में इसको दो सप्ताह से लेकर 1 वर्ष तक लग सकता है।"

"इसका मतलब यह हुआ कि रेबीज से बचने के लिये मुझे अभी से रेबीज रोधी टीके लगवाने शुरू कर देने चाहिये।"

"ठीक! वाइरस के मस्तिष्क में पहुंचने से पूर्व तुम्हें रोधक्षमता प्राप्त कर लेनी चाहियें। मस्तिष्क में वाइरस पहुंचने के बाद यह रोग घातक हो जाता है।"

"क्या हम ऐसा कुछ नहीं कर सकते जिससे कुत्तों अथवा जानवरों की लार में वाइरस रहें ही नहीं।"

"वास्तव में हम ऐसा कर सकते हैं। समतापी रक्त वाले जितने भी पालतू जानवर
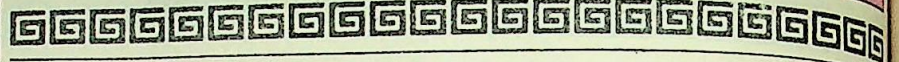
हैं जैसे–कुत्ते, बिल्लियों तथा बंदरों को पशु चिकित्सक द्वारा नियत कालिक टीका लगवा देना चाहिए।"

"किन्तु आवारा कुत्तों को टीका कौन लगवायेगा? इसके अतिरिक्त लोमड़ियों, स्केकों, गिलहरियों, घोड़ों, मवेशियों तथा चमगादड़ में भी यह वाइरस होता है। इनके लिये हम क्या कर सकते हैं?"

"डाक्टर साहब, क्या हम पागल जानवरों को पहचान सकते हैं?"

"हां! प्रथम अवस्था में वे बेचैन रहते हैं। इस हालत में उनके स्वभाव में परिवर्तन आ जाता है। सभी पालतू यहां तक कि जंगली जानवर भी असामान्य रूप से मित्रता का

वाइरस प्रायः पागल कुत्ते की लार में रहता है

व्यवहार करने लगते हैं। समझदारी इसी में है कि जब भी जानवर आवश्यकता से अधिक मित्रवत् व्यवहार करने लगे, तो उनसे सावधान रहें।"

"यह तो आपने बहुत अच्छी बात बतायी?"

"बेचैनी की इस अवस्था के पश्चात् "क्रोधावस्था" आती है। इस अवस्था में जानवर पागलों की भांति इधर-उधर घूमता है तथा प्रत्येक चलायमान वस्तु को काटता है, यहां तक कि हाथ में ले जाते हुई छड़ी अथवा लुढ़काये गये पत्थर को भी काटने दौड़ता है।"

"इसीलिये मैं सोचता हूं कि जब कुत्ता समीप आये तो हमें भागने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये।"

"हां, इस अवस्था के पश्चात्, जानवर

रेबीज का कारक–वाइरस

को गले का पक्षाघात हो जाता है। इससे इसको निगलने में कठिनाई होती है। इस बीमारी का नाम "हाइड्रोफोबिया" है जिसका अर्थ है "पानी से भय" यह इस लिए रखा गया है, क्योंकि देखा गया है कि इस रोग से ग्रस्त जानवर पानी से कतराते हैं। वास्तव में वे पानी से इसलिये कतराते हैं क्योंकि वह पानी पी नहीं पाते न कि इसलिये कि वे उससे डरते हैं।"

"कोई अन्य लक्षण.....?"

"जानवर के मुख से प्रायः लार टपकती रहती है और यह झाग का रूप लिये होती है। कुछ जानवर तो उग्र रूप धारण किये बिना ही बेचैनी की अवस्था से सीधे पक्षाघात के शिकार हो जाते हैं। इसको रेबीज की मूक अवस्था कहा जाता है। इस स्थिति के दौरान ऐसा विदित होता है कि जानवर के गले में कुछ अटक गया है। जब कोई कुत्ता इस प्रकार की क्रिया करता है तो इसका मालिक यह समझता है कि कुत्ते के गले में कुछ अटक गया है और वह उसको निकालने की चेष्टा करता है, परन्तु ऐसा तब तक नहीं करना चाहिये जब तक सुनिश्चित न हो जाये कि वास्तव में ही गले में कुछ अटका हुआ है, जिससे कुत्ते का दम घुट रहा है। रेबीज ग्रस्त कुत्ते की मांसपेशियां अंततः लकवाग्रस्त हो जाती हैं और कुत्ता मर जाता है।"

"कितना भयानक है यह! मुझे अब क्या करना चाहिये?"

"यदि संभव हो सके तो सर्वप्रथम तुम्हें तथा पशु चिकित्सक को उस कुत्ते का निरीक्षण तथा परीक्षण करना चाहिये। इसके बाद मैं तुम्हें रेबीजरोधी टीके तीन इंजेक्शन प्रतिदिन एक लगाऊंगा। यदि कुत्ते के व्यवहार में परिवर्तन होता है तो तुम्हें पूरे 14 इंजेक्शन लगवाने पड़ेंगे।"

"हे भगवान! किन्तु डाक्टर, मैंने सुना है कि बाजार में कुछ नये प्रकार के इंजेक्शन उपलब्ध हैं।"

"हां, अधिक प्रभावी रोध क्षमता (एक्टिव इम्यूनाइजेशन) जो कि पहले जानवर के भेजे से बनी साधारण वैक्सीन प्राप्त की जाती थी, अब ऊतक संवर्धन वैक्सीनों के आ जाने के कारण बहुत आसान हो गयी है। इसके कम इंजेक्शन लगाने पड़ते हैं और अधिक सुरक्षित तथा प्रभावशाली हैं। रोधक्षमता से पहले इसके 3 इंजेक्शन और बाद में 6 इंजेक्शन लगाने पड़ते हैं। एक वर्ष बाद यदि इस वैक्सीन का एक इंजेक्शन और लगा दिया जाये तो 2 से 5 वर्ष तक रोधक्षमता बनी रहती है।"

"यदि किसी व्यक्ति को रेबीज हो जाती है तो हमें कौन-कौन सी सावधानियां बरतनी चाहिये।"

"रेबीज ग्रस्त सभी रोगी जीवित रोगजनक वाइरसों को तरल यानि लार पसीने और मूत्र के रूप में शरीर से बाहर निकालते हैं।"

"अतः रोगी द्वारा इस सभी प्रकार के तरल के संपर्क में नहीं आना चाहिये।"

"इस रेबीज रोधी वैक्सीन लगवाने के संबंध में कोई परामर्श?"

"रेबीजरोधी चिकित्सा करवाने वाले (शेष पृष्ठ 43 पर)

देवेंद्र मेवाड़ी

मां मारिया मेंदेलीफ मास्को में अपने बेटे दमित्री के प्रवेश के लिए परेशान भटक रही थी। वह साइबेरिया को अलविदा कह आई थी। वहां का संघर्षपूर्ण जीवन उसे याद आता। अपना तोबो याद आता जहां वह अपने पति और सत्रह संतानों के साथ रही थी। उसके पति एक हाईस्कूल के डाइरेक्टर थे। दमित्री उनकी आखिरी संतान था। उसका जन्म तोबोल्स्क में 8 फरवरी, 1834 को हुआ था। उसके दादा ने साइबेरिया का पहला अखबार निकला था। दमित्री के जन्म के बाद उसके पिता अंधे हो गए। इसके बाद
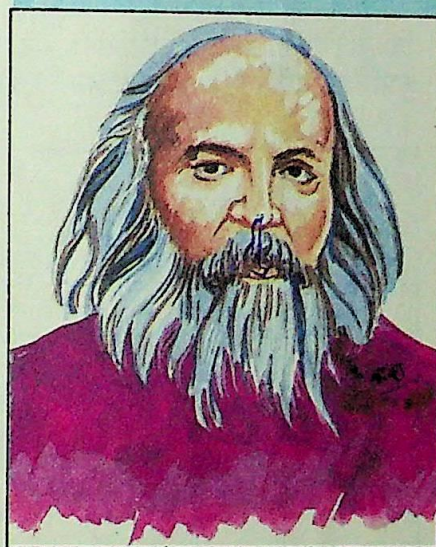
तो उनके लिए जैसे गर्दिश के दिन आ गए। परिवार का भार संभालने के लिए मारिया ने तोबोल्स्क से 32 किलोमीटर दूर एक कांच फैक्ट्री लगाई। दमित्री को उसने हर हालत में पढ़ाने का निश्चय किया। अपने स्कूल में नन्हा दमित्री गणित, भौतिक विज्ञान और भूगोल में तो अव्वल आता, लेकिन भाषाओं का गोरख धंधा उसे जरा कम पंसद था।

धीरे-धीरे पति का स्वास्थ्य गिरता चला गया। अंधे तो हो ही चुके थे, यक्ष्मा ने भी उन्हें जकड़ लिया। यक्ष्मा से ही 1847 में वे चल बसे। साल भर बाद ही मारिया की कांच

रासायनिक तत्वों की आवर्त सारणी

नई पद्धति: 1, 2, 3 … 18

पुरानी आई यू पी ए सी पद्धति

सी ए एस पद्धति

ग्रुप P / पीरियड

1 / IA	2 / IIA	3 / IIIA / IIIB	4 / IVA / IVB	5 / VA / VB	6 / VIA / VIB	7 / VIIA / VIIB	8 / VIIIA / VIII	9 / VIIIA / VIII	10 / VIIIA / VIII	11 / IB	12 / IIB	13 / IIIB / IIIA	14 / IVB / IVA	15 / VB / VA	16 / VIB / VIA	17 / VIIB / VIIA	18 / VIIIA
1 H 1·0079																	2 He 4·00260
3 Li 6·941	4 Be 9·01218											5 B 10·81	6 C 12·011	7 N 14·0067	8 O 15·9994	9 F 18·9984	10 Ne 20·189
11 Na 22·9898	12 Mg 24·305											13 Al 26·9815	14 Si 28·0855	15 P 30·9738	16 S 32·00	17 Cl 35·453	18 Ar 39·948
19 K 39·0983	20 Ca 40·08	21 Sc 44·9559	22 Ti 47·88	23 V 50·9415	24 Cr 51·896	25 Mn 54·9380	26 Fe 55·847	27 Co 58·9332	28 Ni 58·69	29 Cu 63·546	30 Zn 65·39	31 (Ga) 69·72	32 Ge 72·59	33 As 74·9216	34 Se 78·96	35 (Br) 79·904	36 Kr 83·80
37 Rb 85·468	38 Sr 87·62	39 Y 88·9059	40 Zr 91·224	41 Nb 92·9064	42 Mo 95·94	43 Tc (97)	44 Ru 101·07	45 Rh 102·906	46 Pd 106·42	47 Ag 107·868	48 Cd 112·41	49 In 114·82	50 Sn 118·71	51 Sb 121·75	52 Te 127·60	53 I 126·405	54 Xe 131·30
55 (Cs) 132·905	56 Ba 137·33	57 La ★ 138·906	72 Hf 178·49	73 Ta 180·948	74 W 183·85	75 Re 186·207	76 Os 190·2	77 Ir 192·22	78 Pt 195·08	79 Au 196·967	80 (Hg) 200·59	81 Tl 204·383	82 Pb 207·2	83 Bi 208·980	84 Po (209)	85 At (210)	86 Rn (222)
87 Fr (223)	88 Ra 226·025	89 Ac ▲ 227·028	104 Unq[a] (261)	105 Unp[a] (262)	106 Unh[a] (263)	107 Uns[a] (262)											

★ लैन्थेनॉयड सीरीज

58 Ce 140·12	59 Pr 140·908	60 Nd 144·24	61 Pm (145)	62 Sm 150·36	63 Eu 151·96	64 Gd 157·25	65 Tb 158·925	66 Dy 162·50	67 Ho 164·930	68 Er 167·26	69 Tm 168·934	70 Yb 173·04	71 Lu 174·967

▲ एक्टीनायड सीरीज

90 Th 232·038	91 Pa 231·036	92 U 238·029	93 Np 237·048	94 Pu (244)	95 Am (243)	96 Cm (247)	97 Bk (247)	98 Cf (251)	99 Es (252)	100 Fm (257)	101 Md (258)	102 No (259)	103 Lr (260)

फैक्ट्री भी आग से जल कर राख हो गई। साइबेरिया तो यों भी संघर्षों का प्रदेश कहलाता है। मारिया भी निरंतर संघर्ष कर रही थी। लेकिन, अब दमित्री की उच्च शिक्षा के लिए तोबोल्स्क में रह कर संघर्ष करने का कोई लाभ नहीं था। वहां दमित्री को आगे पढ़ाने की सुविधाएं नहीं थीं, और मां मारिया का निश्चय था कि चाहे कुछ भी करना पड़े—वह दमित्री को पढ़ाएगी।

साइबेरिया से मास्को

और, उसने कर दिखाया। दमित्री को पढ़ाने के लिए मां ने तोबोल्स्क छोड़ कर मास्को जाने का निर्णय लिया। उसने दमित्री और उसकी दीदी को साथ लिया और साइबेरिया से चल पड़ी। अब केवल ये दो बच्चे ही मां पर निर्भर थे। मास्को में उसने दमित्री के प्रवेश के लिए एड़ी-चोटी का जोर लगाया। शिक्षा के क्षेत्र में तब साइबेरिया जैसे पिछड़े इलाके का कोई नाम नहीं था। दमित्री का उच्चारण भी साइब्रेरियाई था। इसलिए उसे प्रवेश मिलने में बहुत कठिनाई हुई। मां मारिया उसे लेकर सेंट पीट्र्सबर्ग (आज का लेनिनग्राद) गई। वहां सेंट पीट्र्सबर्ग विश्वविद्यालय में प्रवेश के लिए कोशिश की। मेडिकल स्कूल में भी प्रवेश नहीं मिल सका। अंततः सेंट पीट्र्सबर्ग विश्वविद्यालय में पेडागोगिक इंस्टीट्यूट के विज्ञान विभाग में मां ने प्रवेश दिला कर ही दम लिया। इसके 10 माह बाद मां मारिया चल बंसी। दमित्री को इससे गहरा आघात लगा। उसका स्वास्थ्य गिरने लगा। फेफड़े कमजोर हो गए। लेकिन मां ने जिन सपनों को लेकर उसका प्रवेश कराया था, वह मेहनत से अध्ययन करके उन्हें पूरा करना चाहता था। उसने कठिन परिश्रम किया और भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान तथा गणित मुख्य विषयों के साथ स्नातक की उपाधि ली। शैक्षिक योग्यताओं के लिए उसे स्वर्ण पदक मिला।

यही दमित्री आगे चलकर विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक दमित्री इवानोविच मेंदेलीफ बना।

स्नातक उपाधि लेने के बाद मेंदेलीफ को शिक्षक के रूप में नौकरी मिल गई। अपने 'स्वास्थ्य को देखते हुए उसने शुष्क जलवायु में रहना उचित समझा और इसके लिए क्रीमिया में नियुक्ति देने का अनुरोध किया। वहां उसने रसायन विज्ञान में उच्च उपाधि अर्जित की। 1857 में उसे सेंट पीट्र्सबर्ग विश्वविद्यालय में ही नौकरी मिल गई।

उच्च अध्ययन

मेंदेलीफ को सरकार ने 1859 में विशेष अध्ययन के लिए जर्मनी के हाइडेलबर्ग विश्वविद्यालय भेजा। वहां उसका परिचय सुप्रसिद्ध रसायन विज्ञानी राबर्ट बनसेन और भौतिक विज्ञानी गुस्ताव किर्चहॉफ से हुआ। इन वैज्ञानिकों ने वर्णक्रममापी अर्थात स्पेक्ट्रोस्कोप का डिजाइन तैयार किया था और इस पर प्रयोग कर रहे थे। मेंदेलीफ ने वहां वर्णक्रममापी का उपयोग सीखा। वह यह देख कर खुश हुआ कि वर्णक्रममापी से विभिन्न तत्वों की रोशनी को अंगुलियों के निशानों की तरह बिल्कुल अलग-अलग पहचाना जा सकता है। हर तत्व गर्म करने पर अलग रंग की रोशनी और रेखाएं देता है। वर्णक्रम में उनका एक निश्चित स्थान होता है। वर्णक्रम में दो तत्व एक स्थान पर नहीं हो सकते। अगर सोडियम को लौ में जलाया जाय तो वह पीली रोशनी देता है लेकिन पोटाश के जलने पर गुलाबी रोशनी पैदा होती है। तत्वों के विश्लेषण में इससे काफी मदद मिलती है।

मेंदेलीफ को 1867 में पेरिस प्रदर्शनी में रूस का मंडप लगाने के लिए पेरिस भेजा गया। वहां रह कर उसने फ्रांसीसी रसायन विज्ञानियों के साथ चर्चाएं कीं और फ्रांस के रसायन उद्योग का अध्ययन किया। इससे रूस के सोडा वाटर उद्योग को सुधारने में उसने अपना योगदान किया। इटली के रसायन विज्ञानी स्टेनिस्लाओ केनिजारो के विचारों से भी वह प्रभावित हुआ।

			Ti = 50	Zr = 90	? = 180
			V = 51	Nb = 94	Ta = 182
			Cr = 52	Mo = 96	W = 186
			Mn = 55	Rh = 104.4	Pt = 1974
			Fe = 56	Ru = 104.4	Ir = 198
			Ni = Co	Pd = 106.6	Os = 198
			= 59		
H = 1			Cu = 63.4	Ag = 108	Hg = 200
	Be = 9.4	Mg = 24	Zn = 65.2	Cd = 112	
	B = 11	Al = 27.4	? = 68	Ur = 116	Au = 197?
	C = 12	Si = 28	? = 70	Sn = 118	
	N = 14	P = 31	As = 75	Sb = 122	Bi = 210?
	O = 16	S = 32	Se = 79.4	Te = 128?	
	F = 19	Cl = 35.5	Br = 80	I = 127	
Li = 7	Na = 23	K = 39	Rb = 85.4	Cs = 133	Te = 204
		Ca = 40	Sr = 87.6	Ba = 137	Pb = 207
		? = 45	Ce = 92		
		?Er = 56	La = 94		
		?Y.t = 60	Di = 95		
		?In = 75.6	Th = 118?		

मेंदेलीफ द्वारा सुझायी गई मूल आवर्त सारणी

वैज्ञानिक लेखन

1861 में मेंदेलीफ जब सेंट पीट्र्सबर्ग लौटा तो कोई पक्की नौकरी न होने के कारण उसने वैज्ञानिक लेखन और संपादन का काम शुरू कर दिया। बाद में उसे टैक्निकल इंस्टीट्यूट में रसायन विज्ञान के प्रोफेसर का पद मिल गया। तीन वर्ष बाद वह विश्वविद्यालय में सामान्य रसायन विज्ञान का स्थाई प्रोफेसर नियुक्त हो गया। रसायन विज्ञान पढ़ाते हुए मेंदेलीफ ने महसूस किया कि छात्रों के लिए रसायन विज्ञान की कोई

अच्छी पाठ्य पुस्तक नहीं थी। तब उसने स्वयं पाठ्य पुस्तक लिखी—"द प्रिंसिपिल्स ऑफ कैमिस्ट्री"। 1868-70 के दौरान मेंदेलीफ द्वारा लिखी गई यह पाठ्यपुस्तक बहुत प्रसिद्ध हुई। इसके लिए उसे "दोमिदाफ़ पुरस्कार" दिया गया।

पुस्तक लिखते समय मेंदेलीफ ने विभिन्न तत्वों के गुण-धर्मों पर गंभीरता से विचार किया। उसने तत्वों को किसी तर्क संगत तरीके से एक क्रम में रखने की बात सोची। उनका वर्गीकरण करना चाहा। जॉन डाल्टन ने कहा था कि सभी पदार्थ सूक्ष्म कणों से बने हैं और उनका विशिष्ट भार होता है। तत्वों की परमाणु रचना का पता लग जाने के बाद मालूम हुआ कि हर तत्व का अलग परमाणु-भार होता है। पहले रसायन-विज्ञानी सोचते थे कि कहीं ऐसा तो नहीं कि सभी तत्व एक पदार्थ से बने हों या जिन तत्वों के गुण-धर्म समान दिखाई देते हैं-हो सकता है उनकी रचना भी एक समान हो। अंग्रेज भौतिक वैज्ञानिक विलियम प्राउट ने 1815 में सुझाव दिया था कि सभी तत्व हाइड्रोजन के परमाणु भार के ही बहुगुणित हैं। लेकिन परमाणु भारों को देखते हुए यह बात सही नहीं निकली। जोहान डॉबेराइनर और विलियम आडलिंग ने परमाणु भार के आधार पर तत्वों का एक क्रम बनाने की कोशिश की। फिर 1866 में जॉन न्यूलैंड्स नामक वैज्ञानिक ने एक नया विचार सामने रखा कि सभी तत्व पियानों के सुरों की तरह हैं। हर आठवां सुर समान है। उसने इसे अष्टक-नियम कहा।

तत्वों की बिरादरी

इस तरह तत्वों की बिरादरी का पता लगाने की कोशिश दुनियां के तमाम वैज्ञानिकों ने की,लेकिन कोई भी इनका तर्क-संगत सिलसिला नहीं खोज पाया। इस सफलता का सेहरा तो रूस के दमित्री इवानोविच मेंदेलीफ के सिर बंधना था। तत्वों के वर्गीकरण की पहेली उसने हल कर डाली।

उन दिनों केवल 63 तत्व ज्ञात थे। मेंदेलीफ ने उनके नाम लिख कर अलग-अलग कार्ड बनाए। उन कार्डों को उसने अपनी प्रयोगशाला की दीवार पर लगा
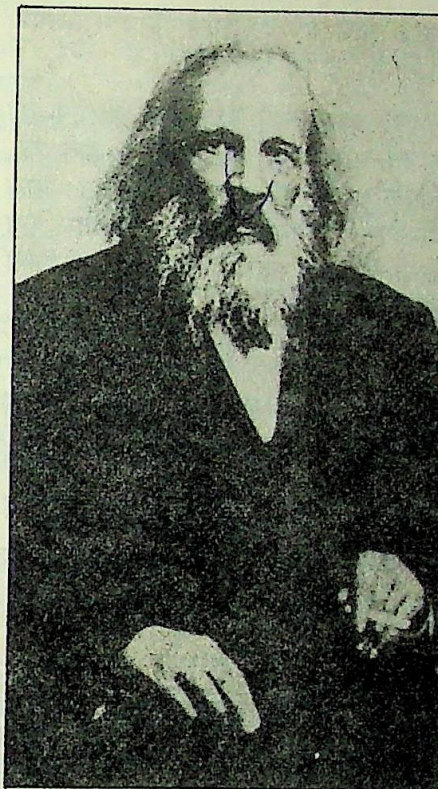
दमित्री इवानोविच मेंदेलीफ

दिया। फिर अलग-अलग तत्वों के गुणों और परमाणु भार के हिसाब से उसने कार्डों को सही क्रम में संजोना शुरू किया। उसने लिथियम से क्रम बनाना शुरू किया। लिथियम का परमाणु भार 7 है। उसके बाद 9.4 परमाणु भार वाला बेरीलियम रखा। फिर 11 परमाणु भार वाला तत्व बोरॉन। उसके बाद कार्बन (12), नाइट्रोजन (14), आक्सीजन (16) और फ्लोरीन (19)। फिर सोडियम (23) रखा, लेकिन मेंदेलीफ ने देखा कि सोडियम के गुण लिथियम से बहुत मिलते-जुलते हैं। तब उसने सोडियम को लिथियम के नीचे रख दिया। सोडियम के आगे उसने मैग्नीशियम (24), एलुमिनियम (27.3), सिलिकन (28), फास्फोरस (31), सल्फर (32) और क्लोरीन (35.5) के कार्ड रखे। तब उसे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि क्लोरीन के गुण उसके ठीक ऊपर के तत्व फ्लोरीन से बहुत मिलते-जुलते हैं। बस, वह परमाणु भार के अनुसार कार्ड सजाता गया और यह देख कर चकित हुआ कि हर सातवें तत्व के बाद समान गुण-धर्म वाला तत्व आ जाता है। तत्वों को उनके बढ़ते हुए परमाणु-भार के क्रम में रखा जाय तो उनके गुणों में एक खास रिश्ता दिखाई देता है और एक अंतराल के बाद एक-समान गुणों वाले तत्व की पुनरावृत्ति होती है। मतलब यह कि हमारा यह विशाल ब्रह्मांड जिन तत्वों से बना है वे यों ही अलग-अलग तत्व नहीं हैं। उनमें एक रिश्ता है। उनकी भी बिरादरी है। उसने देखा कि उसके क्रम में एक जैसे गुणों वाले तत्वों की आवृत्ति होती है, इसलिए उसने तत्वों के वर्गीकरण का आवर्त-नियम बनाया। उसने कहा—"तत्वों के भौतिक और रासायनिक गुण उनके परमाणु भारों के आवर्ती फलन होते हैं। यह एक महान खोज साबित हुई।

मेंदेलीफ ने अपने आवर्त-नियम को समझाते हुए कहा कि हर तत्व का एक विशेष परमाणु-भार है। जब तत्वों को उनके परमाणु भार के हिसाब से एक क्रम में रखते हैं उनके गुणों में अंतर दिखाई देता है लेकिन एक खास संख्या के बाद फिर समान गुणों वाला तत्व आ जाता है। जब इस प्रकार क्रम में तत्वों को रखते हैं तो कई स्थान खाली रह जाते हैं। मेंदेलीफ ने बताया कि ये खाली स्थान उन अज्ञात तत्वों के हैं जिनकी अभी खोज ही नहीं हुई है। लेकिन, उस अज्ञात तत्व के गुण कैसे होंगे—यह उस तत्व के क्रम को देख कर बखूबी बताया जा सकता है। मेंदेलीफ ने ऐसे तत्वों की भविष्यवाणी भी की।

आवर्त सारणी

उसने अपनी इस खोज के आधार पर तत्वों की एक आवर्त-सारणी अर्थात पीरियोडिक टेबल बनाई और उसमें तत्वों के स्थान निर्धारित किए। उसकी आवर्त-सारणी रूसी भाषा में 1869 में प्रकाशित हुई। दो वर्ष बाद 1871 में उसका संशोधित रूप प्रकाशित हुआ। इस आवर्त-सारणी के प्रकाशित होते ही वैज्ञानिक जगत में हलचल मच गई। कई वैज्ञानिकों ने इसकी कड़ी आलोचना की। उन्होंने कहा कि सारणी में खाली जगहें हैं। मेंदेलीफ ने जवाब में कुछ खाली जगहों वाले अज्ञात तत्वों के परमाणु भार और गुणों की भविष्यवाणी कर दी। यह देख कर दुनियां भर में अनेक वैज्ञानिक नए तत्वों की खोज में लग गए। वे मेंदेलीफ की शब्द-पहेली जैसी

तत्व-पहेली में अज्ञात तत्वों की खोज करके उनके नाम लिखना चाहते थे। मेंदेलीफ ने एका-बोरॉन, एका-एलुमिनियम तथा एका-सिलिकॉन के नाम से सारणी के तीन खाली जगहों के अज्ञात तत्वों की भविष्यवाणी की थी। ये तत्व स्कैंडियम, गेलियम तथा जर्मेनियम के नाम से बाद में खोजे गए। मेंदेलीफ ने कहा था कि एका-सिलिकॉन का परमाणु भार 72.0, आपेक्षिक घनत्व 5.5, परमाणु-आयतन 13.0 घन सेमी., रंग गहरा धूसर होगा। 1886 में जब जर्मेनियम की खोज की गई तो उसका परमाणु भार 72.0, आपेक्षिक घनत्व 5.469, परमाणु आयतन 13.22 और रंग धूसर सफेद निकला। तत्वों की ऐसी वैज्ञानिक जन्म-कुंडली बनाई थी मेंदेलीफ ने।

1875 में फ्रांस के लेकॉक द बोइसबोद्रान ने फ्रांसीसी-स्पेनी सीमा के पहाड़ी इलाके पाइरेनीज़ में एलुमिनियम की तरह का एक तत्व खोजा। उसके गुण मेंदेलीफ द्वारा पहले ही बताए गए एका-एलुमिनियम के समान थे। बोइसबोद्रान ने अपनी जन्मभूमि के प्राचीन नाम 'गौल' की याद में इस नए तत्व का नाम 'गेलियम' रख दिया। जर्मनी के विंकलर ने सिलिकॉन से मिलते-जुलते नए तत्व की खोज की, जिसका नाम अपने देश के नाम पर उसने जर्मेनियम रखा। स्कैंडेनेविया में निल्सन ने बोरॉन से मिलते-जुलते एक नए तत्व की खोज 1879 में की। मेंदेलीफ ने उसका नाम एका-बोरॉन सुझाया था। निल्सन ने अपनी जन्मभूमि के नाम पर इसका नामकरण किया—स्कैंडियम। जब मेंदेलीफ की भविष्यवाणी के अनुसार तीनों तत्वों के गुण और परमाणु भार हू-ब-हू वही निकले तो वैज्ञानिकों को मेंदेलीफ द्वारा बनाई गई तत्वों की जन्म-कुंडली (आवर्त-सारणी) पर पूरा विश्वास हो गया। नए तत्वों की खोज के साथ-साथ मेंदेलीफ की आवर्त-सारणी के रिक्त स्थानों की पूर्ति होती चली गई। उसकी सारणी में केवल 8 वर्ग थे। बाद में जब अक्रिय तत्वों की खोज हुई तो उनके लिए मेंदेलीफ की सारणी में एक नया शून्य वर्ग जोड़ा गया क्योंकि ये बिल्कुल नए प्रकार के तत्व थे। मेंदेलीफ को ज्ञात 63 तत्वों से इनका कोई संबंध नहीं था। ये सभी गैसें थी और रासायनिक रूप से अक्रिय थीं। इनके नाम हैं: हीलियम, नियोन आर्गन, क्रिप्टान, जेनान और रेडॉन।

इस तरह आगे चल कर मेंदेलीफ की आवर्त-सारणी में सुधार किए जाते रहे, लेकिन सारणी का मूल रूप वही रहा। आज मेंदेलीफ की सारणी का ही आधुनिक रूप तत्वों की जन्म-कुंडली है। 1912 में हेनरी मोजेले ने तत्वों के परमाणुओं के नाभिक में धनात्मक आवेश का पता लगाया और तत्वों को परमाणु भार के बजाय परमाणु संख्या के आधार पर वर्गीकरण किया। बोर ने इसे सुव्यवस्थित करके "आधुनिक आवर्त-सारणी" का रूप दिया।

1875 में फ्रांस के लेकॉक द बोइसबोद्रान ने फ्रांसीसी-स्पेनी सीमा के पहाड़ी इलाके पाइरेनीज़ में एलुमिनियम की तरह का एक तत्व खोजा। उसके गुण मेंदेलीफ द्वारा पहले ही बताए गए एका-एलुमिनियम के समान थे। बोइसबोद्रान ने अपनी जन्मभूमि के प्राचीन नाम 'गौल' की याद में इस नए तत्व का नाम 'गेलियम' रख दिया।

मेंदेलीफ की पुस्तकें बहुत लोकप्रिय हुई। उनका अनेक भाषाओं में अनुवाद किया गया। वह विज्ञान के केवल किताबी ज्ञान में विश्वास नहीं करता था बल्कि विज्ञान का व्यावहारिक उपयोग करना चाहता था। विज्ञान की मदद से समस्याओं का समाधान करना चाहता था। 1865 में उसने खेती-बाड़ी में वैज्ञानिक तरीके अपना कर फसलों की उपज बढ़ाई। इससे रूस में उपज बढ़ाने की दिशा में लाभ मिला। उसने रूस के पेट्रोलियम उद्योग की समस्याएं हल करने में भी योगदान किया और इस बात पर बल दिया कि रूस को अपने उपयोग के लिए स्वयं तेल उत्पादन करना चाहिए। मेंदेलीफ ने बैलनों के प्रयोग से भी अनेक वैज्ञानिक अध्ययन किए।

कला-संगीत का प्रशंसक

मेंदेलीफ का व्यक्तित्व बहुत आकर्षक और प्रभावशाली था। लम्बा-चौड़ा शरीर, गहरी और गंभीर आंखे तथा लंबे बाल और झूलती हुई दाढ़ी। उसे संगीत और कला से बेहद प्यार था। वह महान रूसी लेखक लेव तॉलस्ताय का प्रशंसक था। पहला विवाह असफल होने के बाद उसने 47 वर्ष की आयु में प्रतिभाशाली कलाकार अन्ना पोपोवा से विवाह किया। अन्ना से दिमित्री इवानोविच मेंदेलीफ के दो पुत्र और दो बेटियां हुईं। मेंदेलीफ प्रगतिशील विचारों का व्यक्ति था। वह समाज के उत्थान में आस्था रखता था। उन दिनों रूस में जार का शासन था। फिर भी मेंदेलीफ निडर होकर दमन और शोषण के खिलाफ बातें करता। उसने नारी-मुक्ति के लिए आवाज उठाई और गरीब किसानों के शोषण और उन पर लगाए गए भारी करों की खिलाफत की। छात्रों की मांगों के समर्थन में उसने 1890 में सेंट पीटर्सबर्ग विश्वविद्यालय से इस्तीफा दे दिया। मेंदेलीफ की ख्याति को देख कर जार उसकी आवाज को तो नहीं दबा सका लेकिन उसकी राह में रोड़े अटकाना शुरू कर दिया। उसे फिर कोई महत्वपूर्ण शैक्षिक पद नहीं दिया गया। 1891 में भारी रसायनों पर आयात शुल्क के लिए नई व्यवस्था बनाने की जिम्मेदारी उसे दी गई और 1893 में वह माप-तौल ब्यूरो का प्रमुख बना।

मेंदेलीफ को अपने देश रूस में ही नहीं बल्कि विश्व भर में प्रसिद्धि मिली। अनेक देशों ने उसे अपनी वैज्ञानिक अकादमियों का सदस्य बनाया। उसे वैज्ञानिक व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया गया। वह अपने समय के विश्व के सबसे अग्रणी रसायन विज्ञानियों में था। जीवन के अंतिम वर्षों में उसका स्वास्थ्य काफी गिर गया और 2 फरवरी, 1907 को वह महान रसायन विज्ञानी दुनियां से विदा हो गया।

[श्री देवेंद मेवाड़ी, 5/109-ए, कृष्णा नगर, सफदरजंग इन्क्लेव, नई दिल्ली- 110029]

(पृष्ठ 38 का शेष)
प्रत्येक रोगी को चिकित्सा के दौरान तथा चिकित्सा के एक माह बाद तक मद्यपान नहीं करना चाहिये। आवश्यकता से अधिक शारीरिक परिश्रम, मानसिक तनाव से दूर रहना चाहिये। यदि रोगी को कभी उसके होंठों में झनझनाहट व सुन्नता का आभास हो, पेशाब करने में कठिनाई हो तथा बुखार की अवस्था में उसको अपने चिकित्सक को दिखाना चाहिये क्योंकि ये लक्षण पक्षाघात की पूर्व सूचना देते हैं।''

''डाक्टर साहब, मुझे कुछ नई वैक्सीन के बारे में भी बताईये।''

''इस समय एचडीसीवी तथा पीसीईवी नामक वैक्सीनें भारत में उपलब्ध हैं किन्तु हैं बहुत महंगी। यदि तुम इनका खर्च वहन कर सको तो ये तुम्हें अवश्य लगवानी चाहिये। इसके अतिरिक्त रेबीजरोधी वैक्सीन मुफ्त में सार्वजनिक अस्पतालों में लगायी जाती हैं।''

''ये वैक्सीनें किस प्रकार लगवानी चाहिये।''

''शुरू करने के पश्चात् तीसरे, सातवें, चौदहवें, तीसवें तथा नब्बेवें दिन वैक्सीन की एक सीसी के कुल 6 अंतरपेशी इंजेक्शन लगाये जाते हैं। पुरानी वैक्सीन की 7 से 10 सीसी तक के इंजेक्शन पेट में लगाये जाते हैं।''

''इसका मतलब यह मान लेना चाहिये कि नई वैक्सीन बेहतर है।''

''जैसा कि मैं पहले बता चुका हूं यदि तुम इतना खर्चा उठा सकती हो तो आपको नई वैक्सीन लगवानी चाहिये।''

''धन्यवाद डाक्टर, मैं आपकी बातें सुनने में इतनी तल्लीन हो गयी थी कि इस दौरान मुझे जरा भी दर्द महसूस नहीं हुआ। बहरहाल मुझे अपने पिताजी से सलाह लेकर यह निश्चय तुरन्त करना है कि मुझे नई वैक्सीन लेनी है अथवा पुरानी और इसी के अनुरूप चिकित्सा चालू कर देनी है।

''बिल्कुल ठीक! तुम शीघ्र निर्णय लो।'' □

[डा. सुरेश नाडकर्णी, फ्लैट नं. 38-39, पांचवी मंजिल, म्युनिसिपिल बिल्डिंग, जोबनपुत्रा कम्पाउंड, नाना चौक, मुम्बई- 400 007]

अब बहरे भी सुनने लगेंगे: वह व्यक्ति जो बड़े से बड़े शोर को महसूस नहीं कर सकता हो एकाएक उसके कानों में आवाजें गूंजने लगें तो उसे कैसा लगेगा। इसकी कल्पना से ही सिहर उठता है मन।

बहरहाल, बहरों की दुनियां में क्रांति लाने वाला यंत्र "कावितयर इम्प्लांट" के नाम से ख्याति पा रहा है, जिसका अपने देश के बहरों पर सफलता पूर्वक परीक्षण किया जा

चुका है। इस ऑपरेशन में बंबई के नाक, कान और गले के विख्यात चिकित्सक सान्द्रा डीसूजा ने भी भाग लिया था।

सन् 1985 में अमेरिका के एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मलेन में कावितयर इम्प्लांट सर्जरी परीक्षण का विचार भी, भारत में करने का विचार पहले-पहल डा. सान्द्रा डीसूजा के दिमाग में आया। वास्तव में यह इम्प्लांट एक इलेक्ट्रॉनिक उपकरण है। इसका एक हिस्सा काम में लगा रहता है, जो देखने में परम्परागत श्रवण यंत्र से एकदम अलग है। इस यंत्र से आसपास की ध्वनियां सुनने के अलावा बातचीत में भी काफी सुविधा होगी। डा. डीसूजा के विचारानुसार यदि कान के भीतरी हिस्से में कुछ खराबी से बहरापन पैदा हुआ हो तो इम्प्लांट अधिक सफल सिद्ध होगा। क्योंकि कावितयर की कोशिकाओं के नष्ट हो जाने से संवेदी गड़बड़ियां जन्म लेती हैं। ये कोशिकायें पुनः जन्म नहीं ले सकती। इसलिए कावितयर की क्षमता शून्य हो जाती है। स्नायुओं के रेशे सामान्य होते हुए भी विद्युत आवेगों को संचारित नहीं कर पाते। अर्थात् कान ऐसे टेलीफोन में बदल जाता है जिसमें तार तो होता है पर रिसीवर नहीं। यह इम्प्लॉट वाल कोशिकाओं की जगह किसी रिसीवर की तरह कार्य करता है। ध्वनि तरंगों को जमा करके विद्युतीय आवेगों में बदलता है और उन्हें स्नायुओं के रेशों के जरिये मस्तिष्क में प्रेषित करता है। जिससे सुनने की शक्ति होती है। इस इम्प्लॉट का सबसे आश्चर्यजनक पहलू यह है कि बहरा व्यक्ति कॉलबेल और टेलीफोन की घंटियां भी सुन सकता है। स्त्री और पुरुष की आवाज में अंतर भी कर सकता है।

बैक्टीरिया करेंगे पानी को साफ

उत्तरी आयरलैण्ड में औद्योगिक कचरे से निकले दूषित पानी को साफ करने का एक नया तरीका विकसित किया गया है जो कम खर्चीला होने के साथ-साथ अत्यंत प्रभावी भी है। इस कार्य में लगे रासायनिक इंजीनियरों और सूक्ष्मजैविकी वैज्ञानिकों के अनुसार अगले तीन सालों में इस तरीके से पानी को साफ किया जाने लगेगा।

इस तरीके के अनुसार प्रदूषक तत्वों को दूर करने के लिये सक्रियित कार्बन और

बैक्टीरिया का इस्तेमाल किया जा रहा है। सक्रियित कार्बन पैदा करने के लिये भूरे कोयले (लिग्नाइट) और मांस (पीट) को ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में गरम किया जाता है। गरम करने के बाद जो पदार्थ बचता है उसमें ऐसे गुण होते हैं जिससे जैविक प्रदूषक प्रभावी रूप से दूर किये जा सकते है। इस सक्रियित कार्बन पर बैक्टीरिया उगाने का प्रयास किया जायेगा जो बचे-खुचे प्रदूषक तत्वों को खा-पीकर खत्म कर देंगे।

'शल्य-चिकित्सक कौन: मरीज अत्यंत जटिल ऑपरेशन के लिये ऑपरेशन थियेटर में लाया जा चुका है। अब ऑपरेशन भी शुरू हो चुका है पर ऑपरेशन करने वाला कोई डाक्टर नहीं बल्कि एक रोबोट हैं। ब्रिटेन के ब्रिस्टल विश्वविद्यालय के रोबोटिक्स ग्रुप द्वारा किये जा रहे अनुसंधान कार्यों से जल्दी ही यह संभावना एक हकीकत में बदलेगी। शोध कर्ताओं का कहना है कि उन्हें ऐसे स्पष्ट संकेत मिले है कि रोबोट का 'शल्य' चिकित्सा में भी उपयोग किया जा सकता है। ब्रिस्टल विश्वविद्यालय में चल

रहे ये अनुसंधान एक प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय रोबोटिक परियोजना के अंतर्गत किये जा रहे हैं। इस कार्यक्रम के लिये ब्रिटेन का व्यापार उद्योग विभाग अगले पांच वर्षों में एक करोड़ 20 लाख पाउण्ड की वित्तीय सहायता देगा। शोधकर्ता इस कार्यक्रम में अनुमान लगाने की तकनीक और नियंत्रण एवं चीर फाड़ की रणनीतियों के विकास में जुटे हुए हैं। इससे रोबोट को शल्य क्रिया के दौरान स्थिति की सही जानकारी मिलेगी और साथ ही वह सही समय पर उचित उपकरण का चुनाव भी कर सकेगा। वैज्ञानिकों का विश्वास है कि शल्य-चिकित्सा कक्ष में रोबोट के प्रवेश से चिकित्सकों का कार्यकाल काफी घट जाएगा। अभी जटिल 'शल्य-क्रियाओं' में उन्हें कई घंटों तक उलझा रहना पड़ता है। अब रोबोट को उन्हें सिर्फ नियंत्रित करना और निर्देश देना होगा। एक ऐसे रोबोट का भी विकास किया जा रहा है जो सिर और गर्दन की शल्य क्रियाओं में मदद कर सकेगा।

[श्री तारिक असलम तस्नीम, संपादक-नई दिशा, 2/6, फुलवारी शरीफ- 801 505 पटना]

न्यू जूनियर एनसाइक्लोपीडिया (विश्वकोश)

मुख्य अनुवाद : ब्रिजेन्द्र नाथ शर्मा, संपादक : जयप्रकाश भारती, मनीष अग्रवाल : प्रकाशक पीताम्बर पब्लिशिंग कम्पनी, 888. ईस्ट पार्क रोड, करोल बाग, नई दिल्ली-110005; प्रथम संस्करण : 1990; मूल्य : 200 रुपए
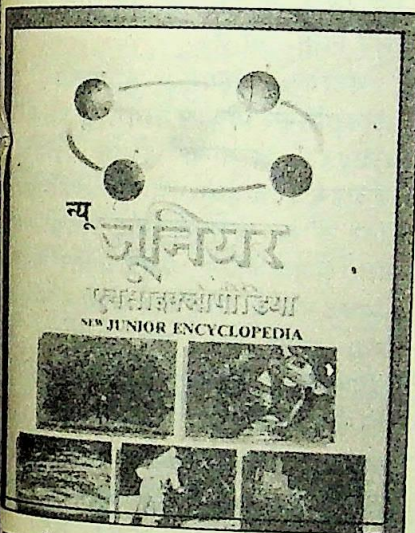
सूर्य आकाशगंगा के करोड़ों तारों में से एक है। यम (प्लूटो) ग्रह का एक वर्ष 90,000 से भी अधिक दिन का होता है। नील दुनियां की सबसे लंबी नदी है, बैकाल सबसे गहरी झील और एशिया सबसे बड़ा महाद्वीप है। धरती पर कभी भयानक छिपकलियां अर्थात डायनोसौर पाए जाते थे इनमें से ब्रेकियोसारस डायनोसौर 24 मीटर लंबा और करीब 80 टन भारी होता था। आज का आदमी लगभग 1.50 लाख वर्ष पुराना है।

पहिए का आविष्कार 5000 वर्ष पहले हुआ और इसने मनुष्य की दुनिया बदल दी। कार 1880 ई. के आसपास बनाई गई। होवरक्राफ्ट जल, थल और नभ में चल सकता है। अंतरिक्ष में सबसे पहले 2 अप्रैल 1961 को यूरी गागरिन गया और चांद पर मनुष्य के कदम 20 जुलाई, 1969 को पड़े। प्रथम भारतीय अंतरिक्ष यात्री राकेश शर्मा ने अप्रैल 1984 में अंतरिक्ष यात्रा की आदि। सबसे प्राचीन संगीत हमारे सामवेद में मिलता है।

ये और ऐसी ही ज्ञान की अनेक बातें बताई गई हैं 'न्यू जूनियर एनसाइक्लोपीडिया' नामक हिन्दी में अनूदित विश्वकोश में। 'दि हेमलिन पब्लिशिंग ग्रुप लिमिटेड, इंग्लैंड' द्वारा मूल रूप से अंग्रेजी में प्रकाशित 'न्यू जूनियर एनसाइक्लोपीडिया' को पीताम्बर पब्लिशिंग कम्पनी ने भारतीय पाठकों को ध्यान में रखकर प्रकाशित किया है। विश्वकोश में कुछ स्थानों पर भारतीय संदर्भों की सामग्री भी जोड़ी गई है। जिससे इस विश्वकोश की उपयोगिता बढ़ी है।

विश्वकोश की जानकारी को 5 अध्यायों में संजोया गया है जिनके अंतर्गत अत्यधिक रोचक तथा ज्ञानवर्द्धक सामग्री दी गई हैं। ज्ञान-विज्ञान के इस सागर में पाठक जितनी बार अपनी ज्ञान-पिपासा की गागर डुबोएंगे, उतनी बार उन्हें ज्ञान के नए मोती मिलेंगे।

'ब्रह्मांड और हमारा संसार' अध्याय के अंतर्गत हमारे सौर मंडल, ग्रहों, उपग्रहों मौसम, महाद्वीपों, देशों के साथ ही मानव प्रजाति, जनसंख्या और विश्व के प्रमुख धर्मों के बारे में संक्षिप्त मगर सारगर्भित जानकारी दी गई है। पौधे और जीव-जंतु अध्याय के अंतर्गत सजीव-निर्जीव पदार्थ, शैवाल, लाइकेन, फर्न, फफूंदियों, शंकुधारी और पुष्पी पौधों के साथ ही उपयोगी तथा असामान्य पौधों के बारे में बताया गया है। सरल प्राणियों से लेकर स्तनपायी प्राणियों तक के बारे में इस अध्याय में जानकारी दी गई है। इसके अतिरिक्त प्रकृति और संकटग्रस्त व सुरक्षित वन्य प्राणियों के बारे में भी ज्ञानवर्द्धक बातें बताई गई हैं।

"हम कैसे रहते हैं" अध्याय में आदि मानव से लेकर आधुनिक मानव की प्रगति कथा दी गई है। मनुष्य द्वारा निर्मित प्रसिद्ध इमारतों, भवन निर्माण की तकनीकों, ऊर्जा और ऊर्जा के साधनों, कृषि, पशुपालन, पानी, पोशाक, शिक्षा, स्वास्थ्य, बैंक, व्यापार; बंदरगाहों और विज्ञापन क्षेत्र की जानकारी दी गई है।

"परिवहन और संचार में परिवहन के इतिहास से लेकर, सड़कों, रेल, वायुयान, जहाज अंतरिक्ष खोज, डाक सेवा, दूर संचार, मुद्रण, कम्प्यूटर, रेडियो और दूरदर्शन से संबंधित सामग्री संजोई गई है। 'कला और मनोरंजन' का अध्याय संगीत, नृत्यकला, चित्रकला, साहित्य, हस्तकौशल, रंगमंच, फिल्म, दूरदर्शन और खेलकूद को समर्पित है। अंत में अकारादि क्रम से अनुक्रमणिका देकर इस विश्वकोश की संदर्भ उपयोगिता बढ़ाई गई है। हर पृष्ठ रंगीन चित्रों से संवारा गया है जिससे पठनीय सामग्री को समझने में मदद मिलती है और चित्रात्मकता को चाक्षुष आकर्षण बना रहता है। यह विश्वकोश बालकों, किशोरों के लिए ही नहीं, बड़े-बुजुर्गों के लिए भी निरंतर पठनीय है।

इतने श्रम से सुंदर आर्ट पेपर पर प्रकाशित इस विश्वकोश का दाम 200 रुपए सामान्य पुस्तकों के बाजार मूल्य को देखते हुए बहुत अधिक नहीं है। पृष्ठ 13 पर दूसरे कालम के अंत में पृष्ठ 14 के दूसरे कालम की पांचवीं लाइन न जाने कैसे रेंग आई है। पृष्ठ 38 पर 'क्रिस्टोफर कोलंबस' केवल स्टोफर कोलंबस रह गया है। पृष्ठ 105 पर 'हाउलर मंकी', हाडउर मंकी हो गया है। जैसे पृष्ठ 72 पर पाइन, चीड़ हुआ, वैसे ही पृष्ठ 117 पर 'क्रैब' भी केकड़ा कहने पर समझने में आसान रहता। पृष्ठ 78 पर एपिफाइट को गलती से परजीवी कहा गया है। एपिफाइट अधिपादप है जो दूसरे पेड़ों के तनों पर केवल बाहरी आश्रय लेते हैं—पराश्रय नहीं। पृष्ठ 103 का पेंगोलियन, पेंगोलिन होना चाहिए। और हां, पृष्ठ 73 पर वर्णित 'मेडनहेयर' ट्री को नैनीताल में राजनिवास के गेट पर तथा वहीं डी.एस.बी कालेज के वनस्पति विज्ञान विभाग के सामने लहलहाते हुये पाठक देख सकते हैं।

[श्री देवेंद्र मेवाड़ी, 5/109, ए. कृष्णा नगर, सफदरजंग इन्क्लेव, नई दिल्ली- 29]

रक्षा अनुसंधान "राजभाषा विज्ञान" सेमिनार

रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन हमारे देश का एक प्रमुख वैज्ञानिक संगठन है। इस संगठन की देश भर में फैली प्रयोगशालाएं रक्षा की दृष्टि से उपयोगी अनुसंधान कार्यों में जुटी रहती हैं। विभिन्न रक्षा प्रयोगशालाओं के कर्तव्यों और दायित्वों में इतनी अधिक भिन्नता है कि उन सब पर एक साथ चर्चा करना असंभव न सही किन्तु कठिन अवश्य है।

बहरहाल, विभिन्न रक्षा प्रयोगशाओं के वैज्ञानिक एक, दूसरे द्वारा किये जा रहे शोध कार्यों से परिचित हो सकें, रक्षा वैज्ञानिकों द्वारा किये जा रहे कार्यों से जनसाधारण का परिचय हो सके तथा वैज्ञानिक एवं तकनीकी कार्यों में राजभाषा के प्रयोग को बढ़ाया जा सके, इन्हीं उद्देश्यों को लेकर दिनांक 22-23, जनवरी, 1991 को दिल्ली छावनी, स्थित रक्षा शरीरक्रिया एवं संबद्ध विज्ञान संस्थान (डिपास) ने अपने यहां रक्षा अनुसंधान-सैनिक, सैन्य उपकरण और समाज" विषय पर रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन की प्रयोगशालाओं में हिन्दी के माध्यम से प्रथम बार दो दिवसीय विज्ञान सेमिनार आयोजित किया।

इस सेमिनार का उद्घाटन करते हुये मुख्य नियंत्रक, रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन श्री कल्पनाथ सिंह ने कहा कि यह कार्य विज्ञान एवं तकनीकी जानकारी को जनसाधारण तक पहुंचाने की दृष्टि से बहुत उपयोगी है और विभिन्न रक्षा प्रयोगशालाओं को अपने यहां इस तरह के कार्यक्रम आयोजित करने चाहिये।

सेमिनार के उद्घाटन सत्र में मुख्य अतिथि के रूप में बोलते हुये राष्ट्रीय भौतिकी प्रयोगशाला के भूतपूर्व निदेशक डॉ. अजित राम वर्मा ने विज्ञान और समाज के पारस्परिक संबंधों की विस्तार से चर्चा की और विज्ञान को जनता तक पहुंचाने के लिये स्वदेशी भाषाओं के महत्व पर बल दिया।

इस समारोह में अपना मुख्य भाषण देते हुये सी.एस.आई.आर. के प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय के निदेशक डा. जी.पी. फोंडके ने कहा, "विज्ञान एवं तकनीकी जानकारी को जनता तक ले जाने के लिये भारतीय भाषाओं का उपयोग होना चाहिये—इस विषय में किसी चर्चा, बहस या भाषण की कोई आवश्यकता ही नहीं है।" उनका कहना था कि समाज तक उपयोगी वैज्ञानिक जानकारी को पहुंचाना वैज्ञानिकों का कर्तव्य है।

उद्घाटन सत्र के अलावा इस दो दिवसीय सेमिनार में छह अन्य सत्र रखे गयें थे। 'इलेक्ट्रानिक' सत्र में चार, 'भंडार एवं सामग्री' सत्र में पांच, सैनिक और पर्यावरण सत्र में नौ, 'अभियांत्रिकी, प्रौद्योगिकी और संक्रिया अनुसंधान' सत्र में छह, 'सैनिक और समाज' सत्र में चार तथा 'मानव और विज्ञान' सत्र में चार शोधपत्र प्रस्तुत किये गये।

समापन सत्र में संस्थान के उपनिदेशक श्री राम मोहन राय ने वैज्ञानिकों द्वारा दो दिनों में पढ़े गये सभी शोध पत्रों के सार की चर्चा करते हुये आशा प्रकट की कि इस तरह के सेमिनार भविष्य में और भी अधिक अच्छे ढंग से आयोजित किये जायेंगे। समापन समारोह की अध्यक्षता करते हुये संस्थान क निदेशक डा. जे.सेन गुप्त ने सभी वैज्ञानिकों एवं इस सेमिनार से जुड़े कार्यकर्ताओं को धन्यवाद दिया और आशा प्रकट की कि वैज्ञानिक अपने द्वारा किये जा रहे कार्यों की जानकारी समाज तक पहुंचाने के लिये निरंतर प्रयत्नशील बने रहेंगे।

[श्री सुभाष लखेड़ा, आयोजन सचिव, रक्षा शरीर क्रिया एवं संबद्ध विज्ञान संस्थान (डिपास), दिल्ली छावनी- 110010]

एन.आर.डी.सी. पुरस्कार

राष्ट्रीय अनुसंधान विकास निगम ने आविष्कार प्रोत्साहन कार्यक्रम के अंतर्गत सात उल्लेखनीय आविष्कारों के लिये 1991 के गणतंत्र दिवस पुरस्कारों की घोषणा की है। इन पुरस्कारों के तहत सात उत्कृष्ट आविष्कारों के लिये कुल दो लाख 15 हजार रुपये की राशि और प्रत्ये[क] पुरस्कार विजेता को गुणवत्ता प्रमाण-[पत्र] दिया जायेगा।

पुरस्कार पाने वालों में सेंटर [फॉर] एप्लाईड रिसर्च इन इलेक्ट्रानिक्स, भार[तीय] प्रौद्योगिकी संस्थान, नई दिल्ली की [डा.] (श्रीमती) भारती भट्ट, डा. शिबन के. [...] तथा सेंट्रल इलेक्ट्रानिक्स लिमि[टेड] साहिबाबाद के सर्वश्री एन.आर. नायर [...] एस.ए. जलील हैं। उन्हें 50 हजार [रु...] संयुक्त रूप से दिये जायेंगे। यह पुरस्[कार] उन्हें फेज्ड एरे राडारों में काम आने [...] फेराइड फेज्ड शिफ्टर विकसित करने [के] लिये दिया गया है।

चंडीगढ़ स्थित हरियाणा [रा...] इलेक्ट्रानिक्स विकास निगम के डा. के.[...] बलाइन, अम्बाला स्थित इन्स्ट्रू[मेंट] डिजाइन एण्ड डेवलपमेंट एण्ड फैसिलि[टी] सेंटर के डा. जगपाल सिंह, सर्वश्री एन[...] जैन, अजय शंकर, अनूप कुमार समु[...] संयुक्त रूप से 40 हजार रुपये का पुरस्[कार] दिया गया है। यह पुरस्कार [...] गाइडोस्कोप नामक उपकरण विक[सित] करने के लिये दिया गया है।

पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ के [...] जी.वी.एस. जैन और श्री जोगिन्दर सिं[ह] संयुक्त रूप से 30 हजार रुपये [...] पुरस्कार बिना मोटर का इलेक्ट्रोमैग[्नेटिक] स्टीरर विकसित करने के लिए प्रदान कि[या] गया है।

मैसर्स एनफील्ड इंडिया लिमिटेड, म[द्रास] के डा. वेनूकट्सुबईया पांडुरंग, श्री [...] विजयसेल्वारंगन और श्री रायुदु राम[...] को 30 हजार रुपये का संयुक्त पुरस्[कार] कार्बन मोनोआक्साइड को क[ार्बन] डाईआक्साइड में बदलने का यंत्र विक[सित] करने के लिये दिया गया है। यह यंत्र प्र[दूषण] कम करता है।

भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स, हैदराबा[द] डा. मोहम्मद घोष, सर्वश्री के.ए. दुर्गा[...] ए.आर. प्रभु, वी. जयरामन तथा पी. [...] को भी संयुक्त रूप से 30 हजार रु[पये] पुरस्कार रोटर शैफ्ट और [...] टर्बोजनरेटरों में काम आने [...] मेटालाइजिंग उपकरण विकसित क[रने के] लिये दिया गया है।

झांसी जिले के चिंतोले राम यात्री को ट्रेक्टरों के लिये स्पार्क अरेस्टर का डिजाइन बनाने व विकसित करने के लिये 20 हजार रुपये का पुरस्कार दिया गया है।

स्टैंडर्ड आयरन इंडस्ट्री, पटना के सर्वश्री नरेश नंदन सहाय और रमेश नंदन सहाय को संयुक्त रूप से 15,000 रुपये का पुरस्कार ग्रामीण क्षेत्रों में हाथ से पानी खींचने वाला पंप विकसित करने के लिये दिया गया है।

भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन, उपग्रह केन्द्र, बंगलौर, के ताप विभाग में कार्यरत सर्वश्री एच. नारायणमूर्ति, एच. भोजराज, आर. पलानीस्वामी और भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संस्थान, उपग्रह केन्द्र, बंगलौर के ताप विभाग में कार्यरत श्री वी.पी. उन्नीकृष्णन को भी संयुक्त रूप से आप्टिकल सोलर रिफलेक्टर विकसित करने के लिये गुणवत्ता प्रमाण-पत्र दिया गया है।

प्रश्न मंच कूपन

सम्पादक "प्रश्न मंच"
विज्ञान प्रगति
प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय
सी.एस.आई.आर., हिलसाइड रोड
दिल्ली

विज्ञान प्रसार हेतु पुरस्कार

राष्ट्रीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी संचार परिषद् ने विज्ञान और प्रौद्योगिकी को लोकप्रिय बनाने हेतु उल्लेखनीय कार्य के लिए 1988 में 'राष्ट्रीय पुरस्कार' की स्थापना की थी। इन पुरस्कारों का वितरण प्रत्येक वर्ष राष्ट्रीय विज्ञान दिवस के अवसर पर किया जाता है।

पश्चिम बंगाल में वैज्ञानिक जागरूकता उत्पन्न करने के लिए महत्वपूर्ण योगदान हेतु कलकत्ता स्थित बंग विज्ञान परिषद् को तथा मद्रास में जनसाधारण के मन में यह बैठाने कि विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के प्रयोग से किस प्रकार उनका जीवन वास्तविक रूप से सुखमय बन सकता है, मद्रास के श्री कुंद्राकुडि को संयुक्त रूप से एक लाख रुपये का नगद राष्ट्रीय पुरस्कार दिया गया है।

मराठी और अंग्रेजी में प्रकाशन माध्यम द्वारा जनसाधारण में विज्ञान और प्रौद्योगिकी को लोकप्रिय बनाने हेतु डा. गजानन पुरुषोत्तम फोंडके, निदेशक प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय (सी.एस.आई.आर.), नई दिल्ली तथा रेडियो के माध्यम से विज्ञान को आदर्श रूप से लोकप्रिय बनाने हेतु डा. आर. श्रीधर, निदेशक (कार्यक्रम-शैक्षिक प्रसारण), आकाशवाणी नई दिल्ली, को संयुक्त रूप से 50,000 रु. का नगद राष्ट्रीय पुरस्कार प्रदान किया गया है।

बच्चों में विज्ञान को लोकप्रिय बनाने हेतु श्रेष्ठतम कार्य के लिए 50,000 रुपये का राष्ट्रीय पुरस्कार सम्मिलित रूप से मद्रास के श्री पी.के. श्रीनिवासन तथा रायचूर (कनार्टक) के श्री डी.आर. बलुरागी को दियां गया। इस वर्ष राष्ट्रीय विज्ञान दिवस 28 फरवरी, को ये पुरस्कार प्रदान किए गए।

NEW TITLES FROM PID

LIFE: FROM CELL TO CELL

by Bal Phondke

The exciting story of Life - an eternal journey from cell to cell is told in this profusely illustrated popular science volume especially written for young readers.

74 pages, price Rs. 8.00

BIRDS

This well-illustrated volume covers all aspects of the life of Indian birds and their interaction with man. The classification of birds, their inter-relationships and their descriptions are given in detail.

ISBN 81-85038-90-2

152 pages, Price Rs 125.00

PLANTS FOR RECLAMATION OF WASTELANDS

This illustrated volume describes 1003 species of plants suitable for planting on wastelands to provide timber, fuel, fodder and other economic products. A short account on the reclamation of mined wastelands is also included.

ISBN 81-85038-89-9

684 pages, Price Rs 325.00

GROUNDNUT

Groundnut is one of India's leading oil producing crops. This volume deals with the origin, breeding, cultivation, diseases and pests and their control, processing of oil and meal and utilization and marketing of this important crop.

56 pages, Price Rs 45.00

INDIAN BRASSICAS

Brassica occupies a pride of place among the oilseed crops of India. This well-illustrated monograph gives a comprehensive coverage of the origin, breeding, cultivation, utilization and marketing of this important oilseed crop.

82 pages, Price Rs 50.00

CHEMISTRY & THE ENVIRONMENT

Proceedings of the Regional Symposium, Brisbane 1989

Eds. B.N. Noller, M.S. Chadha

The eighteen articles in this volume, contributed by distinguished scientists from Australia, Canada, New Zealand, UK, Malaysia and India, provide up-to-date information on various aspects of the interrelationship between fossil fuel burning, greenhouse effect, ozone hole and the like.

Published by Commonwealth Science Council

324 pages, Price Rs 125.00

Copies available from:

Senior Sales & Distribution Officer
Publications & Information Directorate, CSIR
Dr. K.S. Krishnan Marg
New Delhi 110012

R. No. 713/57

डा. जी.पी. फोंडके द्वारा प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय (सी.एस.आई.आर.) नई दिल्ली, के लिए तेज प्रेस, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 में प्रकाशित और मुद्रित

Regd. No. D.(C)-89

"U" Licence No. U. 119

विज्ञान प्रगति के
40
वर्ष
मूल्य : 2.50 रुप
विज्ञान प्रगति
सैनिकों की सेवा में विज्ञान

बच्चों को इंटैलीजैंट बनाने वाला अद्भुत नॉलिज बैंक

बच्चों के मस्तिष्क में घुमड़ने वाले हजारों अनबूझे **'क्यों और कैसे'** किस्म के प्रश्नों के उत्तर बताने वाला एक अनूठा प्रकाशन

चिल्ड्रन्स नॉलिज बैंक

(छः खण्डों में)

गिफ्ट बॉक्स पैकिंग में

विशेषताएं

- 50 लाख से भी अधिक पाठकों की पसंद
- विद्यालयों में पुरस्कार के रूप में वितरित
- प्रत्येक खण्ड अपने आप में संपूर्ण
- सभी लाइब्रेरियों की पसंद
- प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं द्वारा प्रशंसित

...विषय-वस्तु, साज-सज्जा और छपाई की दृष्टि से निश्चय ही ये पुस्तकें बालकों के ज्ञानवर्धन में सहायक सिद्ध होंगी.......

डा. सैयद असद अली, निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली

....मैं इन पुस्तकों को बाल-साहित्य के क्षेत्र में एक अभूतपूर्व योगदान मानता हूं। इनकी न केवल विषय-वस्तु अपितु चित्र-सज्जा भी प्रशंसनीय है.......

प्रो. बी. गांगुली, अध्यक्ष, विज्ञान एवं गणित विभाग, एन.सी.इ.आर.टी., नई दिल्ली

आधारभूत विषय

■ पृथ्वी एवं ब्रह्मांड ■ आधुनिक विज्ञान, वनस्पति एवं पशु-पक्षी जगत ■ आविष्कार एवं खोजें ■ खेल एवं खिलाड़ी ■ आश्चर्य एवं रहस्य ■ सामान्य ज्ञान ■ मानव शरीर ■ भौतिक-रसायन एवं जीव विज्ञान आदि

बच्चे के मस्तिष्क के लिए एक टॉनिक

जैसे ही बच्चा सोचना-समझना शुरू करता है उसमें अपने आसपास की दुनिया के बारे में जानने की जिज्ञासा बढ़ती जाती है। उसके मस्तिष्क में हजारों **'क्यों और कैसे'** किस्म के प्रश्न घुमड़ने लगते हैं। यदि उसे उचित समय पर इन प्रश्नों के उत्तर मिल जाते हैं तो उसका मानसिक विकास तेजी से होता है। इसके विपरीत उचित समय पर प्रश्नों के उत्तर न मिलने पर वह विषयों को समझने के बजाय उन्हें रटने लगता है। इससे उसका मानसिक विकास रुक जाता है और वह न केवल शिक्षा के क्षेत्र में बल्कि जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी पिछड़ जाता है।

प्रश्नों में से कुछ की झलक

□ महिलाओं की दाढ़ी क्यों नहीं होती? □ क्या दैत्याकार मनुष्य भी पृथ्वी पर रहते हैं? □ शनि के छल्ले क्या हैं? □ क्या अन्य ग्रहों से लोग पृथ्वी पर आते हैं? □ क्या संसार में नरभक्षी लोग भी रहते हैं? □ आकाश नीला क्यों दिखाई देता है? □ हाइड्रोजन बम क्या है? □ हमारे मुंहासे क्यों हो जाते हैं? □ टेस्ट ट्यूब बेबी क्या है? □ मिस्र के पिरामिड क्यों बनाये गये? □ हमें सपने क्यों दिखाई देते हैं? □ मौत की घाटी क्या है? □ मरने के बाद भी आदमी के बाल क्यों बढ़ते रहते हैं? □ क्या कोई पहाड़ी भी रंग बदल सकती है? □ डिब्बाबंद फल सड़ते क्यों नहीं?

6 खण्डों की इस श्रृंखला में हैं.....

- 1300 से भी अधिक बड़े आकार के पृष्ठ
- 1100 से अधिक चित्र
- 5,00,000 से भी अधिक शब्दों की पाठ्य-सामग्री
- 1050 जिज्ञासा भरे प्रश्नों के सुबोध उत्तर

मूल्य:
पेपरबैक विद्यार्थी संस्करण: 28/-
डाकखर्च: 5/- प्रत्येक

पूरा सैट: 168/- डाकखर्च माफ

अंग्रेजी तथा 8 भारतीय भाषाओं में प्रकाशित

अपने निकट के या रेलवे तथा बस-अड्डों पर स्थित बुक-स्टॉलों पर मांग करें। न मिलने पर वी.पी.पी. द्वारा मंगाने का पता:

पुस्तक महल, खारी बावली, दिल्ली-110006

10-B नेताजी सुभाष मार्ग, दरिया गंज, नई दिल्ली-110002

शाखा: 22/2 मिशन रोड, बंगलौर-560027.

ग्राहकों के लिए सूचना

विज्ञान प्रगति की एक प्रति का मूल्य 2.50 रुपये है। इस पत्रिका का वार्षिक मूल्य 25.00 रुपये, द्विवार्षिक मूल्य 40.00 रुपये, त्रिवार्षिक मूल्य 60.00 रुपये हैं। अर्थात् आप **एक वर्ष, दो वर्ष, तीन वर्ष का ग्राहक बनकर क्रमशः 5.00 रुपये 20.00 रुपये एवं 30.00 रुपये की बचत कर सकते हैं।** चन्दे की राशि अग्रिम रूप से मनी आर्डर, डिमांड ड्राफ्ट अथवा चैक द्वारा **प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय,** हिलसाइड रोड, नई दिल्ली-110012 को भेजी जानी चाहिये

विज्ञान प्रगति की पहली प्रति वार्षिक/द्विवार्षिक/त्रिवार्षिक ग्राहकों को, अगर वे चाहते हैं तब वी.पी.पी. से भेजी जा सकती है। वी.पी.पी. छुड़ाते समय एक/दो/तीन वर्ष के चन्दे की पूरी राशि तथा वी.पी.पी. शुल्क देना होगा।

चैक भेजते समय दिल्ली के बाहर के चैक पर, कृपया बैंक कमीशन 3.50 रु. भी जोड़ लें।

ग्राहक फार्म

मेरा नाम विज्ञान प्रगति के ग्राहकों/नए ग्राहकों की सूची में वर्ष के लिए (मास.... 199 से... 199 तक दर्ज कर लीजिए। इसके लिए मनी आर्डर/बैंक ड्राफ्ट

क्रमांक.................दिनांक......................से

"प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, सी.एस.आई.आर.," नई दिल्ली-110012 के नाम भेजे जा रहे हैं।

-हस्ताक्षर

पूरा पता ____________________

____

____

____

वरिष्ठ बिक्री और वितरण अधिकारी,
'विज्ञान प्रगति'
पी.आई.डी. हिलसाईड रोड,
नई दिल्ली-110012

विषय सूची

वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् का हिन्दी विज्ञान मासिक

विज्ञान प्रगति

वर्ष : 40 मई : 1991 बैसाख : 1913 अंक : 5 पूर्णांक : 444

पृष्ठ 10

पृष्ठ 15

पृष्ठ 18

पृष्ठ 22

पृष्ठ 29

पृष्ठ 35

पृष्ठ 39

विज्ञान प्रगति

मई 1991

प्रमुख सम्पादक
डा. जी.पी. फोंडके

सम्पादक
दीक्षा बिष्ट

सहायक सम्पादक
मनोज कुमार पटैरिया

सम्पादन सहायक
ओम प्रकाश मित्तल

कला अधिकारी
दलवीर सिंह वर्मा

प्रोडक्शन अधिकारी
रत्नाम्बर दत्त जोशी

बिक्री और वितरण अधिकारी
आर.पी. गुलाटी
टी. गोपाल कृष्ण
एल.के. चोपड़ा
मो. आसीफ अख्तर

सहायक
फूल चन्द
बी.एस. शर्मा

आवरण
नीरू शर्मा

टेलीफोन : 585359 और 586301
लेखकों के कथनों और मतों के लिये प्रकाशन और सूचना निदेशालय उत्तरदायी नहीं है।
एक अंक का मूल्य : 2.50 रुपये
वार्षिक मूल्य : 25.00 रुपये

यदि एक बार हम फिर कहें कि इस आधुनिक युग में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के बिना सचमुच हमारा गुजारा नहीं तो शायद आप भी सहमति में अवश्य अपना समर्थन देंगे क्योंकि न करने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता। चूंकि विज्ञान की घुसपैठ करने की दिनानुदिन बढ़ती आदतों से तो आप परिचित हैं ही लेकिन एक राज की बात है जिसके बारे में कभी आपने सोचा भी न होगा कि विज्ञान ने अपने लम्बे हाथ कहां-कहां तक फैलाये हैं।

अपने सैनिकों और तीनों सेनाओं से हम में से कोई भी अपरिचित नहीं है जो थे वे भी अब 26 जनवरी यानि गणतंत्र दिवस के दिन दूरदर्शन पर देखकर इन सेनाओं और इनकी उपलब्धियों के विषय में संभवतः काफी कुछ जान ही गये होंगे, लेकिन हर स्थान हर जलवायु के लिए खाना पीना रहना इन हमारी जैसी देह वाले सैनिकों के लिये कैसे सुलभ हो जाता है क्या कभी सोचा है आप लोगों ने इसके बारे में—हथियार तो सिर्फ रक्षाकारी होते हैं लेकिन उनके उपयोग के लिये सैनिकों का चुस्त-दुरुस्त होना भी तो आवश्यक है—यह तो स्वयं रक्षा मंत्री के वैज्ञानिक सलाहकार—प्रो. वी.एस. अरुणाचलम का मानना है कि "युद्ध में सफलता का रहस्य केवल हथियार ही नहीं हैं।"

यद्यपि हथियार भी विज्ञान की ही देन हैं लेकिन असली देन है तीनों सेनाओं के सैनिकों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति—जिनके बल पर वे कठिन से कठिन एवं दुरुह परिस्थितियों व जलवायु में जीवन जीते हैं—मजबूरीवश नहीं बल्कि आत्मविश्वास के साथ।

जी हां, विज्ञान ने हमारे इन सैनिकों को कड़कड़ाती ठंड और भीषण गर्मी तथा भयंकर वर्षा से मुक्ति दिलाने,हर तरह का भोजन उपलब्ध कराने के लिए क्या-क्या सुविधायें प्रदान की हैं, इसी तस्वीर का एक चेहरा आपके सम्मुख है। □

सर्वोत्कृष्ट पत्रिका

आपकी सुप्रसिद्ध प्रेरणादायक मासिक पत्रिका 'विज्ञान प्रगति' का मैं विगत दो वर्षों से नियमित पाठक हूं, लेकिन यह मेरा पहला पत्र है। मुझे ऐसा लगता है इस पत्रिका को भगवान का वरदान प्राप्त है जिसे पढ़े बिना विज्ञान प्रेमियों को चैन नहीं मिलता। इस पत्रिका का हर अंक कोई न कोई ऐसी अद्भुत कथा और दुर्लभ जानकारी हमारे समक्ष रखता है जिसकी प्रशंसा शब्दों में नहीं की जा सकती। मार्च अंक के साथ-साथ इस पत्रिका का जनवरी और फरवरी अंक भी मुझे और मेरे साथियों को बेहद पसंद आया। ऐसी उत्कृष्ट रचनाओं के प्रकाशन हेतु बहुत-बहुत धन्यवाद।

[मनोरंजन कुमार शर्मा, मनोज कु. और रंजीत कुमार, ग्राम-पोस्ट-असरगंज (मुंगेर), बिहार]

प्रतियोगिता शुरू करें

आपकी सुप्रसिद्ध मासिक ''विज्ञान प्रगति'' का मैं विगत एक वर्ष से नियमित पाठक हूं। मुझे इस पत्रिका के माध्यम से अनेकों हितकारी स्तंभ तथा लेख पढ़ने को मिलते हैं। यूं तो विज्ञान प्रगति का हर अंक अपने आप में बेमिसाल होता है परन्तु मार्च 1991 अंक काफी रोचक तथा ज्ञानवर्धक साबित हुआ।

प्रश्न मंच तथा इंसुलिन के खोजकर्ता काफी रोचक रहा। साथ ही बच्चों का वैज्ञानिक तीर्थ : बाल भवन, आधुनिक अंक विद्या का जन्म तथा हम सुझायें आप बनायें स्तंभ भी रोचक रहे। इसमें सामान्य ज्ञान संबंधी प्रतियोगिता शुरू करें जिससे मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञान की वृद्धि भी हो सके।

[संतोष कुमार कुशवाहा, कांग्रेस नगर, क्वा नं. 125, पाथाखेड़ा, बैतूल, म.प्र.]

शोधपूर्ण गणितीय लेख

मैं 'विज्ञान प्रगति' का मार्च 1991 अंक पढ़कर इस अहसास से कृतज्ञ हो उठी कि सस्ते मूल्य पर कितनी बहुमूल्य वस्तु उठा लाई हूं। इस अंक में बच्चों के वैज्ञानिक तीर्थ ''बाल भवन'' के बारे में जानकारी ने मेरे मन को एक ही बार में मुग्ध कर लिया। वाकई किसी देश के सर्वांगीण विकास में बच्चों की कितनी हिस्सेदारी है और उन्हें किस तरह सर्जनात्मक एवं खोजी बनाया जा सकता है और बाल भवन इसमें कहां तक सफल हुआ है—इतनी सारी जानकारी दुर्लभ ही बताई जा सकती है। आधुनिक अंक विद्या का जन्म में श्री शुकदेव प्रसाद ने जो शोधपूर्ण जानकारी लेख में एकमुस्त प्रदान की है, उसके लिये उन्हें बधाई। उम्मीद रहेगी कि संपादक इसी तरह के शोधपूर्ण गणितीय लेख हर अंक में देने का यत्न करेंगे।

[सुनीता कुमारी सिंह, बगुसरा, सेमरांव, भोजपुर (बिहार)]

रंगीन एवं सम्पूर्ण पत्रिका

विज्ञान प्रगति की 40वीं वर्षगांठ पर हार्दिक बधाई। यों तो मैंने कई वैज्ञानिक पत्रिकायें छान मारी किन्तु मेरे हाथ यही एक पत्रिका रोचक एवं प्रेरणाप्रद लगी। चित्रों की कलात्मक साज-सज्जा दिल को छू गयी और मैं विज्ञान प्रगति का दिसम्बर 90 से ग्राहक बन गया। हमारी अनेक जिज्ञासायें इस पत्रिका के माध्यम से हल हो जाती हैं।

जैवप्रौद्योगिकी में कैंसर की श्रृंखलाबद्ध जानकारी व प्रश्नमंच मुझे अतीव प्रिय हैं। ट्यूमर पर बमबारी, ऐलर्जी, इंसुलिन के खोजकर्ता के विषय में दी गई बातें रोचक लगीं। विद्युत चूहेदानी हमने बना ली है।

[देवकुमार माहेश्वरी, पुरीडीह, बिलासपुर, म.प्र.]

वैज्ञानिक पत्रिका

'विज्ञान प्रगति' का मार्च अंक मिला। हमें अत्यंत खुशी है कि ''विज्ञान प्रगति'' ने उठते-गिरते तथा घिसटते हुये अथक परिश्रम के फलतः अपनी सफलता के 40 वर्ष पूरे किये। इन चार दशकों में पत्रिका के रूप में हर तरह से तब्दीली आई है लेकिन हम कह सकते हैं कि इसके विषयों के बनिस्पत मूल्यों में काफी कम वृद्धि हुई है। अब यह पूर्ण रूप से 'वैज्ञानिक पत्रिका' बन चुकी है तथा सभी पाठकों को अपनी चिन्तन तथा विचार को मनोनुकूल बनाने के लिये हर संभव प्रयास कर रही है जो सर्वदा स्तुत्य है। इंसुलिन के वास्तविक खोजकर्ता के बारे में संक्षिप्त जानकारी तथा एक कड़वे सच को प्रकाशित करने वाले उन देवेंद्र मेवाड़ी को धन्यवाद।

[रत्नेश्वर कुमार मिश्र, रमेश्वर कुमार मिश्र, पालेय टोला, नरकटियागंज, प. चम्पारण, बिहार]

कमी पत्रिका की

मैं विज्ञान प्रगति का कई वर्षों से पाठक हूं। कला का विद्यार्थी होते हुये भी मैं अब भी विज्ञान प्रगति निर्यामित व बड़े शौक से पढ़ता हूं। लेकिन इसकी लोकप्रियता हमारे संगठन में देखते बनती है। वहां पर सदस्यों के लिये एक संक्षिप्त पुस्तकालय में पहले हम लोग एक विज्ञान प्रगति लेते थे। मगर इसके पाठक 80-100 तक होते थे जो कभी-कभी पहले पढ़ने के लिये आपस में होड़ करते थे। इसलिये अब हम लोग हर महीने तीन-तीन विज्ञान प्रगति लेते हैं। तब भी संगठन में विज्ञान प्रगति को फुर्सत नहीं मिलती है।

विज्ञान प्रगति का हर अंक अपने नये रूप में हमारे बीच आता है। सच पूछिये तो विज्ञान प्रगति अनूठी व अनमोल पत्रिका है साथ ही इसका दाम कम होने के कारण यह हर वर्ग के पाठकों के पहुंच की है।

[राजीव रंजन प्रकाश, सचिव, समाज विकास संगठन, हेनरी बाजार, मोतिहारी, बिहार- 845 401]

अतुलनीय

'विज्ञान प्रगति' के 40 वर्ष में प्रवेश के लिये हार्दिक शुभकामना। मैंने अपने जीवन में जितनी भी पत्रिकायें पढ़ी हैं उसमें सबसे अच्छी साबित हुई है यह पत्रिका। इस पत्रिका के आपके पत्र स्तम्भ अन्तर्गत पाठकवृन्द पत्रिका को किसी न किसी वस्तु से जैसे अमृत रूपी रत्न, हीरा है पत्रिका से सम्बोधित करते हैं लेकिन जहां तक मेरा विश्वास है कि यह पत्रिका सब में अद्वितीय, असाधारण एवं अतुलनीय है। इसकी तुलना किसी से नहीं की जा सकती। यह पत्रिका भविष्य में भी ऐसी रहेगी, ऐसा विश्वास है।

[राम चन्द्र सिंह, मेनका सिनेमा, अलीपुर दुआर, प. बंगाल]

देश के रक्षकों के लिए विज्ञान की नई दिशाएं

मनोज पटैरिया

दुश्मन को खाक में मिलाने का सपना संजोए, और देश की रक्षा का दायित्व लिये, हमारे जवान सरहदों पर कहीं शरीर गला देने वाली ठण्ड में तो कहीं तिलमिला देने वाली गर्मी में हर पल मुस्तैद रहते हैं। एक ओर हिमाच्छादित बर्फीले इलाके हैं तो दूसरी तरफ राजस्थानी सीमांत पर तपते मरुस्थल, कहीं पहाड़ी बीहड़ तो कहीं गहरे दलदली क्षेत्र। सांय सांय करती रातों और तपती दोपहरी में भी, मतलब यह कि हर हालत में ये जवान अपने मनोबल की उच्चतम बुलंदियों के साथ डटे हुये हैं।

क्या आम आदमी को उन विपरीत हालातों और परिस्थितियों का पता है, जिनमें रहकर हमारे सैनिक अपने श्रेष्ठतम कर्त्तव्य का पालन करते हैं? शायद नहीं। और शायद बहुतों को यह खबर भी न होगी कि इन विषम परिस्थितियों में भी उन्हें पूरी तरह चुस्त दुरुस्त बनाये रखने के लिये विज्ञान और प्रौद्योगिकी किस प्रकार मदद करती है। निःसंदेह विज्ञान ने मानवता को अदम्य सुख सुविधायें प्रदान की हैं लेकिन इन सुविधाओं और तकनीकों को विशिष्ट परिस्थितियों के अनुरूप ढालने और उन्हें सैनिकों के लिये उपादेय बनाने की दिशा में भी महत्वपूर्ण काम किया जा रहा है, ताकि सैनिकों को हर सुविधा उपलब्ध हो सके और उनके काम में व्यवधान न आये।

आम लोगों की तरह सैनिकों की अपनी विभिन्न मूलभूत आवश्यकतायें होती हैं, खाना तो जरूरी है, पानी भी चाहिये। ठण्ड और गर्मी से बचने के लिये विशेष पोशाक और सुवाहय आवास भी निहायत जरूरी हैं। इसके साथ ही त्वरित चिकित्सा सुविधायें, आवागमन, संचार और सुरक्षा उपकरणों आदि की उपयुक्त व्यवस्था हर हालत में परमावश्यक है। इन्हीं सब जरूरतों को सीमांत की परिस्थितियों के अनुरूप तैयार करने में विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने उल्लेखनीय भूमिका निभाई है।

नल की टोंटी घुमाने पर ही हम में से बहुतों को पानी मिल जाता है लेकिन सीमाओं पर हर जगह पानी की पाइप लाइन नहीं होती, वहां तो यदि टैंकरों की आपूर्ति न आई तो गड्ढ़ों-पोखरों तक के पानी से काम चलाना पड़ता है। बर्फ से ढ़के ऊंचे शिखरों पर -40^{0} सें. तक नीचे तापमान की हालत में जीवन का संचार बनाये रखने के लिये केवल हौसले की ही नहीं बल्कि उपयुक्त साज-सामान की भी जरूरत पड़ती है। शांति के दौरान तो समस्यायें हैं ही, युद्ध के दौरान और भी बढ़ जाती हैं। लगातार गोलाबारी करने और समय पर रसद न पहुंचने पर साथ में बंधे सीमित खाना पानी से ही काम चलाना होता है। अब जरा एक नजर इस बात पर डालें कि विज्ञान ने इन परिस्थितियों से निपटने के लिये सैनिकों को क्या उपादान प्रस्तुत किये हैं।

किस्म किस्म की खाने की चीजें

रक्षा अनुसंधानशालाओं में ऐसी-ऐसी खाने-पीने की चीजें सैनिकों के लिये बनाई गई हैं जिन्हें देखकर मुंह में पानी आना स्वाभाविक है। एक आदमी को एक दिन के लिये 1 किलो भार का आहार पैक तैयार किया गया है, जिसमें चाय, हलवा, उपमा मिक्स, चिक्की, शाकीय पुलाव, मसालेदार आलू, रोटी, अचार, खिचड़ी, नमक और मिर्च का चूरा होता है। ये सामान 1 साल तक खराब नहीं होता और इसमें 4,800 कैलोरी ऊर्जा होती है। ऐसे ताप संसाधित खाद्य तैयार हैं, जिनको गर्म खौलते पानी में डालकर तुरन्त खाया जा सकता है। इनमें परिरक्षकों का प्रयोग नहीं होता। अंटार्कटिका अभियान में भी इसका इस्तेमाल किया गया है। दही, नारियल और हरी मिर्च को मिलाकर एवेल मिक्स नामक दक्षिण भारतीय व्यंजन तैयार किया गया है, जिसे चावल, रोटी और पूड़ी के साथ खाया जा सकता है।

मांसाहारियों के लिये सूखा मटन कीमा तथा वर्मीसिली खीर पर परीक्षण किये गये हैं। भविष्य की मांग को देखते हुये कैलोरी और पोषणमान से भरपूर टिकाऊ केक, हलवा, गाढ़ी करी और मांस अचार का विकास किया जा रहा है। एक ऐसे सुखावन यंत्र का भी विकास किया गया है, जिसके द्वारा उपलब्ध अण्डे के पोषक पदार्थ, दूध, दही, फलों का रस, काफी आदि को सुखा कर पुनः इस्तेमाल हेतु रखा जा सकता है। तुरन्त पेय तैयार करने के लिए अनन्नास, आम, अंगूर और मोसम्बी के रसों को सुखा कर पाउडर तैयार किये गये हैं। सेब, केला और आम आदि फलों से स्वादिष्ट स्नेक्स बनाये गये हैं। खुम्बी और गोभी का तुरंत घुलनशील शुष्क सत तैयार किया गया है। शाकाहारी और मांसाहारी दोनों के लिये लाइम राइस, मटर पुलाव, और चिकन पुलाव उपलब्ध हैं। इसी प्रकार मटर पनीर की करी और चिकन मसाला भी बनाया गया है। विभिन्न प्रकार के 17 प्रशीतित शुष्क रसों का पाउडर औद्योगिक स्तर पर बनाने के लिये दो फर्मों ने काम शुरू कर दिया है।
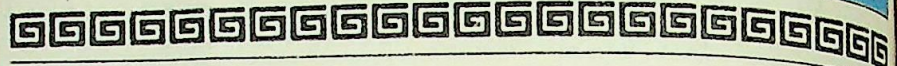
कम समय में उच्च ताप पर आलू, हरी मटर, गाजर आदि को नये शुष्कक में सुखा कर रखा जा सकता है और बाद में 5 मिनट तक उबलते पानी में रखने पर चीजें खाने लायक हो जाती हैं।

सामान्यतया ऊंचे स्थानों पर दालों को पकने में ज्यादा समय लगता है। अतः ऊंचे स्थानों पर तैनात सैनिकों के लिये तुरन्त संसाधित दाल का मिश्रण तैयार किया गया है, जिसे गर्म पानी में डालने पर 1-2 मिनट में दाल तैयार हो जाती है। फलों और सब्जियों के एंजाइमी उपचार द्वारा विटामिनों से भरपूर स्वास्थ्यवर्धक तरल पेय बनाये गये हैं। शोध के अनुसार पहरे के समय सैनिकों पर कोई शारीरिक प्रभाव न पड़े इसलिये उनके भोजन में 50% तक कैलोरी कम करना जरूरी है। इसलिये कम कैलोरी वाले आहार भी विकसित किये गये हैं। आम, सेब अनन्नास और केलों को परिरक्षित करके 6 माह तक टिकाऊ खाद्य तैयार किया गया है, जिसमें 30% तक नमी होती है, और इसे पैकेट से निकाल कर सीधे खाया जा सकता है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि सैनिक समुद्र में या रेगिस्तानों में भटक जाते हैं। जहां भोजन व पानी न मिलने से जान पर बन सकती है। ऐसी हालत में जीवन रक्षक राशन बार विकसित किये गये हैं जिनमें पर्याप्त पोषण सामग्री होती है।

रक्षा खाद्य अनुसंधान प्रयोगशाला ने ताजे मांस की गुणवत्ता परखने के लिये मिनी किट बनाई है। किट में हार्स शू क्रेब के रक्त से तैयार अभिकर्मक हैं, जिनसे शीघ्रता से कच्चे मांस के नमूनों में सूक्ष्म जैविक संदूषण का पता चल सकता है। इसमें पायरोजीन मुक्त कांच और बैटरी चालित इन्क्यूबेटर लगाया गया है।

अरुणाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, लद्दाख, तवांग, उत्तराखंड, जम्मू और कश्मीर के ऊंचाई वाले क्षेत्रों में शीत ऋतु के दौरान जब ताप –30° से. तक नीचे चला जाता है, तब वहां तैनात सैन्य दलों को सब्जी और फल नहीं मिल पाते। इसलिये ऐसे स्थानों पर सुरक्षित पौधशालाओं में फल सब्जी उगाने की तकनीकें भी विकसित की गई हैं ताकि वहां तैनात सैन्य दलों को स्थानीय तौर पर सब्जी व फल निरन्तर मिलते रहें।

बर्फ से ढके और अन्य स्थानों में जहां मिट्टी में पौधे न उगाये जा सकते हों, वहां जल कृषि (हाइड्रोपोनिक्स) जैव तकनीक काम में लाई जाती है। इसमें प्लास्टिक की नालियों में पोषण घोल डाल कर उसमें पौधों को बढ़ने दिया जाता है। अंटार्कटिका के नवें

DEHYDRATED
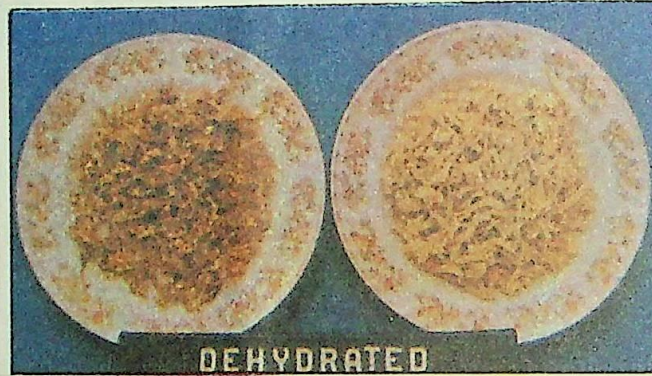
वाह! कितनी जायकेदार है सूखी गोभी

भारतीय वैज्ञानिक अभियान दल के दौरान एक कांच घर में टमाटर व अन्य पौधों को उगाया गया था। लद्दाख के सर्द मरुस्थल में भी इसी विधि से सैनिकों के इस्तेमाल के लिये सब्जियां उगाई जाती हैं।

परखनली में ऊतक संवर्धन तकनीक अपनाकर शाकों और मसालों में आनुवंशिक सुधार किया गया है। संकर टमाटर, बैंगन और गाजर के लिये सूक्ष्म प्रवर्धन तकनीक अपनाई गई है। इनसे दूर-दराज के इलाकों में सैनिकों के लिये आवश्यक सब्जियां मिल सकेंगी। उधर तेजपुर की रक्षा अनुसंधान-शाला ने उच्च गुणता वाली प्रोटीन युक्त खुम्बी का विकास किया है।

कुक्कुटों की अधिक मांस प्रोटीन युक्त जातियों के विकास के साथ ही ऊंचाई वाले क्षेत्रों में कुक्कुट पालन को बढ़ावा दिया गया है, जिससे वहां सैनिकों को कुक्कुट उत्पाद मिल सकें। लद्दाख में याक से सिर्फ आधा लीटर तक दूध प्रतिदिन मिलता है। जवानों को ताजा दूध उपलब्ध कराने के लिये फ्रीजेन और साहिवाल ढोरों की व्यवस्था की गई है। लेकिन अधिक ऊंचाईयों पर इनमें पल्मोनरी ईडेमा और ब्रिस्केट रोग देखा गया है, जिससे निपटने के लिये उपाय खोजे जा रहे हैं। इस प्रकार से जवानों के लिये हर स्थिति के अनुरूप पोषाहार उपलब्ध कराने के लिये अनुसंधान और विकास किये गये हैं और आगे भी किये जा रहे हैं।

मुसीबतों से बचाती पोशाकें

भला -40° सें. ताप और 180 किमी. प्रति घण्टा की रफ्तार से चलती हवाओं में प्राकृतिक और सामान्य कपड़े मनुष्य की कितनी रक्षा कर सकते हैं। इसके लिये कई परतों वाला सिद्धांत अपनाया गया है। वायरोध के लिये पालीयूरीथेन लेपित नाइलॉन वस्त्र, जलरोध के लिये सिलिकानीकरण,
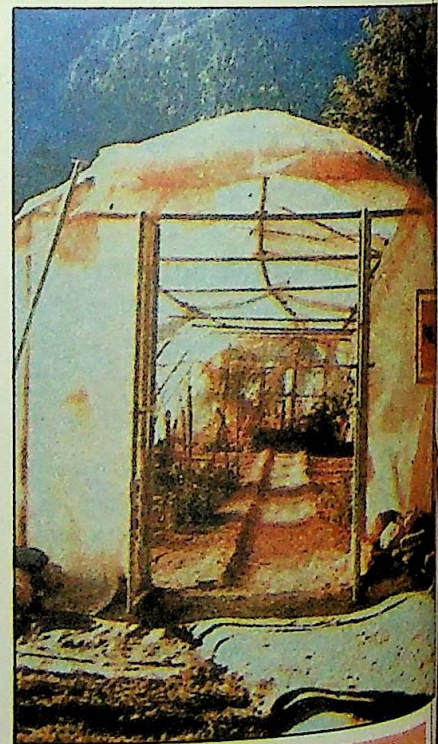
हिमालय की सर्दी में पॉलीथीन से बनी सुरंग या पॉली हाउस में सब्जियां उगाई जाती हैं

तापरोध के लिये पोलीएस्टर अस्तर, शारीरिक ताप नियंत्रण के लिये और एलूमिनियम लेपित व वस्त्र और सामान्य रोध के लिये एक्रीलिक पाइल वस्त्र

इस झोपड़ी में ठण्ड नहीं लगती

पानी को रोगाणु मुक्त करने की नली

नए यंत्र से अंधेरे के पार देखिए
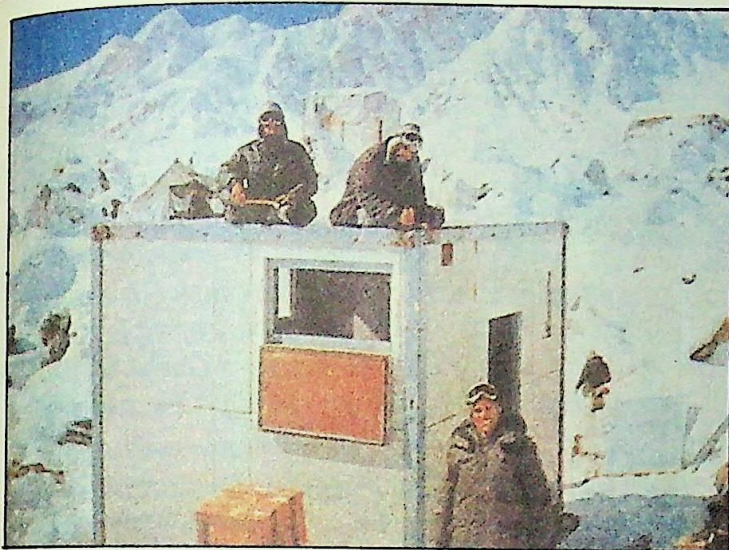
विकसित किये गये हैं। ठण्ड से बचाने के लिये सूट ग्लेशियर और सर्व ग्लेशियर सूट बनाये गये हैं, जिनको पहनने पर शरीर पर कम तापमान और ठंड का असर नहीं पड़ता।

बनियान और पायजामों में भी पालीप्रोपिलीन और ऊन का प्रयोग किया गया है, पालीप्रोपिलीन का एक लाभ यह भी है कि यह नरम होती है और नमी को नहीं सोखती। इसके रेशे का विशिष्ट घनत्व कम और रोधक्षमता अधिक होती है। बर्फ और कीड़े-मकोड़ों और कील कांटे से रक्षा के लिये नाइलॉन सिलिकानीकृत कपड़े से जूते बनाये गये हैं, जिन पर फ्लोरोकार्बन का लेप होता है। हल्के, मध्यम और भारी हिमपात से बचाव हेतु बहुपयोगी पाको सूट बनाया गया है।

एक बात तो स्पष्ट होती है कि तीनों सेनाओं के जवानों की जरूरतों में कुछ तालमेल है, तो कुछ बिल्कुल अलग प्रकार की हैं। लेकिन रक्षा अनुसंधानिकों ने इन सभी आवश्यकताओं के लिये काम किया है। कड़ी ठण्ड में खुले आसमान के नीचे सोने के लिये बैग स्लीपिंग बनाया गया है, जिसमें क्रमशः बैग के भीतर बैग है, अर्थात् ठण्ड के प्रभाव के अनुसार एक बैग पहन कर दूसरे में घुस कर सोया जा सकता है। टेफलान निर्मित वायुरक्षी जैकेट पहन कर तेज हवा में भी टिका रहा जा सकता है। कड़ाके की ठंड में हाथों को ठिठुरने से बचाने के लिये नेप्पा चमड़े के दस्तानों का विकास किया गया है। सिर, माथे और कानों को बर्फ, और तेज हवा से बचाने के लिये विशेष कंटोप बनाये गये हैं।
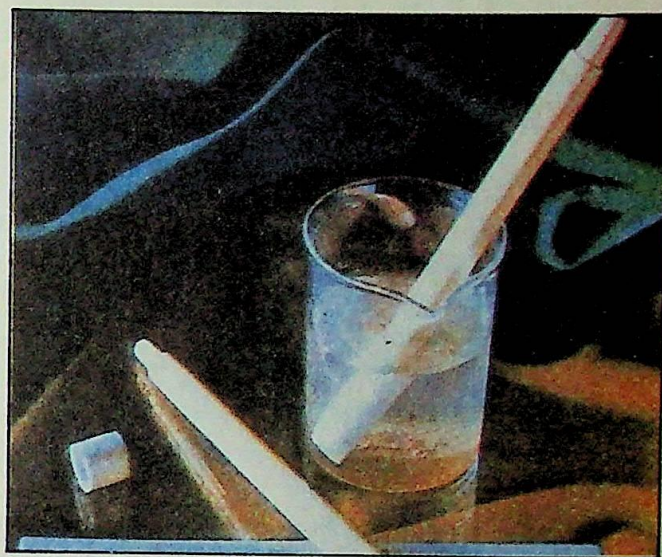
ऐसी परिस्थितियां भी होती हैं, जब मास्क का प्रयोग भी करना पड़ता है, इसलिये विशेष प्रकार के मास्क का विकास किया गया है। सैनिकों के लिये बनाये गये मोज़ों की तीन किस्में हैं—सूती टेरीपाइल, ऊनी टेरीपाइल, और नाइलॉनी टेरीपाइल। ये मोजे नमी को सोखते हैं और पैरों को शुष्क बनाये रखते हैं। अत्यंत बर्फीले क्षेत्रों के लिये उड़न बूट बनाये गये हैं। जो काले क्रोम चमड़े के बने हैं। इनमें नीचे रबर का तला लगा है। जंगलों और ऊबड़ खाबड़ स्थानों में चलने हेतु जंगत बूट डिजाइन किये गये हैं।

पहले थल सेना में युद्ध और गैर युद्ध तैनाती के लिये एक ही पोशाक होती थी। लेकिन बाद में अलग-अलग मौसम परिस्थितियों के अनुसार अलग पोशाक की आवश्यकता महसूस की गई और तत्काल नयी कम्बैट या युद्ध पोशाक का विकास किया गया। साथ ही सामान रखने के लिये साथ बांधने वाले थैले में भी परिवर्तन किया गया है, जिसमें पाउच, गोली-बारूद, भोजन सामग्री और पानी आदि रखा जा सकता है। यह भार में हल्का होने के बावजूद अधिक टिकाऊ बताया जा रहा है।

नदी, नालों और समुद्र में डूबने से बचने के लिये जीवनरक्षक जैकेट बनायी गयी है। पहले उपलब्ध जैकेट पानी सोखने के कारण स्वयं डूबने लगते थे और उनकी तरणशीलता भी कम थी। नया जैकेट तरणशील पॉलीएथिलीन फोम का बना है, जिसमें मेलेमाइन यूरिया के अस्तर का बंद खोल है, और भार सिर्फ । किग्रा.। वायु सैनिकों के लिये भी आरामदायक स्वचालित

एक नजर अनुसंधान पर

थल, जल और वायु--तीनों सेनाओं में काफी अंतर है और उनके जवानों की जरूरतें भी भिन्न प्रकार की होती हैं। इन मूल आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए और विषम परिस्थितियों में सैनिकों को आवश्यक सुविधाएं प्रदान करने के लिए विभिन्न स्तरों पर अनुसंधान और विकास कार्य किया जा रहा है, ताकि हमारे सैनिकों का मनोबल ऊंचा रहे और वे हर हालत में देश की रक्षा का दायित्व निभा सकें।

देश में रक्षा संबंधी अनुसंधान और विकास कार्य हेतु 1948 में रक्षा अनुसंधान और विकास संगठन की स्थापना की गई थी। जिसके अंतर्गत देश भर में फैली 46 प्रयोगशालाएं विभिन्न रक्षा विषयों पर गहन अनुसंधान और विकास कार्यों में रत हैं, लेकिन जहां तक सैनिकों के लिए मौलिक आवश्यकताओं की बात है, संगठन के अंतर्गत 9 प्रयोगशालाएं इन विशिष्ट क्षेत्रों में काम कर रही हैं। 6 अन्य प्रयोगशालाओं से भी संबद्ध विषयों पर अनुसंधान कार्य में सहायता ली जाती है।

आइए एक नजर अनुसंधानशालाओं पर डालें कि सैनिकों के भोजन, वस्त्र, आवास और स्वास्थ्य के लिए कहां क्या हो रहा है। आपको यह जान कर सुखद आश्चर्य होगा कि सैनिकों हेतु उपयुक्त भोजन के लिए मैसूर में एक पूरी राष्ट्रीय प्रयोगशाला काम कर रही है, नाम है—रक्षा खाद्य अनुसंधान प्रयोगशाला जोकि शांति और युद्ध के दौरान भी सैनिकों के लिए पौष्टिक व संसाधित तथा ज्यादा समय तक ताजा बना रहने वाला आहार विकसित करने का कार्य कर रही है। यहां पर अंतरिक्ष यात्रियों के लिए तथा अंटार्कटिका अभियान के लिए भी उचित प्रकार के आहार विकसित किए गए हैं। डिब्बाबंद आहार और पेय में इसका प्रमुख योगदान है।

लद्दाख क्षेत्र में नियुक्त सैनिकों के लिए डेयरी, कुक्कुट-पालन, खरगोश पालन, सब्जियों और अनाज फसलों के विकास के लिए क्षेत्र अनुसंधान प्रयोगशाला, लेह में कार्य किया जा रहा है। प्रयोगशाला ने ठण्डे रेगिस्तानी क्षेत्र में पोलार्ड और विलो वृक्षों को उगा कर हरियाली लाने का प्रयास किया है।

अल्मोड़ा की रक्षा कृषि अनुसंधान प्रयोगशाला मध्यवर्ती हिमालय की ऊंचाइयों में कुक्कुटपालन और कृषिविज्ञान के विकास पर काम कर रही है ताकि इन क्षेत्रों में तैनात सैन्य दलों को ताजे अण्डे और सब्जियां आदि मिल सकें। रक्षा अनुसंधान प्रयोगशाला, तेजपुर उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों में सैनिक जीवन में सुधार के लिए खाद्य और पोषण अनुसंधान के साथ ही वहां व्याप्त रोगों पर भी काम करती है। यहां पर वर्षों से मशरूम कृषि, उपोष्ण सब्जी उगाने, बीज उत्पादन, सब्जी को सुखाने, पानी व मिट्टी का विश्लेषण, पौध रक्षण, चिकित्सा कीट विज्ञान आदि पर कार्य किया जा रहा है।

अब तक हुई खाने-पीने की बात, अब चलते हैं, विभिन्न साजो सामान के अनुसंधान में लगी प्रयोगशालाओं की ओर। रक्षा सामग्री व भण्डार अनुसंधान और विकास संस्थान, कानपुर एक बहु आयामी प्रयोगशाला है। यहां वस्त्र और हल्के अभियांत्रिक उपस्करों, सामग्री क्षरण और संरक्षण, जैविक विघटन, पेट्रोलियम और चिकनाई-कारकों पर अनुसंधान होता है। रक्षा जैव इंजीनियरी और विद्युत चिकित्सा प्रयोगशाला, बंगलूर ने सैनिक स्वास्थ्य और चिकित्सा हेतु विभिन्न प्रकार के उपकरण और विधियां विकसित की हैं। यहां पर तीनों सेनाओं द्वारा विभिन्न स्थानों में प्रयोग के लिए दस्ताने, मास्क और सूट विकसित किए गए हैं। स्वचालित इलेक्ट्रोकार्डियोग्राफ इसकी प्रमुख उपलब्धि है, जिससे हृदयरोगों की पूर्व सूचना हेतु मुद्रित सूचना प्राप्त

जीवन रक्षक जैकेट बनाया गया है। नौसेना के लिये भी, शार्क चेतावनी, सागर सक्रियित बैटरी, हीलियोग्राम और थल आपात स्थिति कोड से लेस जीवनरक्षक जैकेट बनाया गया है। इसमें कार्बनडाइ आक्साइड का सिलेंडर लगा है, साथ ही यह पहनने में आरामदायक भी है।

कभी तेज हवा है तो कभी तेज बारिश, कभी बर्फ की फुहार है तो कभी गोलियों की बौछार; इन सभी से बचाव के लिये तरह-तरह के हैल्मेट बनाये गये हैं। हैल्मेट एबीटी पालीस्टीरिन का बना है, जो युद्ध के दौरान दुर्घटना में टूट फूटे टुकड़ों को लगने से रोकता है। वायु सेना के लिये विकसित बाहय रक्षक हैल्मेट वायुयान दुर्घटना के समय सिर को बचाता है। आपातकाल में झटके से इसमें लगा एक पर्दा सामने आकर चेहरे को भी ढक कर सुरक्षा प्रदान करता है। एक हल्के एकीकृत हैल्मेट का विकास वायु सेना के लिये किया जा रहा है। । किग्रा. के इस हैल्मेट में आक्सीजन मास्क की भी व्यवस्था है। एक अन्य अत्यधिक विकसित हैल्मेट में ही संचार प्रणाली भी लगी है, जिसमें लगे माइक्रोफोन द्वारा दुर्घटनाग्रस्त सैनिक की आवाज नियंत्रण केन्द्र तक पहुंच सकती है।

हम जानते हैं कि पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति हर वस्तु को अपनी ओर खींचती है। इसे हम ''जी'' कहते हैं। वायु सैनिकों के लिये ''एण्टी जी'' सूट का निर्माण किया गया है। इसी प्रकार ऊंचे स्थानों पर वायु-

होती है।

दिल्ली स्थित रक्षा अग्नि अनुसंधान संस्थान मूलतः अग्नि-शमन और सुरक्षा उपकरणों व रसायनों के विकास के लिए काम कर रहा है। अनुसंधान और विकास संस्थान (इंजीनियरी), पुणे, इंजीनियरी, सैनिक पुल, टावर, नार्व, दाब व निर्वात चैम्बर आदि के क्षेत्र में अनुसंधान करता है। यहां ऊंचे स्थानों और अंटार्कटिका के लिए तैयार आवास का भी विकास किया गया है। रक्षा धातुकर्म अनुसंधान प्रयोगशाला, हैदराबाद में उपयुक्त पदार्थों का विकास, चालू रक्षा हार्डवेयर हेतु प्रौद्योगिकी, सेना के तीनों अंगों के लिए धातुकर्म संसाधन आदि विषयों पर कार्य किया जाता है। यहां विकसित बुलेटप्रूफ जैकेट के लिए जैकाल स्टील और बुलेट प्रूफ गाड़ी के लिए सामग्री विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

जरूरी चीजें रखने वाला विशेष एवं हल्का बैग

सैन्य आवश्यकताओं हेतु अनुसंधान में एक अलग आयाम जोड़ता है—नाभिकीय चिकित्सा और संबद्ध विज्ञान संस्थान, दिल्ली। यहां के प्रमुख विषय हैं: नाभिकीय चिकित्सा, विकिरण जीव विज्ञान, कैंसर अध्ययन और अंतःस्रावी विषयों पर अनुसंधान। उच्च विकिरण के प्रभावों का संस्थान में गहन अध्ययन किया गया है। इसी प्रकार रक्षा शरीर क्रिया और संबद्ध विज्ञान संस्थान, दिल्ली का कार्य भी बहुत महत्वपूर्ण है। जहां विशेषतया विभिन्न पर्यावरणीय प्रभाव में शरीरक्रिया, जैव रसायन, और पोषण पर काम होता है। मूलतः सैनिकों की शारीरिक और मानसिक क्षमता बढ़ाने में इस संस्थान का योगदान रहा है। हाल ही में संस्थान द्वारा 4,000 से 5,000 मीटर की ऊंचाई वाले स्थानों में सैन्य दलों पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभावों का अध्ययन किया है। विषाक्त प्रदूषकों और विद्युत चुम्बकीय व लेसर विकिरण के सैनिकों पर प्रभाव का भी अध्ययन किया गया है, जिनसे सुरक्षा उपायों में मदद मिलेगी।
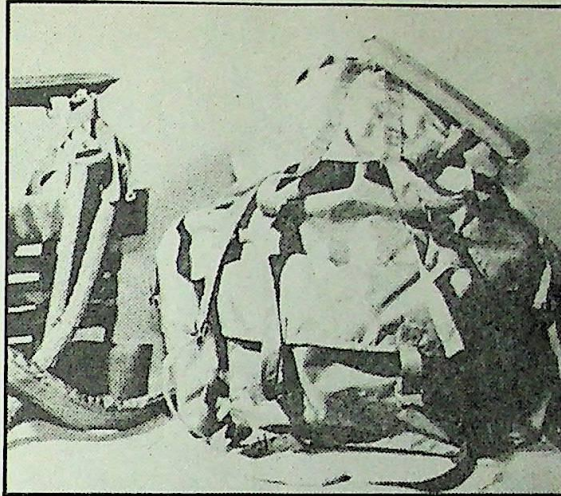
सैन्य मनोबल, प्रेरणा, तथा ऊंचे स्थानों सहित मानव अभियांत्रिकी समस्याओं पर रक्षा मनोवैज्ञानिक अनुसंधान संस्थान दिल्ली में उल्लेखनीय कार्य की सूचना है। संस्थान ने तीनों सेनाओं में चयन हेतु विस्तृत श्रेणियों में वृद्धि, अभिरुचि, व्यक्तित्व और विशिष्ट परीक्षणों हेतु मापदंड तैयार किए हैं।

सैनिकों के लिए घातक रसायनों और पीने के पानी आदि में कीटाणुओं या जहरीले पदार्थों का परीक्षण करना बहुत आवश्यक होता है, क्योंकि अनेक ठिकानों पर पारंपरिक पानी सप्लाई उपलब्ध नहीं होती। इस दिशा में ग्वालियर स्थित रक्षा अनुसंधान और विकास संस्था ने काफी काम किया है। यहां विषैली गैसों के प्रभाव से बचने और पानी आदि को संदूषण मुक्त रखने के लिए उपकरण विकसित किए गए हैं।

जोधपुर की रक्षा प्रयोगशाला विभिन्न क्षेत्रों में शोध करती है। रक्षा कार्यों में उपयुक्त परिवहन भी एक आवश्यकता है। अहमदनगर स्थित वाहन अनुसंधान और विकास संस्था में उपयुक्त प्रकार के वाहनों के विकास हेतु कार्य होता है।

ये एक झलक है देश भर में फैली रक्षा प्रयोगशालाओं में सैनिकों की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उच्च स्तरीय अनुसंधान की, जिनसे हम राष्ट्रीय रक्षा आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विदेशों पर निर्भरता को खत्म करने में वांछित योगदान की अपेक्षा कर सकते हैं। □

मनोज पटैरिया

मण्डलीय दाब कम हो जाता है, अतः दाब के कारण होने वाली शारीरिक विकृतियों से बचाव के लिये विमान चालकों हेतु "दाब सूट" बनाया गया है, जिससे कभी दुर्घटनावश काकपिट का दाब कम होने पर भी उन पर वायुमण्डलीय दबाव का असर नहीं होता।

पुराने जमाने में युद्ध में जाते वक्त सैनिक कवच पहनते थे, ताकि तीर तलवार के वार से बचा जा सके। लेकिन अब वह जमाना नहीं रहा। अब तो गोलियों से बचने के लिये, जैकेट पहनी जाती है। इसमें रक्षा धातुकर्म अनुसंधान प्रयोगशाला द्वारा विकसित जैकाल स्टील की 28 किग्रा./वर्ग मी. की परत लगाई गई है। पिस्तौल, रिवाल्वर, स्टेनगन मशीन कार्बाइन और ए के 47 राइफल के वार का इस पर असर नहीं होता। यदि परत की मोटाई 46 किग्रा./वर्ग मी. कर दी जाये तो ऐसी जैकेट पहनने वाले पर 7.62 मिमी. वाली स्वयं भरण राइफल और इसके समकक्ष हथियारों से 10 मीटर तक की दूरी से वार करने पर कोई असर नहीं पडेगा।

जैकाल स्टील के प्रयोग से सैनिकों के लिये बुलेट प्रूफ वाहन भी बनाये गये हैं। इसी प्रकार अग्नि रोधी तथा ज्वालारोधी पोशाकों का भी विकास किया गया है और सैनिकों को पूर्ण रूप से सक्षम बनाने के लिये नित नये अनुसंधान और समाधान प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

(शेषांश पृष्ठ 47 पर)

पौष्टिक आहार मिले तो..

सुभाष लखेड़ा

हमें काम करने के लिए ही नहीं, मात्र जीवित रहने के लिए भी ऊर्जा चाहिए। हमारे शरीर को यह ऊर्जा कार्बोहाइड्रेट, वसा तथा प्रोटीन के चयापचय से प्राप्त होती है। चयापचय की जटिल रासायनिक क्रियाएं सभी अंगों की ऊतक-कोशिकाओं में घटित होती हैं।

कोशिकाओं को चयापचय के लिए आवश्यक 'पोषाहार' रक्त से प्राप्त होता है। रक्त को यह पोषाहार हमारे द्वारा खाए हुये भोजन से मिलता है।

हमारे शरीर को प्रतिदिन कुल कितनी ऊर्जा चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर इस बात पर निर्भर करता है कि हम क्या कुछ करते हैं। हम जो भी काम करते हैं, उसके लिए हमें अपनी शारीरिक ऊर्जा का कुछ भाग खर्च करना पड़ता है। जब तक आहार से प्राप्त 'उपापचयज' शरीर को पर्याप्त ऊर्जा देते रहते हैं, तब तक शरीर में ऊर्जा का संतुलन बना रहता है। जब हमें अपनी जरूरत से कम आहार मिलता है या कुछ भी आहार नहीं मिलता है तब हमारा शरीर अपने अंदर आरक्षित वसा, कार्बोहाइड्रेट तथा प्रोटीन का उपयोग करने लगता है।

इस प्रकार से हमारे शरीर के संघटन एवं शरीर से प्राप्त की जाने वाली ऊर्जा, इन दोनों का हमारे आहार से बड़ा महत्वपूर्ण संबंध है। एक खिलाड़ी के लिए उसका शारीरिक संघटन एवं शरीर से प्राप्त होने वाली ऊर्जा दोनों ही अत्यधिक महत्वपूर्ण पहलू हैं। पिछले कई वर्षों से विभिन्न खेल प्रतियोगिताओं के स्तर में निरंतर सुधार को ध्यान में रखते हुए खिलाड़ियों के आहार पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता को आज खेलों से संबंधित सभी पक्ष महसूस करने लगे हैं। दुर्भाग्यवश, खिलाड़ियों, के आहार के संबंध में फैली अनेक अवैज्ञानिक धारणाओं, भ्रांतियों एवं किंवदन्तियों के कारण इसके विषय में उपलब्ध वैज्ञानिक जानकारी का अभी भी पूर्ण रूप से उपयोग नहीं हो पा रहा है।

यह सच है कि खिलाड़ियों को आहार संबंधी गलत एवं खतरनाक सलाह देने वालों की हमारे समाज में कमी नहीं है। इसके

अलावा खिलाड़ी स्वयं भी अपने किसी साथी के उच्चस्तरीय प्रदर्शन को देखकर उसके जैसा आहार खाने के चक्कर में पड़ जाते हैं। वे इस उक्ति को बिल्कुल भूल जाते हैं कि एक व्यक्ति का भोजन दूसरे व्यक्ति के लिये जहर भी हो सकता है।

कई ऐसे पदार्थों का, जिनके खाने से खिलाड़ी विशेष के खेल प्रदर्शन पर चमत्कारिक प्रभाव पड़ने के किस्से-कहानियां प्रचलित हैं जब वैज्ञानिक ढंग से परीक्षण किया गया तो ज्ञात हुआ कि उनको व्यर्थ ही अद्‌भुत शक्ति स्रोतों के रूप में पेश किया जाता रहा है। अतः यह बात प्रारंभ में ही स्पष्ट करनी आवश्यक है कि समृद्ध एवं संपूर्ण आहार खाने वाले खिलाड़ी को सुनी, सुनाई बातों के आधार पर अपने खेल प्रदर्शन को बेहतर बनाने के उद्देश्य से जादुई खाद्य पदार्थों की खोज में नहीं रहना चाहिए। आज पोषण की दृष्टि से सर्वोत्तम आहार कई वैज्ञानिक तरीकों से निर्धारित किया जा सकता है। और यह भी सच है कि एक खिलाड़ी के लिये निर्धारित आहार सभी के लिये सर्वोत्तम नहीं होता है।

बहरहाल, किसी भी खिलाड़ी को उसकी ऊर्जा आवश्यकताओं के अनुरूप उचित मात्रा में आवश्यक आहार मिलना चाहिए। यह भी आवश्यक है कि उसे वे खाद्य पदार्थ दिये जाएं जो उसकी रुचि के अनुरूप हों। मात्र पर्याप्त एवं रुचिकर आहार देना ही काफी नहीं है। उसे उसका आहार निश्चित अन्तरालों पर मिलना भी जरूरी है। यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि उसका आहार ग्रहण करने का तरीका आनन्ददायक हो। स्वच्छ एवं मृदु वातावरण में आहार ग्रहण करने से एक खिलाड़ी ही नहीं, अपितु कोई भी व्यक्ति स्वस्थ एवं प्रसन्नचित रहता है।

यदि किसी कारणवश वे पर्याप्त मात्रा में आहार ग्रहण न कर सकें तो उनका शरीर इसी कमी को अपने ऊतकों के चयापचय से पूरा करता है जिससे खिलाड़ी की खेल संबंधी क्षमताओं में गिरावट आने लगती है। दूसरी ओर यदि कोई खिलाड़ी अपनी आवश्यकता से अधिक आहार ग्रहण करता है तो उसके शारीरिक भार में वृद्धि हो सकती है जो उसके खेल प्रदर्शन के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकती है।

पौष्टिक आहार यानि शक्ति का भंडार

यूं आहार के तीन प्रमुख ईंधनों—कार्बोहाइड्रेट, वसा एवं प्रोटीन के बीच के अनुपात को लेकर खेल आहार विशेषज्ञों के विचारों में अभी भी कोई एकरूपता नहीं है। ऐसी स्थिति में व्यक्तिगत अनुभवों एवं सामान्य विवेक का उपयोग करना बेहतर रहता है। इन ऊर्जा स्रोतों की मात्रा के बीच का अनुपात किसी खिलाड़ी द्वारा खेले जाने वाले खेल की प्रकृति पर भी निर्भर करता है। 4700 ओलंपिक खिलाड़ियों का अध्ययन करने से ज्ञात हुआ कि वे औसतन 800 ग्राम कार्बोहाइड्रेट, 270 ग्राम वसा एवं 320 ग्राम प्रोटीनयुक्त आहार प्रतिदिन खाते हैं। इस प्रकार से एक उच्चस्तरीय खिलाड़ी सामान्यतया अपनी खेल संबंधी ऊर्जा आवश्यकताओं का 46 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट से, 35 प्रतिशत भाग वसा से एवं 19 प्रतिशत भाग प्रोटीन से प्राप्त करता है।

किसी खिलाड़ी के लिये अपनी खेल संबंधी प्राकृतिक योग्यताओं का विकास करने के लिये लगन एवं सर्जनात्मक प्रशिक्षण पद्धतियां अति महत्वपूर्ण हैं। यहां यह बताना अत्यावश्यक है कि 'इष्टतम पोषण' प्रशिक्षण का एक प्रभावकारी घटक है। यदि कोई खिलाड़ी अपने संपूर्ण प्रशिक्षण, प्रतियोगिता और पूर्व तथा पश्च प्रतियोगिता समय कालों के दौरान इष्टतम (आप्टिमम) पोषण विधान का अनुसरण नहीं करता है तो वह खेल प्रदर्शन की उच्चतम सीमाओं पर पहुंचने में असमर्थ हो उठता है।

सामान्य रूप से खिलाड़ी के पोषण कालों को हम निम्न चार हिस्सों में बांट सकते हैं :

1. प्रशिक्षण काल

2. पूर्व प्रतियोगिता काल
3. प्रतियोगिता काल
4. पश्च प्रतियोगिता काल

पोषण की दृष्टि से उपरोक्त चारों काल में किसी खिलाड़ी के लिये उसका प्रशिक्षण काल सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। चूंकि किसी खिलाड़ी की खेल प्रदर्शन क्षमता का सीधा संबंध उसके द्वारा प्राप्त गहन प्रशिक्षण से है अतः इस तथ्य पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाना चाहिये कि प्रशिक्षण समयावधि के दौरान खिलाड़ी को पर्याप्त आहार मिलता रहे।

उपरोक्त संदर्भ में यह ध्यान रखना जरूरी है कि खेल प्रशिक्षण के दौरान खिलाड़ी को दिये जाने वाले आहार में सभी आवश्यक पोषाहार होने चाहियें। इस संबंध में यह जानकारी आवश्यक है कि मनुष्य के लिये 46 पोषाहार आवश्यक हैं। एक आवश्यक पोषाहार का तात्पर्य आहार के उस घटक से है जो शरीर के लिये जरूरी है किन्तु जिसे हमारा शरीर अपने लिये किसी अन्य आहारीय घटक से स्वयं नहीं बना सकता है। अतः इन आवश्यक पोषाहारों की आहार में मौजूदगी बेहद जरूरी है। इनमें पानी, लिनोलीइक अम्ल, आठ या नौ एमिनो अम्ल, तेरह विटामिन एवं लगभग इक्कीस खनिज एवं ग्लूकोज आते हैं। इनमें से किसी भी पोषाहार के अभाव से खिलाडी की खेल क्षमता पर असर पड़ सकता है।

इस प्रकार पोषण की दृष्टि से पर्याप्त आहार शरीर को जल सहित आवश्यक पोषाहार प्रदान करता है और व्यक्ति विशेष की शारीरिक सक्रियता को उच्चतम स्तर पर बनाये रखने के लिये चयापचय संबंधी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इस संबंध में यह भी उल्लेखनीय है कि किसी खिलाड़ी के आहार के विषय में निर्णय लेने के लिये उस खिलाड़ी विशेष की शारीरिक बनावट, उसके द्वारा किये जाने वाले शारीरिक श्रम की मात्रा एवं प्रकृति, आहार के विभिन्न ईंधन स्रोतों की सापेक्षिक योग्यतायें, पाचन के दौरान विभिन्न पोषाहारों के बीच संभावित अन्योन्य क्रियायें तथा लंबी समयावधि के स्वास्थ्य संबंधी प्रभावों आदि की अद्यतन जानकारी बहुत जरूरी है।

बहरहाल, किसी खिलाड़ी के लिये आधारभूत आहार निश्चित करने के लिये खाद्य सामग्री के निम्नलिखित चार मुख्य समूहों का उपयोग आवश्यक है :

1. दूध एवं दुग्ध उत्पाद
2. मांस एवं अन्य प्रोटीन बहुल खाद्य पदार्थ
3. फल एवं सब्जियां
4. दलहन और अनाज

उपरोक्त चारों तरह के खाद्य समूहों का उपयोग इस प्रकार से किया जाना चहिये ताकि खिलाड़ी की ऊर्जा आवश्यकताओं की उचित तरीके से पूर्ति हो सके। सामान्यतया, प्रशिक्षण काल के दौरान एक औसत खिलाड़ी को प्रातःकालीन नाश्ते से 950 किलोकैलोरी, दोपहर के भोजन से 1250 किलोकैलोरी, सायंकाल से पूर्व वाले आहार से 350 किलोकैलोरी तथा रात्रि-भोजन से 1450 किलोकैलोरी ऊर्जा प्राप्त होनी चाहिये। इस संबंध में यह बात बहुत महत्वपूर्ण है कि किसी भी खिलाड़ी की आधारभूत आहारीय आवश्यकताओं को पूरा करने के बाद उसे दिये जाने वाले विशिष्ट पोषाहारों के विषय में सावधानी पूर्वक निर्णय लेना चाहिये। साथ ही विभिन्न पोषकों का आहारीय स्वरूप, उनकी सान्द्रता तथा ग्रहण किये जाने वाले समय कालों को भी तय करना महत्वपूर्ण है, क्योंकि पोषण संबंधी ये सभी बातें खेल-प्रदर्शन क्षमता को प्रभावित करती हैं।

जहां तक प्रतियोगिता पूर्व एवं प्रतियोगिता के दौरान लिये जाने वाले आहार का संबंध है, यह एक जटिल विषय है और इसका निर्धारण खिलाड़ी को 'खेल आहार विशेषज्ञ' की सलाह से करना चाहिये। आज कोई भी खिलाड़ी प्रशिक्षण तकनीकों एवं आहार के द्वारा अपनी 'कार्य सहन शक्ति' यानि लंबे समय तक उच्चस्तर पर शारीरिक सक्रियता को बनाये रखने की क्षमता को बढ़ा सकता है। यूं अब तक खिलाड़ियों के आहार के विषय में जो भी वैज्ञानिक कार्य हुआ है, उसके आधार पर संक्षेप में निम्नलिखित जानकारी मिली हैं :

1. अत्यधिक ऊर्जा व्यय करने वाले खिलाड़ियों को अल्प समयान्तरालों पर कुछ न कुछ ऊर्जा समृद्ध सामग्री खानी चाहिये।
2. प्रशिक्षण समयावधि में वृद्धि होने से ऊर्जा व्यय में वृद्धि होती है। अतः खाने के लिये बचने वाले अल्प समय के दौरान आहार को अधिक मात्रा में लेने की आवश्यकता पड़ती है।
3. भर पेट भोजन करने के बाद गहन खेल अभ्यास नहीं किया जाना चाहिये।
4. बहुत अधिक शारीरिक परिश्रम किये जाने वाले दिन खिलाड़ियों की ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये उन्हें सामान्य आहार सामग्री के अलावा कार्बोहाइड्रेट समृद्ध तरल आहार दिये जाने चाहिये।
5. यह धारणा खेल संबंधी अधूरी जानकारी पर आधारित है और गलत है कि खिलाड़ी प्रत्येक स्थिति में संतुलित ठोस आहार से अपनी ऊर्जा आवश्यकता पूरी कर सकता है।
6. यदि कोई खेल में सफलता प्राप्त करना चाहता है तो नियमित लंबे समय के गहन शारीरिक परिश्रम से पूर्व, दौरान एवं तुरंत बाद में कार्बोहाइड्रेटों (शर्करावर्गीय पदार्थों) की आपूर्ति अत्यावश्यक है और इन स्थितियों में तरल आहार लेना ही सबसे अच्छा रहता है। तरल आहार आमाशय से शीघ्रता से गुजरकर आंत्रपथ में तेजी से अवशोषित होता है और ऊर्जा की दृष्टि से शरीर को वापस सामान्य स्थिति में जल्दी पहुंचाता है।
7. अच्छे अभ्यस्त खिलाड़ियों के शारीरिक भार में उतार-चढ़ाव नहीं होने चाहियें। उन्हें यह ध्यान रखना चाहिये कि वे अपने शारीरिक भार को स्थायी बनाये रखने के लिये यथेष्ट मात्रा में आहार ग्रहण कर रहे हैं।
8. खिलाड़ियों की प्रोटीन संबंधी आवश्यकता उनके शारीरिक भार पर निर्भर करती है। यूं प्रतिदिन की प्रोटीन आवश्यकता 0.8 ग्राम प्रति किलोग्राम शारीरिक भार होती है और व्यायाम के कारण इसमें कोई विशेष वृद्धि नहीं होती है। अतिरिक्त प्रोटीन खाने से पेशियों के आकार तथा शक्ति में कोई फर्क नहीं पड़ता है। प्रोटीन की

(शेषांश पृष्ठ 41 पर)

परविन्दर सिन्धू
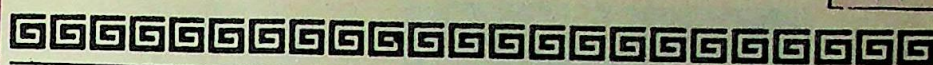
हाल में ही दो हीमोफीलिक बंधु अपने दुर्भाग्य के कारण चर्चा का विषय बने। जिस दुर्भाग्य का उन्हें सामना करना पड़ा वह वही महाविपत्ति थी, जिसने 20वीं सदी में एक विनाशक और घातक रोग के रूप में विश्व के, विशेष कर, मध्य और पूर्वी अफ्रीका, उत्तरी अमेरिका और कैरिबी द्वीप के लाखों लोगों को प्रभावित किया है। चिकित्सा के क्षेत्र में इस रोग को एक्वायर्ड इम्यून डेफिसियेंसी सिन्ड्रोम अथवा एड्स (AIDS) कहा गया।

यह आधुनिक प्लेग पश्चिमी यूरोप में त्रस्त कर देने वाली भयावह दर से फैल रहा है और इसकी भयानक सच्चाई यह है कि यह रोग अब तक इससे रहे एशिया में भी प्रवेश कर चुका है। इसने न केवल देशों और महाद्वीपों की सीमाओं को पार कर लिया है बल्कि आयु, लिंग और आर्थिक-सामाजिक सभी बाधाओं को भी पार कर लिया है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के वर्तमान अनुमान के अनुसार विश्व में कुल एड्स पीड़ित लोगों की संख्या लगभग 80 लाख है। अकेले भारत में ही एड्स पीड़ितों की संख्या तेजी से बढ़ी है। 1985-86 में यह संख्या 24 थी (भारत में परीक्षण किये गये प्रति हजार की दर से) जो ठीक पांच वर्षों में बढ़ कर 159 हो गयी है, जो इसकी बढ़ती हुई आपात समस्या का प्रमाण है।

यद्यपि, औषधियों की आयुधशाला में आज सभी प्रकार की औषधियां हैं किन्तु विषाणुओं के संक्रमण का प्रभावी रूप से सामना करने के लिए और भी उपक्रमों का विकास करना शेष है। एड्स के संदर्भ में तो विषाणुरोधी औषधियों की खोज और भी आवश्यक हो गयी है। इस संकट का आधुनिक जीवविज्ञान के पास क्या जवाब है?

स्पष्ट कहा जाये तो, एड्स एक विषाणु अन्य रोग है। अन्य विषाणु रोगों के समान यह भी असाध्य है। ऐसा इसलिए हैं क्योंकि संक्रामक विषाणु स्वयं को अपने शिकार की कोशिकाओं के भीतर सभी रोग निवारकों से छिपा कर रखता है। यद्यपि एड्स के लिए उत्तरदायी विषाणु ह्यूमन इम्यून डेफिशियेंसी वायरस (HIV) के सभी विशिष्ट गुण अन्य विषाणुओं के समान ही होते हैं किन्तु इसमें और अन्य विषाणुओं में एक स्पष्ट अंतर होता है कि यह सीधे शरीर की सुरक्षा प्रणाली पर ही आक्रमण करता है—शरीर के आंतरिक अंगरक्षक निरन्तर हमारे शरीर की अनेक अदृश्य शत्रुओं से रक्षा करने में जुटे रहते हैं। शरीर की सौ करोड़ खरब कोशिकाओं से बना प्रतिरक्षी तंत्र, शरीर की सुरक्षा के लिये मनुष्य को प्रकृति द्वारा दिया गया एक अनमोल उपहार है।

अन्य सभी विषाणु और अनाधिकार प्रवेश करने वाले रोगाणु इसी प्रतिरक्षी तंत्र द्वारा शरीर से दूर रखे जाते हैं। किन्तु, इसके विपरीत, एचआईवी का शिकार असहाय होकर दम तोड़ देता है क्योंकि यही प्रतिरक्षी तंत्र इस आक्रामक वायरस से शरीर की रक्षा नहीं कर पाता। प्रतिरक्षी तंत्र के पास तीन प्रकार की प्रमुख प्रतिरक्षी कोशिकाएं होती हैं, एक तो फैगोसाइट और अन्य दो प्रकार की लिम्फोसाइट (लसिका कोशिकाएं) होती हैं जिन्हें टी-कोशिकाएं और बी-कोशिकाएं कहते हैं। इनमें से हर एक की शत्रु को परास्त करने की अपनी ही अजब युक्ति होती है।

फैगोसाइट प्रतिरक्षी तंत्र के अपमार्जक अर्थात सफाई करने वाले होते हैं। यह प्रत्येक उस वस्तु के प्रति सतर्क रहते हैं जो यथा स्थान दिखायी न दे रही हो और जिस वस्तु पर जरा भी शंका हो उसका भक्षण कर नष्ट कर देते हैं। एक विशेष प्रकार के फैगोसाइट, मैक्रोफेज (वृहत्‌भक्षकाणु) इधर-उधर घूम रहे आक्रामक को भक्षण करने के बाद उस के शरीर से एक एन्टीजन (एक प्रकार की प्रोटीन) को छीन लेते हैं और उसे अपनी कोशिकाओं की सतह पर इस प्रकार प्रदर्शित करते हैं जैसे वह युद्ध में जीती हुयी पताका हो। प्रतिरक्षी तंत्र में यह पताका, शरीर में परिसंचरित विशिष्ट टी-कोशिकाओं को सतर्क करने में विशेष भूमिका निभाती है। टी-कोशिकाएं अपने शत्रु को उसके आकार से पहचानती हैं, जबकि मैक्रोफेज की सतह पर लगी प्रोटीन (एन्टीजन), टी-कोशिका की सतह पर प्रदर्शित प्रोटीनों, जिन्हें संग्राहक कहते हैं, की तहदार आकृति में ताले-चाबी की तरह मजबूती से फिट हो जाती है।

सहायक टी-कोशिकाएं पहले बाहरी एन्टीजन को अलग करती हैं। इन कोशिकाओं के पास कोई भी शस्त्र नहीं होते बल्कि वे तुरंत ही अवरोधक टी-कोशिकाओं की छोटी-छोटी टुकड़ियों को रासायनिक संदेश भेजती हैं, यह कोशिकाएं विशेष शत्रुओं की पहचान करने में सक्षम होती हैं। यह संदेश तेजी से फैलता है और यह छोटी सी टुकड़ी एक बड़ी सेना में बदल जाती है और यह सेना, इससे पहले कि वायरस बहुगुणित हो सके, संक्रमित कोशिकाओं की भित्ति को रासायनिक रूप से बेध देती हैं। इस "कोशिका घटित प्रतिरक्षा" प्रक्रिया में, विषाणु संक्रमित कोशिकाओं को हटा दिया जाता है।

सामान्य रूप से प्रतिरक्षी तंत्र में ये सहायक टी-कोशिकायें जिस तरह अनेक प्रक्रियाओं के संचालन का काम करती हैं उसी प्रकार निग्राही टी-कोशिकाएं, सहायक टी-कोशिकाओं की गतिविधियों को प्रतिबंधित करती हैं, जिससे प्रतिरक्षी प्रतिक्रिया में एक सतुलन बना रहता है। प्रतिरक्षी तंत्र

के आवश्यकता से अधिक सक्रिय होने का हल्का सा संकेत होते ही निग्राही टी-कोशिकाएं, सहायक टी-कोशिकाओं की गति-विधियों को नियंत्रित कर देती है।

प्रतिरक्षी तंत्र का अंतिम प्रमुख सैन्य दल है—बी-कोशिकाएं। ये रासायनिक अस्त्र यानि एन्टीबॉडी उत्पन्न करती हैं। यह एन्टीबॉडी प्रोटीन संरचनाएं हैं जो एन्टीजन की ठीक प्रतिरोधी और शत्रु का पहचान पत्र होती हैं। अनचाहे घुसपैठियों की सतह पर चिपक कर एन्टीबॉडी शरीर में उनके प्रवेश की गति को धीमा कर देती हैं और फैगोसाइट सरलता से उनका शिकार कर लेते हैं। जब ये उन्हें नष्ट करने के मूड में होती हैं तो एन्टीबॉडी शत्रुओं के एन्टीजन से जुड़ जाती हैं और रक्त के विशेष पदार्थों को आकर्षित करने लगती हैं, जिनसे जुड़ जाने के बाद बम की तरह विस्फोट होता है। यह वास्तव में "देहद्रवी प्रतिरक्षित अनुक्रिया" है।

इस प्रकार, जैसे ही कोई बाह्य कारक हमारे शरीर में प्रवेश करता है, तब यह दोनों प्रतिरक्षी क्रियाएं, जिनमें से एक टी-कोशिकाओं में और दूसरी बी-कोशिकाओं में केन्द्रित होती हैं, सक्रिय हो जाती हैं और आवश्यकतानुसार अलग-अलग या एक साथ मिल कर सुरक्षा कार्य करती हैं और बाहरी तत्व को पीछे हटने को बाध्य कर देती हैं।

एड्स विषाणु एचआइवी विशेष रूप से सहायक टी-कोशिकाओं को निशाना बनाता है और उसकी बाहरी प्रोटीन में से एक, *gp 120*, से संयुक्त होता है और फिर सहायक टी-कोशिकाओं के *CD 4* संग्राहक को पूरी तरह जकड़ लेता है। बाह्य प्रोटीन आवरण को नष्ट करने के बाद, विषाणु परपोषी कोशिका में प्रवेश करता है और उसके बाद परपोषी के आनुवंशिक पदार्थ में स्वयं को स्थापित करने के लिए संघर्ष करना आरंभ करता है।

सामान्यतया सभी ज़ीवों की कोशिकाओं में आनुवंशिकी सूचना डीएनए के रूप में उपस्थित होती है। इसके विपरीत एचआइवी एक रिट्रोवायरस है और अन्य रिट्रोवायरस की तरह इसमें भी आनुवंशिक सूचना आरएनए के रूप में होती है। परपोषी कोशिका में प्रवेश करने के बाद यह अपनी आरएनए रूपी आनुवंशिक सूचना को डीएनए के रूप में बदल लेता है। ऐसा करने के लिए यह एक विशेष प्रकार के एन्जाइम का प्रयोग करता है जिसे रिवर्स ट्रांसक्रिप्टेस के नाम से जाना जाता है जिसे बनाने का सामान हमेशा उसके पास होता है। तब विषाणु डीएनए के रूप में आराम से परपोषी कोशिका के आनुवंशिक पदार्थ में, उसका ही एक आवश्यक भाग बन कर स्थापित हो जाता है और यही कारण है कि इस पर औषधीय आक्रमण कोई प्रभाव नहीं डालता। इसके बाद अब वह व्यक्ति निश्चित रूप से एड्स का शिकार हो जाता

एड्स के विषाणु की अंतर्काट

है। यद्यपि नैदानिक निष्कर्ष प्रत्येक व्यक्ति के लिए अलग-अलग होता है। कुछ लोगों को इन्फलुएंजा जैसी छोटी बीमारी हो जाती है या प्रतिरक्षी कोशिकाओं, जिन्हें मोनोसाइट कहते हैं, की संख्या असामान्य रूप से बहुत अधिक बढ़ जाने से स्थिति का पता लगता है। कुछ लोगों में अनेक वर्षों तक रोग के कोई लक्षण नहीं होते, जबकि कुछ में रोग दो से पांच वर्षों या उस से भी अधिक समय में प्रकट होता है। दोषी विषाणु कई महीनों या वर्षों तक निष्क्रिय भी रह सकता है जब तक कि कोई घटना उसे सक्रिय न बना दे। तब यह सोया हुआ दानव जाग उठता है और परिणाम होता है केवल मृत्यु। इसका अर्थ यह हुआ कि जिन लोगों के एड्स से संक्रमित होने की जानकारी है, वे मृत्यु के कगार पर पहुंचे हुये लोग हैं, जबकि लाखों लोग ऐसे होंगे जिनमें विषाणु तो पल रहे होंगे किन्तु न रोग के कोई स्पष्ट लक्षण हैं और न वे बीमार ही दिखायी देते हैं। फिर भी, इस निष्क्रिय अवस्था में भी विषाणु स्थानांतरणीय होता है जैसा कि पूर्ण विकसित अवस्था में होता है। सक्रिय होते ही विषाणु इतनी तेजी से प्रजनित होता है कि नये जन्मे विषाणु कोशिका में छेद करके बाहर निकल आते हैं और अंत में परपोषी कोशिका मर जाती है। इसी के साथ, इस रोग के शिकार व्यक्ति के रक्त में सहायक टी-कोशिकाओं की संख्या तेजी से घटती जाती है और यही एड्स का प्रमाण चिन्ह है और रोगी अपने चारों ओर फैले अनेक खतरनाक माइक्रोबों से अपनी रक्षा करने में असमर्थ हो जाता है।

इन गुणों के विशिष्ट मेल के कारण एचआईवी का नियंत्रण ही कठिन नहीं होता बल्कि इस रोग का उपचार और इसकी रोकथाम के लिए वैक्सीन विकसित करना भी कठिन हो जाता है। आज सभी आण्विक जीव विज्ञानी और प्रतिरक्षा विज्ञानी मिलकर इसका उचित उपचार और साथ ही इस दानव को नियंत्रित करने के लिए रोग निरोधक उपाय ढूंढने का प्रयास कर रहे हैं।

आण्विक जीव विज्ञानियों ने अब कुछ उन प्रक्रियाओं का पता लगा लिया है जिनके द्वारा विषाणु प्रजनित होते हैं। इनमें से कई क्रियाओं को रोकने वाली औषधियां भी अनेक प्रायोगिक परीक्षणों के बाद बना ली गयी हैं। आजकल जिडोवुडीन, जिसे सामान्यतया एजिडोथाइमीडीन (AZT) कहते हैं, का प्रयोग किया जाता है, यह रिवर्स ट्रांस्क्रिप्टेस की क्रिया को रोक कर, विषाणु को बहुगुणित होने से रोक देती है। किन्तु लंबे समय तक इसके उपयोग से अस्थि मज्जा में स्थित रक्त कणिकाओं की पूर्ववर्ती कोशिकाओं के नष्ट होने का भय रहता है।

एचआइवी की रोकथाम के लिए की जाने वाली रसोचिकित्सा (कीमोथिरैपी) की दिशा में उन यौगिकों का प्रयोग, जो आनुवंशिक पदार्थ डीएनए का एक भाग बनाने वाले यौगिकों से कम किन्तु महत्वपूर्ण विसामान्यता रखते हैं, एक महत्वपूर्ण बनावट है। ये आधारभूत समधर्मी या एनालॉग
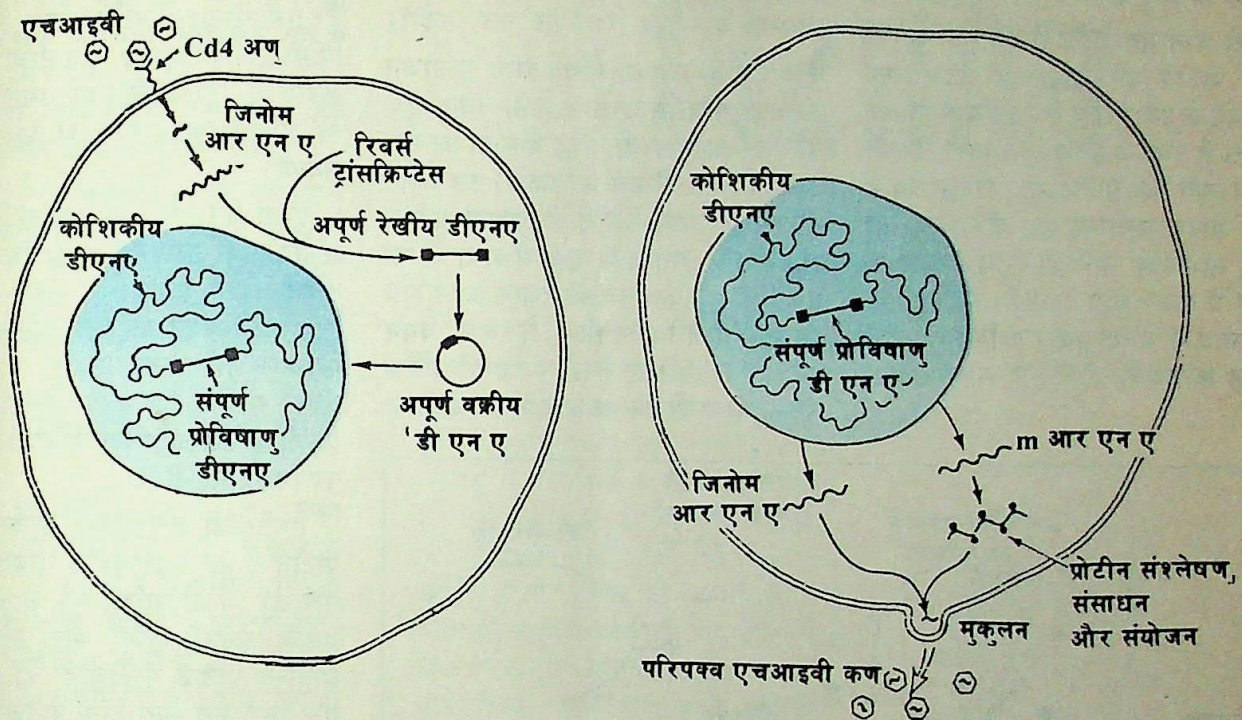
परपोषी कोशिका में एचआइवी के प्रवेश (बायें) और निकास (दायें) की अवस्था

डीएनए प्रतिकृति के प्रबल समापक होते हैं।

हाल में ही, एक आधारभूत समधर्मी जो एचआइवी प्रतिकृति को रोकता है, 2', 3' -डाइडीऑक्सीसाइटीडीन, खोजा गया है। इसे एक उपयुक्त विषाणुरोधी माना गया है। यह मुख द्वारा खिलाए जाने पर भली भांति अवशोषित हो जाता है और रुधिर-मस्तिष्क अवरोध को पार कर लेता है और इससे भी बड़ी बात यह है कि इसका जीवों पर विषैला प्रभाव बहुत हल्का होता है। तथापि विषाणुरोधी प्रभाव संबंधी इसकी पूरी क्रियाविधि अभी भी ज्ञात नहीं है।

विषाणु के नियन्त्रण की एक अन्य तार्किक विधि है– *CD4* प्रोटीन और विषाणुक की बाहरी प्रोटीन के संयोजन को रोकना, इससे विषाणु के सहायक टी-कोशिकाओं में प्रवेश को रोका जा सकता है। विषाणु की बाह्य प्रोटीन अथवा सहायक टी-कोशिकाओं के *CD4* अभिग्राहक को विशेष एन्टीबॉडी से घेर कर, विषाणु को टी-कोशिकाओं में जाने देने से रोका जा सकता है।

किन्तु इसे कार्यान्वित करना इतना सरल नहीं है। क्योंकि विभिन्न लिम्फोसाइटों द्वारा उत्पन्न एन्टीबॉडी की अलग-अलग विशेषताएं होती हैं। इसलिए, इस *CD4* प्रोटीन अभिग्राही के लिए विशेष एन्टीबॉडी प्राप्त करने के लिए, उन्हें उत्पन्न करने वाली बी-कोशिकाओं को अलग करके संवर्धित करना होगा। दुर्भाग्य से, शरीर के अंदर यह करना संभव नहीं है और शरीर के बाहर लिम्फोसाइट बहुत जल्दी मर जाती हैं।

आण्विक जीवविज्ञानी इसे कैंसर कोशिका के साथ मिला कर, लंबे समय तक जीवित रहने वाले लिम्फोसाइट का एक क्लोन उत्पन्न करने की तकनीक विकसित करने में लगे हैं। यह क्लोन कैंसर कोशिका से, जीव के बाहर लंबे समय तक जीवित रहने की क्षमता ग्रहण कर लेगा और लिम्फोसाइट से विशेष प्रकार की एन्टीबॉडी उत्पन्न करने की। बाह्य प्रोटीन आवरण पर आक्रमण करने वाली यह "मोनोक्लोनल एन्टीबॉडी" विषाणु के टी-कोशिकाओं में प्रवेश को सरलता से रोक सकेगी।

किन्तु पहले से ही संक्रमित कोशिकाओं का क्या होगा? यह विषाणु युक्त कोशिकाएं, एक के बाद दूसरी कोशिका को संक्रमित कर सकती हैं और एन्टीबॉडी बाह्य प्रोटीन के उस भाग तक नहीं पहुंच सकेंगी। अनुसंधानकर्त्ता इस कठिनायी पर शीघ्रातिशीघ्र विजय पाने का प्रयास कर रहे हैं।

संयम और उसके बाद वैक्सीन ही किसी विषाणु रोग का उत्तम निवारक उपाय है। एड्स जैसे रोग के लिए भी ऐसे ही किसी अभिगम की आवश्यकता है जिसकी अभी तक कोई प्रभावी चिकित्सा नहीं ढूंढी जा सकी है। किन्तु एड्स के लिए किसी वैक्सीन की खोज करना किसी चुनौती से कम नहीं है। वैक्सीन में रोग उत्पन्न करने वाले जीवों के हानिरहित परिवर्त, एन्टीजन होते हैं जिससे उपयुक्त प्रतिरक्षी प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है जो शरीर को शत्रुओं का सामना करने में सक्षम बनाती है लेकिन संक्रमण से पहले एड्स की वैक्सीन बनाने के मार्ग में अनेक कठिनाईयां हैं। एक तो यह है कि यदि सही माध्यम उपलब्ध न हो तो ऐसा विषाणु बनाना जो वैक्सीन के लिए एन्टीजन का स्रोत हो, सरल काम नहीं है। यही समस्या आज

एड्स के विषाणु के साथ भी है।

दूसरी बात यह है कि एचआइवी अपनी बाहरी प्रोटीन को बार-बार बदल कर वैज्ञानिकों के प्रयासों को स्पष्ट रूप से विफल कर देता है क्योंकि इससे एन्टीबॉडी उसकी पहचान नहीं कर पाती। यह जीनोम प्रवाह जिसके परिणामस्वरूप हर बार एक नया विषाणु सामने आ जाना ही एड्स वैक्सीन के निर्माण में सबसे बड़ी बाधा है। यद्यपि, एक ही वैक्सीन में अनेक प्रकार के विषाणु मिला कर इस कठिनायी को दूर किया जा सकता है।

इसके एन्टीजन होते हैं तब वे इस ब्लूप्रिंट को जीवाणु के अंदर स्थापित कर सकेंगे। जैसे-जैसे जीवाणु बहुगुणित होगा, एन्टीजन भी बड़ी मात्रा में उप्तन्न होगी, बिना एक सम्पूर्ण विषाणु के ही, शुद्ध वैक्सीन का मूल तत्व, वैक्सीन की एक उपइकाई। इस प्रकार थोड़े से ही प्रयास से कोई भी विषाणु प्रोटीन, शुद्ध रूप में, मनचाही मात्रा में प्राप्त की जा सकती है। लेकिन तब भी हजारों प्रश्न शेष रह जाते हैं जैसे कौन सी एन्टीजन का चयन करें? एक मिश्रित वैक्सीन जिसमें अनेक चुनी हुयी एन्टीजन का मिश्रण हो, असंख्या

एचआइवी वैक्सीन से विषाणु संक्रमित कोशिकाओं का विरोध करने वाली मारक कोशिका बनायी जा सकती है

एड्स वैक्सीन के निर्माण में अंतिम समस्या है—जीव में इसकी संदेहजनक प्रभावोत्पादकता जो इसे लंबे समय तक निष्क्रिय बनाये रखती है। ऐसे व्यक्ति किसी भी क्षण अपनी प्रतिरक्षी क्षमता खो सकते हैं। ऐसी स्थिति में रोग निवारण के लिए वैक्सीन का उपयोग न होना भी समझ में आता है। इस दुस्साध्य विपक्षी के विरुद्ध एक सुरक्षित और सस्ती वैक्सीन पुनर्योगज डीएनए तकनीक को उपयोग में लाना सबसे अधिक विश्वसनीय उपाय है। आनुवंशिक इंजीनियर अब किसी भी जीव की जीनों से उस भाग को अलग कर सकते हैं जिसमें विषाणुओं के विरुद्ध प्रतिरक्षा प्रदान करने में सक्षम होगी।

इसके विकल्प के रूप में, प्रयोगशाला में रासायनिक रूप से कुछ ऐसी पेप्टाइड बनायी जा सकती हैं जिसमें सशक्त विषाणु एन्टीजन हो और वांछित प्रतिरक्षा उत्पन्न कर सकें। किन्तु यह ऊपर वर्णित उपइकाई वैक्सीन के सर्वथा विपरीत हैं, जहां वैज्ञानिकों की सारी मेहनत छोटे-छोटे जीवाणुओं से बड़ी मात्रा में वांछित विषाणु पेप्टाइड उत्पन्न करने में ही लग जाती है। इन विश्लेषिक पेप्टाइडों का एचआइवी के विरुद्ध सक्रिय प्रतिरक्षा संस्थापना संबंधी परीक्षण जीवों पर पहले ही किया जा चुका है। ऐसी पेप्टाइडों के विश्लेषण से, जो बिना किसी विपरीत प्रभाव के एन्टीबॉडी उत्पन्न करती हैं, ऐसी वैक्सीन का निर्माण भी संभव हो सकेगा, जो एड्स का मुकाबला कर सकेगी।

एड्स विषाणु का सामना करने की संभावना से पूर्ण एक अन्य बिल्कुल नयी तकनीक भी प्रकाश में आयी है। इसमें विषाणु के अंशों को अंतः क्षेपित (इंजेक्ट) बिल्कुल नहीं करना पड़ता, बल्कि इसके अतिरिक्त यह तथाकथित स्व-प्ररूप-रोधी (एन्टी-इडिओटाइप) एन्टीबॉडी के उपयोग पर निर्भर करती है।

एन्टीबॉडी अणु विशेष आकार की ऐसी प्रोटीन है जो एक विशेष बाहय पदार्थ के प्रत्युत्तर में उत्पादित की जाती है। इस प्रकार समान रचना और कार्यविधि के बावजूद प्रत्येक एन्टीबॉडी की संरचना में एक विलक्षण भाग होता है जिसे स्वप्ररूप अथवा इडिओटाइप कहते हैं। यही इडिओटाइप एक विशेष एन्टीजन से एक विशेष स्थान, इपिटोप, से जुड़ता है। प्रोटीन होने के कारण एन्टीबॉडी, किसी भी जीव में अंत:क्षेपित करने पर एन्टीजन की तरह भी काम कर सकती हैं। इन्हें स्वप्ररूप-रोधी एन्टीबॉडी कहते हैं। किसी भी वैक्सीन में स्वप्ररूप-रोधी एन्टीबॉडी एक प्रतिरक्षी अनुक्रिया प्रदान करने के लिए वास्तविक एन्टीजन के रूप में काम कर सकती है।

स्वप्ररूप-रोधी वैक्सीन के अनेक लाभ हैं। पहला, इससे लंबे समय तक लगातार एन्टीजन की आपूर्ति बनाए रख कर, एन्टीजन स्रोत की कमी को दूर करने में सहायता मिलेगी और अचानक ही होने वाले विषाणुओं के संक्रमण के प्रति शरीर का प्रतिरक्षी तंत्र सचेत रहेगा। सबसे बड़ी बात तो यह है कि ऐसी वैक्सीन, अन्य वैक्सीनों की अपेक्षा अधिक सुरक्षित है। ऐसा इसलिए है क्योंकि इसमें बाद में बची वैक्सीन में रह गये विषाणु कणों के कारण कोई बीमारी फैलने का खतरा नहीं होता। ऐसा सामान्यता उन वैक्सीनों में होता है जिनमें सम्पूर्ण विषाणु को ही प्रतिरक्षी वैक्सीन बनाने के लिए उपयोग में लाया जाता है। इसके अतिरिक्त

(शेषांश पृष्ठ 23 पर)

विटामिन

सुधीर कुमार

(पर्दा उठता है। दर्शकों की अपार भीड़। कुछ समय बाद मंच पर विटामिन का प्रवेश। दर्शक तालियां बजाकर उनका हार्दिक अभिनन्दन कर रहे हैं। विटामिन दर्शकों का अभिनन्दन स्वीकारते हुये अपना वक्तव्य प्रारंभ करते हैं।)

विटामिन : मैं विटामिन हूं। लोग मुझे प्राप्त करने के लिये विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों को बड़े चाव से खाते हैं। मैं महंगे से महंगे और सस्ते से सस्ते खाद्य पदार्थों में सहजता से मिल जाता हूं।

दर्शक : यदि ऐसा है तो कुछ लोग आपकी कमी से विभिन्न रोगों के शिकार कैसे हो जाते हैं?

विटामिन : हां आपकी बात सही है। इसका कारण बताता हूं मैं आपको। कुछ लोग आलसी एवं अर्थाभाव के कारण या खाद्य पदार्थों को उचित रूप से प्रयोग नहीं करने पर विभिन्न तरह के रोगों को अपने सिर मढ़ लेते हैं। इसमें मेरा क्या दोष? पूर्वजों के आशीर्वाद से मेरे परिवार में बहुत सदस्य हैं और अधिक सदस्यों के कारण मेरे पूर्वजों ने मुझे सुविधा के लिये दो भागों में बांटा है। एक 'जल में घुलनशील' तथा दूसरे 'वसा में घुलनशील'। आइये पहले मैं आपको जल में घुलनशील सदस्यों से मिलवाऊं।

(विटामिन बी$_1$ का प्रवेश)

विटामिन बी$_1$: भाइयो मैं विटामिन बी$_1$ हूं। मेरा रासायनिक नाम थायमिन है। मैं अण्डा, मांस, दूध, गोभी, केला, मूंगफली, अनाजों के अंकुर में सहजता से मिल जाता हूं। आप सब जो भी फल खाते हैं उनके छिलके को बेहिचक फेंक देते हैं लेकिन आपको यह नहीं मालूम कि मैं छिलके में अत्यधिक मात्रा में पाया जाता हूं। मैं आपके शरीर में जाकर कार्बोहाइड्रेट और वसा को सुपाच्य बनाता हूं और शरीर में जाकर पानी की मात्रा को संतुलित करता हूं। आपको मेरी कमी का अनुभव तब होता है जब आपकी मांसपेशियों में क्षीणता, हृदय दुर्बलता एवं बेरी-बेरी नामक रोग हो जाते हैं। अब आप मेरे छोटे भाई से मिलिये।

(विटामिन बी$_2$ का प्रवेश)

विटामिन बी$_2$: मैं विटामिन बी$_2$ हूं। मेरा रासायनिक नाम राइबोफ्लैविक है। मैं हरी सब्जियों, दूध, पनीर, खमीर, मांस और कलेजी में पाया जाता हूं। मैं भोज्य पदार्थ के उपापचय का काम करता हूं। मेरी कमी से सिरदर्द, आंखों में जलन, कमजोर स्मृति, दिमागी थकावट उत्पन्न होती है। वो देखो हमारा छोटा भाई भी आ गया।

(विटामिन बी$_3$ का प्रवेश)

विटामिन बी$_3$: मैं विटामिन बी$_3$ हूं। मुझे पैन्टोथेनिक अम्ल भी कहते हैं। मैं अण्डे, मांस, कलेजी, खमीर, दूध, मूंगफली तथा टमाटर में बहुतायत में पाया जाता हूं। मेरी उपस्थिति से त्वचा और बाल पूर्णरूप से स्वस्थ होते हैं। मेरी कमी से त्वचा रोग, मन्द बुद्धि, सफेद बाल एवं प्रजनन क्षमता कम हो जाती है। आओ भईयो तुम भी अपना परिचय दो न।

(विटामिन बी$_5$ का प्रवेश)

विटामिन बी$_5$: मैं विटामिन बी$_5$ हूं। मैं ताजे मांस, कलेजी, मछली, अनाज, दाल, खमीर में अधिकाधिक रूप में पाया जाता हूं। मैं कार्बोहाइड्रेट के उपापचय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हूं। मुझे उपयोग नहीं करने पर त्वचादाह या

पेलाग्रा, जीभ और त्वचा पर दाने तथा पपड़ियां, तंत्रिका तंत्र में दुर्बलता तथा पागलपन जैसे अनेक रोग हो जाते हैं। मुझे विटामिन पी.पी. भी कहते हैं मेरा रासायनिक नाम निकोटीनिक अम्ल या नियासिन है। अरे भइया, तुम आगे आओ न तुम न हो तो बस। अरे तुम सभी आगे आओ न क्यों पीछे-पीछे जा रहे हो।

(विटामिन बी₆ का प्रवेश)

विटामिन बी₆ : मैं विटामिन बी₆ हूं। मेरा रासानिक नाम पाइरीडॉक्सीन है। मैं दूध, खमीर, मांस, कलेजी, अनाज, सोयाबीन, मटर, सेम में पाया जाता हूं। मैं प्रोटीन के उपापचय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हूं। मेरी कमी से एनिमिया, त्वचा रोग एवं पेशियों में ऐंठन होती है।

(विटामिन बी₁₂ का प्रवेश)

विटामिन बी₁₂ : मैं विटामिन बी₁₂ हूं। मैं सायनोकोबाला रासायनिक नाम से जाना

जाता हूं। मैं अण्डा, कलेजी, मांस, मछली, दूध, पनीर में मिलता हूं। मेरी कमी का अनुभव मंदबुद्धि तथा एनिमिया रोग होने पर होता है।

(विटामिन एच का प्रवेश)

विटामिन एच : मैं विटामिन एच हूं। मैं गेहूं, अण्डा, मूंगफली में सहजता से मिल जाता हूं। मेरे अभाव में बालों का झड़ना, त्वचा रोग, दुर्बलता होने के आसार दिखते हैं।

(विटामिन सी का प्रवेश)

विटामिन सी : मैं विटामिन सी हूं। मुझे एस्कार्बिक अम्ल भी कहते हैं। मैं अनेक प्रकार के फल जैसे नींबू, संतरा, मौसमी, हरी सब्जियों, टमाटर, अण्डे, दूध, पनीर में मिलती हूं। मेरी उपस्थिति से हड्डियां, दांत मजबूत रहते हैं। संयोजी उतक के निर्माण में भी मेरा बहुत योगदान है। मेरी अनुपस्थिति से एनिमिया तथा स्कर्वी नामक भयानक रोग उत्पन्न होते हैं। आओ फोलिक भइया।

(फोलिक अम्ल का प्रवेश)

फोलिक अम्ल : मैं फोलिक अम्ल हूं। मैं हरी पत्तियों, कलेजी, सोयाबीन, खमीर में मिलता हूं। प्राणियों में डीएनए के संश्लेषण में मेरी महत्वपूर्ण भूमिका है। मेरी कमी से मन्दबुद्धि तथा एनिमिया जैसे रोग हो जाते हैं।

जल में विलेय सभी विटामिनों का प्रस्थान और विटामिन का प्रवेश

विटामिन : अभी आप मेरे परिवार के उन सदस्यों से मिले जो जल में घुलनशील हैं। आइये अब वसा में घुलनशील सदस्यों से मिलें।

(वसा में घुलनशील विटामिनों का बारी-बारी से प्रवेश)

विटामिन ए : मैं विटामिन ए हूं। मैं रेटीनॉल के रासायनिक नाम से जाना जाता हूं। मैं दूध, मक्खन, अण्डा, कलेजी, मछली का तेल, गाजर हरी सब्जियों में बहुतायत में पाया जाता हूं। मेरी उपस्थिति से प्राणियों में एपिथिलियमी स्तरों की वृद्धि

तथा विकास होता है। मेरी कमी से रतौंधी नामक बीमारी हो जाती है।

विटामिन डी : मैं विटामिन डी हूं। मैं मक्खन, कलेजी, अण्डे की जर्दी, मछली का तेल, सूर्य के प्रकाश में पायी जाती हूं। मैं कैल्सियम, फॉस्फोरस, कार्बोहाईड्रेट तथा वसाओं के उपापचय में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हूं। मेरी कमी से ऑस्टियोमेलेसिया तथा रिकेट्स या सूखा रोग हो जाता है।

मैं सूर्य की रोशनी में पायी जाती हूं इसलिये नवजात शिशु को प्रातः सूर्य के प्रकाश में रखने की हिदायत दी जाती है जिससे उनकी हड्डी मजबूत एवं स्वस्थ रहे। मैं कैल्सिफेरॉल के रासायनिक नाम से जानी जाती हूं।

विटामिन ई : मैं विटामिन ई हूं। मुझे टोकोफेरॉल भी कहते हैं। मैं हरी सब्जियों, अण्डों की जर्दी, दूध, मक्खन, अनाज में सरलता से मिलता हूं। मेरी कमी के कारण प्रजनन क्षमता में कमी और पेशियां कमजोर हो जाती हैं।

विटामिन के : मैं विटामिन के हूं। मुझे नैफथोक्विनोन भी कहते हैं। मैं हरी पत्तिदार सब्जियों, टमाटर, फल, मछली, अण्डा, कलेजी, दूध और पनीर में मिलती हूं।

मेरे ही कारण यकृत में प्रोथ्रॉम्बिन का निर्माण होता है। मेरी कमी से शरीर के किसी भाग के कट जाने पर खून बहना

बन्द नहीं होता है क्योंकि कटे हुए स्थान पर रक्त का थक्का नहीं जमता है।

(विटामिन का प्रवेश)

विटामिन : अभी आप मेरे दूसरे सदस्यों से मिले। ये सभी मेरे परिवार के सदस्य हैं। इनकी कमी व अधिकता दोनों ही आपके स्वास्थ्य के लिये हानिकारक हो सकते हैं इसलिये आप लोग अपने भोजन में विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों का नियमित उपयोग करें जिससे भिन्न-भिन्न रोगों से मुक्ति पाने में आप हमेशा सफल रहें। अच्छा, अब मैं चलता हूं साथ ही आशा करता हूं कि आप मेरी हिदायत याद रखोगे।

(विटामिन का प्रस्थान)

पर्दा गिरता है। □

[श्री सुधीर कुमार, द्वारा-मिथिलेश कामत, शोध छात्र, वनस्पति विभाग, रामकृष्ण महाविद्यालय, मधुबनी, बिहार- 847211]

(शेषांश पृष्ठ 20 का)

स्वप्ररूप-रोधी वैक्सीन में एक समस्या दोषपूर्ण रचनात्मक पद्धति की भी होती है जिससे प्रयोगशाला में निर्मित पेप्टाइडों या जीन क्लोनीकरण द्वारा उत्पादित एन्टीजन खतरे में पड़ जाती है। ऐसी वैक्सीन एक अकेली एन्टीजन स्थिति के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करने में बहुत विशिष्ट होती है।

यद्यपि अभी तक कोई उपचार संभव नहीं है, और एड्स के विरुद्ध संघर्ष, आधुनिक चिकित्सा जगत में एक चुनौती सिद्ध हो रहा है। इसकी वास्तविक विलगन की कहानी और वह गति जिस से इस दोषी विषाणु की पहचान की गयी और एक वैक्सीन बनाए जाने के लिए किये गये अथक प्रयास, यह सभी एक उत्तेजित रोमांच के प्रतीक हैं। □

[परविन्दर सिन्धू, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली- 110012]

[प्रस्तुति—श्रीमती विनीता सिंघल, पी.आइ.डी., नई दिल्ली- 110012]
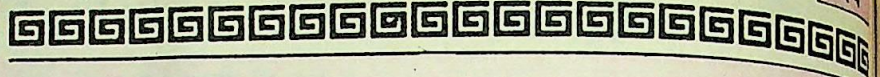
पुरस्कृत प्रश्न

स्पिरिट शरीर पर लगते ही ठंडा क्यों लगता है?

[जयंत कुमार, ग्रा. एवं पो.-अमरपुर, भागलपुर-813 101, बिहार]

सभी पदार्थों को वाष्पीकृत होने के लिये ऊष्मा की आवश्यकता होती है, लेकिन पानी जैसे कुछ पदार्थों को वाष्पीकृत होने के लिये अधिक ऊष्मा की आवश्यकता होती है। परन्तु कुछ पदार्थ जैसे स्पिरिट, एल्कोहल इत्यादि को वाष्पीकृत होने के लिये बहुत कम ऊष्मा की आवश्यकता होती है और यह अपने आसपास के वातावरण से भी ऊष्मा प्राप्त कर आसानी से वाष्पीकृत हो सकते हैं। इन्हें वाष्पशील पदार्थ कहते हैं। जब स्पिरिट हमारे शरीर के किसी भाग पर लगता है तो यह शरीर से ऊष्मा ग्रहण कर वाष्पीकृत हो जाता है। इसीलिये हमें उस भाग में ठंडा प्रतीत होता है।
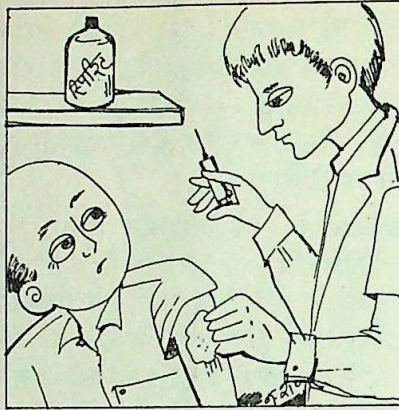
नीरू सलूजा

जब कोई भी व्यक्ति किसी सोच की मुद्रा में बैठा होता है तो अचानक ऊपर से किसी वस्तु के गिरने से स्वयं को बचाने के लिये व्यक्ति के हाथ स्वतः उसे पकड़ने के लिये क्यों और कैसे बढ़ जाते हैं?

[महेन्द्र चौहान, बबीना कैन्ट-284 401, झांसी, उ.प्र.]

हमारे शरीर में होने वाली सभी क्रियाओं को सम्पन्न करने के लिये आदेश मस्तिष्क से प्राप्त होते हैं। परन्तु इस तरह की अचानक होने
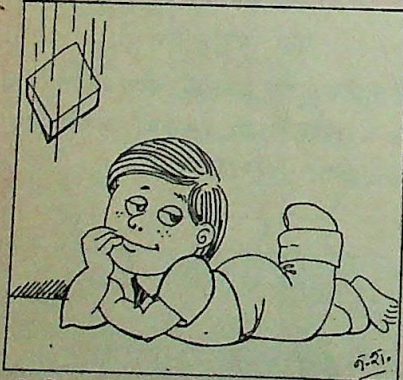
वाली क्रियाओं के आदेश तुरंत रीढ़ रज्जु से ही निश्चित अंग तक पहुंच जाते हैं। इन क्रियाओं को प्रतिवर्ती क्रिया कहते हैं। इन क्रियाओं को सम्पन्न होने में बहुत ही कम समय लगता है। इसलिये हमें इनके करने में कुछ भी सोचना नहीं पड़ता और यह अचानक ही हो जाती हैं।

नीरू सलूजा

जब पानी उबलता है तो उसमें से बुलबुले उठते हुए दिखायी देते हैं, किन्तु जब दूध उबलता है तो उसमें से बुलबुले उठते हुए क्यों नहीं दिखायी देते?

[विकास भटनागर, एल-785, शास्त्री नगर, मेरठ]

जब दूध उबलता है तो उसमें उपस्थित वसा गर्म होने पर पिघलकर, हल्की होने के कारण ऊपर एक सतह बना देती है जिसमें से भाप बुलबुले बन कर निकल नहीं पातीऔर ऊपर की ओर दबाव डालती है जिस कारण से दूध में उबाल आता है। लेकिन पानी में ऐसा नहीं होता।
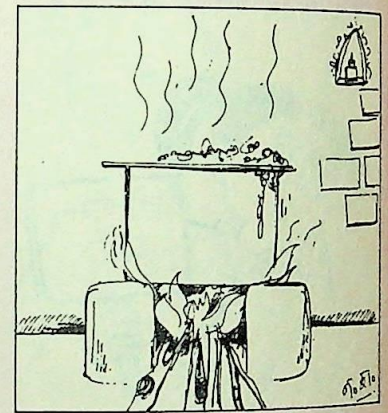
100° से. पर पानी उबलने लगता है और भाप बुलबुलों के रूप में उसमें से निकल कर वातावरण में समाती जाती है।

मीनाक्षी

कभी-कभी हमारे पैर क्यों सो जाते हैं?

[ऋषि कुमार खदरिया, गावस्कर मार्केट, हनुमानगढ़, राजस्थान]

कभी-कभी एक ही अवस्था में बैठने से पैर सुन्न हो जाते हैं जिसे हम पैर का "सो जाना" कहते हैं। एक ही अवस्था में बैठे रहने से पैरों की नसों पर अथवा रक्त वाहिकाओं पर दबाव पड़ता है जिससे उस भाग में रक्त प्रवाह रुक जाता है या कम हो जाता है जिससे पैर निर्जीव सा हो जाता है। कभी-कभी बहुत अधिक सर्दी के कारण भी हाथ पैरों की धमनियां सिकुड़ जाती हैं व उस भाग में रक्त प्रवाह ठीक से नहीं हो पाता। इस कारण भी प्रायः हाथ पैर सो जाते हैं।
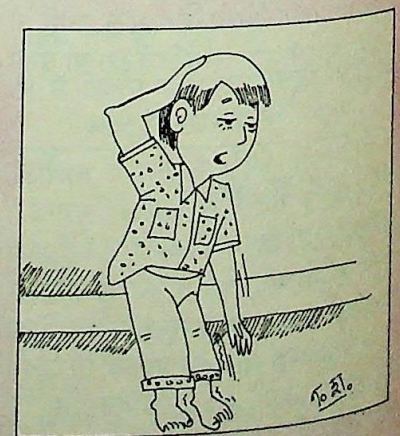
स्नेह प्रभा मेहता

जब सैनिक टुकड़ियां किसी पुल से गुजरती हैं तो उन्हें कदम मिलाकर चलने से मना कर दिया जाता है इसका क्या कारण है?

[नवीन कुमार द्विवेदी, भवनाथपुर, पलामू बिहार]
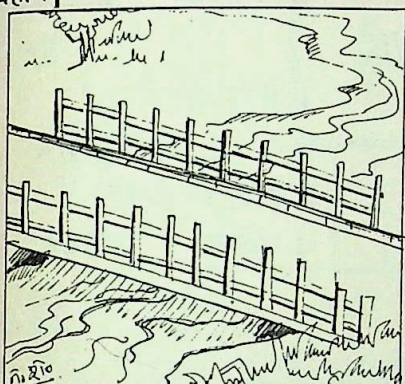
किसी ध्वनि स्रोत द्वारा उत्पन्न ध्वनि तरंगें कभी-कभी किसी अन्य निकटवर्ती वस्तु में भी तीव्र कंपन उत्पन्न कर देती हैं। यह केवल तभी संभव है जब निकटवर्ती वस्तु की ध्वनि तरंगों की प्राकृतिक आवृत्ति, स्रोत द्वारा उत्पन्न ध्वनि तरंगों की आवृत्ति के समान हो। इस सिद्धांत को अनुनाद कहते हैं। यही कारण है कि जब कोई सैनिक दल किसी दोलन पुल से गुजरता है तो सैनिकों को कदम से कदम मिलाकर न चलने का आदेश दिया जाता है अन्यथा उनके कदमों की आवृत्ति पुल की प्राकृतिक आवृत्ति के समतुल्य हो जाने की संभावना रहती है जिससे पुल में तीव्र और खतरनाक अनुनाद कंपन उत्पन्न हो सकते हैं और पुल टूट भी सकता है।

पूनम भट्ट

पियानो, सितार आदि जैसे वाद्ययन्त्रों में एक खोखला बाक्स लगाया जाता है, क्यों?

[संजय कुमार, बरबट्टा कालोनी, सोनपुर, सारण, बिहार]

तार से बजने वाले संगीत के वाद्यों जैसे सितार, गिटार आदि के निर्माण में लकड़ी का हवा से भरा एक खोखला बॉक्स होता है जिसे 'साउन्ड बाक्स' अथवा 'रैसोनेटर' या 'अनुनादक' कहते हैं। इसके ऊपर धातु के तार एक पुल की सहायता से लगे होते हैं। इन तारों को छेड़ने से तारों में कम्पन आरंभ हो जाते हैं जिसके कारण ध्वनि पैदा होती है। जब यह ध्वनि रैसोनेटर में जाती है तो अनुनाद के कारण ध्वनि और अधिक तेज हो जाती है। कम्पन करते हुये तारों की कुछ ऊर्जा पुल से होती हुयी रैसोनेटर की

दीवारों तक पहुंच जाती है जिससे लकड़ी की दीवारों में भी कम्पन आरंभ हो जाते हैं। जब यह कम्पन अनुनादक के चारों ओर की हवा में जाते हैं तो आवाज तेज सुनायी देने लगती है। संगीत मय ध्वनि को तीव्र करने के लिये ही इन वाद्यों में एक खोखला बॉक्स अनुनादक के रूप में लगाया जाता है।

राजीव गुप्ता

पत्तियों का रंग हरा क्यों होता है?

[श्लोक श्रीवास्तव, वेरक्ती इण्टर कालेज, आजमगढ़]

पत्तियों में एक पिगमेंट या वर्णक क्लोरोफिल होता है जो सूर्य के प्रकाश को अवशोषित कर, उसकी ऊर्जा के प्रयोग से अपना भोजन स्वयं बनाने की क्षमता रखता है, इस क्रिया को प्रकाशसंश्लेषण कहते हैं। यह वर्णक क्लोरोफिल हरे रंग का होता है, यानि कि यह प्रकाश के सभी रंगों को अवशोषित कर केवल हरे रंग को ही परावर्तित कर देता है, जिस कारण हमें पत्तियों का
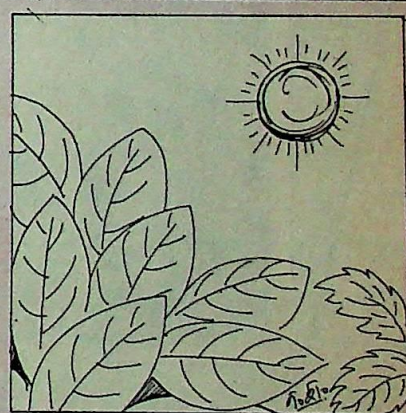
रंग हरा दिखाई देता है।

मीनाक्षी

प्रत्येक जन्तु का एक निश्चित और विशेष रंग ही क्यों होता है? जैसे भैंस का काला?

[राजेश खण्डेवाल, मुरैना, म.प्र.]

प्रत्येक जन्तु का प्रकृति में एक निश्चित रंग होता है, जैसे भैंस का काला, कौवे का काला, गाय का सफेद, भूरा, काला व तोते का हरा। यह जन्तु विशेष का अपना आनुवंशिक
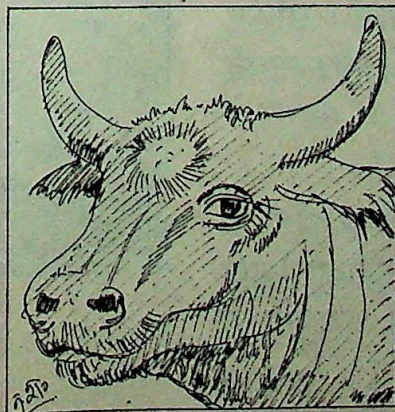
लक्षण होता है। इसका अभिप्राय यह है कि हर जीव का हर लक्षण निश्चित करने वाली जीन हमारी कोशिकाओं में उपस्थित क्रोमोसोमों में स्थित होती हैं। किस जन्तु का क्या रंग होगा, यह देखना उन्हीं का काम है और वह ही यह संदेश देते हैं कि कौन सा रंग का वर्णक उस जन्तु में आये।

मीनाक्षी

इलेक्ट्रानिक माली

राजीव रंजन
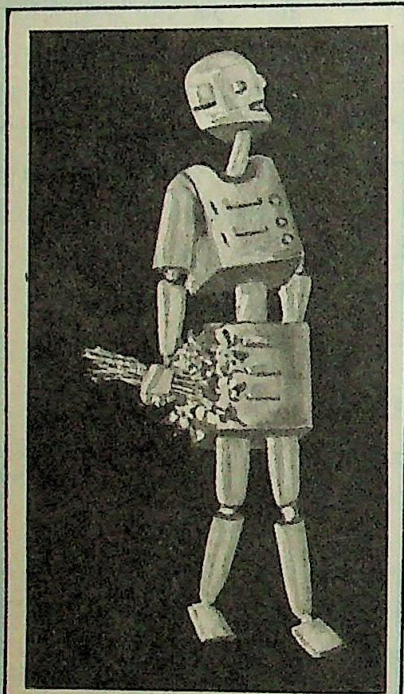
अगर आप फूल-पत्तियां लगाने के शौकीन हैं, तो आपके लिये अपनी अनुपस्थिति में पौधों की नियमित देख-भाल एक चिन्तनीय विषय बन जाता है। लेकिन आज के युग में ये छोटी-छोटी समस्यायें कोई मायने नहीं रखतीं खास कर जब फूल पत्तियों के मामले में आपने कोई 'इलेक्ट्रानिक माली' रखा हो।

'इलेक्ट्रानिक माली', मुख्य रूप से पौधों को पानी देने सम्बन्धी बातों को ध्यान में रखते हुये तैयार किया गया है। इसे निम्नलिखित घटकों की सहायता से घर में ही बना सकते हैं।

घटकों की सूची

आई.सी.	एन ई 555
डायोड (ड₁)	डी आर 50
(ड₂)	डी आर 50
कंडेन्सर (क₁)	470 माइक्रो फैरेड/12 वोल्ट
(क₂)	100 किलो पिको फैरेड
परिवर्तनशील प्रतिरोध (प₁) तथा (प₂)	1 मेगा ओह्म
रिले	6 वोल्ट, 200 ओह्म
मोनो जैक पिन	बड़े आकार का
बैटरी एलीमिनेटर	9 वोल्ट, 1 एम्पीयर
कूलर पम्प	

संरचना

'इलेक्ट्रानिक माली' के परिपथ में एक टाइमर एकीकृत परिपथ (आई.सी.) का उपयोग किया गया है। परिपथ चित्र में आई सी के पिन नं. 2 को परिवर्तनशील प्रतिरोध (प₁) के द्वारा अर्थ किया गया है, पिन नं. 6, 7 को आपस में जोड़ा गया है और इन्हें
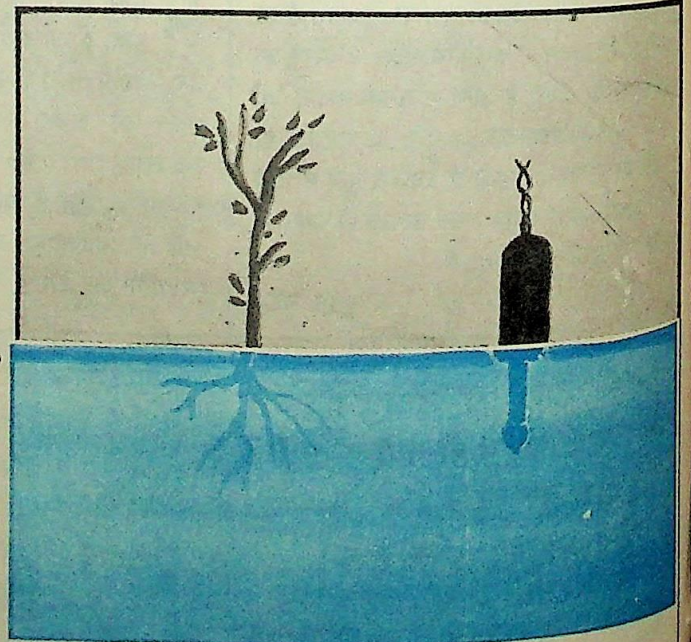
भूमि में जैक पिन की स्थिति
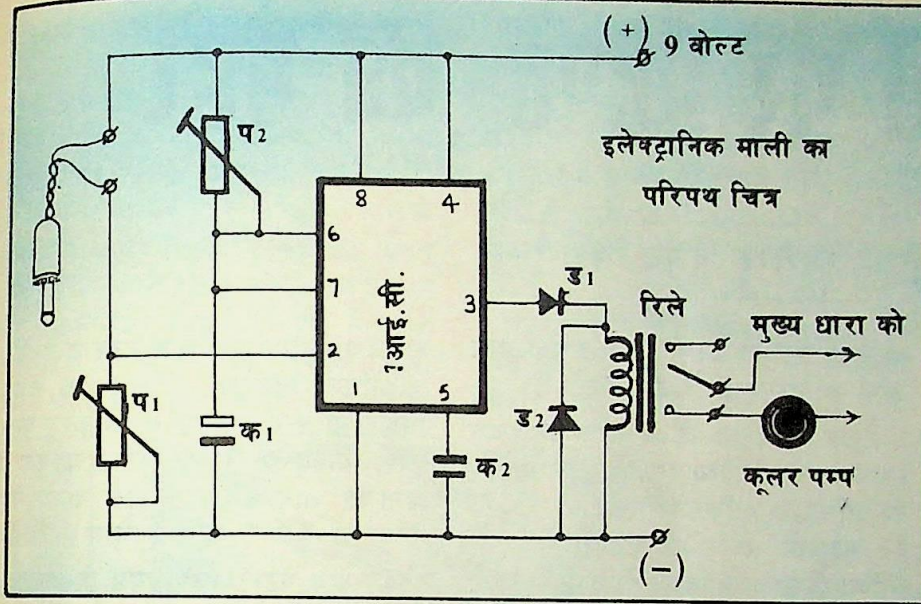
सी. के 'ट्रिगरिंग काम्परेटर' को उत्तेजित करती है जो आउट पिन नं. 3 पर वोल्टेज के रूप में प्रगट होकर डायोड (ड1) की मदद से रिले को ऑन करती है, और रिले, कूलर पम्प को। रिले के ऑन व ऑफ की प्रक्रिया से उत्पन्न प्रेरित धारा से परिपथ की रक्षा हेतु डायोड (ड2) का उपयोग किया गया है।

अब ये प्रश्न उठता है कि पौधे को कब पानी की आवश्यकता है और कब नहीं? इन प्रश्नों के उत्तर मिट्टी तथा पौधे विशेष पर निर्भर हैं। अतः इस तरह के परिवर्तन हां की स्थिति में परिवर्तनशील प्रतिरोध (प1) एवम् नहीं की स्थिति में (प2) की सहायता से करते हैं।

एक अन्य परिवर्तनशील प्रतिरोध (प2) के द्वारा धनात्मक सप्लाई देते हुये कंडेन्सर (क1) से अर्थ किया गया है। पिन नं. 4 और 8 को सीधे धनात्मक सप्लाई से जोड़ा गया है। पिन नं. 1 और 5 को क्रमशः सीधे तथा कंडेन्सर (क2) के द्वारा अर्थ किया गया है। इसी परिपथ में संपर्क प्रोबों के एक-एक छोर धनात्मक सप्लाई तथा आई.सी. के पिन नं. 2 से जोड़े गये हैं। संपर्क प्रोबों के बचे हुये दोनों छोरों को भूमि से जोड़ा है। आई.सी. का पिन नं. 3 आउटपुट है जिसे डायोड (ड1), (ड2) और रिले से जोड़ा गया है।

कार्य प्रणाली

इस परिपथ की कार्य प्रणाली भूमि की आर्द्रता एवम् शुष्कता पर निर्भर करती है। जैसा कि हम जानते हैं, मिट्टी की चालकता आर्द्रता तथा शुष्कता की ओर जैसे-जैसे अग्रसर होगी वैसे-वैसे वह विद्युत धारा के प्रवाह में, क्रमशः कम एवम् अधिक प्रतिरोधात्मक रुख ग्रहण करेगी।

धूप और अन्य कारणों से संपर्क प्रोबों के बीच की मिट्टी की नमी में आए ह्रास के कारण संपर्क प्रोबों के बीच प्रवाहित हो रही विद्युत धारा के माध्यम का प्रतिरोध बढ़ जाने परिणाम स्वरूप आई.सी. के पिन नं. 2 पर वोल्टेज में आई कमी, आई सी. के 'ट्रिगरिंग

निर्माण विधि

चित्रानुसार परिपथ में सारे घटकों को एक कुचालक बोर्ड पर यथा स्थान लगा दें और उसे एक आकर्षक बक्से में बंद कर दें। आप चाहें तो बैटरी एलीमिनेटर को भी इसी बक्से में लगा सकते हैं। यह सुविधा की दृष्टि से उत्तम होगा। परिवर्तनशील प्रतिरोधों को बक्से के ही अंदर इस प्रकार से समायोजित करें कि उन्हें बाहर से ही घुमाया जा सके।

संपर्क प्रोबों के लिए मोनो जैक पिन का प्रयोग करें तथा इसे भूमि में ही इस प्रकार दृढ़ता से स्थिर कर दें कि वह मिट्टी के गीला होने पर भी मजबूती से टिका रह सके।

सावधानी

मोनो जैक पिन को ऐसी जगह स्थिर करें जहां पानी सबसे अंत में पहुंचता हो। □

[श्री राजीव रंजन, डी.ई.ई. हाऊस 559सेक्टर- I/बी, बोकारो इस्पात नगर, बिहार- 827 012]

आविष्कारों पर पेटेण्ट की मुहर

बुधेन्दु विजय मिश्र

आपको मालूम होगा कि टेलीफोन के आविष्कारक ग्राहम बेल ने जब टेलीफोन का आविष्कार किया, तो उसे पेटेन्ट कराने से पहले जनता के सामने प्रदर्शित कर दिया। फलस्वरूप बेल के पेटेन्ट आवेदन से पहले पेटेन्ट कार्यालय में अनेक लोगों ने टेलीफोन के पेटेन्ट के आवेदन प्रस्तुत कर दिये, जिससे एक विवाद उठ खड़ा हुआ। हालांकि इस प्रकरण में विजय बेल की हुई, लेकिन उन्हें व्यर्थ मुकद्दमा लड़ना पड़ा और साक्ष्यों के आधार पर यह सिद्ध करना पड़ा कि टेलीफोन के पहले और वास्तविक आविष्कारक वही हैं। लेकिन जरा कल्पना कीजिए कि जब आविष्कार प्रणाली न रही होगी, तब क्या स्थिति होती होगी।

सामान्यतया ज्ञान के प्रति जिज्ञासा तथा नवीन खोज की चेष्टा मानव का स्वाभाविक गुण रहा है। परन्तु तकनीकी क्षेत्र में नए आविष्कार के लिए उपयुक्त प्रशासनिक स्वीकृति तथा संरक्षण व्यवस्था का अभाव विभिन्न देशों में सदियों तक रहा। अतः आविष्कारक को निरन्तर यह भय रहता था कि उसके द्वारा विकसित वस्तु या उत्पादन के आधार पर कोई अन्य व्यावसायिक लाभ न हासिल कर ले और मूल आविष्कारक को संबंधित लाभ से वंचित रहना पड़े। पेटेन्ट व्यवस्था से इस समस्या का निराकरण हो सका। पेटेन्ट को हिन्दी में एकस्व या एकस्वाधिकार नाम दिया गया है। किसी आविष्कार के पेटेन्ट की स्वीकृति से आविष्कारक को सरकार की ओर से जो मान्यता प्राप्त होती है वह इस प्रकार है :

पेटेन्ट प्राप्त कर्ता अपनी आविष्कृत तकनीक से होने वाले आर्थिक लाभ या सम्मान का अधिकारी है। आविष्कृत प्रविधि को लाभकारी ढंग से उत्पादन कार्य में या तो वह स्वयं उपयोग कर सकता है अथवा अन्य किसी को हस्तान्तरित कर सकता है।

पेटेन्ट व्यवस्था के अन्तर्गत निश्चित समय के लिए आविष्कृत तकनीक के उपयोग का अधिकार आविष्कारक को प्राप्त होता है। मान्यता अवधि के अंदर कोई अन्य व्यक्ति या संस्था आविष्कारक की सम्मति के बिना पेटेन्ट आविष्कार का उपयोग नहीं कर सकता।

आविष्कार के वैधानिक संरक्षण का आरम्भ औपचारिक रूप से सबसे पहले इंग्लैंड में हुआ था। यद्यपि पेटेन्ट शब्द का प्रयोग बाद में हुआ। भारत में 1856 में आविष्कार संरक्षण व्यवस्था को वैधानिक मान्यता प्राप्त हुई। सही अर्थों में स्वतन्त्रता के बाद इस विषय पर विवेचन किया गया और समय-समय पर हुए अनेक परिवर्तनों के बाद 1970 में भारतीय पेटेन्ट अधिनियम पारित किया गया।

पेटेन्ट व्यवस्था से सबसे अधिक लाभान्वित होने वाला देश संयुक्त राज्य अमेरिका रहा, जहां 1790 में राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन के समय प्रथम पेटेन्ट अधिनियम लागू किया गया, जिसका संशोधन 1836 मे हुआ। बाद में और अनेक संशोधन परिवर्द्धन किए गए।

सन् 1965 तक अमेरिका में तीस लाख से अधिक पेटेन्ट स्वीकार किए जा चुके थे और इसी अवधि में औद्योगिक क्षेत्र में क्रांतिकारी प्रगति हुई। प्रसिद्ध वैज्ञानिक मार्क ट्वाईन ने कहा था—"अच्छी पेटेन्ट व्यवस्था एवं अच्छे पेटेन्ट अधिनियम के बिना कोई राष्ट्र ऐसी गाड़ी के समान है जो केवल पीछे या पार्श्व की ओर जा सकती है, आगे नहीं बढ़ सकती।"

भारतीय पेटेन्ट अधिनियम के अनुसार नवीन एवं उपयोगी प्रक्रिया, यन्त्र या मशीन, औद्योगिक निर्माण, धात्विक या द्रवीय मिश्रण या अन्य उपयोगी सुधार करने वाला कोई व्यक्ति या संस्था पेटेन्ट कानून के अन्तर्गत आवश्यक शर्तें पूरी करने पर, पेटेन्ट प्राप्त करने के लिए योग्य होता है।

भारतीय पेटेन्ट अधिनियम के अन्तर्गत पेटेन्ट की परिभाषा इस प्रकार है : पेटेन्ट से तात्पर्य सरकार द्वारा स्वीकृत वह मान्यता है जो पेटेन्ट कार्यालय के माध्यम से दी जाती है एवं मान्यता प्राप्त पेटेन्ट धारक को निर्धारित अवधि के लिए आविष्कार संबंधी एकस्वाधिकार प्रदान करती है। जिसके अंतर्गत स्वयं आविष्कार का उपयोग करना अथवा अन्य को उसके उपयोग का अधिकार देना सम्मिलित है।

आविष्कार संरक्षण की अवधि विभिन्न देशों में अलग-अलग है, जो मुख्यतः 14 से 20 वर्ष तक की है। भारत में यह सीमा 14 वर्ष तक के लिए है। संयुक्त राज्य अमेरिका एवं कनाडा में 17 वर्ष के लिए है। यह मान्यता आविष्कारक एवं सरकार के मध्य एक विधि मान्य व्यवस्था है जिसके अंतर्गत पेटेन्ट प्राप्त कर्ता अपने आविष्कार से संबंधित सभी प्रकार के लाभ का अधिकारी होता है तथा अन्य किसी को वैधानिक रूप से इसके दुरूपयोग से रोक सकता है।

अब देखें, कि कोई आविष्कार, पेटेन्ट कैसे होता है। किसी आविष्कार या सुधार पर पेटेन्ट प्राप्त करने के लिए पेटेन्ट कार्यालय में आवेदन करना होता है, जिसमें ये बातें होनी आवश्यक हैं : पेटेन्ट के नियंत्रक के नाम आवेदन-पत्र, आविष्कार या सुधार सम्बन्धी पूर्ण विशिष्टि विवरण, स्पष्ट दावों के अन्तर्गत विशिष्ट नवीनता वाले पहलुओं का स्पष्टीकरण, घोषणा पत्र, सम्बन्धित रेखा चित्र और निर्धारित आवेदन शुल्क।

इनमें पेटेन्ट विशिष्टि अत्यन्त महत्वपूर्ण है, जो विषय वस्तु की पूरी विवेचना होती है। इसमें आविष्कार का पूर्ण विवरण स्पष्टतया किन्तु संक्षेप में वर्णित होना चाहिए। इसके लिखने का तरीका कुछ विशिष्ट कानूनी शैली का होता है। आवेदन स्वीकृत होने के लिए यह आवश्यक है कि संबंधित विषय क्षेत्र की जानकारी रखने वाला पाठक इसे पढ़ कर आविष्कार के दावे के बारे में स्पष्ट जानकारी प्राप्त कर सके। विषय संबंधी वर्णन की दृष्टि से इसकी तुलना एक विशिष्ट विज्ञान लेख से की जा सकती है। पेटेन्ट विशिष्टि तैयार करना एक विशेष कार्य है। इसीलिए इसके लिए पेटेन्ट कार्यालय ने कुछ ऐजेण्टों को नामांकित किया है, जो निर्धारित शुल्क लेकर कानूनी तथा तकनीकी दृष्टि से पेटेन्ट हेतु विशिष्टियां तैयार करते हैं। यद्यपि किसी आविष्कार के पेटेन्ट के लिए इन ऐजेण्टों से विशिष्टि तैयार करानी आवश्यक नहीं है, तथापि स्वयं तैयार की गई विशिष्टियों की तुलना में ऐजेण्टों द्वारा तैयार विशिष्टियां अधिक स्पष्ट, कानूनन सुदृढ़, क्रमबद्ध तथा तकनीकी दृष्टि से ज्यादा उपयुक्त होती हैं।

भारत में अब तक लगभग डेढ़ लाख से अधिक पेटेन्ट विशिष्टियां प्रकाशित की जा चुकी हैं। भारतीय पेटेन्टों में से करीब 70 प्रतिशत विशिष्टिया अन्तर्राष्ट्रीय पेटेन्ट समझौते के अन्तर्गत विभिन्न देशों को भेजी जाती हैं। तथा अन्य अनेक देशों के पेटेन्ट विवरण भारत में अवलोकनार्थ प्राप्त होते हैं।

पेटेन्ट विशिष्टि (स्पेशिफिकेशन) में इन तथ्यों का होना आवश्यक है : आविष्कार या विकास का शीर्षक, आवेदक का नाम, राष्ट्रीयता, निवास, किसी संस्था से संबंधित होने पर उस संस्था की स्वीकृति तथा पता, विशिष्टि के प्रारम्भ में आविष्कार के उद्देश्य के बारे में संक्षिप्त ब्यौरा, आविष्कार की संक्षिप्त पृष्ठ भूमि, सम्बन्धित पूर्व-पेटेन्ट या तकनीक का विवरण जिसकी तुलना में नया आविष्कार श्रेष्ठ है, संलग्न चित्र का विभिन्न दृष्टिकोणों से विवरण, जिससे सुधार/विकास के दावे को समझाया जा सके।

जब किसी आविष्कार, विकास या सुधार हेतु पेटेन्ट कार्यालय को आवेदन प्राप्त होता है, तब निम्नांकित दृष्टिकोण से उस पर विचार किया जाता है। अर्थात किसी आविष्कार में, पेटेन्ट पाने के लिए इन गुणों को होना आवश्यक है: सम्बन्धित आविष्कार से नवीन व उपयोगी परिणाम मिलें, वह बड़ी मात्रा में उपयोगी हो और सामान्या या स्वीकार्य हो, उत्पादन सम्बन्धी किसी पुरानी समस्या को हल करता हो, पहले किये गये असफल प्रयासों पर सफलता प्राप्त हो, वाणिज्यिक रूप से व्यवहार्य हो, कम खर्चीला, उत्तम दक्ष एवं उपयोगी हो जिसमें नवीनता एवं सुधार का होना भी आवश्यक है।

पेटेन्ट अधिनियम के अन्तर्गत पेटेन्ट कार्यालय तथा न्यायालय पेटेन्ट संबंधी आवेदनों/मामलों पर विचार करते समय उपरोक्त बातों पर ध्यान देते हैं। अतः पेटेन्ट प्राप्त करने के लिये इन विषयों को ध्यान में रखकर आवेदन तथा पेटेन्ट विशिष्टि प्रस्तुत करनी होती है। लेकिन इन गुणों के होने के बावजूद भी स्वास्थ्य या सामाजिक नैतिकता की दृष्टि से हानिकारक कोई प्रविधि या मशीन जो अनैतिक या अवैधानिक उत्पादन के लिए हो, पेटेन्ट के योग्य नहीं है।

पेटेन्ट के आवेदन को एक संख्या पेटेन्ट कार्यालय द्वारा दी जाती है। बाद में यदि

पेटेन्ट स्वीकार (सील) कर लिया गया हो, तो उसे एक भारतीय पेटेन्ट क्रमांक जारी किया जाता है। सील होने से पहले जनता के अवलोकनार्थ और आपत्तियों व निराकरण के लिए निर्धारित केन्द्रों पर पेटेन्ट विशिष्टियों को रखा जाता है, तत्पश्चात् सभी तरह से आश्वस्त हो जाने के बाद किसी आविष्कार पर पेटेन्ट की पूर्ण स्वीकृति की मुहर लगती है।

भारत में इंग्लैंड के अनुकरण पर आविष्कार संरक्षण की वैधानिक स्वीकृति का प्रथम अधिनियम, 1856 में पारित किया गया। उसके बाद क्रमशः 1859, 1888 तथा 1911 में इस अधिनियम में आवश्यक संशोधन किये गये। 1911 में ही पहली बार पेटेन्ट शब्द व्यवहार किया गया था। 1911 के अधिनियम में पेटेन्ट विषय को परिभाषित किया गया एवं इस क्षेत्र के प्रबन्ध के लिए पेटेन्ट एवं डिजाइन के कन्ट्रोलर के कार्यालय की स्थापना हुई, जो इस अधिनियम के कार्यान्वयन सम्बन्धी सारे प्रबन्ध के लिए उत्तरदायी है। इस का मुख्यालय कलकत्ता में है। स्वतन्त्रता के बाद विभिन्न अध्ययनों के आधार पर यह अनुभव किया गया कि भारतीय उद्योग के प्रोत्साहन के लिए पुराने अधिनियम में सुधार तथा विस्तार की आवश्यकता है। फलस्वरूप भारतीय पेटेन्ट अधिनियम, 1970 पारित किया गया। आवेदन पत्र तथा अन्य कार्यवाही की सुगमता के लिए नई दिल्ली, बंबई एवं मद्रास में तीन क्षेत्रीय पेटेन्ट कार्यालय हैं, जो अपने निर्धारित क्षेत्रों के पेटेन्ट आवेदनों पर विचार करते हैं। आविष्कारकों, उद्यमियों, विधिज्ञों तथा जन साधारण की जानकारी के लिए देश भर में विभिन्न विश्वविद्यालयों व अन्य वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक संस्थानों में 30 पेटेन्ट निरीक्षण केन्द्रों का चयन किया गया है, जहां पर पेटेन्ट विशिष्टियां तथा पेटेन्ट संबंधी जानकारी अवलोकनार्थ उपलब्ध होती है।

पेटेन्ट व्यवस्था के प्रोत्साहन तथा संबंधित सुविधाओं के अधिक प्रसार के लिए हाल ही में पेटेन्ट सूचना व्यवस्था की स्थापना नागपुर में की गयी है। यहां देश-विदेश के पेटेन्ट दस्तावेज तथा अन्य प्रकाशन उपलब्ध हैं। प्रसार की दृष्टि से यह केन्द्र पेटेन्ट संबंधी प्रलेखन सेवा का भी प्रकाशन करता है। इस प्रकार देश में औद्योगिक विकास तथा मूलभूत अनुसंधान के साथ ही उद्यमियों और आविष्कारों के हित में पेटेन्ट प्रणाली को अधिक कारगर तथा उपयोगी बनाया गया है।

पेटेन्ट विषयक अधिक जानकारी के लिये पाठक इस पते पर पत्राचार कर सकते हैं. पेटेन्ट व डिजाइन के महानियंत्रक, 214, आचार्य जगदीश बोस रोड, कलकत्ता-700 020। □

[श्री बुधेन्दु विजय मिश्र, वैज्ञानिक (प्रलेखन अधिकारी), केन्द्रीय यांत्रिक अभियांत्रिकी अनुसंधान संस्थान, दुर्गापुर]

सुरेश नाडकर्णी

"डाक्टर! डाक्टर! जरा देखिये, मेरे गले में क्या हो गया है? मेरी तो आवाज ही बैठ गई है। मैं बोल भी नहीं पा रहा हूं..."

"ओह! तुम्हें तो कंठशोथ यानि लैरिन्जाइटिस हो गया है। आपकी आवाज इस रोग की गवाह है।"

"यह नया रोग कौन सा है डाक्टर? मैंने तो इसके बारे में पहले कभी नहीं सुना।"

"वैसे भी, क्या तुम्हें पता है कि स्वर यंत्र या लैरिंक्स क्या होता है?"

"बिल्कुल पता है डाक्टर साहब। यह मैंने पढ़ाई के दौरान शरीर क्रिया विज्ञान और स्वास्थ्य विज्ञान के अन्तर्गत पढ़ा है। स्वर यंत्र का अर्थ है– स्वरकोष्ठक यानि जहां से ध्वनि उत्पन्न होती है।"

"ठीक! इस कोष्ठक की श्लेष्मक झिल्ली में जलन या सूजन आने को ही कंठशोथ या लैरिंजाइटिस कहते हैं। इसी से आवाज बैठ जाती है।"

"इसका मतलब डाक्टर, यह और कंठ दाह दोनों एक-जैसी बीमारियां हैं?"

"दो बीमारियां एक जैसी कैसे हो सकती हैं? रमेश! तुम्हारा टेंटुआ या एडम्स एप्पल कहां है?"

"यह है, डाक्टर साहब"।

"ठीक। तुम्हारे टेंटुए में सूजन है। कंठ दाह में केवल गले में सूजन आती है। अतः आवाज हमेशा कंठशोथ से ही प्रभावित होती है। कंठशोथ गर्मियों की अपेक्षा सर्दियों में अधिक होता है।"

"लेकिन डाक्टर साहब मैं तो सर्दियों में कभी बाहर निकला ही नहीं।"

"इसका मतलब तुम जरूरत से ज्यादा बोलते रहे होगे, बोलते रहे होगे और बोलते रहे होगे..."।

"नहीं डाक्टर साहब।"

"या फिर चिल्लाते रहे होगे या जोर-जोर से नारे लगाते रहे होगे"।

"नहीं, डाक्टर।"

"सिगरेट पीते हो"।

"नहीं, डाक्टर।"

"तो कहीं तुम धूल-धक्कड़ अथवा धुयें के संपर्क में तो नहीं आये या तुमने कोई बहुत गर्म पेय तो नहीं पिया या फिर बहुत जोर-जोर से रोये हो।"

"नहीं डाक्टर, मैं क्यों जोर-जोर से रोऊंगा? हां एक बात मुझे याद आ रही है। मुझे दो दिन पहले थोड़ा बहुत जुकाम था।"

"ऐसा है तो तुमने यह पहले क्यों नहीं बताया?"

"हो सकता है यह जुकाम तुम्हें वाइरस के संक्रमण से हो और इस समय तुम वायरसीय कंठशोथ से पीड़ित हो।"

"क्या किसी भी वाइरस से कंठशोथ हो जाता है, डाक्टर?"

"मेरे छोटे भाई, खसरे से पीड़ित व्यक्ति को भी कंठशोथ की शिकायत रहती है।"

"केवल खसरे से ही क्यों?"

"सभी संक्रामक बीमारियों जैसे– इन्फलूएंजा, डिप्थीरिया, स्क्रेलेट बुखार, यहां तक कि कुकुर खांसी से ग्रस्त व्यक्ति भी कंठशोथ की चपेट में आ सकता है।"

"हां! शुरू में डाक्टर, मुझे टेंटुए के भीतरी भाग में कुछ खराश सी महसूस हुई और कुछ ही घंटों बाद मेरा गला बैठने लगा यानि आंशिक रूप से मेरी आवाज कम हो गई।"

"यदि तुम तुरंत इसका इलाज शुरू नहीं करोगे तो तुम्हारी आवाज पूरी तरह बंद हो जायेगी।"

"मुझे थोड़ा बुखार भी हो गया था, जिससे थोड़ी बेचैनी हो गई थी और भूख भी कम लग रही थी।"

"ये सभी लक्षण कंठशोथ रोग के

कंठदर्शी की सहायता से स्वर यंत्र की जांच
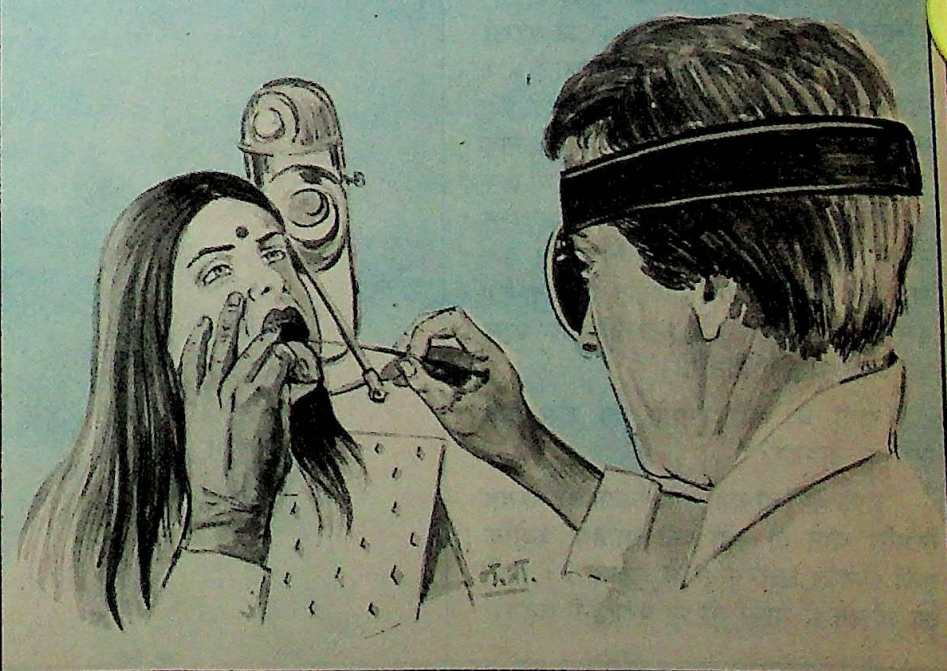
पूर्व-सूचक हैं। तुम जल्दी ही ठीक हो जाओगे।"

"किन्तु डाक्टर साहब, मैं अब अन्दर की ओर कुछ गर्मी महसूस कर रहा हूं और गले में दर्द भी है। मैं ठीक से कुछ निगल भी नहीं पा रहा हूं। मुझे सूखी खांसी भी है और बहुत परेशानी से थोड़ा बहुत बलगम बाहर निकलता है। अब तो बोलने पर भी दर्द महसूस कर रहा हूं। डाक्टर साहब कोई चिन्ता की बात तो नहीं है, न"?

"अभी तक तो कोई चिन्ता की बात नहीं है। यदि इस रोग को बढ़ने दिया गया तो, होने पर, तुरन्त डाक्टर से परामर्श करना चाहिये। डाक्टर अप्रत्यक्ष अथवा प्रत्यक्ष रूप से कंठदर्शी की सहायता से आपके स्वरयंत्र को देख कर स्थिति की गंभीरता का जायजा ले लेगा।"

"मुझे अब क्या करना चाहिये, डाक्टर?"

"तीव्र कंठशोथ की अवस्था में जो पहला काम करना है–वह है घर जा कर पूर्ण आराम तथा घूमना फिरना कम अथवा बंद कर दें। ऐसा करना बातचीत न करने से भी कहीं अधिक अनिवार्य है। कमरा गर्म रहना चाहिये। कमरे का तापमान एक सा रहना चाहिये, ऐसा नहीं कि कभी बहुत अधिक हो जाये और कभी बहुत कम। कमरें की वायु को नम रखने के लिये उबलते हुये पानी अथवा ह्यूमिडिफायर का प्रयोग करना चाहिये। इसके लिये वाष्पीकरण यंत्र का भी प्रयोग किया जा सकता है। गले पर थैली में बर्फ भर कर रखना प्रायः आरामदायक रहता है। साथ ही कुछ दवायें भी लेनी पड़ेंगी। दवाओं का पर्चा मैं अभी बना कर देता हूं।"

"अभी आपने तीव्र कंठशोथ का नाम लिया था। क्या कोई चिरकारी या क्रॉनिक कंठशोथ भी होता है?"

"बार-बार तीव्र कंठशोथ से ग्रस्त होने पर यह रोग चिरकारी कंठशोथ के रूप में विकसित हो सकता है। ऐसा लगातार क्षोभ के कारण होता है और यह अधिक बोलने के कारण होता है। अध्यापकों के मामले में ऐसा हो सकता है। अत्यधिक धूम्रपान करने वाले
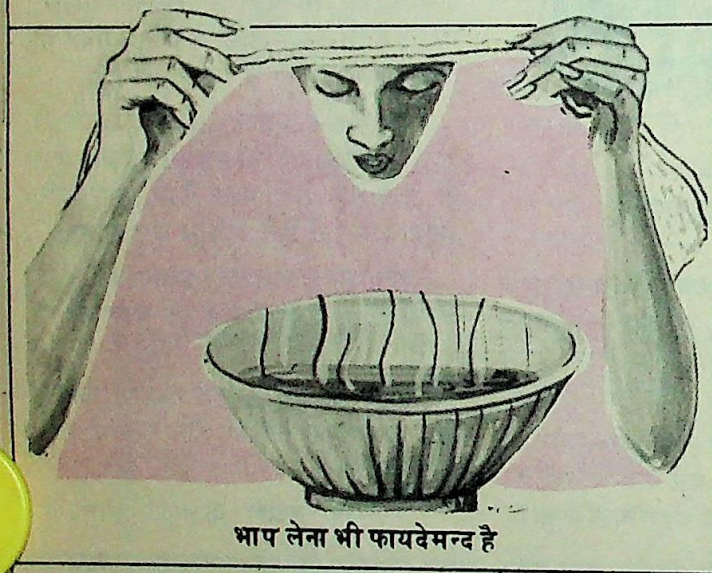
भाप लेना भी फायदेमन्द है

स्वर यंत्र तथा कंठच्छद या एपिग्लॉटिस, श्वास नली का ढक्कन जो नली की सुरक्षा करता है, में सूजन आने की सम्भावना है और इससे सांस लेने में कठिनाई हो सकती है। सांस लेने में निरन्तर बढ़ती हुई कठिनाई इडीमेटस (जल शोफ) लैरिंज़ाइटिस या क्रूप अर्थात उत्तकों में पानी भर जाने से उत्पन्न खतरनाक सूजन का संकेत होती है। इस सूजन से वायु का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। इस स्थिति में तुरन्त डाक्टर की देख-भाल की आवश्यकता होती है।"

"रोगी को इस स्थिति का कैसे पता लगेगा, डाक्टर?"

"सही बात तो यह है कि किसी को भी यह स्थिति आने ही नहीं देनी चाहिये, क्योंकि ऐसी स्थिति खतरनाक हो सकती है। रोगी को बोलने में थोड़ी सी भी परेशानी महसूस

कंठशोथ के मुख्य शिकार होते हैं प्रायः गायक

व्यक्ति भी तम्बाकू के धुयें के कारण चिरकारी कंठशोथ के रोगी बन जाते हैं। कार्य करने के स्थान पर धूल-धक्कड़ तथा रासायनिक धुआं भी चिरकारी कंठशोथ का कारण हो सकता है। ध्यान रहे कि चिरकारी नजला-जुकाम अथवा साइनस की समस्या भी चिरकारी कंठशोथ में सहायक होती है।"

"डाक्टर, इस बीमारी के बुरे प्रभाव क्या हैं?"

"इसमें प्रायः नमीयुक्त श्लेष्मा झिल्ली शुष्क होकर खुरदरी-सी होने लगती है जिससे श्लेष्मा झिल्ली मोटी और सख्त हो जाती है तथा आवाज बैठ जाती है या मोटी हो जाती है।"

"यह तो बहुत पीड़ा दायक होता होगा न, डाक्टर साहब?"

"नहीं जनाब, इसमें या तो पीड़ा होती ही नहीं और यदि होती भी है तो बहुत कम। तो भी इससे गले में अन्दर से थोड़ी खराश और हल्की खासी हो सकती है। लेकिन यह स्थिति कुछ वर्षों तक बनी रहे तो यह चिरकारी अति वृद्धि कंठशोथ में परिवर्तित हो जाती है और परिणामस्वरूप स्वरयंत्र की आंतरिक झिल्ली के सख्त हो जाने से आवाज स्थायी रूप से गड़बड़ा जाती है।"

"इसका उपचार क्या है?"

"जहां तक तीव्र कंठशोथ का प्रश्न है—जितनी बार भी यह होता हो, उतनी ही बार इसका उपचार करना चाहिये। इसका सबसे उपयुक्त उपचार यह है कि जिस कारक से भी कंठशोथ होता हो, उन कारकों का त्याग करने की चेष्टा करनी चाहिये।"

"स्वरयंत्र के कैंसर में भी..."।

"आप चिन्तित न हों। आपको कैंसर नहीं है। यदि आवाज दो सप्ताह से भी अधिक समय तक बैठी रहती है तो यह स्वरयंत्र के कैंसर की चेतावनी हो सकती है। इसके लिये चिकित्सीय परीक्षण करवाना चाहिये।"

"धन्यवाद डाक्टर साहब! मैंने कुछ व्यावसायिक कंठशोथ के विषय में भी सुना है।"

"हां, जैसा कि मैं पहले ही उल्लेख कर चुका हूं कि अध्यापक, गायक, जश्न मनाने वाले, फेरी वाले, जो प्रायः बहुत ऊंची-ऊंची आवाज में बहुत देर तक बोलते रहते हैं, उनके स्वर यंत्र में वाक पेशियों की थकान के फलस्वरूप प्रायः कंठशोथ हो जाता है। इसकी लगातार पुनरावृत्ति से स्वरकोष्ठों में घाव हो जाते हैं और परिणामस्वरूप स्थायी क्षति हो जाती है।"

"इस जानकारी के लिये आपका बहुत-बहुत धन्यवाद, डाक्टर साहब।"

"ठीक है रमेश! लेकिन जाने से पूर्व एक वचन दो कि तुम अपनी ज़ुबान बंद रखोगे, गरारे क़रोगे और ये दवायें लेते रहोगे।"

"बिल्कुल, डाक्टर साहब। आपका पुनः धन्यवाद।" □

[डा. सुरेश नाडकर्णी, फ्लैट नं. 38-39, पांचवीं मंजिल, म्युनिसिपिल बिल्डिंग, जोबनपुत्रा कम्पाउंड, नाना चौक, मुम्बई- 400 007]

40 वर्ष पहले

दिसम्बर १९५२

सूचना-समाचार

तम्बाकू के बीजों के तेल का आयोडीन मूल्य १३२ से १४६ तक पाया गया है। इसका साबुन बना कर जब उसमें से तेजाबों को अलग करते हैं तो पता चलता है कि इसके तेजाबों या अम्लों में ७५ प्रतिशत लिनोलीक एसिड होता है। अलसी का तेल बहुतायत से रंग-रोगन उद्योग में इस्तेमाल किया जाता है। इसमें लिनोलिनिक एसिड बड़ी मात्रा में पाया जाता है। लिनोलिनिक एसिडधारी और लिनोलीक एसिडधारी तेलों में अन्तर यह है कि सूखने पर लिनोलिनिक एसिडधारी तहें लम्बे समय में पीली पड़ जाती है, पर लिनोलीक एसिडधारी तहें पीली नहीं पड़तीं। इस प्रकार तम्बाकू के बीजों का तेल न केवल अलसी के तेल की भांति इस्तेमाल किया जा सकता है वरन् कुछ इस्तेमालों में उससे अच्छा भी प्रमाणित होता है।
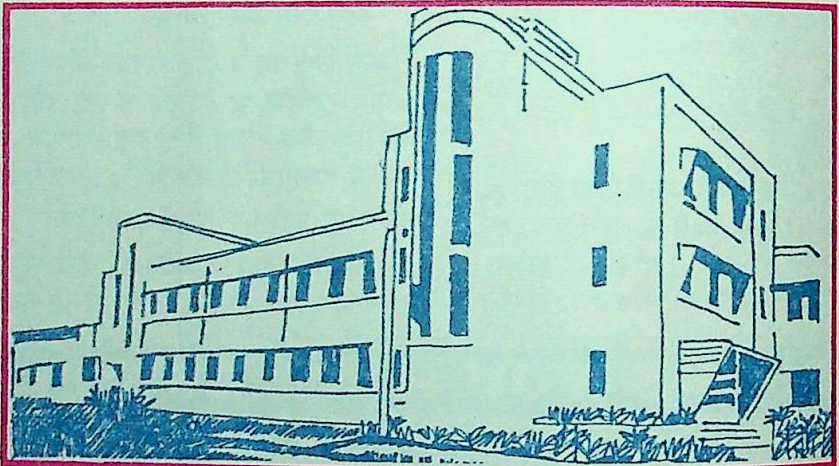
सैन्ट्रल ग्लास एण्ड सिरेमिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट

कांच बनाने, मिट्टियों से बर्तन आदि तैयार करने और धातु पर तामचीनी चढ़ाने के उद्योग बहुत महत्वपूर्ण उद्योग हैं। इनकी उन्नति के लिये एक केन्द्रीय रिसर्च संस्था की आवश्यकता इंडियन इंडस्ट्रियल कमीशन ने १९१८ में अनुभव की थी। १९३१ में इंडियन टैरिफ़ बोर्ड ने इस पर फिर ज़ोर दिया। दूसरे महायुद्ध के दिनों में तो यह आवश्यकता बहुत ही स्पष्ट हो गई। साइंटिफ़िक और इंडस्ट्रियल रिसर्च के डाइरेक्टर की सलाह से १९४२ में भारत सरकार ने इस संस्था को बनाना स्वीकार कर लिया
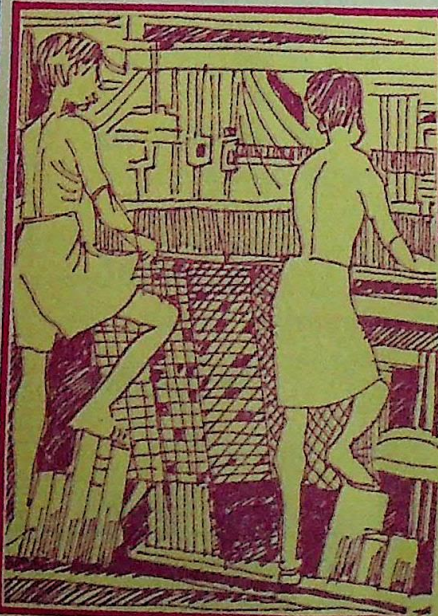
कयर उद्योग

ये मनुष्य डोरी में कयर-रेशे जोड़ते जाते हैं और पीछे हटते जाते हैं। जब ५०-६० फुट लम्बी डोरियां बट जाती हैं तो दो तकुवोंवाली चर्खी को घुमाना बंद कर देते हैं। दोनों मनुष्य अपनी डोरियों के सिरों को एक ऐसे तकुवे से जोड़ देते हैं जिसकी चर्खी आगे-पीछे सरक सकती है। जब इस चर्खी को चक्कर दिये जाते हैं तो यह दोनों डोरियां उल्टी दिशा में आपस में लिपटने लगती हैं। ये दोनों उलझें नहीं, और उनमें गुलझटें न पड़ें इसलिये दोनों के बीच में एक तिकोनी लकड़ी का टुकड़ा रख कर धीरे-धीरे दो तकुवोंवाली चर्खी की ओर सरकाया जाता है। यह दुबटी डोरी बाज़ार में बिकने के लिये भेजी जाती है। इन दो चर्खियों की सहायता से तीन व्यक्ति ५० फुट लम्बी १०० दुबटी डोरियां एक दिन में तैयार कर सकते हैं

ऊंचे पहाड़, कल-कल करते झरने, घने जंगल और रंग-बिरंगे फूल, जो ईश्वर की अद्भुत देन हैं, प्रकृति के आलौकिक सौन्दर्य की रचना करते हैं। प्रकृति में प्रत्येक जीव एक दूसरे का पूरक है। इनका आपस में ऐसा सामंजस्य बना हुआ है कि यदि एक भी घटक जरा सा भी डगमगाता है, तो सारा वातावरण डोलने लगता है। मनुष्य व वनस्पति के संबंध को ही लीजिये। उपभोक्ताओं तथा औद्योगीकरण की आवश्यकता की पूर्ति के लिये आज मनुष्य पेड़-पौधों रूपी प्राकृतिक सम्पदा का तेजी से ह्रास कर रहा है। यहां तक कि वनमहोत्सव, पुनः वृक्षारोपण जैसी योजनाओं पर बल देने के बावजूद भी अधिकांश देशों में वन कटने की दर, पुनर्वृक्षारोपण की तुलना में कहीं अधिक है। निश्चय ही वनों के कटने से असमय ही अनेक अत्यंत महत्वपूर्ण जातियां एकदम नष्ट हो जाती हैं और प्रायः प्रकृति से लुप्त भी हो जाती हैं। इनमें वे जातियां भी हो सकती हैं जिनसे आवश्यकता पड़ने पर वांछित गुणों वाली जातियां प्रजनन की विभिन्न तकनीकों द्वारा तैयार की जा सकती हैं। ऐसी जातियों के नष्ट होने से हमारे पास चयन करने के लिये वांछित गुणों की कमी पड़ जाती है। इससे पेड़-पौधों की जातियों में सुधार की संभावना भी सीमित रह जाती है और पेड़-पौधे प्रकृति में विभिन्न प्रकार के प्रतिकूल वातावरण में अपना अस्तित्व बनाये रखने में अक्षम हो जाते हैं। इसलिये प्रकृति में पायीजाने वाली विभिन्न जातियों का संरक्षण अत्यावश्यक हो गया है।

कहते हैं कि वह विपदा भी भली होती है जो थोड़े दिनों के लिये आती है, लेकिन इन वनस्पति जातियों के विलुप्त होने से मानवता को दीर्घकालीन विपदा का सामना करना पड़ सकता है। आज का

वैज्ञानिक इस विपदा के प्रति जागरूक हो चुका है। इस विषय पर देश-विदेश में गोष्ठियां तथा सम्मेलन हुये हैं जिनमें काफी गहराई तक चिंता व चर्चा हुई है। सन् 1975में लेनिनग्राद, रूस में 12वीं अन्तर्राष्ट्रीय वनस्पति कांग्रेस में यह निष्कर्ष निकाला गया था कि जो जाति लुप्त हो रही है उसका संरक्षण किया जाये। लेकिन लुप्त होने वाली जातियों का पता लगाने के लिये उस क्षेत्र की सम्पूर्ण वनस्पति जाति यानि पेड़-पौधों का ज्ञान होना आवश्यक है। इसलिये भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण ने सन् 1977में एक सम्मेलन आयोजित किया जिसमें पेड़-पौधों अथवा फ्लोरा तथा उसके संरक्षण पर चर्चा हुई। सन् 1975में अमेरिका में स्मिथसोनियन इंस्टीट्यूशन द्वारा दी गई रिपोर्ट से लोगों में पेड़-पौधों के विनाश तथा इससे लुप्त होते हुये पेड़-पौधों के संरक्षण के प्रति नई जागृति पैदा हुई। न्यूयार्क वनस्पति उद्यान ने सन् 1976में संयुक्त राज्य अमेरिका की 200वीं वर्षगांठ के उपलक्ष्य में अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठी आयोजित की थी, जिसमें अमेरिका में संकटापन्न और विलुप्त पेड़-पौधों का वर्तमान और भविष्य में प्रकृति में क्या महत्व है, विषय पर काफी चर्चा की गई थी। भारतवर्ष में भी यह चर्चा का विषय बना रहा है।

भारत में पहली बार अन्तर्राष्ट्रीय आनुवंशिकी सम्मेलन सन् 1983 में हुआ था, जिसमें विश्व की जानी-मानी हस्तियों ने भाग लिया था। उसमें डा. एम.एस. स्वामीनाथन ने अपने अभिभाषण में आनुवंशिकी संरक्षण की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा था कि आनुवंशिकी किसी जाति में गुणों के समावेश का मूल आधार है। उन्होंने जंगलों के तीव्र ह्रास तथा अनेक महत्वपूर्ण जातियों के विलोपन पर चिंता व्यक्त की थी। भारत में भी ऐसी अनेक जातियां हैं जो धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही हैं। लुप्त होने वाली जातियों से संबंधित विषय पर एक पुस्तक ''एन एसेसमैण्ट आफ थ्रेटेण्ड प्लाण्ट्स आफ इंडिया'' (लेखक—जैन और राव) 1983 में प्रकाशित हुई है जिसमें विनाश के कगार पर खड़े पेड़-पौधों की जानकारी दी गई है। इसी प्रकार इंटरनेशनल यूनियन फार कंजर्वेशन आफ नेचर और नेचुरल रिसोर्सेज (आई यू सी एन) ने एक 'रेड बुक डाटा' नामक पुस्तक प्रकाशित की है। इस पुस्तक में विलुप्त होने वाले लगभग 250 पौधों को सूचीबद्ध किया गया है।

हाल ही में वर्ल्ड वाइल्ड फण्ड ने एक 'आफिसियल गाइड टू इन्डैंजर्ड स्पीशीज़ आफ नार्थ अमेरिका' पुस्तक प्रकाशित की है जिसमें लुप्त होने वाले पेड़-पौधों का सचित्र वर्णन है। यह चित्र जो आपके सामने है यह भी उसी प्रकाशन से लिया गया है। यह पुष्पीय पौधा अधिकांशतः उत्तरी अमेरिका में पाया जाता है। यह माल्वेसी कुल का पौधा है। इस पौधे का नाम पॉपी मैलो (कैलीरोह स्क्रेब्रिस्कुला) है। यह एक शाकीय पौधा है जिसकी जड़ें कन्द की तरह, पत्तियां अंगुल्याकार पालित या विभक्त तथा फूल सुन्दर गुलाबी या सफेद रंग के, कक्षीय या अन्तस्थ असीमाक्ष होते हैं। इसकी लाल सफेद रंग की पंखुड़ी फानाकार लूनाग्र या झालरदार दन्ताकार होती हैं और पुंकेसर नीचे जुड़े तथा शीर्ष पर अनेक तंतुओं में विभाजित होते हैं। लेकिन इस सुन्दर एवं आकर्षक पौधे की स्थिति बड़ी शोचनीय है क्योंकि यह पुष्पीय पौधा उत्तरी अमेरिका में लुप्त होता जा रहा है।

पुष्प जो ईश्वर की अनुपम देन हैं तथा मनुष्य की कोमल, सुन्दर तथा प्रेम भावनाओं के प्रतीक हैं, यदि धीरे-धीरे लुप्त होते जायेंगे तो मनुष्य के जीवन में एक नीरसता-सी आ जायेगी। यद्यपि आज जबकि हम सचेत हो गये हैं फिर भी विनाश जारी है। यदि ऐसा ही होता रहा तो वह दिन दूर नहीं जब मनुष्य को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। प्रकृति, जो हमारे जीवन की वास्तविकता है, के अमूल्य प्राकृतिक सम्पदा के संरक्षण की असीम आवश्यकता है। इसे नष्ट न होने दीजिये। यही इस चित्र कथा का संदेश है। □

[डा. एम.के. सिंघल, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली- 110012]

क्या आप जानते हैं?

जिस पृथ्वी पर आप रहते हैं, क्या उसके विषय में आप जानते हैं कि-

पृथ्वी का सबसे बड़ा महाद्वीप एशिया है।
पृथ्वी का सबसे छोटा महाद्वीप आस्ट्रेलिया है।
ग्रेट बैरीयर रीफ पृथ्वी की सबसे बड़ी कोरल रीफ है। यह आस्ट्रेलिया के उत्तर-पूर्वी तट पर स्थित है।
प. बंगाल के सुंदर वन पृथ्वी की सबसे बड़ी खाड़ी है। इसका क्षेत्रफल 8,000 वर्ग मील है।
सहारा मरुस्थल, अफ्रीका पृथ्वी का सबसे बड़ा मरुस्थल है।
ग्रीनलैंड पृथ्वी का सबसे बड़ा द्वीप है।
कैस्पीयन समुद्र, पृथ्वी की सबसे बड़ी खारे पानी की झील है। इसकी गहराई समुद्री सतह से नीचे 86 फीट है।
पृथ्वी की सबसे ऊंची पर्वत चोटी एवरेस्ट है। इसकी ऊंचाई 29,028 फीट है।
पृथ्वी की सबसे ऊंची पर्वत माला हिमालय है।
पृथ्वी का सबसे बड़ा एवं गहरा महासागर पेसीफिक महासागर है।

[श्री संदीप मित्तल, भू-विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली- 110 007]

रसायन विज्ञान

1. बालों को रंगने के लिये प्रयुक्त होने वाला रसायन है :
   क. आर्थो-टौलुडीन
   ख. पैरा-फिनाइलीन डाई अमीन
   ग. पैरा-नाइट्रो बेंजाइल अमीन
   घ. अमीनो बेंजीन

2. टूथ पेस्ट में प्रयुक्त होने वाला रसायन है :
   क. सेलोल (फिनाइल सेलिसिलेट)
   ख. एरिनटानीलॉयड
   ग. फिनोल
   घ. एनीलीन
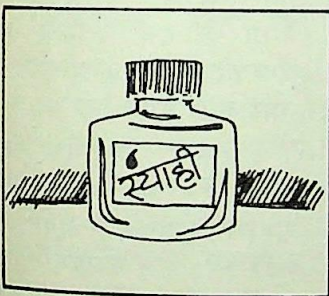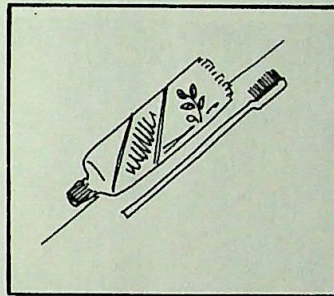
3. स्याही में प्रयुक्त होने वाला रसायन है :
   क. बेन्जोइक एसिड
   ख. बेंजीन
   ग. अमीनो बेंजीन
   घ. गैलिक एसिड (ट्राई-हाइड्राक्सी बेन्जोइक एसिड)

4. हरे फलों को पकाने में प्रयुक्त होने वाला रसायन है :
   क. एसीटिलीन
   ख. एथिलीन
   ग. एनीलीन
   घ. अमीनो बेन्जीन
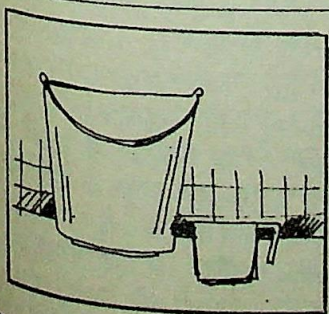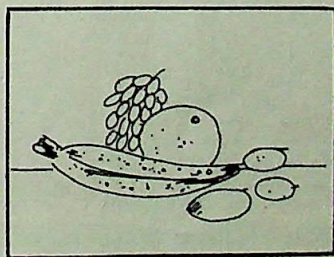
5. प्लास्टिक तथा रबर के निर्माण में प्रयुक्त होने वाला रसायन है :
   क. एथीलीन
   ख. मीथेन
   ग. एसीटिलीन
   घ. प्रोपाइलीन
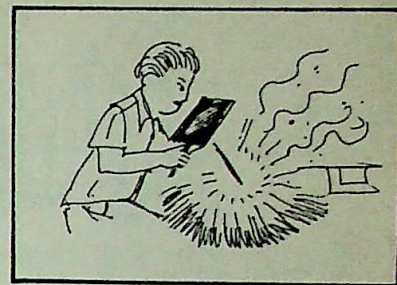
6. वैल्डिंग तथा कटिंग में प्रयुक्त होने वाली गैस है :
   क. प्रोपाइलीन
   ख. एसीटिलीन
   ग. ब्यूटाइलीन
   घ. नाइट्रो बेंजीन
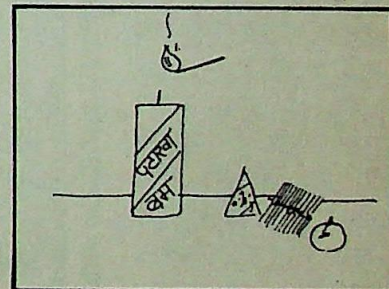
7. विस्फोटक पदार्थों में प्रयुक्त होने वाला रसायन है :
   क. नाइट्रोबेंजीन
   ख. नाइट्रोग्लिसरीन
   ग. क्लोरो बेंजीन
   घ. ट्राई नाइट्रो टोलुइन

उत्तर

1.ख, 2.क, 3.घ, 4.ख,
5.ग, 6.ख, 7.घ

[श्रीमती नीलू श्रीवास्तव, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, हिलसाइड रोड, नई दिल्ली-12]

पौधों का पुरोहित

देवेन्द्र मेवाड़ी

पहले तक लोग सोचते थे कि दुनिया में असंख्य पेड़-पौधे हैं। उन्होंने अपने आस-पास के पेड़-पौधों के नाम अपनी-अपनी भाषा में रखे। दूसरी भाषा बोलने वाले लोग केवल अपनी भाषा में रखे गए नाम से पेड़-पौधों को पहचानते थे। फिर भी अधिकांश पेड़-पौधे अनजाने और अनाम ही रह गए। तब लोग नहीं जानते थे कि पेड़-पौधों का भी एक अपना विशाल परिवार है। अपनी बिरादरी है। आकार-प्रकार और रंग-रूप में वे भले ही भिन्न लगें, लेकिन उनकेबीच भी रिश्ता है।

अठारहवीं सदी के मध्य तक यही माना जाता था कि ईश्वर ने सभी पेड़-पौधों को एक साथ पैदा किया और सदियों से वे वैसे ही फलते-फूलते चले आ रहे हैं। स्वीडन का वनस्पति वैज्ञानिक कारोलस लिनीयस भी यही मानता था, लेकिन वह कहता कि यह वनस्पति विज्ञानियों का कर्तव्य है कि वे ईश्वर की इन रचनाओं को उसकी परिकल्पना के अनुसार व्यवस्थित करें। उनका उचित रूप से वर्गीकरण करें ताकि उनकी विशाल बिरादरी और रिश्तेदारी का पता लग सके। उनके नाम, जाति और वंश का पता लग सके।

द्विनाम पद्धति के जन्मदाता : कारोलस लिनीयस

और, आगे चलकर यह पता लगा ही लिया—लिनीयस ने। वह अनजान पौधों का पुरोहित बना। उसने न केवल वर्गीकरण की एक सरल विधि खोज कर पेड़-पौधों की विशाल बिरादरी को एक सूत्र में बांधा बल्कि उनका नामकरण भी किया। उसके द्वारा सुझाई गई नामकरण की पद्धति आज भी अपनाई जा रही है। लिनीयस ने पौधों और प्राणियों की 4378 जातियों का नामकरण किया और उनकी सूची तैयार की।

यह कोई आसान काम नहीं था। यूनानी दार्शनिक अरस्तू ने 384-322 ई.पू. पौधों के वर्गीकरण का प्रयास किया था और उसके बाद 2000 वर्षों तक पेड़-पौधों की बिरादरी का कोई पता नहीं लगा सका। नामकरण की 'द्विनाम' पद्धति की खोज करके लिनीयस ने अनाम पौधों के नाम रखे और इस खोज से पौधों के इस पुरोहित का वनस्पति विज्ञान के इतिहास में नाम अमर हो गया।

कारोलस लिनीयस का जन्म 23 मई 1707 को राशुल्ट, स्मालैंड (स्वीडन) में हुआ था। उसे बचपन से ही फूलों से बेहद प्यार था। पौधों के बीच रहना और उनके साथ खेलना उसे अच्छा लगता। पौधों के लिए उसका लगाव देखकर 8 वर्ष की उम्र में ही लोग उसे 'नन्हा वनस्पति विज्ञानी' कहने लगे थे। पिता को भी उसका यह शौक पसंद था। वे उसे फूलों के बारे में बताते। पहले उसने घर पर पढ़ा फिर घर से 25 मील दूर एक स्कूल में। उसके बाद उन्होंने उसे स्वीडन के लुंड विश्वविद्यालय में पढ़ने भेजा। इसी बीच वह एक चिकित्सक की बेटी सारा लिजा मोरेइया से शादी के सपने संजोने लगा। जब सारा के पिता को पता चला तो उन्होंने लिनीयस से साफ-साफ कह दिया कि पेड़-पौधों का मोह छोड़ो और उपसला जाकर डाक्टरी की डिग्री हासिल

लिनीयस की 'सिस्टेमा नेचुरी' (1935) में प्रकाशित, पौधों के वर्गीकरण का आधार-जनन अंगों का चित्र

करो। सारा तब तक इंतजार करेगी।

चिकित्सा विज्ञान की पढ़ाई

लिनीयस ने यह शर्त स्वीकार कर ली। वह अपनी किताबें और पेड़-पौधों के अपने नोट्स लेकर उपसला चला गया। वहां उसने चिकित्सा विज्ञान की पढ़ाई शुरू की। उपसला में उसकी भेंट प्रसिद्ध वनस्पति विज्ञानी ओलोफ सेल्सियस से हुई, जिनसे वह बहुत प्रभावित हुआ।

सन् 1730 में वह वनस्पति विज्ञान का प्रवक्ता नियुक्त हुआ। दो वर्ष बाद उपसला विज्ञान अकादमी की ओर से फूलों और प्राकृतिक सम्पदा के सर्वेक्षण तथा गहन अध्ययन के लिए वह स्वीडन के सुदूर उत्तर में लैपलैंड की खोजयात्रा पर रवाना हुआ। उसके साथ थी उसकी दूरबीन, सूक्ष्मदर्शी, डायरी, कलम, स्याही-दवात, पौधे दबाने-सुखाने का कागज, चाकू, राइफल और मच्छरदानी। लैपलैंड में लिनीयस ने हजारों मील की यात्रा की। अपनी इस कठिन यात्रा के दौरान उसने वनस्पतियों और जीव-जंतुओं का संग्रह और अध्ययन किया। वह100 से अधिक नई जातियों के नमूने अपने साथ लाया। लैपलैंड में अपने देश की विपुल प्राकृतिक सम्पदा को देखकर वह बहुत प्रभावित हुआ और उसके संरक्षण के लिए उसने सरकार को अपना सुझाव दिया। उसकी यह यात्रा विज्ञान के इतिहास की पहली सुनियोजित खोजयात्रा मानी जाती है। इस खोजयात्रा के नतीजे 'फ्लोरा लैपोनिका' नाम से सन् 1737 में नीदरलैंड्स की राजधानी एम्स्टर्डम में प्रकाशित हुए। इस कार्य से लिनीयस को बहुत ख्याति मिली। अंग्रेज वनस्पति विज्ञानी सर जे.ई. स्मिथ तो इससे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने 74 वर्ष बाद सन् 1811 में इसे 'लेकेसिस लैपोनिका' नाम से अंग्रेजी में भी प्रकाशित किया। लिनीयस ने 1735 में नीदरलैंड्स के हार्डेविज्क विश्वविद्यालय से चिकित्सा विज्ञान की डिग्री ली।

फूलों के आधार पर वर्गीकरण

कारोलस लिनीयस ने पौधों का वर्गीकरण फूलों की विशेषताओं के आधार पर किया। उससे पहले तक केवल पौधों की विशेषताओं के आधार पर उन्हें पहचानने के प्रयास किए गए। उन्हें जल के पौधे, थल के पौधे, धूप में उगने वाले पौधे, छाया में उगने वाले पौधे, मांसल पौधे, या कंटीले पौधे के रूप में पहचाना जाता था। अकारादि क्रम में उनका वर्गीकरण करने की भी कोशिश की गई। यूनानी वैज्ञानिक थियोफ्रेस्टस (371 से 287 ई.पू.) तथा डिस्कोरिडीज ने औषधीय पौधों का वर्गीकरण किया। सोलहवीं सदी में अनेक वैज्ञानिकों ने पौधों के औषधीय गुणों को परखा और उनका विवरण लिखा। इस तरह पौधों पर शोध-प्रबंध तैयार होने लगे। नए-नए पेड़-पौधों को खोजने की जैसे होड़ लग गई। पेड़-पौधों के बारे में लिखे गए शोध-प्रबंध 'हर्बल' कहे जाते हैं। नये पौधों की खोज के कारण कई 'हर्बल' प्रकाशित
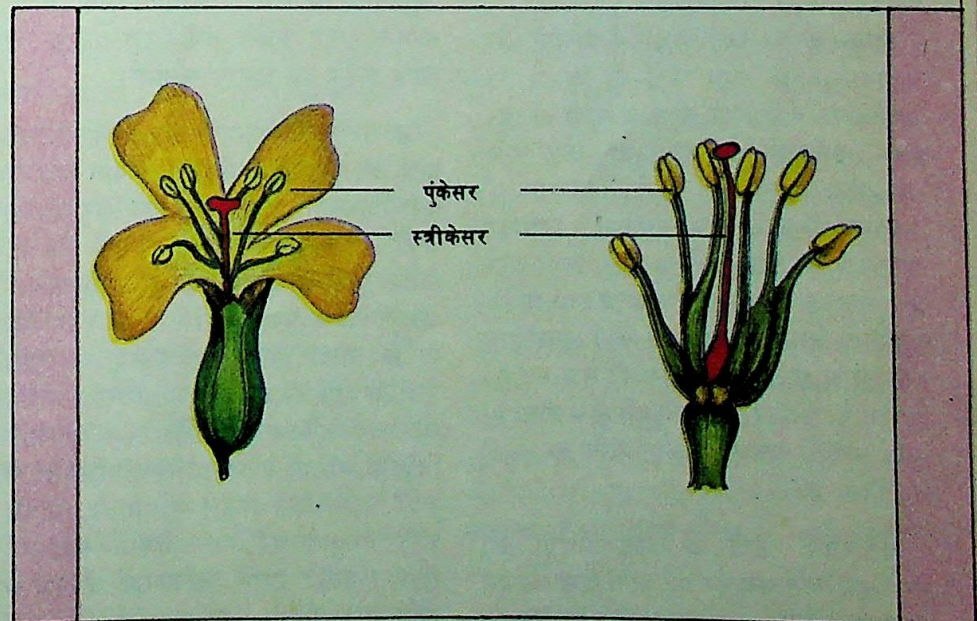
सरसों का फूल अमलतास का फूल
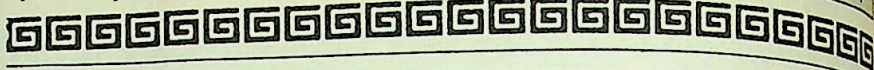
हुए। अंग्रेज वनस्पति विज्ञानी विलियम टर्नर ने सन् 1551 में अपने हर्बल का पहला भाग प्रकाशित किया और दूसरा भाग देश निकाला मिलने पर 11 वर्ष बाद कलोन (जर्मनी) में प्रकाशित किया। जॉन जेराल्ड ने सन् 1597 में पौधों का सामान्य इतिहास तीन खंडों में प्रकाशित कराया। इतालवी वनस्पति विज्ञानी सीजलपिने ने सन् 1583 में 16 खंडों में पौधों के बारे में लिखा।

लिखा बहुत गया, लेकिन वर्गीकरण का कोई सरल तरीका नहीं मिला। सन् 1735 में जब लिनीयस की पुस्तक 'सिस्टेमा नेचुरी' छपी तो वनस्पति वैज्ञानिकों में हलचल मच गई। इसमें लिनीयस ने पेड़-पौधों के वर्गीकरण की एक नई और सरल पद्धति दी थी। इस पुस्तक की पांडुलिपि उसने प्रसिद्ध वनस्पति विज्ञानी जॉन फ्रेडरिक ग्रोनोवियस को दिखाई थी और वे इतना प्रभावित हुए कि उन्होंने अपने खर्चे से 'सिस्टेमा नेचुरी' प्रकाशित की। लिनीयस ने अपनी इस पुस्तक में पौधों का वर्गीकरण फूलों के जनन अंगों के आधार पर किया। सन् 1937 में उसकी दूसरी पुस्तक 'जेनेरा प्लेंटेरम' छपी।

पौधों में भी नर-मादा

लिनीयस ने कहा—प्राणियों की तरह पेड़-पौधों में भी नर और मादा अंग होते हैं। उनमें भी जनन होता है।

जीवन के गूढ़ तथ्यों के बारे में पक्षियों और मधुमक्खियों की तरह पौधे भी जानते हैं। उसने कहा 'स्त्रीकेसर' फूल का मादा अंग है। इसमें प्राणियों के गर्भाशय की तरह 'अंडाशय' होता है। इसी अंडाशय में निषेचन के बाद बीज बनते हैं। निषेचन परागकणों से होता है जो 'पुंकेसर' अर्थात नर अंग में बनते हैं। लिनीयस का कहना था कि पंखुड़ियां जनन की क्रिया में कोई खास काम नहीं आतीं, वे तो बस सुहाग की सेज भर हैं। ईश्वर ने उन्हें बड़े मोहक ढंग से संजोया है, भव्य पर्दों से संवारा है और मीठी सुगंधों से भर दिया है।

अठारहवीं सदी के कट्टरपंथियों को कारोलस लिनीयस का यह कवितामय कथन कतई पसंद नहीं आया। उन्होंने इसे नैतिकता के खिलाफ बताया। लेकिन, लिनीयस ने इन आलोचनाओं पर कोई ध्यान नहीं दिया। उसे वर्गीकरण की इस खोज से काफी प्रसिद्धि मिली। यह वर्गीकरण की कृत्रिम पद्धति थी लेकिन इससे विशाल वनस्पति सम्पदा का सरलता से वर्गीकरण करना संभव हो गया। तत्कालीन वैज्ञानिकों ने इसे हाथों-हाथ लिया। पौधों के वर्गीकरण का काम बढ़ चला। इस पद्धति की सफलता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि उसकी पुस्तक के प्रथम संस्करण में वर्गीकरण की पद्धति और पौधों की पहचानी हुई जातियों का विवरण केवल 14 पृष्ठों में छपा था, जबकि 12वें संस्करण में 2500 पृष्ठ थे। फिर भी, लिनीयस का कहना था कि वर्गीकरण की यह विधि अपने आप में पूर्ण नहीं है। इसमें कमियां भी हैं लेकिन जब तक कोई दूसरी और अधिक अच्छी पद्धति नहीं खोज ली जाती, तब तक इसका प्रयोग किया जा सकता है।

लिनीयस ने प्राणियों का वर्गीकरण भी इस नई पद्धति से किया। उसने मनुष्य को बंदरों तथा लैमूर जैसे स्तनधारी प्राणियों की श्रेणी में रखा। इन्हें उसने 'प्राइमेट' (नर-वानर) कहा। इस बात पर कट्टरपंथी नाराज हुए। उसकी प्रसिद्धि के कारण आलोचक उसका कुछ न बिगाड़ सके। कई वैज्ञानिक भी इस वर्गीकरण से प्रसन्न नहीं हुए। प्रसिद्ध फ्रांसीसी वैज्ञानिक बुफौन ने उस पर 'मानवता के लिए अपमान-जनक सत्य' सामने रखने वाली वर्गीकरण-पद्धति की खोज करने का आरोप लगाया।

कारोलस लिनीयस ने 1736 में इंग्लैंड की यात्रा की। वहां वह प्रसिद्ध वनस्पति विज्ञानी व चिकित्सक सर हंस स्लोआने और जोहान जेकोब डिलेनियस से मिला। उसके बाद वह हालैंड लौटा और 'हार्ट्स क्लिफोर्टिएनस' का अधूरा काम पूरा किया। उसके बाद वह पेरिस गया। वहां वह प्रसिद्ध वनस्पति विज्ञानी प्रोफेसर बर्नार्द द जुसुएयू तथा एंतोने लोरेंत द जुसुएयू से मिला। इन वनस्पति विज्ञानी भाइयों से उसकी अच्छी मित्रता हो गई। उसके बाद सन् 1738 में वह स्वीडन लौट कर राजधानी स्टाकहोम में स्थाई रूप से बस गया। उसने चिकित्सक के रूप में काम शुरू किया और इस दिशा में उसे लगातार सफलता मिली। सारा लिजा मोरेइया उसका इंतजार कर रही थी। सन् 1739 में उसने सारा से शादी कर ली।

प्रसिद्ध पुस्तकें

चिकित्सक के रूप में लिनीयस काफी सफल रहा और महारानी का चिकित्सक नियुक्त हुआ। उपसला विश्वविद्यालय में चिकित्सा-पीठ पर उसकी नियुक्ति हुई लेकिन साल भर बाद उसने वनस्पति विज्ञान-पीठ में अपना तबादला करवा लिया। सन् 1753 में उसकी प्रसिद्ध पुस्तक 'स्पीशीज प्लैंटेरम' प्रकाशित हुई जिससे पौधों के नामकरण की नींव पड़ी। इससे वनस्पति विज्ञान के अध्ययन और अनुसंधान के क्षेत्र में एक नई क्रांति हुई। इसमें उसने तब तक ज्ञात सभी जातियों का वर्णन किया। सन् 1754 में 'जेनेरा प्लैंटेरम' पुस्तक का पांचवां संस्करण छपा। इस पुस्तक में लिनीयस ने वंशों का वर्णन किया। इन दोनों पुस्तकों से पहली बार पौधों का नामकरण संस्कार हुआ। यह लिनीयस की ही देन है कि आज पेड़-पौधे, पशु-पक्षी और अन्य जीव अनाम तथा अजनबी नहीं रहे। उनके वैज्ञानिक नाम हैं। वैज्ञानिक नाम से किसी भी पेड़-पौधे और अन्य जीव को दुनिया भर में पहचाना जाता है। वैज्ञानिक विश्व भर में इन नामों का प्रयोग करते हैं। किसी भाषा में किसी पौधे का नाम कुछ भी हो लेकिन वैज्ञानिक नाम केवल एक ही होता है। लिनीयस ने जीवों के द्विपद नाम रखे। नाम में पहले वंश का नाम रखा और उसके बाद जाति का नाम। जैसे गेहूं का नाम है—**ट्रिटिकम एस्टिवम। 'ट्रिटिकम'** वंश का नाम है और **एस्टिवम** जाति का नाम। दुनियां भर में गेहूं अलग-अलग नामों से उगाया जाता है लेकिन वैज्ञानिकों के लिए वह केवल 'ट्रिटिकम एस्टिवम' है। जीवों के यह वैज्ञानिक नाम लैटिन तथा यूनानी शब्दों से गढ़े जाते हैं। वंश का नाम 'प्रजातीय' नाम भी कहलाता है। यह किसी विशेष गुण, वैज्ञानिक के नाम या पौराणिक संदर्भ में रखा जा सकता है। जातीय नाम प्रायः वर्णनात्मक होता है, अर्थात उससे किसी विशेषता का पता चलता है। यह किसी स्थान के नाम पर, फूलों या बीजों के रंग, पत्तियों के आकार-प्रकार या खोजकर्ता के नाम पर रखा जाता है। वैज्ञानिक नाम के बाद कोष्ठक

में खोजकर्ता का संक्षिप्त नाम दिया जाता है। जैसे-**सोलेनम नाइग्रम** (लि.)। इसमें 'लि.' इसके खोजकर्ता लिनीयस का नाम है।

द्विपद नाम

लिनीयस की द्विनाम पद्धति के आधार पर आज विश्व भर में जीवों का नामकरण किया गया है। हमारा आम वैज्ञानिकों के लिए **मेंजीफेरा इंडिका** है, सरसों **ब्रैसिका कम्पैस्ट्रिस**, आलू **सोलेनम ट्यूबरोसम**, मटर **पाइसम सैटाइवम**, पीपल **फाइकस रिलिजिओसा** और बिल्ली **फेलिस डोमेस्टिका**। लिनीयस ने उस समय तक ज्ञात पौधों को पुंकेसरों की संख्या या उनकी अन्य विशेषताओं के आधार पर 24 वर्गों में बांटा। उसने 1753 में पौधों के वर्गीकरण की प्रथम प्राकृतिक पद्धति सामने रखी। पौधों के वर्गीकरण की पुरानी कृत्रिम पद्धति की कमियों को दूर करके लिनीयस सही और सफल प्राकृतिक पद्धति की खोज करना चाहता था, लेकिन इसे वह पूरा न कर सका। बाद में उसके मित्र और प्रसिद्ध वनस्पति विज्ञानी प्रोफेसर बर्नार्द द जुसुएयू ने उसकी प्राकृतिक पद्धति को अपनाकर उसमें नए सुधार किए। फिर 1789 में एंतोने लोरेंत द जुसुएयू ने और अधिक सुधार करके इसे छापा। अंततः अंग्रेज वनस्पति विज्ञानी जार्ज बैंथम तथा जोसेफ डाल्टन हूकर ने वर्गीकरण की आधुनिक प्राकृतिक पद्धति का विकास किया।

लिनीयस ने न केवल वनस्पतियों और प्राणियों को उनकी बिरादरी में बांधा और उनका नामकरण संस्कार किया बल्कि उसने खनिजों का भी वर्गीकरण किया। उसने बीमारियों पर भी पुस्तक लिखी। पौधों पर लिखी गई पुस्तकों से उसे दुनियां भर में ख्याति मिली। आज भी ये वनस्पति विज्ञान की महानतम पुस्तकें मानी जाती है।

नाम और सम्मान

प्रकृति विज्ञान के क्षेत्र में महान खोजों के लिए कारोलस लिनीयस को अनेक सम्मान मिले। सन् 1755 में स्पेन के राजा ने उसे ऊंचे वेतन और अन्य सुविधाओं का प्रलोभन देकर स्पेन में बस जाने का आमंत्रण दिया लेकिन लिनीयस ने उसे अस्वीकार कर दिया। सन् 1761 में उसे सामंत का सम्मान प्रदान किया गया। यह सम्मान सन् 1757 से लागू माना गया और इसके साथ ही कारोलस लिनीयस का नाम 'कार्ल वॉन लिने' हो गया। दुनिया भर से छात्र और शोधार्थी उससे मिलने आते और जो ज्ञान बटोर कर ले जाते, उसे अपने देश में दूसरों को बांटते। लोगों ने सुदूर देशों से उसे नए-नए पौधे भेजे, जिन्हें उसने अपने वनस्पति उद्यान में लगाया।

सन् 1774 में लिनीयस मस्तिष्क के रक्ताघात से पीड़ित हुआ जिससे वह काफी कमजोर हो गया। उसका स्वास्थ्य गिरता चला गया और चार वर्ष बाद 10 जनवरी 1778 को वह महान वैज्ञानिक दुनिया को अलविदा कह गया। अंग्रेज वनस्पति विज्ञानी सर जे.ई. स्मिथ ने सन् 1783 में लिनीयस की पांडुलिपियां, सूखे पौधों का विश्व का सबसे बड़ा संग्रह तथा कीटों और शंखों का संग्रह खरीदा जिन्हें लिनेयन सोसायटी ने लंदन के बर्लिंगटन हाउस में सुरक्षित रखा है। उसके वनस्पति उद्यान को स्वीडन की सरकार ने उसकी स्मृति में सुरक्षित रखा है। □

[श्री देवेन्द्र मेवाड़ी, गली 5/1391, कृष्णानगर, सफदरजंग इन्क्लेव, नई दिल्ली- 110 029]

खेल और विज्ञान

(शेषांश पृष्ठ 16 का)

अत्यधिक मात्रा लेने से मूत्र के साथ शरीर से कैल्सियम हानि होती है।

9. कुछ खेल संबंधी सामान्य पुस्तकों में यह बताया गया है कि उच्च रेशेदार अल्प वसा युक्त आहार खेल प्रदर्शन क्षमता को बढ़ाता है, किन्तु इस धारणा का कोई ठोस वैज्ञानिक आधार नहीं है।
10. भविष्य के उपयोग के लिये शरीर में केवल वसा एवं कार्बोहाइड्रेट का संग्रह होता है। मानव शरीर अतिरिक्त प्रोटीन का संचय नहीं कर सकता है।

दरअसल, एक अच्छे खिलाड़ी को अपने आहार पर प्रारंभ से ही पूरा ध्यान देना चाहिये। ताजे फल, हरी सब्जियां, दूध एवं मक्खन का नियमित उपयोग करने से खिलाड़ी को लाभ होता है। किसी भी खिलाड़ी को शराब, धूम्रपान एवं तले हुए खाद्य पदार्थों का उपयोग नहीं करना चाहिये। अच्छे खिलाड़ियों को चाय एवं काफी से भी अपने को बचाकर रखना चाहिए। एक अच्छे खिलाड़ी को मादक औषधियों, तथाकथित शक्तिवर्धक टॉनिकों एवं संश्लेषित विटामिनों के जाल में नहीं फंसना चाहिए। वैज्ञानिक अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि प्राकृतिक रूप से उपलब्ध संपूर्ण आहार ही हमारे शरीर के लिए सर्वोत्तम है। यहां एक बात बताना आवश्यक है कि कठिन प्रशिक्षण के कारण अक्सर खिलाड़ियों के शरीर में लौह (आयरन) की कमी हो जाती है जिसे आहार विशेषज्ञों एवं खेल-चिकित्सकों की सलाह को लेकर 'लौह संपूरकों' का उपयोग करके पूरा करना आवश्यक है।

खिलाड़ियों को प्रतियोगिता के दिन उतना ही आहार दिया जाना चाहिये जिससे न तो उन्हें खेल के दौरान भूख महसूस हो और न ही वे 'अधिक खाने' के दुष्परिणामों के शिकार हों। उनका आहार वसा एवं प्रोटीन के बजाय कार्बोहाइड्रेट से समृद्ध हो। यह भी आवश्यक है कि उन्हें उस दिन मसालेदार, चिकनाई युक्त एवं पेट में पहुंचकर गैस बनाने वाले खाद्य पदार्थ बिल्कुल न दिये जाएं। उनके आहार ग्रहण करने के समय में एवं प्रतियोगिता के समय में इतना अंतर होना चाहिए जिससे खेलते समय उनका आमाशय एवं आंत का ऊपरी भाग खाली रहे। इसके साथ ही खिलाड़ी के शरीर में द्रव की पर्याप्त मात्रा का होना जरूरी है ताकि खेल के दौरान उसके शरीर में 'जल अभाव' की स्थिति पैदा न हो। □

[श्री सुभाष लखेड़ा, एक्स- 360, सरोजिनी नगर, नई दिल्ली- 110023]
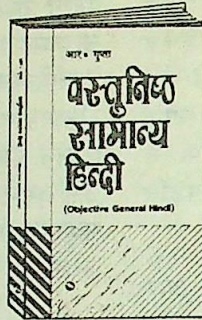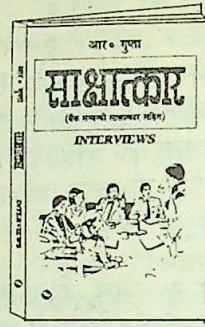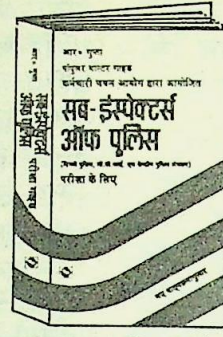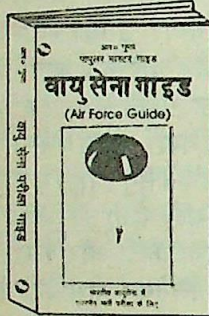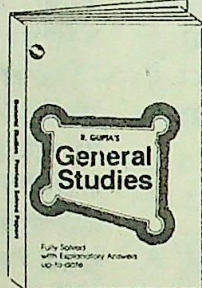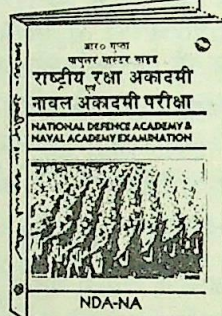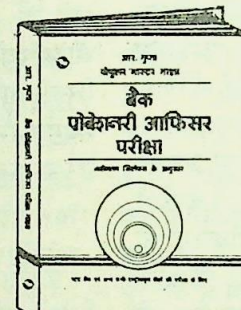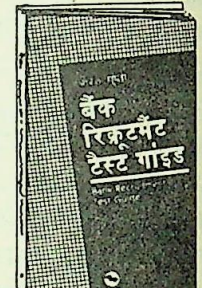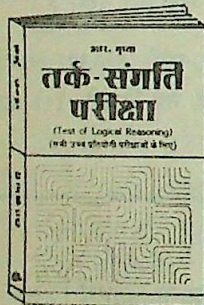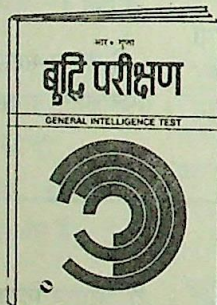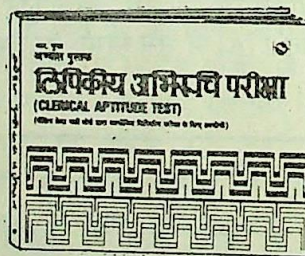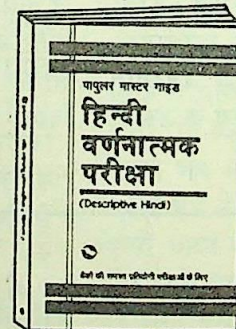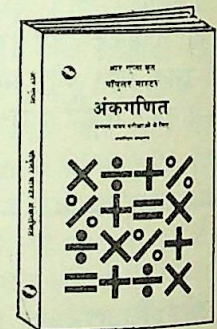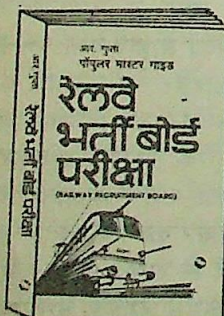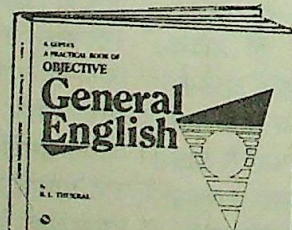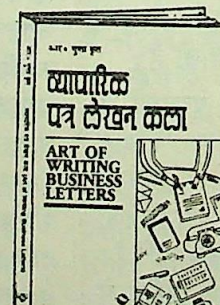
रोना आवश्यक है : आप बहुत दुखी हैं चाहे सुखी या अचानक आप की आंखों में कुछ गिर गया। जरा सा धुंआ आंखों में लगे या प्याज काटने बैठे तो अचानक स्वतः ही आपकी आंखों में आंसू चमकने लगते हैं। देखने वाला तो यही पूछता है अरे आप रो क्यों रहे हैं। लेकिन यह बड़ी अजब बात है प्रत्येक स्थिति में निकलने वाले आंसुओं में काफी अन्तर होता है। फ्लोरिडा (अमेरिका) के नेत्र रोग विशेषज्ञ डा. जेम्स के आंसुओं पर किए गए गहन अनुसंधान से यह परिणाम निकला है। इस परिणाम की प्राप्ति के लिए डा. जेम्स ने विभिन्न आयु वर्ग के स्त्री, पुरुषों एवं बच्चों को पहले तो ट्रेजडी से भरपूर फिल्म दिखाकर खूब रुलाया और फिर खूब प्याज कटवाकर आंसू बहावाये और दोनों तरह के आंसुओं के नमूने एकत्र किये। तब प्रयोगों से स्पष्ट हो गया कि इन दोनों

स्थितियों के आंसुओं में काफी अन्तर है। दुख और पीड़ा में निकले हुये आंसू ही असली हैं।

इससे भी दिलचस्प और मजेदार बात यह सामने आयी कि रोने से न केवल चेहरे की त्वचा में निखार आता है बल्कि तनाव मुक्त होने से व्यक्ति दीर्घायु भी होता है। डा. बाण्ड के अनुसार स्त्रियां अधिक रोती हैं इससे वह पुरुष की अपेक्षा कहीं अधिक तनाव मुक्त रहती हैं। जबकि पुरुष आंसू बहाने में झिझकने के कारण अधिक अशान्त तथा तनाव से घिरे रहते हैं इसलिये कम आयु में ही बूढ़े लगने लगते हैं।

सेन्टपाल रेमजे मेडिकल सेन्टर मिनीसोटा के मनोचिकित्सक डा. विलियम फ्रे एवं डा. विंसेट के अनुसार आंसू मलमूत्र की तरह ही व्यर्थ पदार्थ हैं। इसलिए इसका शरीर से निकलते रहना आवश्यक है। मन ही मन घुटते हुए जबर्दस्ती आंसूओं को रोकने से अनेक रोग होने की संभावना बढ़ जाती है। अतः व्यक्ति को रोते समय एकाएक नहीं रोकना चाहिए। रोने से मन हल्का होने के साथ-साथ शरीर को अनावश्यक तनाव से भी मुक्ति मिलती है। अर्थात रोना भी आवश्यक है स्वस्थ रहने के लिये।

माइग्रेन से छुटकारा दिलायेगी नयी दवा : माइग्रेन एक ऐसी स्थिति है जिसमें सिर के आधे हिस्से में असहनीय दर्द होता है और उल्टी के साथ-साथ आंखों में भी जलन होती है। इससे निबटने के लिये लंदन के ग्लैक्सो समूह ने 18 वर्षों के गहन अनुसंधान के परिणामस्वरूप समाट्रिप्टान नामक दवा तैयार की है जिसकी शीघ्र ही बाजार में आने की संभावना है। अब तक 800 से भी अधिक मरीजों पर इसका परीक्षण किया गया है। परीक्षण के दौरान 85 प्रतिशत लोगों को दवा लेने के एक घंटे के भीतर ही पूरी तरह आराम मिल गया। ग्लैक्सो के चिकित्सा अनुसंधान विभाग के वरिष्ठ चिकित्सक डॉ. एलिसन पिलग्रिम के अनुसार 70 प्रतिशत मामलों में माइग्रेन का पहला दौरा पड़ने पर इस दवा को लेने से तुरन्त लाभ मिलता है। इस दवा का प्रभाव

सामने आने में 30 से 60 मिनट का समय लगता है इसका असर करीब 4 घंटे तक रहता है। यदि रोग ज्यादा पुराना हो तो इस दवा को मुंह से लेने की बजाय इंजेक्शन द्वारा लेना ज्यादा बेहतर होता है। इससे केवल 10 मिनट में ही आराम मिल जाता है। इंजेक्शन भी 85 प्रतिशत मामलों में कारगर पाया गया है।

इस दवा के अनुसंधान का काम 1972 में शुरू किया गया था। कोई 4 साल बाद यह बात सामने आई कि माइग्रेन का दौरा पड़ने पर सिर के भीतर की रक्तवाहिनियां फैल जाती है और उन पर सूजन आ जाती है। रक्तवाहिनियों को फैलने से रोकना और सूजन को हटाना ही इस दवा का काम है।

विकलांगों के लिये चमत्कार : यदि किसी व्यक्ति की आकस्मिक दुर्घटना या रोग के कारण पैर की उंगलियां या हड्डियां टेढ़ी-मेढ़ी हो गयी हों तो बगैर किसी दवा या सर्जरी के बिगड़े अंगों को ठीक किया जा सकेगा।

इन नयी खोज के अनुसार टेढ़े-मेढ़े अंगों के इलाज में एक बूंद खून बर्बाद नहीं जाएगा। कारण अकस्मात विकलांगता की शिकायत दूर करने के लिए सोवियत संघ के कुरगन स्थित रोग अनुसंधान संस्थान ने लोहे के मजबूत तारों से निर्मित मानव शरीर का एक ऐसा ढांचा तैयार किया है किजिसमें रोबोट नुमा शरीर के कई हिस्से हैं। इस प्रक्रिया में रोगी व्यक्ति का जो अंग टेढ़ा होता है उस भाग पर सांचे को धीरे-धीरे कस दिया जाता है। फिर एक स्थिति ऐसी आती है जब टेढ़ा अंग स्वयं सामान्य स्थिति में आ जाता है।

(शेष पृष्ठ 45 पर)

रोबोट्स आर कमिंग—स्टोरीज़ ऑफ रोबोट्स

लेखक: दिलीप एम. साल्वी; प्रकाशन: रत्ना सागर प्रा. लि., विराट भवन, मुखर्जी नगर व्यावसायिक केन्द्र, दिल्ली-110009; 1989; मूल्य: 18.90 रुपये; पृष्ठ संख्या: 93

"रोबोट" शब्द चेकोस्लोवाकिया भाषा से लिया गया है जिसका अर्थ होता है—दास या गुलाम। इस शब्द का सर्वप्रथम 'कारेब कापेक' ने अपने नाटक "रोसोमस् यूनीवर्सल रोबोट्स" में प्रयोग किया था। जापान और पश्चिमी देशों में तो रोबोटों से उद्योगों में काम लिया जा रहा है। इनसे घर और जलपान गृहों में काम में लेने के प्रयास किए जा रहे हैं। रोबोटों को सैन्य प्रशिक्षण भी दिया जा रहा है। वास्तव में, रोबोट हमारे जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाएंगे। मगर लोगों के मन में रोबोट के प्रति अनेक भ्रामक धारणायें हैं। कुछ का विचार है कि इनसे बेरोजगारी बढ़ेगी क्योंकि रोबोटों की हर काम करने की क्षमता से अधिकाधिक लोग बेकार हो जायेंगे। मगर कुछ का मानना है कि इनकी सहायता से कुछ असंभव और कठिन कार्यों को करने में बहुत सहायता मिलेगी। वह दिन दूर नहीं जब हमारे देश में भी रोबोट दिखाई देने लगेंगे। हम चाहे मानें या ना मानें रोबोट युग आ रहा है।
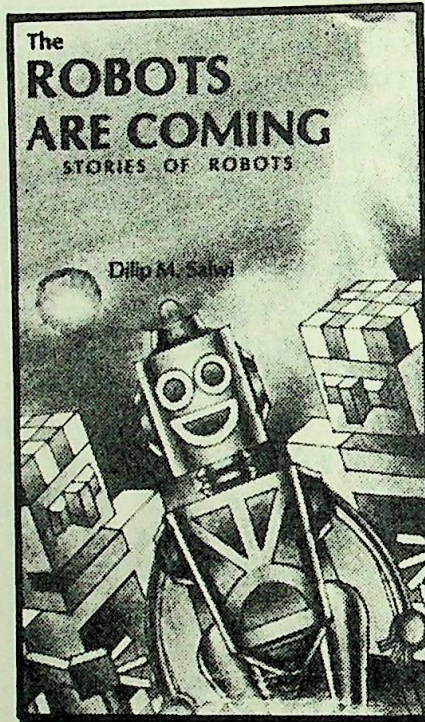
यह पुस्तक लेखक द्वारा बच्चों के लिए लिखी गई अन्य विज्ञान पुस्तकों की श्रृंखला की एक और नई कड़ी है। इसमें रोबोट पर लिखी गई 11 परिकल्पित कहानियों का संकलन है। इनमें से दस कहानियों को "चिलड्रंस वर्ल्ड" से उद्धृत किया गया है। एक कहानी "जब घर में एक रोबोट है" डेली हिन्दुस्तान टाइम्स के रविवासरीय पत्रिका में "मिसचिफ मेकर्स" के नाम से प्रकाशित हो चुकी है।

लेखक ने कहानियों के माध्यम से "रोबोट" जैसे जटिल विषय को सुन्दर और आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया है। इनमें से कुछ कहानियां जैसे— "जब घर में एक रोबोट है", "शेर का शिकार", "शरलॉक होल्मस्— की त्रुटि", "रोबोट्स चतुर बन रहे हैं" आदि बहुत सरल और रुचिपूर्ण हैं। अंतिम पृष्ठों में कुछ संबंधित शब्दों का अर्थ भी दिया गया है। हर कहानी के साथ चित्र देने से कहानी की प्रस्तुति रोचक और सुन्दर हो गई है।

पुस्तक की भाषा सरल तथा सज्जा और छपाई सुन्दर है। पुस्तक का मूल्य भी उचित है। बच्चों के लिए, जो वास्तव में इन रोबोटों को भविष्य में देखेंगे, लेखक का यह प्रयास सराहनीय है। पुस्तक अंग्रेजी में है। □

[डा. तपन मुखर्जी, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली- 110012]

चिल्ड्रन्स नॉलिज बैंक

पुस्तक 6 खण्डों में; लेखक: डा. सुनीता गुप्ता तथा डा. नीना गुप्ता; प्रकाशक: पुस्तक महल, खारी बावली, दिल्ली-110006; पृष्ठ संख्या: प्रत्येक की लगभग 235, बड़ा आकार; मूल्य: प्रत्येक भाग का पेपर बैक संस्करण 28 रुपये, लाइब्रेरी सजिल्द संस्करण: 48 रुपये

पिछले दो तीन दशक ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में बहुत महत्वपूर्ण रहे हैं। इस अवधि में ऐसे-ऐसे आविष्कार हुये हैं कि दांतों तले अंगुली दबानी पड़ती है। घर-घर में टेलीविजन होने से छोटे-छोटे बच्चे भी नई-नई बातों से अवगत होते रहते हैं और उनकी जिज्ञासु प्रवृत्ति नये-नये प्रश्नों के रूप में उनके मन में उथल-पुथल मचाती रहती है। उनकी जिज्ञासाओं को शान्त करने के लिये यदि कोई पुस्तक आपके पास हो तो
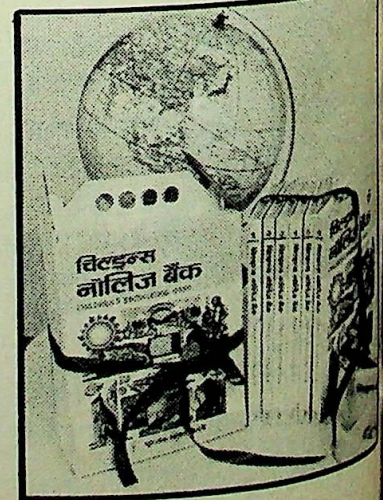
कैसा हो? यह निर्णय तो आप ही कीजिये लेकिन यदि ऐसी किताब आपके हाथ में हो तो आपके हो गये वारे-न्यारे। चूंकि बच्चों की रुचि प्रायः कथा-कहानियों में होती है और ऐसी पुस्तकें उन्हें पर्याप्त मात्रा में मिल भी जाती हैं। लेकिन ज्ञान-विज्ञान की विविध शाखाओं से संबंधित जानकारी अनेक विश्वकोशों और ग्रंथों-संदर्भ ग्रंथों में बिखरी होती है और उस तक पहुंचना हर बच्चे के लिए तो क्या वयस्कों के लिये भी संभव नहीं हो पाता।

इसी बात को ध्यान में रखते हुये प्रकाशक ने बच्चों के लिये प्रश्नोत्तर-माला के रूप में 'चिल्ड्रन्स नॉलिज बैंक' नामक पुस्तक छः खण्डों में प्रकाशित की है जिनमें ज्ञान-विज्ञान की प्राचीन और नवीन सभी महत्वपूर्ण उपलब्धियों को समेटने का प्रयत्न किया गया है। प्रत्येक खण्ड को भी 5 या 6 भागों—सामान्य ज्ञान, आधुनिक विज्ञान, मानव शरीर, खेल और खिलाड़ी, पेड़-पौधे और जीव-जन्तु आदि में विभाजित किया गया है। सबसे बड़ा खण्ड सामान्य ज्ञान का है। प्रत्येक खंड में प्रायः 235 पृष्ठ और लगभग 200 प्रश्न हैं। प्रत्येक खण्ड की रूपरेखा लगभग समान है। उदाहरण के लिये पहले भाग में चार खण्ड हैं : 1. सामान्य ज्ञान, 2. भूगोल, 3. ब्रहमांड, 4. आविष्कार। सामान्य ज्ञान—के अंतर्गत 108 विषयों पर प्रश्न हैं जैसे जीभ स्वाद कैसे बताती है? उल्लू को अंधेरे में कैसे दिखाई देता है? भूगोल—के अंतर्गत पृथ्वी कितनी पुरानी है? पृथ्वी के भीतर क्या है? जलवायु कितने प्रकार की होती है? जैसे 33 प्रश्नों का उत्तर दिया गया है। ब्रहमांड—कैसे अस्तित्व में आया? आकाश गंगा क्या है? उल्काएं क्या हैं? आदि 25 जिज्ञासाओं का समाधान ब्रहमांड में मिलता है? चौथे खंड आविष्कार के अंतर्गत विज्ञान के 20 विभिन्न आविष्कारों की कहानी दी गई जैसे बिजली, साईकिल, रेलगाड़ी, कम्प्यूटर, टेलीविजन, सिलाई मशीन का आविष्कार अथवा विकास कैसे हुआ?

इसी प्रकार खण्ड दो भी चार भागों में विभक्त है : सामान्य ज्ञान— प्रेशर कुकर में खाना जल्दी क्यों पक जाता है? डबल रोटी में छेद क्यों होते हैं? बर्फ कैसे गिरती है? जैसे 56; 2. मानव शरीर— महिलाओं की आवाज सुरीली क्यों होती है? पेट में कीड़े क्यों हो जाते हैं? खून का रंग लाल क्यों होता है? जैसे 41; 3. जीव जगत— धरती पर जीवन कैसे प्रारम्भ हुआ, चमगादड़ को रात में कैसे दिखायी देता है जैसे 5। तथा 4. धरती और आकाश— समुद्र की गहराई कैसे नापते हैं? हवा में नमी कहां से आती है? नीहारिकायें क्या हैं? तारे क्यों टिमटिमाते हैं? जैसे 19 और 5. खेल खिलाड़ी खण्ड—में विभिन्न खेलों से सम्बन्धित 19 प्रश्नोत्तर सम्मिलित हैं।

इसी प्रकार अन्य 4 खण्डों में भी विभिन्न भागों के अन्तर्गत तरह-तरह की जिज्ञासाओं का समाधान किया गया है जिस कारण इस बालोपयोगी पुस्तकमाला को विश्वकोशीय पुस्तकों की श्रेणी में रखा जा सकता है।

सभी विषयों से सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तर सरल तथा रोचक भाषा में प्रस्तुत किये गये हैं। छपाई की दृष्टि से पुस्तकमाला बहुत अच्छी है। आकर्षक आवरण पृष्ठ बरबस ही आकर्षित करने वाला है। अन्दर के पृष्ठों पर लगभग प्रत्येक प्रश्न को चित्र की सहायता से समझाने का प्रयास किया गया है लेकिन किसी-किसी विज्ञान के प्रश्न के उत्तर में स्पष्टतः वैज्ञानिक तथ्य का न होना खलता है।

यह ग्रन्थमाला मूल रूप से हिन्दी में लिखी गई है जिसका अंग्रेजी के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं में भी अनुवाद हो रहा है एवं हो भी चुका है। यह ग्रंथमाला सभी—बालपुस्तकालयों, स्कूलों के लिये तो उपयोगी है ही साथ ही जनसाधारण के लिये भी महत्वपूर्ण है। □

[श्रीमती दीक्षा बिष्ट, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली- 110012]

(शेष पृष्ठ 43 का)

तात्पर्य यह है कि गर्दन से जुड़ी हथेलियां, पीछे मुड़कर छोटे रह गए पांव और उंगलियों में रह गए अन्तर को इस मशीन से ठीक करने में चिकित्सकों को पूरी सफलता मिली हैं। उपचार के बाद मशीन से रोगी को व्यायाम भी कराना संभव है। बस केवल धमनियों की कोशिकाएं नष्ट हो जाने या पोलियो जैसे मामलों में यह उपचार कारगर साबित नहीं होगा जबकि दुघर्टना के बाद तमाम मामलों में आग की गड़बड़ी को दूर करना पूर्णतः संभव है।

सोवियत संघ द्वारा वर्तमान में यह यत्र साठ देशों को निर्यात किया जाता है। खरीदारों में अमेरिका भी शामिल है। भारत सरकार का स्वास्थ्य मंत्रालय भी इसे खरीदने के प्रति गंभीर है। इस मशीन से एक समय में 15 व्यक्तियों का उपचार संभव है। जैसे हाथ प्रभावित होने पर हाथ और उंगली प्रभावित हैं, तो उंगली पर मशीन का वही भाग लगाने की सुविधा भी है।

अब वह दिन दूर नहीं, जब हमारे देश के करोड़ो बच्चों एवं व्यक्तियों को दुर्घटनावश विकलांगता के अभिशाप से मुक्ति मिल सकेगी।

[श्री तारिक असलम तस्नीम, संपादक—नई शिक्षा, 2/6, फुलवारी शरीफ- 801 505 पटना]

पाठकों से निवेदन

1. प्रश्नमंच स्तम्भ में भाग लेने वाले पाठकों से निवेदन है कि वे प्रश्न के साथ-साथ अपना पूरा नाम व पता साफ-साफ व स्पष्ट अक्षरों में लिख कर भेजें ताकि आवश्यकता पड़ने पर उनसे पत्रव्यवहार किया जा सके।

2. प्रश्न मंच स्तंभ में भाग लेने के लिये पाठक एक बार में एक ही प्रश्न पोस्टकार्ड पर लिख कर भेजें तथा पोस्ट कार्ड पर निम्न कूपन अवश्य लगायें। कूपन रहित प्रश्न पर विचार नहीं किया जायेगा।

3. पत्रिका में प्रकाशित हो गये प्रश्नों को दोबारा न पूछें। ऐसे प्रश्नों का पुनर्प्रकाशन संभव नहीं है।

प्रश्न मंच कूपन

सम्पादक "प्रश्न मंच"
विज्ञान प्रगति
प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय
सी.एस.आई.आर., हिलसाइड रोड
नई दिल्ली-110 012

GOVERNMENT OF INDIA

DEPARTMENT OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

INVITES

APPLICATIONS FROM TESTING AND CALIBRATION LABORATORIES
FOR THEIR ACCREDITATION
UNDER THE PROGRAMME ON NATIONAL COORDINATION OF
TESTING AND CALIBRATION FACILITIES (NCTCF)

ORGANISATIONS (GOVERNMENT OR PRIVATE) WHICH UNDERTAKES
TESTING CALIBRATION EITHER FOR ITS OWN PURPOSE OR
FOR OTHERS ARE ELIGIBLE TO SEEK ACCREDITION.

FOR DETAILS, PLEASE WRITE TO:

Testing Laboratories

Adviser

Engineering and Technology
Department of Science & Technology
New Mehrauli Road
New Delhi - 110 016

Calibration Laboratories

Director

National Physical Laboratory
Dr. K.S. Krishnan Road
New Delhi - 110 012

(शेषांश पृष्ठ 13 का)

अस्थाई आवास

रोटी कपड़ा के बाद अब बारी आती है–आवास की। विभिन्न परिस्थितियों में पोर्टेबल आवास, जैसे टेंट, या तम्बू आदि का सहारा लिया जाता है। लेकिन सैनिकों की आवश्यकताओं को देखते हुये विभिन्न प्रकार के आवास विकसित किये गये हैं ताकि वे सुरक्षा पूर्वक आराम से रोजमर्रा के जीवन में इनका प्रयोग कर सकें। परम्परागत आश्रय सामग्री बहुत ही भारी है जिसे लाने ले जाने में कठिनाई होती है। ग्लेशियर और पहाड़ी स्थानों पर ऐसे आश्रय की आवश्यकता है, जो भार में हल्के हों और वायुयान से नीचे गिराये जा सकते हों। साथ ही ठण्डरोधी हों। इनमें छोटे तम्बुओं से लेकर बड़ी कार्यशालाओं तक के डिजाइन तैयार किये गये हैं। नये विकसित आवासों में मिश्र धातु, अग्निरोधी प्लाईवुड, मैरिन प्लाईवुड, फाइबर ग्लास फोम, प्लास्टिक लेपित और खरयुक्त पानीरोधी संश्लिष्ट कपड़ा प्रयोग किया गया है। अग्निरोधी आवास के लिये सिरेमिक युक्त आर्मर टैंट बनाये गये हैं।

हिमालय की ऊंचाइयों और अंटार्कटिका के बर्फीले क्षेत्रों में आवास की समस्या हल की गई है। महासागर विकास विभाग के आहवान पर रक्षा अनुसंधान विकास स्थापना ने अंटार्कटिका में "मैत्री" नामक स्थाई केन्द्र का निर्माण किया है।

पहाड़ों पर, जहां जान तो जोखिम में होती ही है, वहीं दूसरी ओर बहुत सी अन्य समस्यायें भी हैं। ऐसी परिस्थितियों के लिये 3.95 मी. व्यास और 1.7 मी. ऊंचाई वाला तंबू बनाया गया है। इसमें धातु के पाइप का ढांचा है, और यह रेज़िन युक्त फाइबर ग्लास से बना है। भीतरी कपड़े को रासायनिक रूप से आग-रोधी बनाया गया है।

जहां भी नजर दौड़ायेंगे, कुछ नया ही पायेंगे। अब देखिये ग्लेशियर क्षेत्र में हांड कंपाती सर्दी में रैन बसेरे के लिये "कुमार" नामक झोपड़ी बनाई गई है, जिसमें शौचालय सहित बर्फ पिघलाने की मशीन भी लगी है। ठण्डी हवायें और कम ताप इसमें रहने वालों पर प्रभाव नहीं डालते। यहां तक कि खाना पकाने के लिये भी अलग अध्ययन करके रसोई तम्बू का निर्माण किया गया है जिसके अस्तर को हांइड्रोक्सी मेथिल फास्फोनियम क्लोराइड द्वारा उपचारित किया गया है, ताकि उसमें आग न लगे।

> **केवल हथियारों से नहीं**
>
> लड़ाई में सफलता केवल हथियारों पर निर्भर नहीं करती, बल्कि उनके पीछे जो मनुष्य हैं, उन पर भी निर्भर करती है, जहां हर हालत में शारीरिक और मानसिक दक्षता बनाए रखनी पड़ती है। सीमांत का पर्यावरण बहुत कठोर और निर्दयी हो सकता है। ऊंचे स्थानों पर ताप -40° सेंटी. तक कम और धूल भरे अंधड़ों में 50° सेंटी. तक अधिक होता है। सैनिकों को अपने कर्तव्यों का पालन करने के लिए इन सब बाधाओं से जूझना पड़ता है। हमारा भी यह दायित्व है कि हम विपरीत परिस्थितियों के लिए सैनिकों को जरूरी साज सामान से सुसज्जित रखें। इसीलिए रक्षा अनुसंधान और विकास संगठन ने सैनिकों के लिए भोजन, वस्त्र, आवास, ऊंचे स्थानों पर कृषि, अनुकूलन हेतु शारीरिक जांच, और उत्तम स्वास्थ्य हेतु अनुसंधान पर बल दिया है ताकि हर तरह की पर्यावरणीय परिस्थितियों में हमारे सैनिक अपने कर्तव्यों के पालन में सक्षम हों और उनका मनोबल ऊंचा रहे।
>
> —प्रो. वी.एस. अरुणाचलम
> रक्षा मंत्री के वैज्ञानिक
> सलाहकार

ताकि स्वास्थ्य अच्छा रहे

कहते हैं जान है तो जहान है। अगर स्वास्थ्य उत्तम हो तो बहुत सी समस्यायें खुद ही हल हो जाती हैं। और फिर सैनिक सेवाओं के लिये तो उत्तम स्वास्थ्य प्रबल सैनिक शक्ति की निशानी है। रक्षा क्षेत्र की विभिन्न अनुसंधानशालाओं में सैनिकों की स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के निदान हेतु काम हो रहा है। थायरायड ग्रंथि रोग को रोकने और मिटाने के लिए "इनमास" के थायरायड शोध केन्द्र ने 1,10,000 रोगियों का रिकार्ड इलाज किया है। दक्षिण-पूर्वी एशिया में यह सब से बड़ा केन्द्र है। आयोडीन की कमी से होने वाले रोग गलगण्ड, हाइपोथायराइडिज्म, हाइपरथायरायडिज्म पर भी काम हुआ है। इसकी रेडियो इम्युनो एसे द्वारा विस्तृत जांच की जाती है। हृदय रोगों की पहचान के लिये ईको कार्डियोग्राफी, होल्टर मानीटरन आदि विधियों का विकास किया गया है, जिनके द्वारा बहुत से सैनिक रोगी असमय काल के ग्रास बनने से बच रहे हैं।

विभिन्न शारीरिक विकारों की पहचान के लिये चुम्बकीय अनुनाद अक्स उतारने की तकनीक ईजाद की गई है जिससे आरंभ में ही क्षय रोग व अर्बुद आदि का भी पता लगाया जा सकता है। संयंत्र में चुम्बकीय अनुनाद स्पेक्ट्रोस्कोपी की भी व्यवस्था है। इसमें शरीर के भीतरी उपापचय का पता भी लगाया जा सकता है, जो कि खेल चिकित्सा और ऊंचाईयों पर शरीर क्रिया विज्ञान के अध्ययनों में सहायक है।

'इनमास' द्वारा विकसित कुछ प्रमुख कर्मक हैं–श्वेत रक्त कणिका, प्लेटलेट्स, लाल रक्त कणिका, डीएमएमए, सीयू-मेनीटाल, सीयू-जीएचए और ट्राईमेथिलियोडो – आईडीए। इनको विशिष्ट मोनोक्लोनल एंटिबाडी तकनीक अपना कर तैयार किया गया है।

प्रत्येक मनुष्य की जीवन लीला दिल की धड़कनों की लय पर चलती है। लेकिन इस लय में व्यवधान आने पर समस्या उठ खड़ी होती है। इसके स्वचालित परीक्षण हेतु विशेष इलेक्ट्रोकार्डियोग्राफ विकसित किया गया है, इसमें लगा कम्प्यूटर रोग की जड़ को तुरंत पकड़ लेता है। नींद न आने वाले रोगियों को नींद लाने के लिए नींद की गोली की जरूरत नहीं, अब इलेक्ट्रोस्लीप नामक उपकरण बनाया गया है, जिसके द्वारा ऐसे रोगी की आंखों में 30 किलो हर्ट्ज की आवृत्ति पर 2 मिली एम्पियर धारा दौड़ाई जाती है, जिससे बगैर किसी पार्श्व प्रभाव के रोगी मिनटों में चैन की नींद सो जाता है।

कैसे मिले साफ पानी

हर घाट-घाट का पानी सीधे पीने लायक नहीं होता, उसमें विभिन्न प्रदूषकों के साथ अनेक रोगाणु भी होते हैं, अतः ऐसी हालत में
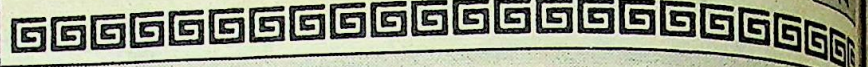
पानी को पीने योग्य बनाने के लिये पोटैशियम डाइक्लोरो आइसोसाइनोरेट को संसाधित करके टिकियां बनाई गई हैं। एक टिकिया से एक लीटर पानी 15 मिनट में संदषण मुक्त हो जाता है। यह टिकिया विषैली नहीं है, और हैलोजन टैबलेट की तुलना में इसकी दक्षता कहीं अधिक है। एक जेबी पानी सफाई नली बनाई गई है जिसमें एक नली में मजबूती से कैटायनी आयन विनियम रेजिन युक्त चतुष्फलकीय अमोनियम आयन आयोडीन-3 आयनों से जुड़े रहते हैं, जिसे पानी में रखने पर आयोडीन मुक्त होती हैं जिससे पीने पर साफ पानी प्राप्त होता है। पानी में संदूषण का पता लगाने की किट भी बनाई गई है। रेगिस्तानी खारे पानी और समुद्री पानी का निर्लवणीकरण करने के लिए भी छोटे किट बनाए गए हैं, जिनमें रखे रसायन का प्रयोग करके पानी को पीने लायक बनाया जा सकता है। अंटार्कटिका और बर्फीले क्षेत्रों में जहां बर्फ पिघला कर पानी पिया जाता है, वहां पानी में प्रायः खनिजों की कमी होती है। इस कमी को पूरा करने के लिए खनिज लवण युक्त टिकियां बनाई गई हैं, जिसमें प्राकृतिक रूप से मिलने वाले सोडियम, पोटैशियम, मैग्नीशियम, कैल्सियम और विटामिन सी के खनिज होते हैं।

सैनिकों को तत्काल विभिन्न दबावों में काम करना होता है। इसके लिए ऐसा चैम्बर बनाया गया है, जिसके अंदर कृत्रिम दाब उत्पन्न करके, और दाब में परिवर्तन करके सैनिकों को ऐसी स्थितियों के लिए तैयार किया जाता है। इसी तरह ठण्डे और गर्म क्षेत्रों के लिए भी कृत्रिम ताप नियंत्रण द्वारा सैनिकों को अनुकूलन योग्य बनाया जाता है। इसके लिए योग का भी सहारा लिया गया है।

क्षितिज और भी हैं

रोटी कपड़ा मकान और सेहत के साथ ही सैनिकों से जुड़ी कुछ और महत्वपूर्ण तकनीकों और वैज्ञानिक उपलब्धियों की चर्चा करना भी यहां प्रासंगिक होगा, जिनकी बदौलत सैनिक बंधु अच्छी तरह रह सकते हैं, और कुशलता से लड़ सकते हैं। वाहन अनुसंधान और विकास संस्था ने रसोई गाड़ी बनाई है, जो सैनिकों को मौके पर गर्मागर्म खाना पेश करती है। इसी तरह आग बुझाने के लिए तथा मल निपटान के लिए भी नवाचार किए गए हैं। 150 ग्राम एक्सोथर्मिक पाउडर युक्त तापन थैला बनाया गया है। यह पाउडर के आक्सीकरण पर काम करता है, जिससे 24 घंटे तक हाथ व शरीर सेंकने के लिए 45-75^0 सेंग्रे. ताप मिलता है।
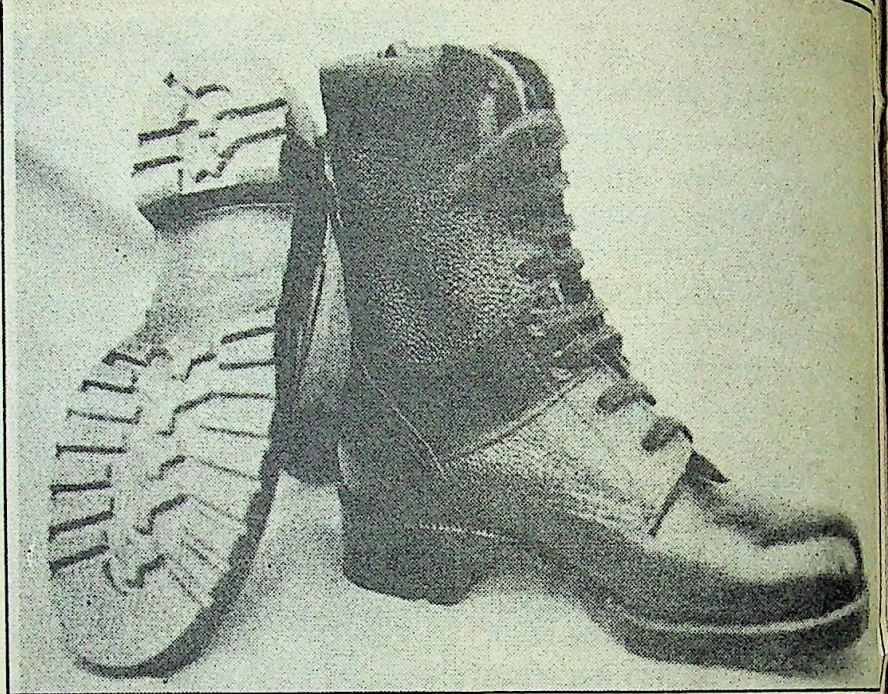
पैरों की रक्षा करते शॉकरोधी जूते

रस्सी पकड़ कर दीवार पर, पेड़ पर और पर्वतों पर चढ़ने की बात भी कितनी निराली है, हर क्षण रस्सी छूटने या टूटने का खतरा। इसके लिए रस्सी पर पकड़ मजबूत रखने के लिए विशेष घर्षण युक्त दस्ताने बनाए गए हैं। जिनमें एक आवरण में उच्च तन्यता वाला पॉलीमाइड बहुरेशीय धागा बुना गया है, जो दस्तानों को फिसलने नहीं देता।

मौके पर खाना पकाने या कुछ गर्म करने के लिए चूल्हा न जलाए जा सकने वाली परिस्थिति में काम करने हेतु धुआं रहित क्षैतिज ज्वाला वाला ऊष्मक बनाया गया है, इससे पुराने बोझिल परंपरागत ऊष्मकों से छुट्टी मिलेगी। सैनिकों का एक बेहद जरूरी सामान है—संचार यंत्र। जिसके द्वारा वह नियंत्रण कक्ष या अपने साथियों को वर्तमान हालत से अवगत कराता है, और दूसरी ओर से निर्देश प्राप्त करता है। इसके लिए एक संचार कंटेनर विकसित किया गया है, जिसमें संचार यंत्र, टेलीफोन और बेतार उपकरण रखे जा सकते हैं। यह ताप, वायु और पानी रोधी होने के साथ ही संघात रोधी भी होता है।

इस सब साज सामान के अलावा विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने सैनिकों के लिए अनेक क्षेत्रों में अनुसंधान के द्वार खोले हैं। यद्यपि सैनिकों की मूलभूत आवश्यकताओं से युद्ध के हथियारों, गोला, बारूद, टेंकों, प्रक्षेपास्त्रों, बंदूकों व तोपों का निकट संबंध है, तथापि यह अपने आप में एक अलग विशाल क्षेत्र है जिसमें राष्ट्रीय स्तर पर विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने बढ़चढ़कर योगदान किया है। जिसके कारण विश्व स्तर पर हमारी रक्षा सेनाओं का उल्लेखनीय स्थान है। स्वाभाविक है सैनिकों के लिए खोजी गई विज्ञान और प्रौद्योगिकी से लाभ लेकर सीमाओं की चौकसी के लिए तैनात, निरंतर नजरें गड़ाए और आत्मबल तथा आत्मविश्वास से परिपूर्ण हमारे सैनिक अपने कर्तव्यों को चर्मोत्कर्ष पर पहुंचाने में सदैव सफल होंगे।

[श्री मनोज कुमार पटैरिया, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, सी.एस.आई.आर., हिलसाइड रोड, नई दिल्ली- 110012]

डा. जी.पी. फोंडके द्वारा प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय (सी.एस.आई.आर.) नई दिल्ली, के लिए तेज प्रेस, बहादुरशाह जफर मार्ग नई दिल्ली-110002 में प्रकाशित और मुद्रित

NEW TITLES FROM PID

LIFE: FROM CELL TO CELL

by Bal Phondke

The exciting story of Life - an eternal journey from cell to cell is told in this profusely illustrated popular science volume especially written for young readers.

ISBN 81 - 85038-93-7
74 pages, Price Rs 8.00

LEARN SCIENCE YOURSELF

A compendium of exciting science experiments and do-it-yourself projects that are not only educative but also of practical utility.

ISBN 81-85038-93-7
128 pages, Price Rs 10.00

BIRDS

This well-illustrated volume covers all aspects of the life of Indian birds and their interaction with man. The classification of birds, their inter-relationships and their descriptions are given in detail.

ISBN 81-85038-90-2
152 pages, Price Rs 125.00

PLANTS FOR RECLAMATION OF WASTELANDS

This illustrated volume describes 1003 species of plants suitable for planting on wastelands to provide timber, fuel, fodder and other economic products. A short account on the reclamation of mined wastelands in also included.

ISBN 81-85038-89-9
684 pages, Price Rs. 325.00

GROUNDNUT

Groundnut is one of India's leading oil producing crops. This volume deals with the origin, breeding, cultivation, diseases and pests and their control, processing of oil and meal and utilization and marketing of this important crop.

56 pages, Price Rs 45.00

INDIAN BRASSICAS

Brassica occupies a pride of place among the oilseed crops of India. This well-illustrated monograph gives a comprehensive coverage of the origin, breeding, cultivation, utilization and marketing of this important oilseed crop.

82 pages, Price Rs 50.00

COMPENDIUM OF INDIAN MEDICINAL PLANTS

Vol 1 (1960-69)

Ram P. Rastogi & B.N. Mehrotra

A detailed treatise written for pharmaceutical technologists, entrepreneurs, industrialists, production executives, research scientists and academicians as a much needed and timely update to the 1956 monumental book Glossary of Indian Medicinal Plants by Chopra, Nayar and Chopra.

Pages : xii + 498; Price : Rs. 180, $ 65, £ 45

Copies available from:
Senior Sales & Distribution Officer
Publications & Information Directorate, CSIR
Dr K.S. Krishnan Marg
New Delhi 110012

Regd. No.D.(C)-89

विज्ञान प्रगति के
40
वर्ष
विज्ञान प्रगति
बहुत हुआ
अब बंद करो ये धुआँ

विश्व-प्रसिद्ध श्रृंखला

जनरुचि की 50 पुस्तकों की एक अनूठी संग्रहणीय श्रृंखला

विश्व-प्रसिद्ध ......
* प्रेरक-प्रसंग * युद्ध
* क्रूर हत्यारे * खोजें
* ड्रग माफिया * जासूस
* रिकार्ड्स I, II * वैज्ञानिक
* विनाश लीलाएं * सभ्यताएं
* रोमांस-कथाएं * दुर्घटनाएं
* खोज-यात्राएं * जनसंहार
* भयानक रोगों पर विजय
* बैंक डकैतियां व जालसाजियां
* धर्म, मत एवं संप्रदाय
* हस्तियों के प्रेम-प्रसंग
* तख्तापलट की घटनाएं
* 101 व्यक्तित्व-I
* भ्रष्ट राजनीतिज्ञ
* अनमोल खजाने
* अलौकिक रहस्य
* गुप्तचर-संस्थाएं
* राजनैतिक हत्याएं
* आतंकवादी संगठन
* चिकित्सा-पद्धतियां
* सनकी तानाशाह
* खेल और खिलाड़ी
* कुख्यात महिलाएं
* मिथक एवं पुराण-कथाएं
* मांसाहारी पेड़ - पौधे
* रोमांचक कारनामे
* अनसुलझे रहस्य
* जन-क्रांतियां
* धातुओं की कथाएं
* गुरू एवं शैतान-कल्ट्स

शेष 3 पुस्तकें प्रेस में
38 Titles available in English & 5 in Bangla

* प्रामाणिक पाठ्य-सामग्री
* कलात्मक प्रस्तुतीकरण
* सैकड़ों दुर्लभ चित्र
* वाजिब दाम

मूल्य : 20/- प्रत्येक
डाकखर्च : 5/- प्रत्येक
छः पुस्तकों पर डाकखर्च माफ

1. विश्व-प्रसिद्ध भविष्यवेत्ता नास्त्रेदमस के अनुसार सन् 1999 में दुनिया खत्म– *भविष्यवाणियां*
2. वे साहसी पक्षियों की तरह पंख लगाकर हवा में उड़े– *साहसिक कथाएं*
3. वे ब्लेड, लोहा, स्टील निगलते हैं और आग पर चलते हैं –*अनूठे रहस्य*
4. सरकंडे की नाव से 13,000 मील लंबी तूफानी समुद्र की यात्रा –*रोमांचक कारनामे*
5. गिने-चुने वैज्ञानिक, कूटनीतिज्ञ, नेता, समाजसुधारक, क्रांतिकारी एवं कलाकार–एकसाथ– *101 व्यक्तित्व-II*
6. एटम बम से नागासाकी के महासंहार की हृदयविदारक गाथा– *मिलिट्री ऑपरेशन्स*
7. क्लियोपैट्रा , जो 10,000 से भी अधिक लोगों के साथ हमबिस्तर हुई –*कुख्यात महिलाएं*

■ *यह दुनिया आश्चर्यजनक, अविश्वसनीय, सनसनीखेज एवं रोमांचक चीजों एवं घटनाओं से भरी पड़ी है –इन सभी के विषय में दुर्लभ सचित्र जानकारी जुटाती है– विश्व-प्रसिद्ध श्रृंखला*

■ *इसकी प्रत्येक पुस्तक अपने क्षेत्र से संबंधित सभी उल्लेखनीय पक्षों को उजागर करने वाला एक ऐसा **मिनि एनसाइक्लोपीडिया** है, जो परम ज्ञानी से लेकर एक औसत पाठक तक को अंतर्राष्ट्रीय घटनाक्रम से जोड़कर उसके ज्ञान-भंडार को बढ़ाता है ।*

अपने निकट व ए.एच. व्हीलर के रेलवे व बस-अड्डों के बुकस्टॉलों पर मांगें अन्यथा वी.पी.पी. द्वारा मंगाने के पते

पुस्तक महल, खारी बावली, दिल्ली-110006

शोरूम : 10-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

शिष्टसम्मत पत्रिका

'विज्ञान प्रगति' अपने आप में एक बेमिसाल पत्रिका है। इसकी जितनी भी प्रशंसा की जाये कम है। हम विज्ञान प्रगति के नये पाठक हैं। आपकी इस पत्रिका ने हमें इस हद तक प्रभावित किया कि हम आपको धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सके।

इस कमर तोड़ महंगाई में इतनी उत्कृष्ट पत्रिका को प्रकाशित करना वास्तव में महंगाई को चिढ़ाना ही तो हुआ। इतने कम पैसे में विज्ञान संबंधी जानकारी देना एक इंसानियत की बात है।

हां! पर एक शिकायत हमें आपसे है कि आप ''प्रश्न मंच के लिये कंजूसी करना छोड़ दें। आपकी पत्रिका युग युग तक छपती रहे। यही हमारी कामना है।

[रूबी बर्नवाल, कस्टोर टाऊन, रिबहार तथा खखेन्द्र कुमार पाण्डेय, अहिरौली, महुजा, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश]

सस्ता एवं सुलभ साधन

'विज्ञान प्रगति' का अप्रैल 1991 का अंक प्राप्त हुआ। यह अंक भी पिछले कई अंकों की भांति आकर्षक व ज्ञानवर्द्धक रहा।

विशेषतया आमुख कथा में ''क्या होगा पेट्रोल का विकल्प'' प्रेरणादायक रहा। और प्रश्न मंच, क्या आप जानते हैं? व आरोग्य सलाह रोचक व शिक्षाप्रद रहे।

यह सर्वविदित है कि ''विज्ञान प्रगति'' ज्ञान प्राप्त करने का सस्ता व सुलभ साधन है। तथा शिक्षित जन समुदाय में यह पत्रिका सर्वाधिक लोकप्रिय है। निसन्देह इस पत्रिका का कोई विकल्प खोजना बड़ा कठिन है। विज्ञान प्रगति बधाई की पात्र है जो इतने कम मूल्य में इतनी सामग्री पाठकों तक पहुंचाती हैं।

[नवीन कुमार गर्ग, क्लोथ मर्चेन्ट, बड़ा बाजार, बुढ़ाना, मुजफ्फरनगर, उ.प्र. तथा कन्हैयालाल मंगलानी, 301/ए कस्तूरबा नगर, रतलाम, म.प्र.]

ज्ञान का दीपक

मैं आपकी सुप्रसिद्ध पत्रिका ''विज्ञान प्रगति'' का 1984 से नियमित पाठक हूं। इस पत्रिका का हर लेख ठीक वैसा होता है जैसे कि दीपक की रोशनी। जिसमें उजाला होता है, जिस तरह से दीपक अंधकार हटाकर प्रकाश लाता है, ठीक उसी तरह ये पत्रिका ज्ञान के दीपक के समान है। जो इस पत्रिका को अपने सामने रखेगा उसका अंधकार सेकेण्डों में समाप्त कर उसमें प्रकाश की नई चेतना भर देगा। और वह अंखंड ज्योति के सदृश तब तक जलता रहेगा जब तक वह इस पत्रिका का एक-एक अंक का पाठक होगा क्योंकि दीपक में भी तेल की जरुरत होती है और बराबर तेल मिलता रहेगा तो दीपक कभी अंधकार लायेगा नहीं। इसलिये इसे मैं ज्ञान का दीपक कहने से कदापि नहीं हिचकूंगा।

[अरविन्द कुमार शर्मा, बारो राजमीठा, गढ़हरा, बेगूसराय, बिहार]

कम मूल्य पर अमूल्य

यूं तो ''विज्ञान प्रगति'' का नाम मैं काफी पहले से सुनता आ रहा हूं और इसकी प्रशंसा भी अपने मित्रों से कई बार सुना चुका हूं। पर आज से पहले मैंने कभी इस पत्रिका को खरीदा नहीं था। पर आखिरकार आज एक दोस्त के कहने पर पत्रिका खरीद ही ली। वास्तव में, यह पत्रिका अपने आप में एक अनूठी पत्रिका है। अब जाकर मैंने समझा कि आखिर इस पत्रिका की इतनी प्रशंसा क्यों की जाती है। पत्रिका पढ़ने के बाद मैं भी अपने को रोक नहीं पाया और यह पत्र लिखने बैठ गया। मैं अपने उस दोस्त का आभारी हूं जिसने मुझे यह पत्रिका पढ़ने को प्रेरित किया। इस पत्रिका की सबसे बड़ी विशेषता है इसके मूल्य का कम होना। इतने कम मूल्य में विज्ञान संबंधी इतनी अच्छी जानकारी देने वाली पत्रिका केवल ''विज्ञान प्रगति'' ही हो सकती है। इसके लिये आप बधाई के पात्र हैं। इस पत्रिका के सभी लेख व स्तंभ ज्ञानवर्धक हैं। खासतौर से ''प्रश्न मंच'' और ''आरोग्य सलाह'' ने मुझे अधिक आकर्षित किया। अब तो मैं भी इस पत्रिका का नियमित पाठक बनूंगा।

[कृष्ण कुमार एवं मित्र, दानापुर छावनी, पटना, बिहार- 801503]

विज्ञान का सरल माध्यम

हम विज्ञान प्रगति के नियमित पाठक हैं। आपकी इस पत्रिका की जितनी प्रशंसा की जाये कम है क्योंकि इस पत्रिका के माध्यम से विज्ञान को समझने में हमें आसानी होती है। पत्रिका का अप्रैल 1991 का अंक पढ़ा। इस अंक में हमें आमुख कथा और जैवप्रौद्योगिकी पर लेख बेहद अच्छे लगे। अतः लेखक बधाई के पात्र हैं। विज्ञान प्रगति का प्रत्येक अंक बेहद रोचक एवं ज्ञानवर्द्धक होता है। पत्रिका का आवरण पाठक को आकर्षित कर झकझोर देने वाला होता है। विज्ञान प्रगति एक उत्कृष्ट पत्रिका है।

[संजय बनसिंगे, दुर्ग, म.प्र., विपिन कुमार श्रीवास्तव, ओमगंगोत्रीनगर, इलाहाबाद, विवेक कुमार बम्बाघरे, रामनगर, नैनीताल]

पाठकों से निवेदन

1. प्रश्नमंच स्तम्भ में भाग लेने वाले पाठकों से निवेदन है कि वे प्रश्न के साथ-साथ अपना पूरा नाम व पता साफ-साफ व स्पष्ट अक्षरों में लिख कर भेजें ताकि आवश्यकता पड़ने पर उनसे पत्रव्यवहार किया जा सके।

2. प्रश्न मंच स्तंभ में भाग लेने के लिये पाठक एक बार में एक ही प्रश्न पोस्टकार्ड पर लिख कर भेजें तथा पोस्ट कार्ड पर निम्न कूपन अवश्य लगायें। कूपन रहित प्रश्न पर विचार नहीं किया जायेगा।

प्रश्न मंच कूपन

सम्पादक ''प्रश्न मंच''
विज्ञान प्रगति
प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय
सी.एस.आई.आर., हिलसाइड रोड
नई दिल्ली-110 012

विषय सूची

वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद का हिन्दी विज्ञान मासिक

वर्ष : 40 जून : 1991 ज्येष्ठ : 1913 अंक : 6 पूर्णांक : 445

विज्ञान प्रगति

जून 1991

प्रमुख सम्पादक
डा. जी.पी. फोंडके

सम्पादक
दीक्षा बिष्ट

सहायक सम्पादक
मनोज कुमार पटैरिया
ओम प्रकाश मित्तल

कला अधिकारी
दलबीर सिंह वर्मा

प्रोडक्शन अधिकारी
रत्नाम्बर दत्त जोशी

वरिष्ठ बिक्री और वितरण अधिकारी
आर.पी. गुलाटी

बिक्री और वितरण अधिकारी
टी. गोपाल कृष्ण
एल.के. चोपड़ा
मो. आसीफ अख्तर
फूल चन्द

सहायक
बी.एस. शर्मा

आवरण : नीरू शर्मा
पारदर्शियां : एम.ए. हक
(आवरण तथा आमुख कथा)

टेलीफोन : 585359 और 586301

लेखकों के कथनों और मतों के लिये प्रकाशन और सूचना निदेशालय उत्तरदायी नहीं है ।

एक अंक का मूल्य : 2.50 रुपये
वार्षिक मूल्य : 25.00 रुपये

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के दिनानुदिन तकनीकी विकास के लिये नित नये अनुसंधानों और औद्योगीकरण के जो द्वार खुले उन्होंने भारत वर्ष को विकासशील देशों की अग्रगण्य श्रेणी में तो पहुंचा दिया लेकिन ऐसी-ऐसी समस्याओं के जाल में भी फंसा दिया कि भारत क्या संपूर्ण विश्व पर आतंक के बादल मंडराते नजर आने लगे हैं। कारण है पर्यावरण पर अत्याचार।

दिनानुदिन प्रगति के पथ पर दौड़ते हुये मानव इतना व्यस्त हो गया कि पर्यावरण पर प्रगति के कारण हो रहे अत्याचारों पर उसका कभी ध्यान ही नहीं गया। जब उसे होश आया तब तक विश्व, प्राकृतिक आपदाओं के जाल में घिर चुका था क्योंकि अपनी सुविधाओं को जुटाने के लिये उसने प्राकृतिक साधनों का इस सीमा तक शोषण किया कि परिणामस्वरूप पर्यावरण ने विकृत और संहारक रूप धारण कर लिया।

औद्योगिक कारखानों ने जल और वायु को तो प्रदूषित किया ही साथ-साथ मशीनों की गड़गड़ाहट ने शोर प्रदूषण को भी जन्म दिया। औद्योगिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये जो वनों का कटान आरंभ हुआ उसने तो पर्यावरण का संतुलन ही बिगाड़ कर रख दिया। वनों तथा वृक्षों के अंधाधुंध कटान से भूस्खलन, बाढ़ का प्रकोप तो बढ़ा ही साथ ही वर्षा की कमी ने सूखे की समस्या को जन्म दे डाला।

यातायात के बढ़ते सुलभ साधनों ने आवागमन की सुविधा प्रदान की तो वातावरण में जहरीली गैस छोड़ने में भी कसर नहीं छोड़ी और फैक्ट्रियों की चिमनियों से निकले जहरीले धुयें ने तो कहर ढाया हुआ है। आज पर्यावरण में कार्बन मोनोआक्साइड की मात्रा औद्योगीकरण से पूर्व मात्रा से 140% अधिक है। जीवाश्मी ईंधन की खपत भी वर्तमान दर से सन् 2020 तक दुगुनी होने की संभावना है।

एक अनुमान के अनुसार गैस प्रदूषण के कारण पृथ्वी का तापमान 3^0 सेल्सि॰ अधिक हो जायेगा जिसके कारण ध्रुवीय बर्फ पिघलने लगेगी फलतः समुद्री जलस्तर में 5 मीटर तक की वृद्धि हो जायेगी जिससे अधिकांश तटीय क्षेत्र जल में विलीन हो जायेंगे। खाद्य उत्पादन में कमी तो अकाल का कारण बनेगी ही लेकिन असंतुलन से उत्पन्न चक्रवात, तूफान जैसी भंयकर प्राकृतिक आपदाओं का सामना करने के लिये भी हम तैयार नहीं हो पायेंगे क्योंकि अभी भी वर्तमान प्रौद्योगिकी में प्राकृतिक आपदाओं के बारे में लंबे समय की भविष्यवाणी करना संभव नहीं है। हां! कुछ घंटे पहले की भविष्यवाणी मौसमी उपग्रहों व अन्य उपग्रहों द्वारा संभव है लेकिन प्रकृति का दोहन तो रोकना ही है।

इसके लिये आवश्यकता है जनमानस में पर्यावरण के प्रति जागरूकता पैदा करने की। यह संभव है पर्यावरण शिक्षा से जो प्राथमिक स्तर से विश्वविद्यालय स्तर तक देनी आवश्यक है।

संभवतः इसी बात को ध्यान में रखते हुये संपूर्ण विश्व 5 जून को सन् 1972 से विश्व पर्यावरण दिवस के रूप में मनाता आ रहा है ताकि हम सभी को अपने आस्तित्व के प्रति उत्पन्न संकट का आभास हो सके और हम अपने पर्यावरण को स्वच्छ बनाने के लिये सजग रहें, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि विकास न हो, विकास के साथ-साथ स्वच्छ पर्यावरण भी आवश्यक है और आवश्यकता है– पर्यावरण संरक्षण और विनाशहीन विकास की। □

हमारे नये महानिदेशक

डा. श्रीकृष्ण जोशी, निदेशक, राष्ट्रीय भौतिकी प्रयोगशाला, नई दिल्ली को 18 अप्रैल, 1991 को वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् का महानिदेशक तथा वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान विभाग का सचिव नियुक्त किया गया है। डा. जोशी इस परिषद् के 11 वें महानिदेशक हैं।

आंखों में सहृदयता, होंठें पर सहज मुस्कान, व्यवहार में विनम्रता और मृदु स्वर, मध्यम कद के इस 55 वर्षीय व्यक्ति के स्वभाव, व्यवहार, बातचीत और हाव-भाव से लेश मात्र भी यह नहीं झलकता कि वे हमारे देश की सर्वोच्च वैज्ञानिक व औद्योगिक अनुसंधान संस्था के महानिदेशक व वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान विभाग के सचिव हैं। संस्कृत की यह प्राचीन सूक्ति कि 'विद्या ददाति विनयम्' इन पर शत-प्रतिशत चरितार्थ होती है।

6 जून 1935 को उत्तर प्रदेश के अत्यन्त पिछड़े पर्वतीय क्षेत्र पिथौरागढ़ जिले के अनरपा गांव में जन्मे श्रीकृष्ण जोशी की अनरपा से अनुसंधान भवन, दिल्ली तक की यात्रा लम्बी और संघर्षपूर्ण रही। उनके पिता प्राइमरी स्कूल के अध्यापक थे।

बचपन ही से वे परिश्रमी एवं मेधावी छात्र थे। अपने शिक्षा जीवन की प्रथम परीक्षा से अन्तिम परीक्षा तक वह सदैव अपनी कक्षा में प्रथम आते रहे। तेरह वर्ष की अल्पायु में जयन्ती मिडिल स्कूल से मिडिल पास करने बाद अपनी पढ़ाई जारी रखने के लिये अल्मोड़ा आ गये क्योंकि सबसे निकटतम हाई स्कूल व कालेज अल्मोड़ा ही में थे। उनकी बचपन ही से गणित और भौतिक विज्ञान में रुचि थी।

सन् 1951 में जब उन्होंने हाई स्कूल पास किया तो अनरपा गांव के इतिहास में वे पहले मैट्रिक पास व्यक्ति थे। दुर्भाग्यवश हाई स्कूल पास करने के कुछ समय बाद ही पिता का देहान्त हो गया।

सन् 1953 में अल्मोड़ा राजकीय कालेज से इंटर करने के बाद उन्होंने उच्च शिक्षा के लिये इलाहाबाद विश्वविद्यालय में बी.एस -सी. में दाखिला लिया और पढ़ाई के साथ-साथ घर की सभी जिम्मेदारियों को भी निभाते रहे।
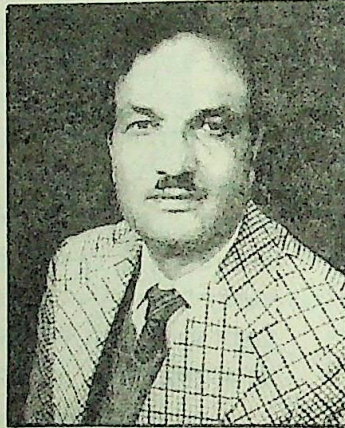
सन् 1957 में श्रीकृष्ण जोशी ने प्रथम श्रेणी में भौतिक विज्ञान में एम.एस -सी. पास किया। विश्वविद्यालय ने एम.एस -सी. में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने पर उन्हें विद्यान्त स्वर्ण पदक और प्राध्यापक पद से सम्मानित किया। श्रीकृष्ण जोशी सन 1957 से 1969 तक इलाहाबाद विश्वविद्यालय में लेक्चरर के रूप में काम करते हुये शोध कार्य करते रहे। इसी विश्वविद्यालय से उन्होंने 1962 में भौतिक विज्ञान में डाक्टरेट भी प्राप्त की। सन 1965 से 1967 तक वे कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में विजिटिंग प्रोफेसर भी रहे। सन 1967 में वे प्रोफेसर के रूप में रुड़की विश्वविद्यालय चले आये और पहले सन 1967 से 1978 तक और फिर 1984 से 1986 तक भौतिक विज्ञान विभाग के अध्यक्ष भी रहे। सन 1986 में भारत सरकार के अनुरोध पर वे दिल्ली चले आये और राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला के निदेशक नियुक्त हुये।

डा. श्रीकृष्ण जोशी अनेक राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित किये जा चुके हैं। सन् 1964 में अमेरिका के वाटूमल मैमोरियल पुरस्कार; 1972 में भौतिक विज्ञान के लिये शांति स्वरूप भटनागर पुरस्कार; 1973 में यू जी सी नेशनल लेकचररशिप; सी.एस.आई.आर. रजत जयन्ती पुरस्कार; 1974 में शोध के लिये मेघनाथ साहा पुरस्कार और 1991 में पद्मश्री से सम्मानित किया जा चुका है।

यह पूछे जाने पर कि लगभग 30 वर्ष तक अध्यापन कार्य करने के बाद जब उन्होंने पहली बार सन् 1986 में राष्ट्रीय भौतिक विज्ञान प्रयोगशाला के निदेशक के रूप में पद संभाला तो उन्हें यह नया दायित्व कैसा लगा, उन्होंने बताया कि विज्ञान के क्षेत्र में अध्यापन और शोध में उनकी सदैव विशेष रुचि रही है। लेकिन ऐसा भी नहीं है वे प्रबंधन और प्रशासनिक कार्यों से नितान्त अछूते रहे हैं। एन.पी.एल. में रहते हुये भी वे शोध कार्य करते रहे हैं और उन्होंने अनेक शोध पत्र तैयार किये हैं।

वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् के महानिदेशक के रूप में उनका पहला प्रयास यह होगा कि वे औद्योगिक विकास से संबंधित अनुसंधान कार्यों में तेजी लायें जिससे देश का औद्योगिक विकास द्विगुणित हो सके। इसके लिये उनकी योजना एक समयबद्ध कार्यक्रम लागू करने की है। उनका कहना है कि उद्योगों और अनुसंधान परिषद् के बीच तालमेल, पारस्परिक विश्वास और आदान-प्रदान बढ़ाने की जरूरत है।

जहां तक हमारे देश में वैज्ञानिक व औद्योगिक अनुसंधान की स्थिति का प्रश्न है डा. जोशी का कहना है कि अनेक सीमाओं के होते हुये भारत ने इस दिशा में उल्लेखनीय प्रगति की है। विकासशील देशों में तो हमारा स्थान अग्रणी है ही लेकिन अनुसंधान के अनेक क्षेत्रों में भारत विकासशील देशों से पीछे नहीं है। उदाहरण के लिये सुपर कंडक्टिविटी, पालीमर्स, औषधियों, ऐरोनॉटिक्स आदि के क्षेत्रों में भारत विकसित देशों के समकक्ष है। अनेक दूसरे क्षेत्रों में भी भारत तेज़ी से प्रगति कर रहा है और वह दिन दूर नहीं है जब वैज्ञानिक शोध और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हमारी गिनती विश्व के चंद विकसित देशों में होगी। □

[श्री दयानन्द अनन्त, 11/446, सेक्टर-1, गोल मार्किट, नई दिल्ली - 110001]

पर्यावरण संरक्षण और विश्व पर्यावरण दिवस

एम.ए. हक

जब 1972 में संयुक्त राष्ट्र का आम सभा ने संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यू.एन.ई.पी.) की स्थापना की तो तभी यह घोषणा की कि 5 जून को प्रत्येक वर्ष 'विश्व पर्यावरण दिवस' के रूप में मनाया जाएगा। संयुक्त राष्ट्र ने सरकारों तथा प्रतिष्ठानों से आग्रह किया कि 5 जून को ऐसे कार्यक्रम आयोजित किए जायें जिससे इस तथ्य का संकेत मिले कि पर्यावरण के प्रति हमारा कुछ कर्त्तव्य है तथा हम सब पर्यावरण के रख-रखाव तथा इसके सुधार के प्रति वचनबद्ध हैं। तभी से हर वर्ष 5 जून को विश्व पर्यावरण दिवस मनाया जाता है। विश्व पर्यावरण दिवस के कार्यक्रमों को अधिक कारगर बनाने के उद्देश्य से यू.एन.ई.पी., प्रत्येक वर्ष कोई विशेष उद्देश्य या विषय चुनती है तथा इस विषय को ही केन्द्रबिन्दु मानकर सारे संसार में कार्यक्रमों की रूप रेखा बनाई जाती है। यह उद्देश्य हमेशा किसी ऐसे विषय को लेकर चुना जाता है जो उस समय सारे संसार के लिए चिन्ता का विषय बना हुआ हो या जिस ओर सारे संसार का ध्यान आकृष्ट कराना आवश्यक समझा जाय।

वर्तमान वर्ष के लिए अर्थात 5 जून 1991 को आने वाले विश्व पर्यावरण दिवस के लिए जो उद्देश्य यू.एन.ई.पी. ने रखा है वह है क्लाइमेट चेंज–नीड फॉर ग्लोबल पार्टनरशिप अर्थात जलवायु में निरन्तर हो रहे परिवर्तन या जिनके होने की तीव्र संभावना है, उससे बचने के लिए यह आवश्यक है कि सारी पृथ्वी पर मिलजुल कर ऐसे प्रयत्न किये जायें जिससे हमारी पृथ्वी और पर्यावरण सही सलामत रहे। यह उद्देश्य दो तथ्यों की ओर इंगित करता है, पहला तो यह कि इस पृथ्वी की जलवायु में निरन्तर परिवर्तन हो रहे हैं या होने की संभावना है, दूसरा यदि सारे संसार के लोग मिलजुल कर प्रयास करें तो इन परिवर्तनों के कारण होने वाली प्राकृतिक आपदाओं से होने वाली क्षति से बचा जा सकता है।

आइये, अब हम देखें कि जलवायु में किस प्रकार का असंतुलन उत्पन्न हो रहा है और इनके पीछे कौन से घटक हैं। यह तो सर्वविदित है कि हमारी पृथ्वी पर हर जगह एक जैसी जलवायु नहीं है। कहीं अधिक ठंड पड़ती है तो कहीं अधिक गर्मी, कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जहां लोगों ने कभी बर्फ गिरते नहीं देखी, तो दूसरी ओर बहुत सारे ऐसे क्षेत्र हैं जहां या तो पूरे साल या लगातार कई महीनों तक बर्फ की मोटी तह जमी रहती है; एक ओर कुछ ऐसे इलाके हैं जहां अधिकांश समय वर्षा होती है तो दूसरी ओर ऐसे स्थान भी हैं जहां कई-कई साल वर्षा ही नहीं होती या होती भी है तो नाम-मात्र की। इसी प्रकार जहां एक ओर ऐसे क्षेत्र हैं जहां घने जंगल हैं तो दूसरी ओर विशाल मरुस्थल हैं। यह आश्चर्य प्रकृति की अनुपम देन है और कुछ छोटे-मोटे परिवर्तनों को छोड़कर यह इसी प्रकार चले जा रहे हैं। परन्तु इधर कुछ दशकों से ऐसा लगने लगा है कि इस प्राकृतिक जलवायु में कुछ विस्मयकारी परिवर्तन होने लगे हैं।

और कई बार तो ऐसा भी हुआ है कि पर्यावरण विज्ञानी तक हैरत में पड़ गये हैं क्योंकि जिन क्षेत्रों में कभी बर्फ नहीं पड़ती थी वहा बर्फ गिरी और जिन क्षेत्रों में खूब बर्फ गिरती थी वहां लोगों को बर्फ पर होने वाले खेलों के लिए कृत्रिम रूप से बर्फ डालनी पड़ी। इसी प्रकार कई ऐसे क्षेत्र जहां पहले पर्याप्त वर्षा होती थी वहां वर्षा की दर कम हो गयी है और कई ऐसे क्षेत्र जहां पहले बाढ़ नहीं आती थी वहां बाढ़ का प्रकोप बढ़ रहा है। इस प्रकार के परिवर्तन सीमित रूप से जहां-तहां देखे गये हैं और इनके लिए मुख्य रूप से पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों को दोषी माना गया है। पिछले कुछ दशकों में जहां एक ओर जंगल बहुत अधिक कटे वहीं शहरीकरण की गति बढ़ी और साथ ही उद्योगों में भी तेजी से बढ़ोतरी हुई। मोटर गाड़ियों की संख्या तेजी से बढ़ी साथ ही पेट्रोल की खपत में कई गुना की बढ़ोतरी कुछ ही वर्षों में हुई, थर्मल पावर स्टेशनों की संख्या तथा नदी घाटी योजनाओं का क्षेत्र भी तेजी से बढ़ा। इन सब का प्रभाव यह हुआ कि प्राकृतिक इकोसिस्टम गड़बड़ा गया और उसमें अनेक प्रकार के परिवर्तन आए। जहां हरियाली थी उनकी जगह सड़कों, शहरों और फैक्ट्रियों ने ले ली। जंगलों को काट कर खेत बनाए गये या फिर वहां शहर बसा दिये गए। वनों का स्थान ऊंची-2 अट्टालिकाओं ने ले लिया। परिणामस्वरूप कई क्षेत्रों के पर्यावरण तथा जलवायु में परिवर्तन होने लगा। परन्तु इस प्रकार परिवर्तनों का प्रभाव मुख्य रूप से सीमित क्षेत्र पर ही पड़ा। इसलिये ऐसे परिवर्तनों को कोई विशेष चिन्ता का विषय नहीं माना गया।

परन्तु एक दूसरे प्रकार का परिवर्तन जो पृथ्वी की जलवायु में होता दिखाई पड़ रहा है सम्पूर्ण विश्व के लिए चिन्ता का कारण बन

गया है। यह परिवर्तन ऐसा है जिसका प्रभाव किसी क्षेत्र विशेष के लिए सीमित नहीं है। इस प्रकार का परिवर्तन या तो पूरी पृथ्वी को प्रभावित कर सकता है या पृथ्वी के इतने बड़े भाग को कि इसे सीमित मानना सम्भव नहीं रह सकेगा। इस परिवर्तन का मुख्य कारण है वायुमण्डल में होने वाले वह परिवर्तन जिनसे वायुमण्डल का रासायनिक स्वरूप बदल रहा है। जैसा कि सर्वविदित है कि वायुमंडल में मुख्य रूप से नाइट्रोजन, आक्सीजन, जल-वाष्प, कार्बन डाइआक्साइड गैसें होती हैं। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य गैसें जैसे ओजोन, कार्बन मोनोआक्साइड, मीथेन इत्यादि भी हैं जो बहुत कम मात्रा में पायी जाती हैं। यों तो वायुमण्डल में इन गैसों की मात्रा थोड़ी बहुत घटती बढ़ती रहती है परन्तु औसतन यह मात्रा निश्चित ही रहती है जो संभवतः रहनी भी चाहिए। इधर लगभग सौ सालों में यह पाया गया है कि कई ऐसी गैसें हैं जिनकी मात्रा अर्थात अनुपात में अन्तर उत्पन्न हो रहा है। इन गैसों में मुख्य हैं, कार्बनडाईआक्साईड तथा ओज़ोन। इसके अतिरिक्त नाइट्रस आक्साइड, मीथेन तथा क्लोरो-फ्लोरोकार्बन ऐसी गैसें हैं जिनके वायुमण्डलीय अनुपात में अन्तर हो रहा है।

इसका कारण संभवतः इन गैसों के स्रोत हैं। कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा में बढ़ोतरी के कई कारण हैं। मुख्य कारण है -- कोयले, पेट्रोल इत्यादि की बढ़ती खपत। जो कोयला या पेट्रोल हम आज उपयोग में ला रहे हैं वह आज से लाखों वर्ष पूर्व बने थे जब पेड़-पौधे तथा पशु यानि जनजीवन प्रलय के कारण धरती के गर्भ में समा गया था और आज वह जीवाश्मों के रूप में उभर कर हमारे सामने आ रहा है। आज भी जीवाश्मीकरण की क्रिया निरन्तर चल रही है परन्तु इसकी दर इतनी धीमी होती है कि अगर हम पेट्रोल तथा कोयला, जो एक दिन में उपयोग में लाते हैं उसके विषय में सोचें तो इतना पेट्रोल तथा कोयला बनने में हजारों वर्ष लगेंगे। कहने का अर्थ यह है कि जितना कार्बन वायुमण्डल से धरती के भीतर पहुंचता है और कोयला या पेट्रोल में बदलता है उससे हजारों, लाखों गुना अधिक कार्बन इस धरती के गर्भ से कोयले या पेट्रोल के रूप में निकाल लेते हैं। जब यह ईंधन उपयोग में लाया जाता है तो इनमें उपस्थित कार्बन, डाईआक्साइड गैस में बदल कर वायुमण्डल में चला जाता है। वायुमण्डल से कार्बन डाईआक्साइड को हरे पौधे शोषित कर प्रकाश संश्लेषण की क्रिया करते हैं। इस प्रकार कार्बन डाईआक्साइड वायुमण्डल से हरे पौधे तथा दूसरे जीवों के शरीर में पहुंच जाती है। अगर यह फिर से पेट्रोल या कोयला बन जाए तो इस संतुलन में कोई अन्तर नहीं आएगा। परन्तु ऐसा होता नहीं है। कारण वहीं अन्तर है -- जो हमारे इन ऊर्जा स्रोतों के उपयोग की दर में तथा जीवाश्म बनने की दर में है। प्रत्येक दिन में जितने गुना अधिक पदार्थ जीवाश्म बन सकता है उससे हजारों-लाखों गुना अधिक कार्बनिक ऊर्जा हम धरती के गर्भ से निकाल कर जला डालते हैं। संभवतः हमारी बढ़ती हुई आवश्यकताएं इसका कारण हैं। एक ओर औद्योगिकीकरण बढ़ता जा रहा है तो दूसरी ओर यातायात के साधन बढ़ते जा रहे हैं, साथ ही साथ बढ़ती जा रही है हमारी आबादी। और प्रत्येक कार्य के लिए हमें अधिक से अधिक ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है और इन आवश्यकताओं को हम अधिकांशतः पेट्रोल या कोयले से ही पूरा करते हैं।

ऐसा अनुमान है कि जिस गति से हम ऊर्जा की खपत कर रहे हैं तथा जिस प्रकार हम पेट्रोल तथा कोयले पर आश्रित हैं यदि यही गति चलती रही तो वर्ष 2030 तक वायुमण्डल में, कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा लगभग 560 भाग प्रति दस लाख भाग (560 पीपीएम) हो जाएगा। इस समय वायुमण्डल में कार्बन डाईआक्साइड की मात्रा 340 पीपीएम है। यह मात्रा वर्ष 1825 की अपेक्षा 30 प्रतिशत अधिक है। यदि 220 पीपीएम की अनुमानित नई बढ़ोत्तरी वास्तव में हो गई तो इसका पृथ्वी के औसत तापक्रम पर प्रभाव पड़ेगा। यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह वृद्धि केवल कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा में ही नहीं हो रही है बल्कि अन्य गैसों की मात्रा में भी हो रही है जिनमें नाइट्रस आक्साइड, मीथेन और क्लोरोफ्लोरो कार्बन मुख्य हैं। नाइट्रस आक्साइड के बढ़ने का कारण है मिट्टी में होने वाली कुछ क्रियाएं। मीथेन की बढ़ती
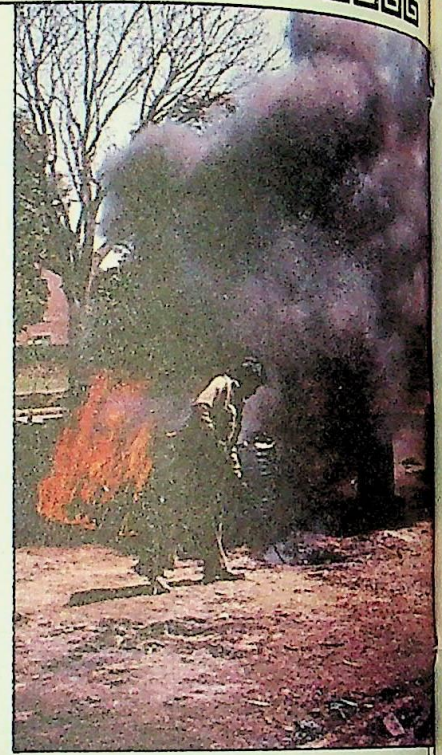
सड़क बनी तो सुविधा हुई लेकिन धुयें का क्या हुआ?

मात्रा के लिए कई क्रियाएं उत्तरदायी हैं जिनमें एक है मिट्टी तथा समुद्र की तह में जमा कार्बनिक पदार्थ का विघटन, जिसके कारण मीथेन गैस बनती है।

इस समय हम रासायनिक पदार्थों के एक वर्ग का उपयोग बहुत अधिक कर रहे हैं जिन्हें क्लोरो-फ्लोरो कार्बन कहते हैं। यह पदार्थ वायुमण्डल में ऊपर जाते हैं तथा वायुमण्डल के ऊपरी भाग में उपस्थित ओजोन की परत को क्षति पहुंचाते हैं। ओजोन की यह परत हम सब के लिए बहुत ही लाभकारी है। सूरज से पृथ्वी की ओर आने वाली किरणों में पराबैंगनी किरणें भी होती हैं। यदि ये किरणें पृथ्वी तक पहुंच जायें तो विभिन्न प्रकार के कुप्रभाव उत्पन्न कर सकती हैं। इन कुप्रभावों में एक कुप्रभाव यह भी होगा कि इससे पृथ्वी के आसपास के तापक्रम में भी वृद्धि होगी क्योंकि सूरज से अधिक तापीय ऊर्जा पृथ्वी तक आ सकेगी। क्लोरोफ्लोरो कार्बन का उपयोग रेफ्रीजिरेटर, एयर कंडीशनर, फोम बनाने तथा ऐरोसोल में होता है। जब इस रासायनिक यौगिक का आविष्कार हुआ था तो लोगों ने इसे 'चमत्कारिक यौगिक' की

संज्ञा दी थी। कारण था कि इस यौगिक का उपयोग कई प्रकार से किया जा सकता था और यह बहुत सस्ती लागत पर बनाया जा सकता था। साथ ही उस समय इसका कोई कुप्रभाव भी ज्ञात नहीं था। परन्तु बाद में काफी अरसे के बाद पता चला कि यह यौगिक वायुमण्डल की ऊपरी परत में उपस्थित ओजोन कवच को गंभीर क्षति पहुंचा रहा है जिसका परिणाम बहुत ही भयंकर हो सकता है! इसके नष्ट होने से पृथ्वी का जन-जीवन सबसे अधिक प्रभावित होगा क्योंकि पराबैंगनी किरणें सीधे पृथ्वी पर पहुंचने लगेंगी और पृथ्वी के वायुमण्डल का तापमान भी बढ़ जायेगा।

पृथ्वी के वायुमण्डल के तापमान को बढ़ाने में एक दूसरी प्रकार की ओजोन का भी योगदान होता है। यह ओजोन वह है जो के बनने की क्रिया हो सकती है। यह दोनों क्रियाएं पृथ्वी के आसपास के तापक्रम को बढ़ा सकती हैं।

वायुमण्डल में कार्बन डाईआक्साइड गैस के बनने के साथ-साथ यह क्रियाएं भी निरन्तर हो रही हैं। यह सब मिलकर जिस प्रक्रिया को जन्म देती हैं उसे 'ग्रीन हाउस प्रभाव' कहते हैं। होता यह है कि सूर्य से जो प्रकाश किरणें पृथ्वी पर आती हैं उनके साथ तापीय किरणें भी होती हैं। यह पृथ्वी की सतह को गर्म करती हैं। बाद में यह ताप ऊर्जा पृथ्वी की सतह से निकल कर फिर वायुमण्डल में जाती है और वहां से होती हुई फिर पृथ्वी से दूर निकल जाती है। यह संतुलन अर्थात तापीय ऊर्जा का आना तथा जाना पृथ्वी के वायुमण्डल के औसत तापक्रम को बनाए रखता है। वायुमण्डल में

न स्वच्छ हवा, न स्वच्छ पानी : सब कुछ प्रदूषित

वायुमण्डल के निचले भाग में बनती है। इसका कारण मुख्य रूप से नाइट्रोजन के वह आक्साइड हैं जो वायुमण्डल के निचले भाग में आते हैं। इसके स्रोत हैं पेट्रोल तथा कोयला इत्यादि जैसे ईंधनों का जलना। इनके अतिरिक्त मीथेन भी वायुमण्डल के निचले भाग में ओजोन के बनने में सहायक होती है। इस प्रकार पृथ्वी से बहुत ऊंचाई पर ओजोन परत में ह्रास तथा पृथ्वी के आसपास ओजोन उपस्थित कार्बन डाईआक्साइड, मीथेन, ओजोन, जल-वाष्प इत्यादि तापीय किरणों को उसी प्रकार निकलने से रोकते हैं जिस प्रकार ग्रीन हाउस में लगे शीशे या प्लास्टिक की चादर तापीय किरणों को बाहर जाने से रोकती हैं तथा ग्रीन हाउस को गर्म रखती हैं। 'ग्रीन हाउस' एक प्रकार का घर है जो शीशे या पारदर्शी प्लास्टिक से बनाया जाता है। सूरज की किरणें इसके अन्दर आती हैं तथा वहां की पृथ्वी एवं वायुमण्डल को गर्म करती हैं। शीशा अथवा प्लास्टिक तापीय किरणों को बाहर जाने से रोकता है। यही कारण है कि ग्रीन हाउस गर्म होते हैं। जिन इलाकों में ठंड अधिक पड़ती है वहां फल-सब्जियां इत्यादि उगाने के लिए ग्रीन हाउस का उपयोग किया जाता है। जो काम ग्रीन हाउस में शीशा या प्लास्टिक करता है वही काम हमारे वायुमण्डल में ग्रीन हाउस गैसें करती हैं। यही कारण है कि इन गैसों की मात्रा बढ़ने से पृथ्वी के आस-पास का तापक्रम बढ़ जाएगा।

तापक्रम के बढ़ने का प्रभाव सम्पूर्ण विश्व की जलवायु पर पड़ेगा। एक ओर तो वर्षा की स्थिति में अन्तर आएगा तो दूसरी ओर पहाड़ों तथा ध्रुवों पर उपस्थित ग्लेशियर तेजी से पिघलेंगे। बहुत सारे ऐसे क्षेत्रों में जहां आज फसल होती है फसल पैदा होनी बन्द हो जाएगी। हरे-भरे क्षेत्र मरुस्थल में बदल जाएंगे, समुद्र के किनारे के तटीय क्षेत्र डूब जाएंगे। इसी प्रकार बहुत सारे द्वीप जलमग्न हो जाएंगे। इस प्रकार इस पृथ्वी की जलवायु में बहुत बड़े पैमाने पर परिवर्तन आएंगे और यह परिवर्तन ऐसे होंगे जिनके विषय में हमें पहले से कोई जानकारी नहीं है क्योंकि ऐसा पहले कभी नहीं हुआ है। साथ ही इन परिवर्तनों को फिर से उल्टी दिशा में ले जाना भी संभव नहीं होगा क्योंकि यह बहुत बड़े पैमाने पर होगा।

तो प्रश्न यह उठता है कि हम इस प्रकोप से कैसे बच सकते हैं? हमें औद्योगिकीकरण तो करना ही है, मोटर गाड़ियां भी समाप्त नहीं हो सकतीं। ऊर्जा की खपत भी होगी ही। इसका उत्तर यह है कि हमें इनके प्रयोग के तरीके बदलने होंगे। एक तो ऊर्जा की बचत अधिक से अधिक करनी होगी ताकि कार्बन डाइआक्साइड के वायुमण्डल में जाने की दर धीमी हो, दूसरी ओर हमें ऊर्जा के उन स्रोतों की ओर ध्यान देना होगा जिन से यह समस्याएं उत्पन्न नहीं होती, उदाहरण के लिए सौर ऊर्जा एक है। यदि हम सौर ऊर्जा का उपयोग करें तो न तो इससे कार्बन डाइआक्साइड निकलेगी, न ही मीथेन, न ही नाइट्रोजन के आक्साइड इत्यादि। इसी प्रकार यदि हम पवन ऊर्जा का उपयोग करें तो यही सब लाभ होंगे।

ओजोन छतरी में छेद: जीवन अस्तित्व खतरे में

इस प्रकार यदि हम व्यर्थ अपशिष्ट या कचरे से यानि कार्बनिक पदार्थों से ऊर्जा उत्पन्न करें तो इस समय जो ऊर्जा व्यर्थ जा रही है उसका उपयोग होगा। इन सब के साथ ऊर्जा का सही उपयोग भी आवश्यक है। हम अपनी मशीनों में सुधार ला कर ऊर्जा की खपत कम कर सकते हैं। बहुत सारे कार्यों में, जहां हम बिजली, पेट्रोल इत्यादि का उपयोग कर रहे हैं, बिना इनके भी किये जा सकते हैं। उदाहरणार्थ यदि हम अपने घरों की बनावट पर थोड़ा ध्यान दें तो बहुत हद तक बिजली की बचत हो सकती है। आज हमारे भवनों का निर्माण इस प्रकार होता है कि दिन में भी बल्ब, ट्यूब इत्यादि जलाने पड़ते हैं। यह सब आसानी से बदल सकता है यदि हम सूर्य के प्रकाश को अन्दर आने दें। अगर भवन हवादार हों तो बहुत हद तक पंखे, कूलर, एयर कंडीशनर इत्यादि की आवश्यकता कम हो सकती हैं। इसी प्रकार भोजन बनाने के लिए सोलर कुकर का उपयोग बहुत हद तक ऊर्जा की बचत कर सकता है। मोटर गाड़ियों के उपयोग में थोड़ी सी योजनाबद्ध नीति, पेट्रोल की खपत को बहुत कम कर सकती है। इन सबका प्रभाव होगा कि कार्बन डाइआक्साइड के वायुमण्डल में जाने की गति कम होगी, मीथेन, नाइट्रोजन के आक्साइड इत्यादि के वायुमण्डल में एकत्र करने की गति में भी कमी आएगी।

परन्तु इतना ही काफी नहीं है। इधर लगभग एक दो शताब्दियों से वनों के कटान में बहुत तेजी आ गई है। प्रत्येक वर्ष लगभग 170 लाख हेक्टर भूमि से वन समाप्त हो रहे हैं। इसका सीधा प्रभाव भी पृथ्वी की जलवायु पर पड़ता है। साथ ही साथ यह पेड़-पौधे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया में जो कार्बन डाइआक्साइड अवशोषित कर उसे वायुमण्डल में समाप्त करते हैं वह भी सम्भव नहीं हो पायेगा। इसके अतिरिक्त कट रहे वनों से निकाला गया कार्बनिक पदार्थ जो लकड़ी, पत्तों, ह्यूमस इत्यादि के रूप में होगा, जो आगे कार्बन डाइआक्साइड में बदल जाएगा। इसलिये वनों के इस तीव्र कटान को रोकना होगा। साथ ही नए वन एवं पेड़-पौधे लगाने होंगे। वृक्षारोपण को बल देना होगा।

जहां तक क्लोरो फ्लोरो कार्बन के उपयोग का प्रश्न है इसे समाप्त करना ही श्रेष्ठ होगा क्योंकि जब तक यह उपयोग होता रहेगा, यह वायुमण्डल के ऊपरी भाग की ओर जाते रहेंगे और ओजोन परत को क्षति पहुंचाते रहेंगे जिसका प्रभाव जलवायु पर पड़ता रहेगा। क्लोरो फ्लोरो कार्बन के स्थान पर ऐसे रसायनों का उपयोग होना चाहिए जो ओजोन परत को क्षति नहीं पहुंचाते। जहां इस प्रकार के रसायन के उपयोग के बिना काम चल सकता है वहां ऐसा होना चाहिए। उदाहरण के लिए ऐरोसोल बोतलों का उपयोग हम आसानी से समाप्त कर सकते हैं। उसके स्थान पर हम पम्प का उपयोग कर सकते हैं। यह पम्प हम हाथ से चला सकते हैं।

सब के लिए यह आवश्यक है कि हम चाहे पृथ्वी के जिस भाग के भी निवासी हों, मिलकर काम करें, तभी इस समस्या का निदान हो सकता है। केवल कुछ लोगों के इस दिशा में कार्य करने से तो सफलता सम्भव नहीं है। यही कारण है कि यू.एन.ई.पी ने इस वर्ष विश्व पर्यावरण दिवस पर यह उद्देश्य चुना है— हमें संकल्प करना चाहिए कि हम वह सब करें जो हमें प्राकृतिक आपदाओं से बचायें तभी हम अपनी इस पृथ्वी की जलवायु को, जो आज हमारे लिए अनुकूल है, प्रतिकूल होने से बचा सकेंगे। □

[डा. एम.ए. हक, पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, पर्यावरण भवन, सी.जी.ओ. कॉम्पलेक्स, नई दिल्ली- 110003]

फैशन और प्रदूषण : दिनानुदिन बढ़ते प्रदूषण को देखते हुये इससे बचने के पुरजोर प्रयास जारी हैं ताकि इससे मानव कम से कम प्रभावित हो। सन् 2030 ईसवी में पुरुषों के लिये फैशन कैसा होगा जो पर्यावरण के प्रदूषण से मुकाबला भी करे और समय की मांग के अनुरूप फैशनपरस्त पुरुषों की इच्छा भी पूरी करे। प्रदूषण से सुरक्षित रखने वाले पुरुष-परिधान का सन् 2030 में कैसा आकार-प्रकार होगा, इस विषय पर डिजाइनों की प्रतियोगिता टोरंटो में सम्पन्न हुई।
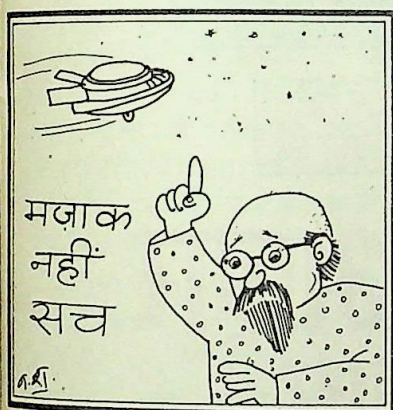
पुरस्कार प्राप्त पुरुष परिधानों के डिजाइनों में एक से बढ़कर एक कल्पना की गई है। शरीर की सुरक्षा और आराम को ध्यान में रखकर लचीला तांबा, पालीयूरेथेन फोम इत्यादि से निर्मित परिधान हैं। पराबैंगनी किरणों को निष्क्रिय करने या रोकने वाले परिधान, पारदर्शी हेल्मेट, प्रत्येक मौसम में तापमान नियंत्रित रख सकने वाले जूते और कपड़े इत्यादि अन्य डिजाइनों में प्रमुख पुरुष परिधान हैं। लचीले तांबे वाली जैकेट के डिजाइन से ऐसा लगता है, मानों हम उसी प्राचीन यग में लौट रहे हैं जब सैनिक धातु से बनी पोशाक, तलवार वगैरह के वार से बचने के लिये पहनते थे। हां, आधुनिक तकनीक ने वैसे परिधानों को नये परिवेश में जरूर ढाला है।

बड़ों के लिये झुनझुना : प्रायः अधिकतर लोग आदतन मेज पर रखे पेपरवेट को खिलौना समझ कर उसे घुमाते रहते हैं। इसी प्रकार चीन के लोग हाथ में अखरोट घुमाते रहने के आदी हैं। सोवियत संघ के वैज्ञानिक आवित्सेन्ना ने शायद इन्हीं आदतों से प्रेरणा पाकर हाथों के अभ्यास के लिये तांबे के गोले बनाये हैं। 33 मिमी. व्यास और 45 ग्राम से कम वजनी ये गोले वास्तव में ठोस न होकर खोखले होते हैं। तांबे के दो अर्द्धगोलों के अंदर छोटे चार गोले होते हैं। हथेली में पकड़ कर इन गोलों को घुमाने से छोटे गोलों के कारण कम्पन्न उत्पन्न होते हैं जिनसे अंगुलियों की नसों के सिरों पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। इससे हथेली की मालिश के अलावा शरीर के दूसरे अंग भी प्रभावित होतेहैं। उदाहरण के लिये उंगलियों की नसों के सिरे मस्तिष्क से सीधे संबंधित होते हैं।

वैज्ञानिक आवित्सेन्ना के अनुसार ये तांबे के गोले हाथों से श्रमसाध्य कार्य करने वाले
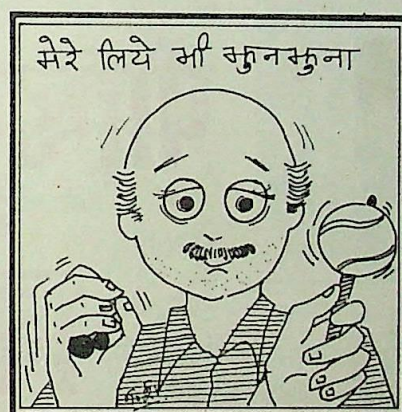
लोगों मसलन क्लर्क, बुनकर, संगीतकार, चित्रकार आदि के लिये अत्यंत लाभकारी हैं। एक हथेली में दो तांबे के गोलों को कुछ देर तक बार-बार घुमाते रहने से मानसिक उत्तेजना में वृद्धि, भावात्मक स्थायित्व और शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त होते हैं। हाथ में गोलों को घुमाते वक्त अंदर वाले नन्हें गोलों के कारण जो ध्वनि निकलती है, उससे यह भी कहा जा सकता है कि ये गोले मालिश वाले झुनझुने हैं।

कौवा काला नहीं उजला भी : कहते हैं कि कौवा कितनी बार भी स्नान कर ले मगर काला का काला ही रहेगा और उसका रंग उजला नहीं होगा। लेकिन एक दुर्लभ प्रजाति वाला उजला कौवा गोंधाना गांव में
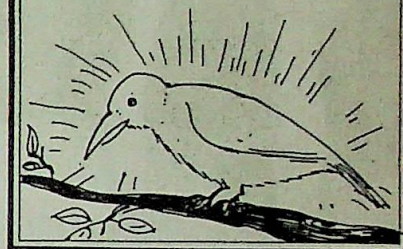
घायलावस्था में जमीन पर पड़ा हुआ मिला। यह गांव मध्य प्रदेश के बेतूल जिले में है। किसी व्यक्ति ने इसे पकड़ने के लोभ में घायल कर दिया था। अफसोस कि इसे पक्षियों के अस्पताल में ले जाने के बावजूद बचाया नहीं जा सका।

पुरस्कार में अंतरिक्ष की सैर : न्यूयार्क की एक लाटरी कंपनी ने घोषणा की है कि पुरस्कार विजेता को एक सप्ताह तक अंतरिक्ष में रहने की सुविधा दी जायेगी।

पुरस्कार विजेता का सायूज अतराक्षयान मे अंतरिक्ष में वर्ष 1992 के अंत में या 1993 के शुरू में भेजा जायेगा। यदि विजेता अंतरिक्ष में मेहमाननवाजी न चाहे तो 15 लाख डालर की राशि नकद पुरस्कार के रूप में ले सकता है। इस अनोखी लाटरी का ड्रा इस वर्ष के अंत में होगा। देखें, कौन भाग्यशाली विजेता बनकर अंतरिक्ष की सैर करता है। □

[अनिल कुमार शर्मा
दिल्ली]
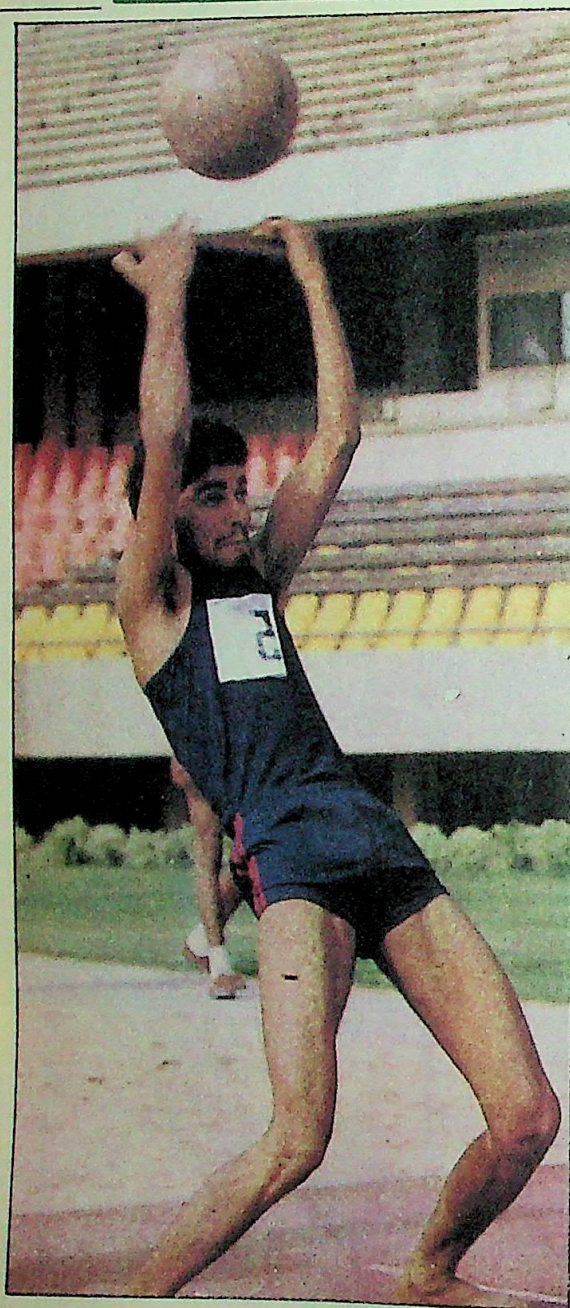
सन् 1969 में टी. क्यूरेटॉन नामक वैज्ञानिक ने बता दिया था कि गहन प्रशिक्षण की वजह से शरीर से विटामिन बी और सी की हानि होती है। यह विचार भी प्रकट किया गया कि खेल प्रशिक्षण के कारण माइटोकॉन्ड्रिया एवं ऊर्जा चयापचय एंजाइमों में वृद्धि होती है।

पौष्टिक आहार के साथ विटामिन भी आवश्यक

सुभाष लखेड़ा

लाड़ियों को दिये जाने वाले आहार के विषय में आज भी कुछ ऐसे प्रश्न मौजूद हैं जिनका उत्तर खोजने के लिये विश्व के कई देशों के खेल वैज्ञानिक प्रयत्नशील हैं। ऐसे ही कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न खिलाड़ियों की विटामिन संबंधी आवश्यकताओं के विषय में भी हैं।

दरअसल, विटामिनों का उन प्रमुख कार्बनिक पदार्थों में महत्वपूर्ण स्थान है जो हमारे शरीर के लिए 'अति आवश्यक' हैं। शरीर में विशिष्ट चयापचयिक (मेटाबोलिक) क्रियाओं में इनकी सूक्ष्म मात्रा में जरूरत होती है। उल्लेखनीय है कि विटामिन 'डी' के अलावा शरीर किसी भी अन्य विटामिन को संश्लेषित नहीं कर सकता। शरीर विटामिनों को या तो सीधे खाए एवं पचाए हुए आहार से प्राप्त करता है अथवा जठरांत्र पथ (गैस्ट्रोइंटेस्टाइनल ट्रैक्ट) क्षेत्र के कुछ सूक्ष्मजीव समूह शरीर के लिए उन्हें संश्लेषित करते हैं।

शरीर में विटामिनों का संबंध अनेक कार्यों से है। किंतु शारीरिक शक्ति एवं सामर्थ्य की दृष्टि से इनकी लाल रक्त कणिकाओं के उत्पादन एवं रक्षण तथा कोशिकाओं की आक्सीकरण क्रियाओं में सहप्रकिण्वों (को-एंजाइम) वाली भूमिकाओं का अधिक महत्व है। कुछ विटामिन सहप्रकिण्वों के रूप में चयापचय की कई मध्यवर्ती क्रियाओं के लिए जरूरी होते हैं, उदाहरणार्थ, विटामिन बी₆ पाइरीडॉक्सिल फॉस्फेट के रूप में प्रोटीन एवं अमीनो अम्लों के चयापचय में तथा ग्लाइकोजन के ग्लूकोज

में अपघटित होने की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसी प्रकार विटामिन बी$_1$ (थायमिन) थायमिन पायरोफास्फेट के रूप में 'कार्बोहाइड्रेट चयापचय' के लिए आवश्यक है, जबकि विटामिन बी$_2$ (राइबोफ्लेविन) फ्लेविन ऐडेनीन डाइन्यूक्लियोटाइड के रूप में वसीय अम्लों के आक्सीकरण के लिए आवश्यक है। वसीय अम्लों का आक्सीजनी आक्सीकरण हो अथवा ग्लाइकोजन का अपघटन, शारीरिक कार्यों के दौरान क्रियाशील पेशियों में हो रहे चयापचय के लिए उपलब्ध ईंधन स्रोतों के अनुसार इन सहएंजाइमों की आवश्यक मात्रा भिन्न-भिन्न हो सकती है।

जैसा पहले कहा गया है मध्यवर्ती चयापचय में सहएंजाइमों की भूमिका के अतिरिक्त कुछ विटामिन लोहित कोशिकाओं के उत्पादन एवं रक्षण में योगदान देते हैं। अतः ये विटामिन सैद्धांतिक दृष्टि से अप्रत्यक्ष रूप में कार्यक्षमता को प्रभावित कर सकते हैं।

विटामिन बी$_6$ (पाइरीडॉक्सिन, पाइरीडॉक्सिल एवं पाइरीडॉक्सअमीन) एंजाइम 'ऐमिनोलेवूलिनिक अम्ल सिन्थेटेस' का सहकारक है। यह एंजाइम हीमोग्लोबिन संश्लेषण की दर सीमित करने वाले चरण में उत्प्रेरक का कार्य करता है। विटामिन ई (टोकोफेरॉल) लोहित कोशिका कला (रैड सैल मेम्ब्रेन) के रक्षण में तथा फोलिक अम्ल एवं विटामिन बी$_{12}$ (साइनोकोबालेमीन) लोहित कोशिकाओं (लाल रुधिर कोशिकाओं) के संश्लेषण में सहकारकों के रूप में कार्य करते हैं।

विटामिन सी (ऐस्कॉर्बिक अम्ल) की व्यायाम के संदर्भ में कई सैद्धांतिक भूमिकाएं हैं। यह कोलेजन, कार्निटिन (विटामिन बी$_T$) एवं नॉरएपिनेफ्रीन के जीव संश्लेषण में 'सहकारक' के रूप में कार्य करता है। कुछ प्रमाण ऐसे भी मिले हैं कि यह रुधिर में 2, 3 डाइफास्फोग्लिसरेट की सान्द्रता में वृद्धि कर सकता है।

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि मध्यवर्ती चयापचय में तथा लाल रुधिर कणिकाओं के उत्पादन तथा रक्षण में विटामिनों का अत्यधिक महत्व है। इन कार्यों से संबंधित विटामिनों के अभाव से चयापचय में एवं लोहित कोशिका उत्पादन में विकार उत्पन्न होते हैं।

लेकिन क्या प्रत्येक दृष्टि से समृद्ध एवं पूर्ण आहार ग्रहण करने वाले खिलाड़ियों को भी विटामिन संपूरकों की आवश्यकता होती है? क्या विटामिनों की अतिरिक्त मात्रा देकर उनकी खेल क्षमता में वृद्धि की जा सकती है?

दरअसल, सन् 1969 में ही वैज्ञानिक टी. क्यूरेटॉन ने बता दिया था कि गहन प्रशिक्षण की वजह से शरीर से विटामिन 'बी' और 'सी' की हानि होती है। यह विचार भी प्रकट किया गया कि खेल प्रशिक्षण के कारण माइटोकॉन्ड्रिया एवं ऊर्जा चयापचय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले एंजाइमों में संख्यात्मक वृद्धि होती है। इस कारण एंजाइमों से संबद्ध क्रियाओं को संभव बनाने के लिए सहकारक के रूप में अतिरिक्त विटामिनों की आवश्यकता होती है। इस प्रकार किण्वभोज के उपयोग में होने वाली वृद्धि को विटामिन आवश्यकता में होने वाली वृद्धि से सीधा जोड़ा जा सकता है।

नवीनतम अध्ययनों से यह पता चला है कि खिलाड़ियों के शरीर में जैवरासायनिक दृष्टि से विटामिन अभाव में विशेषकर 'बी' समूह के विटामिनों की कमी होती है। दरअसल, श्रेष्ठ खिलाड़ी भी असंतुलित आहार के कारण विटामिनों की कमी से पैदा होने वाले कुप्रभावों के शिकार हो सकते हैं।
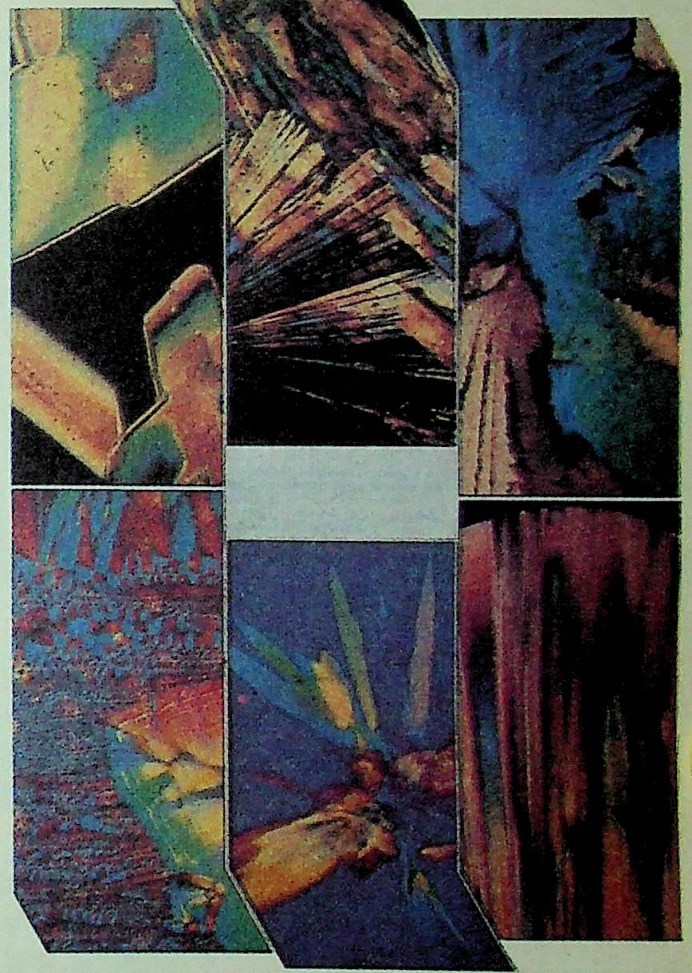
सूक्ष्मदर्शी की सहायता से पोलेराइड प्रकाश द्वारा दृष्टिगोचर विटामिनों का क्रिस्टलीकृत रूप : विटामिन ए, बी$_1$ और बी$_6$ (बायें से दायें – ऊपर ; विटामिन डी$_2$ और डी$_3$ बायें से दायें – नीचे)

पिछले कुछ वर्षों के दौरान किए गए अनुसंधान कार्यों से ज्ञात हुआ है कि पुरुष खिलाड़ियों में 'बी' समूह के विटामिनों विशेषकर बी$_1$ की कमी हो सकती है। शरीर में इस विटामिन के अभाव के कारण पेशीय थकान एवं कमजोरी पैदा होती है। वैज्ञानिकों का कहना है कि खेल प्रशिक्षक आहार संबंधी आवश्यकताओं से पूरी तरह परिचित नहीं होते हैं। चीन में अभी हाल में जब बीजिंग मेडीकल स्कूल में 160 उच्च स्तरीय खिलाड़ियों के शरीर में पन्द्रह पोषाहारों का अध्ययन किया गया तो पता चला कि एक तिहाई खिलाड़ियों में बी$_1$ और बी$_2$ विटामिनों की कमी थी। छोटी उम्र के शौकिया खिलाड़ियों में तो विटामिन बी$_2$ का स्तर असामान्य रूप से कम था। यहां यह

उल्लेखनीय है कि विटामिन बी$_2$ की कमी से कम्पन रोग एवं अनिद्रा का जन्म होता है।

जहां तक खेलों का प्रश्न है, ऐसी परिस्थिति में विटामिन-खनिज समृद्ध आहार को संपूरक के रूप में देने से खेल प्रदर्शन में 4.3 प्रतिशत तक सुधार देखने को मिला। यह सुधार दौड़ में गति एवं समय दोनों की दृष्टि से हुआ। ऐसे मामलों में नाड़ी गति की वृद्धि दर में गिरावट आने के साथ-साथ ऐंठन के मामले भी कम रहे। विटामिन-खनिज संपूरकों का लाभ मुख्य रूप से लंबे समय के खेल की अन्तिम समयावधि के दौरान नजर आता है।

वैज्ञानिकों ने यह भी देखा है कि इससे थकान प्रतिरोध में वृद्धि, प्रतिक्रियात्मक समयावधि में कमी और गति क्षमता में वृद्धि होती है। विटामिन संपूरकों को देने से दूसरे कई जैवरासायनिक अभाव भी नहीं होते हैं।

अभी हाल में ही किए गए एक अध्ययन के लिए जब कुछ युवाओं को कई महीनों तक ऐसा आहार दिया गया जिसमें विटामिन बी$_1$, बी$_2$, बी$_6$ और विटामिन सी की अत्यल्प मात्रा थी तो इससे उनके शारीरिक शक्ति, सामर्थ्य एवं प्रदर्शन में काफी गिरावट आई। संपूरकों को देने से यह स्थिति समाप्त हो गई।

दरअसल, अब तक जितने भी अध्ययन किए गए उनसे यह निष्कर्ष निकलता है कि विटामिनों का अल्प अभाव भी खेल प्रदर्शन संबंधी क्षमताओं को कुप्रभावित करता है। शरीर में विटामिनों का अभाव अक्सर उस स्थिति में होता है जब कोई खिलाड़ी अपनी ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु मुख्य आहारों के बीच के समय अन्तरालों के दौरान बिस्कुट, चॉकलेट, क्रीम केक जैसी उच्च ऊर्जाधारी खाद्य सामग्री लेता है। इन पदार्थों में विटामिन, खनिज एवं प्रोटीन अत्यल्प मात्रा में होते हैं। ऐसी स्थिति में उचित मात्रा में विटामिन संपूरकों की जरूरत पड़ सकती है। सर्वोत्तम सलाह तो यही है कि खिलाड़ी नाश्ता, दोपहर एवं सायंकाल के भोजन के बीच के समय में भी संतुलित पोषाहारों से युक्त खाद्य सामग्री को खाएं। ऐसा करने के बावजूद अत्यधिक कड़े शारीरिक परिश्रम के कारण विटामिन अभाव हो सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि पोषाहारों की दृष्टि से तथाकथित संतुलित आहार भी हमेशा उन विटामिन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं है जो सक्रिय खिलाड़ियों में देखने को मिलती है।
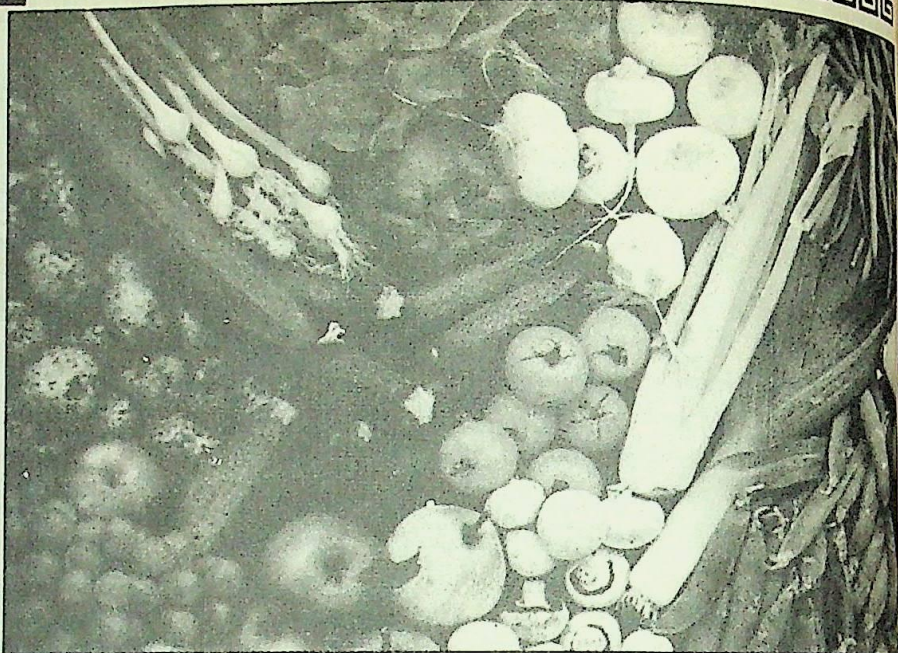
विटामिनों की मुख्य स्रोत : फल और सब्जियां

इस संबंध में चार बातें उल्लेखनीय हैं :

1. ऐसे संकेत मिले हैं कि खिलाड़ियों द्वारा अधिक ऊर्जा व्यय के कारण उनकी विटामिन आवश्यकताओं में वृद्धि होती है।
2. लंबे समय के शारीरिक परिश्रम के दौरान शरीर से विटामिनों की हानि होती है।
3. प्रतिदिन उत्कृष्ट श्रेणी के तीन आहार लेने के बावजूद यह जरूरी नहीं है कि विटामिनों की पर्याप्त पूर्ति हो जाए।
4. कार्बोहाइड्रेट समृद्ध ऊर्जाधारी खाद्य सामग्री को बार-बार खाने से विटामिन अभाव की स्थिति पैदा हो सकती है।

जहां तक विटामिनों की अधिक मात्रा से खेल प्रदर्शन क्षमता में वृद्धि का सवाल है, यह जानना बेहद जरूरी है कि विटामिन संपूरक विटामिन अभाव के कारण पैदा हुई कमी को ही दूर करते हैं। आज तक कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिला है जो यह साबित कर सके कि विटामिनों की अधिक मात्रा लेने से शारीरिक शक्ति एवं सामर्थ्य में वृद्धि होती है।

साथ ही, इस संबंध में दूसरा महत्वपूर्ण पहलू यह है कि किसी एक पोषाहार की अधिक खुराक हमेशा दूसरे पोषाहारों के साथ अन्योन्य क्रिया करती है। ये अन्योन्य क्रियाएं बहुत ही अनावश्यक हो सकती हैं। इसीलिए साधारण विटामिनों का अधिक उपयोग, उदाहरणार्थ बी$_{12}$ के इंजेक्शनों अथवा विटामिन 'सी' का प्रचुर मात्रा में उपयोग इतर प्रभावों के कारण उचित नहीं है। मुख्य बात यह है कि किसी एक पोषाहार का अभाव अथवा अधिकता दूसरे पोषाहारों की आवश्यकता को प्रभावित करती है। उदाहरणार्थ, यह ज्ञात है कि विटामिन 'सी' आमाशय आंत्र पथ में लौह अवशोषण को बढ़ावा देता है जो लंबे समयावधि के खेलों में भाग लेने के लिए विशेषकर महत्वपूर्ण है। यह धनात्मक अथवा लाभदायक प्रभाव है। किन्तु एक पक्ष को देखने से समस्याएं पैदा हो सकती हैं क्योंकि विटामिन 'सी' की अधिक मात्रा की उपस्थिति में विटामिन बी$_{12}$ का पर्याप्त मात्रा में अवशोषण नहीं हो पाता है। जिसके कारण बी$_6$ एवं बी$_2$ का अवशोषण भी प्रभावित होता है।

चूंकि पूर्ण रूप से संतुलित आहार ग्रहण करने के बावजूद नियमित गहन खेल प्रशिक्षण के समय काल में जैवरासायनिक अभाव हो सकते हैं और दूसरी तरफ विटामिनों को आवश्यकता से अधिक मात्रा

में लेने के अलाभदायक या ऋणात्मक प्रभाव हो सकते हैं, अतः यह विचार कर लेना बहुत ज़रूरी है कि कौन से विटामिन कितनी मात्रा में लिए जाने चाहिए?

अब तक जितना भी शोध कार्य इस दिशा में हुआ है उससे पता चलता है कि 'वसाविलेय' विटामिनों की खिलाड़ियों को कोई अतिरिक्त आवश्यकता नहीं पड़ती है। विशेषकर, विटामिन 'ई' एवं 'के' की संपूरकों के रूप में कोई आवश्यकता नहीं पड़ती है। रक्त के थक्का बनने की प्रक्रिया से संबंध होने की वजह से विटामिन 'के' तो हानिकारक तक साबित हो सकता है।

'जल विलेय' विटामिनों की स्थिति इससे भिन्न है। सक्रिय खिलाड़ियों को प्रतियोगिता एवं सघन प्रशिक्षण के दौरान आहार के द्वारा इन विटामिनों की सीमित मात्रा मिलने से एवं शरीर से इनकी हानि में वृद्धि के कारण इन विटामिनों की अतिरिक्त मात्रा की आवश्यकता पड़ सकती है। सारणी में अब तक किए गए अध्ययनों के आधार पर खिलाड़ियों के लिए अनुमानित जल विलेय विटामिनों संबंधी मात्राएं दी गई हैं।

खिलाड़ियों के लिये अनुमानित जल विलेय विटामिन आवश्यकताएं

विटामिन	आवश्यक मात्रा (मिग्रा. में) सामान्य व्यक्ति	खिलाड़ी
थायामिन (बी 1)	1.5	5-10
राइबोफ्लेविन (बी 2)	2.5	10-15
पाइरीडॉक्सिन (बी 6)	4.0	15-30
साइनोक्रोबालेमीन (बी 12)	2-5	10-20
ऐस्कार्बिक अम्ल (सी)	75-100	150-300
नियासिन (निकोटिनिक अम्ल)	20	30-50
पैन्टोथेनिक अम्ल	10	10-20
बायोटिन	5	15-40
फोलिक अम्ल	10-15	20-40

किसी खिलाड़ी विशेष के लिये जल विलेय विटामिनों की कितनी मात्रा पर्याप्त है? इस प्रश्न के उत्तर के लिये एक ऐसा विकल्प खोजना आवश्यक है जिसे उपयोग में लाना सुरक्षित हो। वैज्ञानिकों का विचार है जल विलेय विटामिनों की आवश्यकता को जांचने के लिये पोषाहार घनत्व का सिद्धांत एक पर्याप्त विकल्प बन सकता है। पोषाहार घनत्व का तात्पर्य विटामिन विशेष अथवा किसी भी आहार घटक की आवश्यक मात्रा एवं आहार द्वारा प्राप्त होने वाली कुल ऊर्जा के बीच का अनुपात है। इस सिद्धांत के उपयोग से इन विटामिनों की अल्प अथवा अधिक मात्रा के द्वारा उत्पन्न होने वाले अवांछनीय प्रभावों से बचा जा सकता है।

विटामिन बी 1 के लिये पोषाहार घनत्व 0.5 मिग्रा. प्रति हजार किलो कैलोरी है। एक दिन में 6,000 किलो कैलोरी ऊर्जा व्यय करने वाले खिलाड़ी को पोषाहार घनत्व के सिद्धांत से $6 \times 0.5 = 3$ मिग्रा. विटामिन बी चाहिए। यदि उसे अपने द्वारा ग्रहण किये गये आहार से 1.5 मिग्रा. विटामिन बी 1 मिलता है तो शेष 1.5 मिग्रा. उसे मुख्य भोजन के समय अन्तराल के बीच में खायी जाने वाली ऊर्जा समृद्ध खाद्य सामग्री से मिलनी चाहिये। उपरोक्त सिद्धांत का अनुसरण करने वाला कोई खिलाड़ी यदि साईकिल चलाते समय अथवा मैराथन के दौरान उच्च ऊर्जाधारी पेय लेता है तो इस पेय में भी विटामिनों की मात्रा पोषाहार घनत्व के अनुरूप होनी चाहिये। उदाहरणार्थ, 500 किलो कैलोरी वाले ऊर्जाधारी पेय में विटामिन बी 1 की न्यूनतम मात्रा $1/2 \times 0.5$ मिग्रा. यानि 0.25 मिग्रा. होनी चाहिये। इस दृष्टि से खिलाड़ी को दी जानें वाली तरल आहार सामग्री को आवश्यकतानुसार विटामिनी कृत किया जाना चाहिये। इस प्रकार पोषाहार घनत्व संबंधी नियम से आहार सामग्री को आवश्यकता के अनुसार उचित मात्रा में विटामिनों से समृद्ध करने से खिलाड़ी विटामिन आधिक्य के दुष्परिणामों से बचने के साथ-साथ यह भी भरोसा कर सकते हैं कि उनकी विटामिन आवश्यकताओं की पूर्ति पर्याप्त मात्रा में हो रही है।

खिलाड़ियों को मूल रूप से सभी विटामिनों को अपने द्वारा खाये जाने वाले आहार से ही प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिये। ऐसा करना सर्वोत्तम होगा। विटामिन ए, डी, ई एवं के को कभी भी संपूरकों के रूप में नहीं लेना चाहिये। विटामिन ए के लिये हरी और पीली पत्तों वाली सब्जियां, मक्खन और प्रबलीकृत कृत्रिम मक्खन, विटामिन डी के लिये सूर्य का प्रकाश और इस विटामिन से समृद्धित दूध तथा विटामिन ई के लिये हरे पत्तों वाली सब्जियां तथा चोकर युक्त आटा अत्युत्तम स्रोत हैं। बी समूह के विटामिनों की आपूर्ति पेशी मांस, पूर्ण अनाज, मैकरोनी, स्टैगटी (मोटी सैवई) या इन विटामिनों से प्रबलीकृत ब्रैड को आहार में प्रचुर मात्रा में लेने से की जा सकती है। सिट्रस फल (निंबुकुल के फल) तथा टमाटर आदि विटामिन सी के उत्तम स्रोत हैं। यूं जहां तक पानी में घुलनशील विटामिनों का प्रश्न है, इनका अभाव होने की स्थिति में इन्हें आवश्यकतानुसार अल्प मात्रा में संपूरकों के रूप में लिया जा सकता है।

इस बात में तनिक भी सदेह नहीं है कि जो व्यक्ति नियमित रूप से अत्यधिक शारीरिक परिश्रम करते हैं, उनकी विटामिन आवश्यकता आरामदायक जीवन बिताने वाले व्यक्तियों से अधिक होती है। मोटे तौर पर चूंकि वे सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा कहीं अधिक आहार ग्रहण करते हैं अतः उन्हें उसी अनुपात में विटामिनों की भी पूर्ति हो जाती है। किंतु यह नियम सभी पर लागू नहीं होता है। आहार के विभिन्न घटकों के बीच में असंतुलन के कारण खिलाड़ी के शरीर में विटामिनों, खनिजों आदि कुछ आवश्यक पोषाहारों की कमी हो सकती है। ऐसी स्थिति में खिलाड़ियों को अपने खेल प्रशिक्षक एवं खेल आहार विशेषज्ञ की सलाह पर ही कोई कदम उठाना चाहिये। सुनी, सुनायी बातों के आधार पर स्वयं ही निर्णय लेने से खिलाड़ी अपनी संभावित विजय को स्वयं ही हार में बदल सकता है। □

[श्री सुभाष लखेड़ा, एक्स- 360, सरोजिनी नगर, नई दिल्ली- 110 023]

विश्व कीर्तिमान

(भाग-1)

बाल फोंडके

कलाई पर बंधी घड़ी के अलार्म से अविनाश गोरे की विचार श्रृंखला टूटी। ऊंची कूद (हाई जम्प) की प्रतियोगिता शुरू होने ही वाली थी। इसी क्षण की तो उसे प्रतीक्षा भी थी। आश्चर्य तो यही था कि अब तक उसने सबर कैसे किया। वह जल्दी से तैयार होकर स्टेडियम की पत्रकार दीर्घा की ओर चल पड़ा। लेकिन जाने से पहले फोटोग्राफ सहायक ज्यो फर्नांडीस को टेलिफोटो लेन्स लेने की याद दिलाना वह नहीं भूला।

वसंत ऋतु के अन्तिम चरण में एथेन्स नगरी नववधू के समान श्रृंगार करके ओलम्पिक खेलों का स्वागत करने को उत्सुक थी। यह ओलम्पिक खेलों का शताब्दी वर्ष था। जिस नगरी में ओलम्पिक खेलों का शुभारंभ हुआ था वहीं उसका शताब्दी समारोह भी हो रहा था। वास्तव में यह एक अद्भुत संयोग था।

सन् 1984 में टोकियो शहर में सम्पन्न हुये ओलम्पिक खेलों के कारण इन खेलों को एक विशेष श्रेणी प्राप्त हुई थी और मेजबान राष्ट्र के नाते यह उत्तरदायित्व निभाने की जिम्मेदारी एथेन्स पर आई थी। समय के साथ-साथ ओलम्पिक समारोह भी बहुत खर्चीले होते जा रहे थे। अमेरिका जैसे सम्पन्न राष्ट्र को भी मेजबानी स्वीकारने से पहले काफी सोचना पड़ता था। फिर यूनान तो एक छोटा सा राष्ट्र था।

इस कारण उसे मेजबान बनने में काफी कठिनाई का सामना करना पड़ा था। मॉन्ट्रियल, मेलबोर्न तो एक बार ओलम्पिक खेलों का आयोजन कर चुके थे। फिर भी दूसरी बार मेजबान बनने का उनका प्रयास जारी था। किन्तु दुनियां अभी इतनी भावशून्य नहीं हुई थी। इस कारण खेलों की वरमाला आखिर एथेन्स को ही पहनाई गई। जन्मदाता होने के नाते यह सौभाग्य एथेन्स को ही मिलना चाहिये था और अपने अधिकार के आधार पर यह उसे मिला भी।

इसके बाद एथेन्स के नागरिक भी मेजबानी का निर्वाह करने में पीछे नहीं रहे। अतिथियों का आदर-सत्कार करने में उन्होंने कोई कसर नहीं छोड़ रखी थी। उनके आदर-सत्कार में पांचतारा होटलों की चमक-दमक भले ही न हो लेकिन अतिथियों का स्वागत करने की सच्ची लगन उनके मुख मण्डल से ही झलक रही थी। अविनाश ने भी वहां के लोगों की इस भावना का अनुभव बार-बार किया था। केवल दिखावे से मोहित न होने वाला उसका भारतीय मन एथेन्स के प्रेमपूर्ण व्यवहार से गद्गद हो उठा था।

इन सब बातों के बावजूद भी अविनाश का मन कुछ अस्थिर था। आज तो वह काफी अशान्त था। हालांकि कल हाकी प्रतियोगिता में भारत की टीम ने एकत्रित जर्मनी की टीम को चार गोल से बुरी तरह पराजित किया था। फिर भी उसके मन पर छाया कोहरा हटा नहीं। ऊंची कूद की प्रतियोगिता होने तक यह बेचैनी शायद ऐसी ही रहने वाली थी और जो संभवतः प्रतियोगिता के बाद में शर्म में भी बदल सकती थी। यही आशंका शायद उसे सताये जा रही थी।

ओलम्पिक खेलों में भाग लेने के लिये भारतीय खिलाड़ियों के चयन की प्रक्रिया जब आरंभ हो चुकी तब से विनोद पांडे का नाम जोर-जोर से लिया जा रहा था। विनोद इस क्षेत्र में विश्व स्तर का एकमात्र भारतीय खिलाड़ी है यह बात अविनाश भी मानता था। शुरू-शुरू में जब वह उदीयमान सितारा था तब उसके बारे में प्रशंसापूर्ण लेख लिखने वाले पत्रकारों में अविनाश का नाम अग्रणी था और इन लेखों से प्रोत्साहित होकर विनोद ने अच्छा प्रदर्शन भी किया था। फलस्वरूप उसने एशियाई खेलों में स्वर्णपदक प्राप्त किया था। कुछ अन्य प्रतियोगिताओं में भी उसने अपने खेल प्रदर्शन से यह सिद्ध कर दिखाया था कि पूरे एशिया में इस क्षेत्र में कोई उसका प्रतिद्वंद्वी नहीं है।

एकाएक बाद में विनोद को क्या हुआ कुछ समझ में नहीं आ रहा था। शायद विनोद को अपने यश का नशा चढ़ गया था और घमंड से उसका दिमाग सातवें आसमान को छूने लगा था। उसके प्रशिक्षक, श्री विश्वेश्वर प्रसाद तो कुछ ज्यादा ही अड़ियल हो गये थे। सारे कानून केवल अन्य खिलाड़ियों के लिये बंधनकारक हैं खुद के लिये नहीं, ऐसा शायद विनोद समझने लगा था। विनोद केवल अपनी मनचाही प्रतियोगिताओं में भाग लेता था और इन सब बातों के लिये वे दोनों ही खेल चयन समिति को निरन्तर नियमों में परिवर्तन करने के लिये भी विवश करने लगे थे। उनकी अनुशासनहीनता चरम सीमा पर पहुंच चुकी थी।

जब ओलम्पिक खेलों के लिये खिलाड़ियों का चयन आरंभ हुआ, तब अपना चयन बिना प्रारंभिक प्रदर्शन से हो जाये ऐसा विचित्र आग्रह विनोद तथा विश्वेश्वर प्रसाद ने किया। प्रैक्टिस में बाधा पड़ेगी, प्रदर्शन का स्थान ठीक नहीं है। प्रदर्शन के दौरान चोट आने की संभावना जैसी अनेक ऊल-जलूल अड़चनें उन्होंने पैदा कीं। उनका पक्ष लेने वाले कुछ चमचों, जैसे पत्रकारों ने विनोद के समर्थन में लेख लिखे। लेकिन अविनाश और कुछ अन्य पत्रकारों ने विनोद की इस प्रवृत्ति का कड़े शब्दों में विरोध करके खेल जगत में मनमानी व्यवस्था लाने की इस नीति की भर्त्सना की

और खेल के मैदान में वर्ग व्यवस्था और मनमानी नीति का कोई स्थान नहीं, यह बताते हुये समाचार पत्रों द्वारा यह प्रचार करना शुरू किया, कि खिलाड़ी चाहे कितना भी प्रसिद्ध क्यों न हो, प्रारंभिक परीक्षा के बिना उसे ओलम्पिक खेलों में कदापि नहीं भेजा जाना चाहिये।

इस प्रकार के शोर के कारण खेल चयन समिति के कुछ सदस्यों की भी हिम्मत बढ़ी और विनोद को प्रारंभिक प्रदर्शन के लिये

इच का था और विनोद पिछले पूरे साल में साढ़े सात फुट तक भी नहीं पहुंचा था। विश्व कीर्तिमान में तो इंच के दशांश भाग से भी स्वर्ण पदक का रजत पदक में रूपांतर हो सकता है या फिर कांस्य पदक भी गंवाना पड़ता है। ऐसी हालत में विनोद आठ इंच का अंतर कैसे तय करेगा, ये सवाल अब अविनाश ही नहीं उनके समर्थक पत्रकार भी पूछने लगे थे।

लेकिन उन्हें उत्तर देने के लिये विनोद

प्रदर्शन के बाद वह पत्रकारों का सामना करना नहीं चाहता होगा इसलिये बिना मिले चला गया, ऐसा सभी लोगों ने मान लिया था। इसीलिये यह मामला जल्दी ही शांत हो गया लेकिन ओलम्पिक खेलों में भाग लेने के लिये जाने वाले खिलाड़ियों के नामों की घोषित सूची में विनोद व विश्वेश्वर के नामों को देखकर सभी को अचम्भा हुआ क्योंकि कई अच्छे खिलाड़ियों, जिनका प्रदर्शन एक विशेष श्रेणी तक नहीं पाया गया था, का नाम
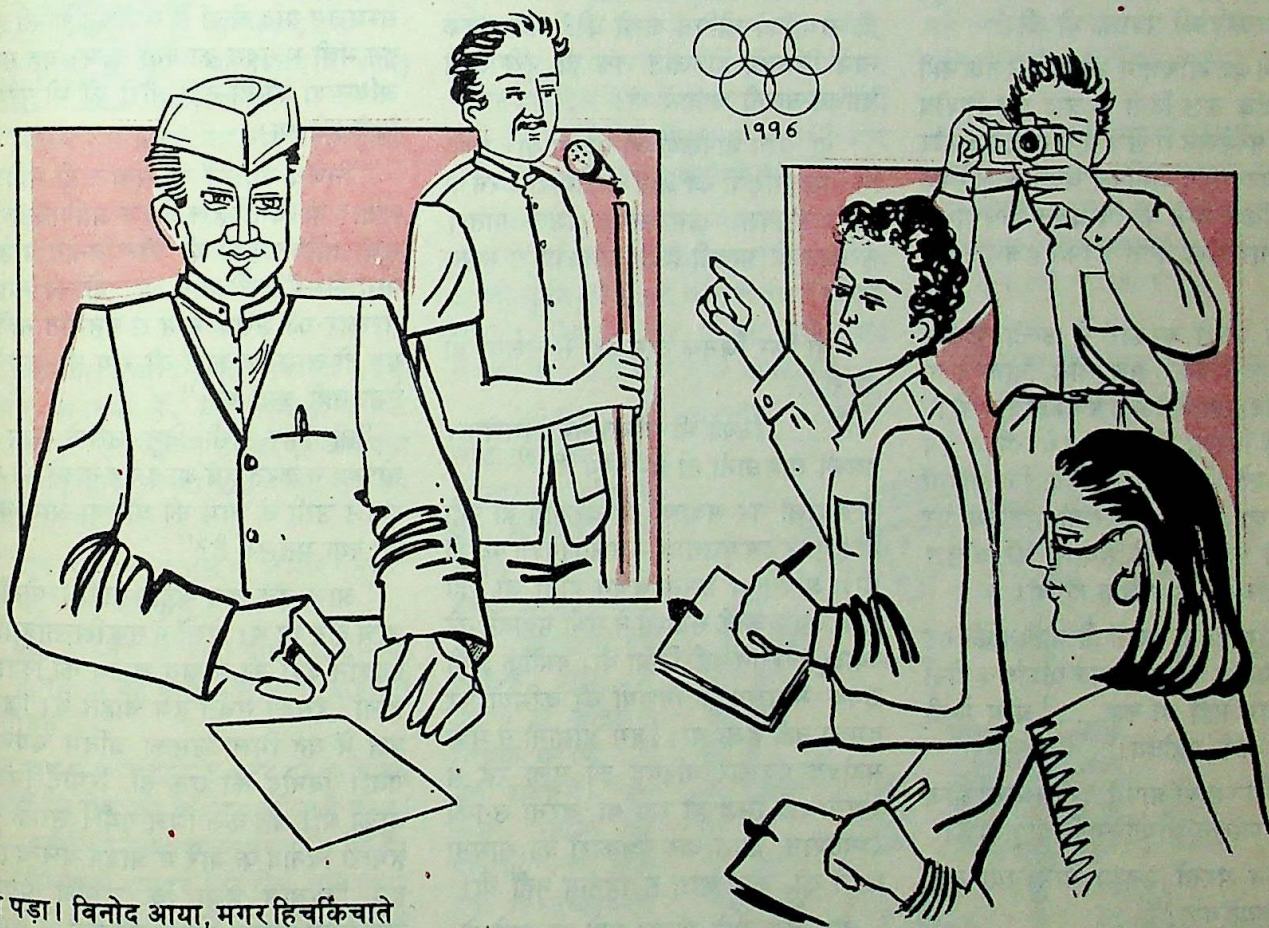
आना पड़ा। विनोद आया, मगर हिचकिचाते हुये। यहां तक कि विश्वेश्वर प्रसाद ने तो किसी प्रदर्शन के दौरान विनोद को आने वाली संभाव्य चोट की जिम्मेदारी पत्रकारों पर डालने की धमकी भी दी। लेकिन उनके सारे प्रयास व्यर्थ ही रहे।

प्रारंभिक प्रदर्शन सम्पन्न हुआ और अविनाश जैसे विरोधी पत्रकारों की बात सच साबित हुई। विनोद का प्रदर्शन बिल्कुल निराशाजनक रहा। अपने ही द्वारा बनाये गये कीर्तिमान तक पहुंचने में भी वह असफल रहा था। विश्व कीर्तिमान तो आठ फुट दो

उपलब्ध था ही कहां। प्रारंभिक प्रदर्शन समाप्त होते ही विनोद तथा विश्वेश्वर प्रसाद किसी को कुछ कहे बिना गायब हो गये थे। पत्रकारों को तो उनके चले जाने की खबर कुछ समय बाद ही मिली। किसी को उनका अता-पता नहीं था। उनके घरों पर ताले थे। विनोद का भाई फैक्टरी में इंजीनियर था, लेकिन वह भी छुट्टी लेकर कहीं चला गया था।

प्रारंभिक प्रदर्शन में किये अपने खराब

सूची में नहीं था। ऐसी हालत में विनोद का चयन किस कसौटी पर हुआ इसकी खोज अविनाश ने करनी चाही, लेकिन ओलम्पिक ऐसोसियेशन के अध्यक्ष तो राजनीतिक नेता ही थे जो पत्रकारों के प्रश्नों के गोलमोल उत्तर देकर छुटकारा पाने की कला में काफी अनुभवी थे।

पर अविनाश ने भी कुछ कच्ची गोलियां नहीं खेली थीं। वह अब डटकर इस कार्य के पीछे पड़ गया। विनोद की भर्त्सना करते हुये

उसने सरकार से विनोद को रोकने की मांग की। उसने समाचार पत्र के अपने खेल जगत स्तम्भ में उनकी आलोचना करने का एक सिलसिला आरंभ कर दिया, जिसका परिणाम आशाजनक रहा।

सरकार द्वारा जारी ओलम्पिक खेलों के लिये चयनित खिलाड़ियों की सूची में विनोद का कहीं नाम नहीं था और स्वयं विनोद ने सरकार के इस तर्कसंगत काम के लिये धन्यवाद का प्रदर्शन भी किया। आखिर इस देश में देर है अंधेर नहीं, यह जताते हुये उसने सरकार की प्रशंसा भी की।

लेकिन यह खींचतान ज्यादा दिन तक नहीं रही क्योंकि कुछ दिनों के बाद एक विशेष पत्रकार सम्मेलन में खेल मंत्री ने विनोद और विश्वेश्वर प्रसाद दोनों का चयन ओलम्पिक टीम में किये जाने की विधिवत् घोषणा की जिससे सारे खेल जगत में फिर हलचल मच गई।

इतनी जल्दी सरकार ने उल्टी छलांग लगाई यह देखकर सब लोग, चौकन्ने हो गये। अविनाश जैसे कई पत्रकार शुरू से ही विनोद के विरोध में बोल रहे थे लेकिन अब बाकियों को भी यकीन हो गया कि दाल में कुछ काला जरूर है। मंत्री महोदय पर बौखलाये पत्रकारों के सवालों की बौछार होना इसलिये स्वाभाविक ही था।

"मंत्री महोदय, परसों ही घोषित की गई सूची में विनोद पांडे या उसके प्रशिक्षक दोनों का ही नाम नहीं था क्या....." बीच में ही बोल पड़े मंत्री महोदय।

"ठीक फरमाया आपने, इसीलिये तो आज का यह सम्मेलन आयोजित किया गया है।"

"लेकिन परसों उनका नाम क्यों नहीं घोषित किया गया?"

"वह तो केवल पहली सूची थी"

"क्या इसका मतलब तीसरी, चौथी, पांचवीं सूची भी घोषित होगी और उनमें और भी कई नाम शामिल किये जायेंगे?"

"हां! यह असंभव नहीं।"

"मगर इस तरह कई किश्तों में नाम क्यों घोषित किये जा रहे हैं? पहले तो ऐसा कभी नहीं हुआ।"

"ओलम्पिक खेलों में भाग लेने वाला हर खिलाड़ी देश का प्रतिनिधि होता है और सरकार भी इन खिलाड़ियों को अपना सांस्कृतिक राजदूत समझती है। जाहिर है कि इनके चयन के पहले अनेक तरह की जांच पड़ताल हो। इसीलिये जिनका चयन होता है उन खिलाड़ियों के बारे में हर तरह की जानकारी ली जाती है। जैसे-जैसे वह उपलब्ध होती जाती है चयन पक्का होता जाता है और इनके नाम क्लियर कर दिये जाते हैं।"

"तो फिर ऐसी जल्दी क्या थी केवल कुछ ही नामों को घोषित करने की? जब सबके नाम क्लियर हो जाते तब ही पूरी सूची घोषित करनी चाहिये थी।"

"हां, वैसा भी किया जा सकता था। मगर फिर खिलाड़ियों को आगे की तैयारी करने के लिये संभवतः कम समय मिल पाता। सरकार तो चाहती है कि उनको पूरा समय मिले।"

"तो फिर जिनके नाम देरी से क्लियर हो रहे हैं...."

"......उनको भी उचित समय मिलेगा। इसकी सावधानी तो हम लेंगे ही।"

सवालों पर सवालों की बरसात हो रही थी। मगर इस पूछताछ ने गलत दिशा पकड़ी थी। अविनाश इससे बेचैन होता जा रहा था। अब तक के सवालों ने मंत्री महोदय को ज्यादा परेशान नहीं किया था। क्योंकि अभी उनके मंत्रालय के निर्णयों की कमियों पर हमला नहीं हुआ था। जिस आसानी से मंत्री महोदय पत्रकार परिषद को सुला रहे थे उससे यही सिद्ध हो रहा था, वरना उनकी रेप्युटेशन, खास कर पत्रकारों का सामना करने की, कोई खास सराहनीय नहीं थी।

अब तक सारे सवाल पूछे जा चुके थे। एकाएक चुप्पी सी छा गई थी। कोई मुंह नहीं खोल रहा था। अविनाश मौका देखकर आगे हुआ। सुर जमाने में समय गंवाने की उसे कोई रुचि नहीं थी। वह सीधे पेचीदे सवाल पर उतर आया।

"किन्तु मंत्री महोदय, दो ही दिनों में ऐसा कौन सा विशेष साक्षात्कार हुआ कि विनोद का नाम तुरन्त क्लियर हो गया?" उसने पूछा

अविनाश कोई कठिन सवाल पूछेगा इसकी अपेक्षा तो मंत्री महोदय को थी मगर "साक्षात्कार" शब्द से वह थोड़े घबरा से गये।

"साक्षात्कार? कैसा साक्षात्कार मिस्टर गोरे?"

"और नहीं तो क्या? उसके सिवाय और किसी के लिये तो सरकार ने सिर्फ दो ही दिनों में अपना निर्णय नहीं बदल डाला?"

इन प्रश्न का जवाब देने के लिये अंतरिक्ष अनुसंधान मंत्री आगे आये। अविनाश का माथा ठनका कि जब वह संवाददाता सम्मेलन यदि खेलों से संबंधित था तो इसमें इन मंत्री महोदय का क्या काम। यह सवाल अविनाश को ही नहीं औरों को भी परेशान किये हुये था।

"निर्णय बदलने का सवाल ही नहीं पैदा होता। दो दिन पहले केवल आंशिक रूप से सूची घोषित हुयी थी और विनोद पांडे का नाम उसमें कहीं नहीं था। इसका मतलब सरकार की उसके नाम से सहमति नहीं थी यह तो आम पत्रकारों की राय थी, हमने तो ऐसा नहीं कहा था।"

"तो फिर उसी दिन उसके नाम की घोषणा न करते हुये आज वह करने की और केवल उसी के नाम की घोषणा आज करने का क्या मतलब है?"

"आज तक हम बहुत सारी रिपोर्टों की जांच कर रहे थे। खेलों में सब खिलाड़ियों का प्रदर्शन देश की इज्जत बढ़ाने की दिशा में होगा, इसका सबूत हम चाहते थे। जिसके पक्ष में यह मिला उसका अंतिम चयन हो गया। विनोद की एक दो रिपोर्टें मिलनी बाकी थीं। वह कल मिल गयीं। उसके बाद हमारी विनोद के बारे में आशा बुलन्द हुई। हमें विश्वास हुआ कि उसका प्रदर्शन सराहनीय रहेगा। उसके सहयोग के बारे में कुछ संदेह ही नहीं रहा और हां एक दिन हम और रुक सकते थे और अन्य कई खिलाड़ियों के साथ ही उसके नाम की घोषणा कर सकते थे। लेकिन फिर आप लोग ही आरोप लगाते कि लोगों की आंखों में धूल झोंकने का यह प्रयास है। □

(क्रमशः)

[डा. बाल फोंडके, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली ; प्रस्तुति श्री गजानन साल्पेकर, ए 2/87, जनकपुरी, नई दिल्ली.]

क्या है मेनिनजाइटिस?

सुरेश नाडकर्णी

"डाक्टर साहब! ये मेनिनजाइटिस (मस्तिष्कावरण शोथ) क्या है?

"लेकिन तुम मुझसे यह क्यों पूछ रही हो नीना?"

"मेरे चचेरे भाई रमेश को मेनिनजाइटिस हो गया है। डाक्टर, क्या यह कोई गम्भीर रोग है? क्योंकि घर पर सभी बहुत चिन्तित हैं?"

"हां नीना! दुर्भाग्य से मेनिनजाइटिस एक गम्भीर अवस्था है। यह वास्तव में एक चिंताप्रद रोग है। लेकिन उनको यह कैसे पता लगा कि तुम्हारा चचेरा भाई मेनिनजाइटिस से पीड़ित है।"

"डाक्टरों ने अस्पताल में 'लुम्बर पंक्चर' नाम का कोई परीक्षण किया था।"

"यदि 'लुम्बर पंक्चर' परीक्षण कर लिया गया है तब तो वह वास्तव में मेनिनजाइटिस से पीड़ित है।"

लुम्बर पंक्चर द्वारा डाक्टर यह निश्चित करते हैं कि रोगी को मेनिनजाइटिस है अथवा नहीं। इसीलिये इसे 'लुम्बर पंक्चर कहते हैं। इस परीक्षण में डाक्टर कटि क्षेत्र यानि कमर के क्षेत्र में रीढ़ की हड्डी की दो कशेरूकाओं के बीच में एक सुई डालकर थोड़ा सा प्रमस्तिष्कमेरुद्रव निकालते हैं। वैसे तो डाक्टर सामान्यतः इस पंक्चर से रोग का निदान कर लेते हैं लेकिन इस द्रव को प्रयोगशाला में विश्लेषण के लिए अवश्य भेजते हैं ताकि उसमें उपस्थित बैक्टीरिया की पहचान हो सके।"

"डाक्टर साहब ! रमेश को अचानक बुखार आ गया था। उसके सिर में भंयकर दर्द लगातार बना रहा। थोड़ी देर बाद उसने उल्टियां करनी शुरू कर दीं।"

"नीना! तुम जो कुछ बता रही हो, मेनिनजाइटिस रोग के लक्षण हैं। इसका संक्रामक कारक चाहे कोई भी हो लेकिन मेनिनजाइटिस रोग के लक्षण प्रायः समान ही होते हैं। इसमें रोगी बेसुध हो जाता है और उसे लकवा भी पड़ सकता है।"

"अब मुझे याद आया, डाक्टर! रमेश के साथ बिल्कुल ऐसा ही हुआ था। शुरू में वह अपनी गर्दन को इतनी जोर से पकड़े हुये था सभवतः जितनी जोर से वह उसे पकड़ सकता था। ऐसा क्यों हुआ डाक्टर!

"परिभाषा के अनुसार मेनिनजाइटिस का अर्थ मस्तिष्कावरण झिल्ली या मेनिनजेस में सूजन आना है। इसके कारण मस्तिष्क में प्रमस्तिष्कीय द्रव अधिक मात्रा में एकत्र हो जाता है जिसके कारण दाब बढ़ जाता है। जिस क्षण गर्दन की पेशियां और सूजी हुई मस्तिष्कावरण में खिंचाव उत्पन्न होता है, सिरदर्द बढ़ता जाता है, इसीलिये रमेश दर्द से राहत पाने के लिये अपनी गर्दन पकड़े हुये था।"

"क्या ये लक्षण हमेशा एकदम तूफान की तरह आते हैं।"

"केवल क्षयजनित (टी.बी.) मेनिनजाइटिस को छोड़कर लगभग सभी प्रकार के मेनिनजाइटिस में ऐसा ही होता है।"

"लेकिन ट्यूबरकुलस मेनिनजाइटिस मे लक्षण धीरे-धीरे और स्पष्टतः उभरने में एक या दो सप्ताह का समय ले लेते हैं। प्रारम्भिक लक्षण भ्रामक होते हैं, विशेषकर जब ये बच्चों में उभरते हैं।"

"ये कौन-से लक्षण है, डाक्टर।"

"इन लक्षणों में गला खराब होना , हल्का
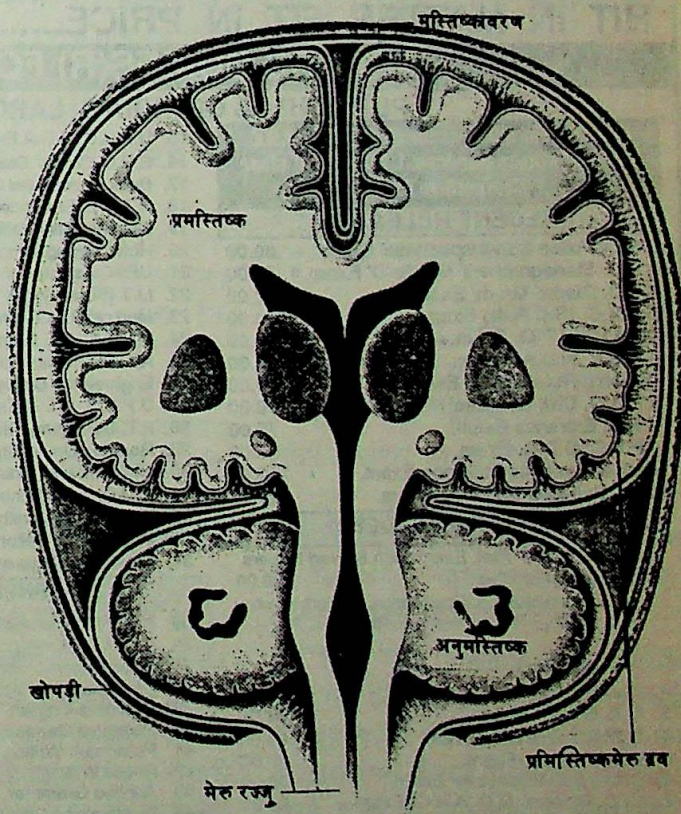
प्रमस्तिष्कमेरु द्रव में मेनिनजाइटिस के संक्रमण से मेरुरज्जु और मस्तिष्कावरण प्रभावित होता है

ग्राहक फार्म

मेरा नाम विज्ञान प्रगति के ग्राहकों/नए ग्राहकों की सूची में वर्ष के लिए (मास.... 199 से... 199 तक दर्ज कर लीजिए।

इसके लिए मनी आर्डर/बैंक ड्राफ्ट क्रमांक............... दिनांक........................ से "प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, सी.एस.आई.आर.," नई दिल्ली-110012 के नाम भेजे जा रहे हैं।

-हस्ताक्षर

पूरा पता ______________________________

____

____

____

वरिष्ठ बिक्री और वितरण अधिकारी,
'विज्ञान प्रगति'
पी.आई.डी. हिलसाइड रोड,
नई दिल्ली-110012

बुखार महसूस होना था सामान्यतः जलन होना। तथा कभी-कभी शरीर में लाल रंग के दाने उभर आना सम्मिलित हैं। जब ये लक्षण उत्पन्न हों तो तुरन्त डाक्टर को दिखाना चाहिए क्योंकि ये लक्षण मेनिनजाइटिस की सूचना देते हैं। यह अत्यावश्यक है कि इस बीमारी का तुरन्त निदान हो जाय ताकि इस रोग की चिकित्सा शीघ्रातिशीघ्र शुरू की जा सके।''

''डाक्टर! अभी-अभी आपने सही निदान के विषय में बताया है। क्या इसका मतलब यह है कि मेनिनजाइटिस कई प्रकार का होता है।''

''हां, नीना! मेनिनजाइटिस कई प्रकार का होता है लेकिन सबसे अधिक महत्वपूर्ण ये दो प्रकार के मेनिनजाइटिस हैं—मेनिनगों कोकल मेनिनजाइटिस तथा ट्यूबरकुलस मेनिनजाइटिस। मेनिनगों कोकल प्रकार अधिकतर होता है। भारत में ट्यूबरकुलस मेनिनजाइटिस से भी काफी लोग ग्रस्त होते हैं। मेनिनजाइटिस के कुछ अन्य प्रकार हैं—एसेप्टिक मेनिनजाइटिस तथा वायरल मेनिनजाइटिस।''

''मेनिनजाइटिस किस आयु में हो सकता है डाक्टर।''

''मेनिनजाइटिस किसी भी आयु के बच्चे अथवा व्यक्ति को हो सकता है। यद्यपि बड़ों की अपेक्षा बच्चों को यह रोग अधिक होता है।

''क्या भारत में यह रोग बहुत होता है?''

''हां! हमारे देश में यह रोग बहुत अधिक होता है क्योंकि हमारे देश की जलवायु समशीतोष्ण है। उचित सफाई की व्यवस्था का अभाव, गरीबी, अज्ञानता आदि बहुत बीमारियों का कारण होती हैं। भारत में इस बीमारी के फैलने में इन्हीं सब कारणों का हाथ है।''

''लेकिन डाक्टर साहब, मेनिनजाइटिस फैलने का सही कारण क्या है?''

''मैं तुम्हें बताता हूं। मेनिनगो कोकल मेनिनजाइटिस, मेनिनगो-कोकाई नामक बैक्टीरिया से होता है। इस बैक्टीरिया से मस्तिष्कावरण में सूजन आ जाती है तथा मवाद भर जाता है। मस्तिष्कावरण का यह मेनिनजाइटिस, वह प्रकार है जो महामारी के
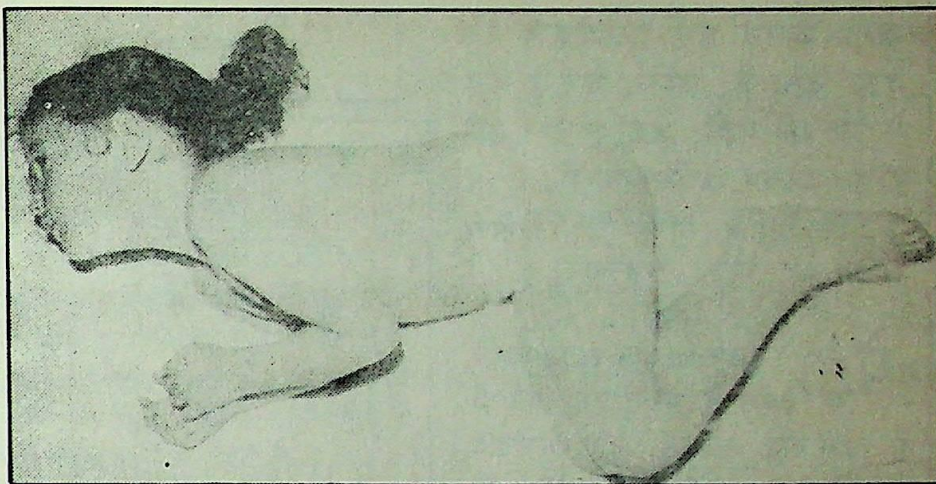
मेनिनजाइटिस से पीड़ित बच्चे की विशेष स्थिति: गर्दन अकड़ने के कारण सख्त हो जाती है जिसके हिलने-डुलने में दर्द बढ़ जाता है। इसीलिये रोगी इस स्थिति में पड़ा रहता है, पैर भी इसी स्थिति में रहते हैं।

रूप में पाया जाता है मेनिनगोकोकल मेनिनजाइटिस इसलिए अत्यधिक विषाक्त होता है क्योंकि इसमें गले में भी बैक्टीरिया पैदा हो जाते हैं जो रोगी के संपर्क में आने पर रोगी के खांसने, छींकने पर तथा यहां तक कि उसके बोलने से नमी के कणों के साथ बाहर वायु में फैल जाते हैं। यह रोग ऐड्रिनल ग्रंथि में रक्तस्राव से संबद्ध है, जिसके कारण ऐड्रिनल ग्रंथियां फट भी सकती हैं।''

''क्षय रोग जनित मेनिनजाइटिस के विषय में कुछ बताइये।''

''भारत में क्षय रोग बहुत अधिक होता है। कुछ को फेफड़ों का तो कुछ को लसीका ग्रन्थियों का क्षय रोग हो जाता है। ट्यूबरकुलस मेनिनजाइटिस उसी टी.बी. के बैक्टीरिया से उत्पन्न होता है जिससे फेफड़ों की टी.बी. होती है। यह थोड़े समय के लिए भी हो सकती है तब इसे तीव्र टी.बी. मेनिनजाइटिस कहते हैं और जब यह काफी लंबे समय तक रहती है तो उसे चिरकालिक टी.बी. मेनिनजाइटिस कहते हैं।

इस रोग से भुजाओं में पक्षाघात भी हो सकता है। और अंधापन भी आ सकता है। रोगी बच्चा महीनों तक मूर्च्छावस्था में पड़ा रह सकता है। पूरी लगन तथा अच्छी से अच्छी चिकित्सा के बावजूद भी इस रोग से कितने ही बच्चे असमय काल का ग्रास बन जाते हैं।''

''एसेप्टिक मेनिनजाइटिस क्या है, डाक्टर साहब!''

''यह मुख्यतः वर्ष के गर्म दिनों में किशोरों को होता है। इसे प्रायः 'समर ग्रिप' (गर्मी का चंगुल) के नाम से जाना जाता है। इसका संक्रमण विभिन्न प्रकार के वायरसों द्वारा होता है, उनमें से एक है— नॉन पैरालिटिक पोलियो माइलिटिस।''

''डाक्टर साहब कुछ वाइरसजन्य मेनिनजाइटिस के विषय में भी बतायें।''

''यह भारत में अधिकतर समशीतोष्ण जलवायु में होता है। यह मम्पस (कनफड़े) अथवा पोलियो माइलिटिस वाइरस के कारण होता है।

''अब मुझे याद आया, मेरे भाई अरुण को यह रोग निमोनिया के कारण हुआ था।''

''हां, यह निमोनिया प्रकार का मेनिनजाइटिस भी हो सकता है।''

''नहीं डाक्टर! मेरे भाई को कभी मेनिनजाइटिस नहीं हुआ। डाक्टरों ने बताया था कि यह स्थिति चिकित्सीय दृष्टि से मेनिनजाइटिस जैसी लगती है।''

''ओह! ऐसी स्थिति को मेनिंगिन्म कहते हैं। इसमें मेनिनजाइटिस का धोखा हो सकता है। यह बच्चों में निमोनिया तथा इस प्रकार के संक्रमण के दौरान हो जाया करता है। यदि इसमें बच्चे के मस्तिष्क में काफी अधिक बेचैनी अथवा क्षोभ होता है तो बच्चे को

(शेषांश पृष्ठ 32 पर)
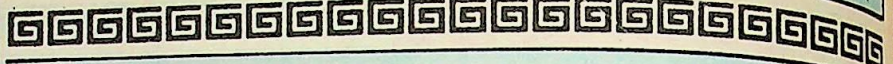
पानी जलते हुए एल्कोहल को बुझा देता है, परन्तु जलते हुए पेट्रोल को नहीं; जबकि दोनों ही हाइड्रोकार्बन के मिश्रण हैं?

[रवीन्द्र रोहिला, रोहिला ट्रेडिंग कम्पनी स्टेशन रोड, झुनझुनू, राजस्थान]
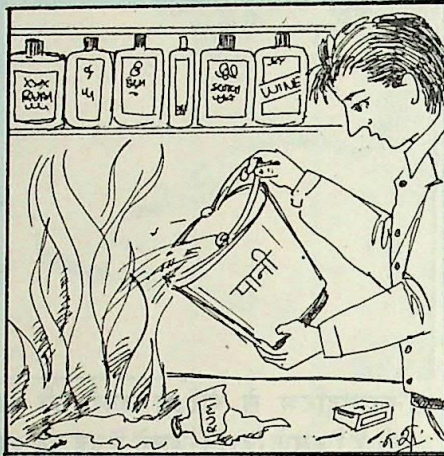
पेट्रोल व एल्कोहल दोनों हाइड्रोकार्बन के मिश्रण हैं, परन्तु इन दोनों के घनत्व में बहुत अन्तर है। पेट्रोल का घनत्व पानी से बहुत कम होता है। इसलिए जब जलते हुए पेट्रोल पर पानी डाला जाता है

तो पेट्रोल पानी के ऊपर एक तह बना लेता है और लगातार जलता रहता है। पानी और पेट्रोल की तहों को अलग-अलग देखा जा सकता है। परन्तु एल्कोहल पानी में घुलनशील होने के कारण एल्कोहल में पानी डालने पर एल्कोहल का सांद्रण कम हो जाता है, जिससे उसकी जलने की क्षमता भी कम हो जाती है और अधिक पानी डालकर एल्कोहल में लगी आग को बुझाया जा सकता है।

नीरू सलूजा

पंखा चालू करने पर कभी-कभी उल्टा घूमता हुआ दिखाई देता है, क्यों?

[मनोज कुमार, ताम्रकार, लुचकीपारा, दुर्ग. म.प्र.]

कभी-कभी पंखे की पंखुड़ियां विपरीत दिशा में घूमती दिखाई पड़ती हैं। इसी प्रकार तेज चलते हुये तांगे के पहिये भी उल्टे घूमते दिखाई पड़ते हैं। यह दृष्टि भ्रम कहलाता है और इसे "स्ट्रोबोस्कोपिक" प्रभाव कहते हैं। जब किसी तीव्र प्रकाश की टिमटिमाहट पंखे की गति से ज्यादा तेज होती है तो पंखुड़ियां विपरीत दिशा में घूमती दिखाई देती हैं। यही नहीं जब टिमटिमाहट उतनी ही तेजी से होती है जिस गति से पंखा घूमता है तो पंखा रुका हुआ मालूम पड़ता है और जब यही टिमटिमाहट पंखे की गति से कम होती है तो पंखा अपनी वास्तविक गति से धीमा घूमता प्रतीत होता है।

राजीव गुप्ता

पकने पर मिट्टी (ईंट, मिट्टी के बर्तन) का रंग लाल क्यों हो जाता है?

[रामदास गिल, मानकसर, सगरिया, राजस्थान]

ईंट या मिट्टी के बर्तनों को बनाने में प्रयुक्त मिट्टी में अन्य पदार्थों के साथ-साथ लोह यौगिक भी मिले होते हैं। जब ईंट या बर्तनों को आग में पकाया जाता है तो लोह यौगिक लोह आक्साइड में परिवर्तित हो जाते हैं। लोह आक्साइड का रंग हल्का भूरा होता है तथा सिलिका के साथ मिट्टी में मिले अन्य यौगिकों के साथ क्रिया करने पर बर्तन या ईंट का रंग लाल हो जाता है।

के.के. कक्कड़
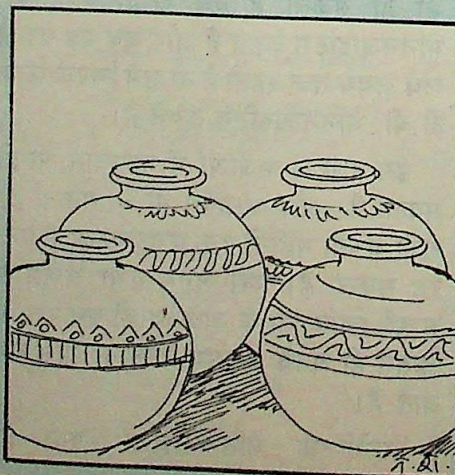
धूप से आकर जब हम पंखे के सामने बैठते हैं तो ठण्ड का अहसास क्यों होता है?

[अमित, द्वारा श्री प्रमात्मा प्रसाद चौधरी, एडवोकेट, कलेक्ट्री कचेहरी, बस्ती-272001]
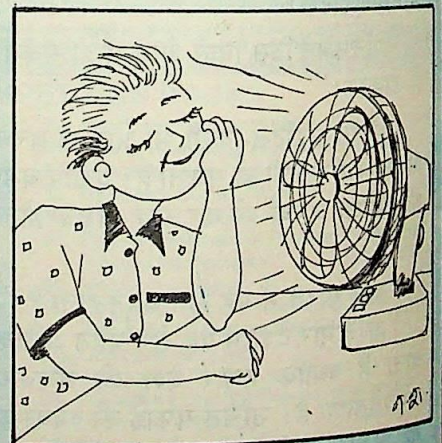
धूप में जब हम बाहर निकलते हैं, तब शरीर का बाहरी ताप बढ़ता है, फलस्वरूप उस ताप के प्रभाव को कम करने के लिए पसीना निकलता है। यह पसीना त्वचा पर लगा रहता है। लेकिन जब हम पंखे के सामने बैठते हैं तो पसीने में जो पानी होता है वह वाष्प बन कर उड़ने लगता है। जिसके लिए ऊष्मा की आवश्यकता होती है और यह ऊष्मा शरीर से ली जाती है। इस प्रकार शरीर से ऊष्मा के ह्रास के कारण हमें पंखे के सामने बैठने पर ठण्डक का अहसास होता है।

मनोज पटैरिया

ऊंट की पीठ पर कूबड़ क्यों होता है?

[कमलेश कुमार द्विवेदी, गांगदवाड़ी जयपर, राजस्थान]
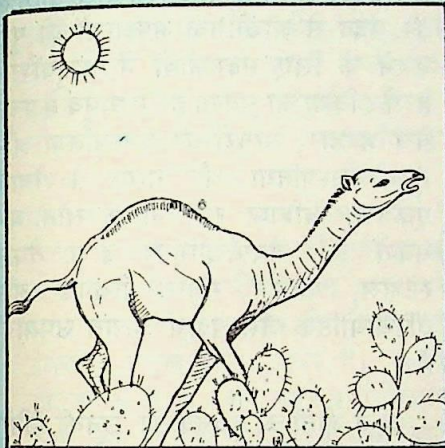
ऊंट का कूबड़ उसकी एक विशिष्ट रचना है। यह शंक्वाकार कूबड़ मुख्यतया वसा का बना होता है। कूबड़ में वसा के रूप में भोजन की अतिरिक्त मात्रा संचित रहती है। भोजन की कमी के दौरान ऊंट का शारीरिक क्रिया तंत्र इस संचित वसा का प्रयोग करता है। इस कूबड़ का एक और महत्वपूर्ण कार्य पानी की कमी की पूर्ति करना भी है। पहले समझा जाता था कि ऊंट की रोमंथिका (रुमेन) या प्रथम आमाशय की थैली में पानी संचित रहता है, जिसे आवश्यकता पड़ने पर ऊंट काम में लाता है। परन्तु अब पता चला है कि रोमंथिका का द्रव वास्तव में पानी नहीं होता है, बल्कि एक प्रकार का तरल पदार्थ होता है। यह पाचक रसों के समान होता है। ऊंट में इसकी मात्रा अन्य स्तनधारियों के आमाशय में मिलने वाले तरल पदार्थ से भी कम होती है। अब यह स्पष्ट हुआ है कि पानी की कमी होने पर ऊंट के कूबड़ में संचित वसा के आक्सीकरण से पानी की कमी की पूर्ति होती है। ऊंट की पूर्वज परंपरा में कूबड़ काफी बाद में प्रगट हुआ है। पहले ये भेड़ के समान होते थे। अतः समझा जा सकता है कि रेगिस्तानी क्षेत्रों में भोजन व पानी की कमी से बचने के लिये विकास क्रम के अनुसार अनुकूलन हेतु ऊंट में कूबड़ का विकास हुआ।

मनोज पटैरिया

रसोईघरों में काम आने वाले बर्तनों का पेंदा कालिख से पोतकर खुरदरा क्यों बना दिया जाता है?

[संजय कुमार, बरबट्टा कालोनी, सोनपुर, बिहार]

प्रकाश की भांति ऊष्मा भी परावर्तित और अवशोषित होती है। चिकने और चमकीले बर्तनों को चूल्हे पर रखने पर वे चूल्हे से आने वाली ऊष्मा के कुछ भाग को परावर्तित कर देते हैं, जिससे खाना पकने में अपेक्षाकृत देर लगती है, लेकिन बर्तन के पेंदे पर कालिख, राख या मिट्टी को पोत देने से बर्तन की ऊष्मा परावर्तन क्षमता बहुत कम हो जाती है, फलस्वरूप बर्तन अधिक ऊष्मा अवशोषित करता है, जिससे बर्तन में पक रहे भोजन को कम समय में ज्यादा ऊष्मा मिलती है और खाना अपेक्षाकृत जल्दी पकता है। काली और खुरदरी सतह की ऊष्मा सोखने की क्षमता ज्यादा होती है। इसीलिए खाना पकाने के बर्तनों के पेंदें को काला व खुरदरा बनाया जाता है।
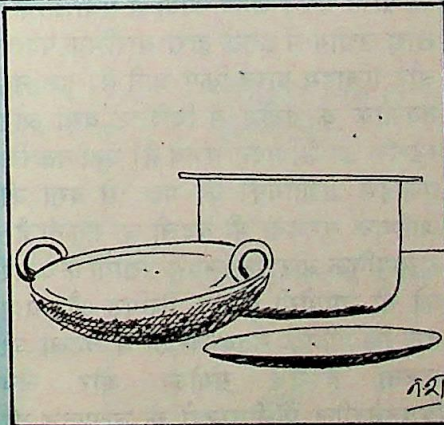
मनोज पटैरिया

स्पष्टीकरण

विज्ञान प्रगति, अप्रैल 1991 अंक में 'प्रश्न मंच' के अंतर्गत प्रकाशित प्रश्न, यदि बन्द कमरे में फ्रिज को चालू करके फ्रिज का दरवाजा खोल दिया जाये तो क्या कमरा ठंडा हो जायेगा, के उत्तर में बताया गया था कि ऐसा करने से कमरे के ताप में कोई अन्तर नहीं आयेगा। इसके बारे में कुछ पाठकों ने शंका प्रकट की है। कुछ ने लिखा है कि ऐसा करने से कमरे का ताप बढ़ जायेगा जबकि कुछ का मानना है कि ताप कम हो जायेगा। यहां यह समझना आवश्यक है कि ऊष्मागतिकी संबंधी शून्यक (जीरॉथ) नियमानुसार प्रत्येक वस्तु का एक लक्षण है–ऊष्मा, जिसे ताप कहते हैं, ऐसी सभी वस्तुएं समान ताप अर्जित करने के लिए ऊष्मा की साम्यावस्था में रहती हैं। इस प्रकार फ्रिज का दरवाजा खुला रखने पर कमरे की वायु फ्रीजर के संपर्क में आकर जितनी ठण्डी होगी, वहीं फ्रिज के पिछले गर्म भाग के संपर्क में आने पर उतनी ही गर्म हो जाएगी। अतः कुल मिलाकर कमरे के ताप में कोई अन्तर नहीं आयेगा।

इसी अंक के एक अन्य प्रश्न ऊंची मीनार से नीचे देखने पर चक्कर क्यों आते हैं? इसके उत्तर के संबंध में भी पाठकों ने भ्रम प्रकट किया है। वास्तव में यह एक साधारण अनुभव की बात है कि जैसे-जैसे हम पृथ्वी तल से ऊंचाई की तरफ बढ़ते हैं, हवा विरल होती जाती है और हवा का दबाव भी कम हो जाता है। जिससे शरीर को असामान्य अवस्था की अनुभूति होती है। इसमें एक मनोवैज्ञानिक कारक भी शामिल है, काफी ऊंचाई से अचानक नीचे झांकने पर अवचेतन मन में छिपा भय अचानक प्रकट होता है जिसके कारण इतनी ऊंचाई से नीचे गिरने की अवश्यंभावी कल्पना हमारे स्नायु तंत्र को आंदोलित कर देती है, जिससे दिमाग का संतुलन केन्द्र आंशिक रूप से प्रभावित होता है, फलस्वरूप सिर घूमने या चकराने का अहसास होता है।

इस प्रकार कम वायु दाब और संतुलन केन्द्र के मिले-जुले प्रभाव से सिर चकरा जाता है। लेकिन सुदृढ़ इच्छा शक्ति वाले या अभ्यस्त व्यक्तियों के साथ ऐसा नहीं होता है।

जे.बी. धवन

दूसरी हरित क्रांति की ओर..

सी.पी. मलिक

भारत में साठ के दशक के मध्य में हरित क्रांति आई थी। विभिन्न कारकों द्वारा कृषि उत्पादकता में व्यापक वृद्धि हुई। ये कारक थे–अधिक उर्वरक उत्पादन, बौनी किस्मों का प्रयोग, क्रमबद्ध सिंचाई, फसल ओज, नाशक जीवों और रोगों का नियंत्रण तथा शुष्क और सीमांत खेती के लिए विशिष्ट निवेश। कृषि विश्वविद्यालयों और अनुसंधान संस्थानों में मिशन उन्मुखी उत्कृष्ट अनुसंधान और प्रयोगशाला से खेतों तक प्रौद्योगिकी को ले जाने के कारण अत्यंत लाभ हुआ ही था और आज पुनः जैवप्रौद्योगिकी से दूसरी हरति क्रांति की आशा की किरण दिखायी दे रही है।

मानव के लिए उपयोगी चीजें और सेवाएं प्रदान करने के लिए सूक्ष्म जीवों और जैविक प्रणाली का उपयोग करना ही जैवप्रौद्योगिकी कहलाता है। इसमें संयुक्त रूप में विभिन्न प्रकार की तकनीकें जैवरसायन, आनुवंशिकी, पादप कार्यिकी, सूक्ष्म जीव विज्ञान और जैवरासायनिक अभियांत्रिकी आदि सम्मिलित हैं। इन सभी विज्ञानों मे कुछ सामान्य मूल सिद्धांत समान होते हैं।

आधुनिक जीव विज्ञान का एक महत्वपूर्ण भाग है जैवप्रौद्योगिकी, जो ऊर्जा लागत की बढ़त, प्रदूषण, पुनर्नवीकरणीय, संसाधनों आदि की समस्याओं के लिए कम खर्च और सक्षम समाधान प्रस्तुत करती है। संक्षेप में, जैवप्रौद्योगिकी सीधे तौर पर सूक्ष्म जीवी बायोमास, उपयोगी पदार्थ और विशेष रसायनों –एथेनॉल, एसीटोन आदि का बड़ी मात्रा में उत्पादन, सूक्ष्मजीवी कोशिकाओं से इच्छित एंटिजन, एंटिबॉडी आदि के रूपांतरण, तथा उन्नत विभेद उपलब्ध कराने, तथा मिट्टी सुधार हेतु उचित पदार्थों को प्राप्त करने आदि कार्यों से संबंधित है। खाद्य उद्योग में इसके द्वारा आरंभिक पदार्थ और एंजाइम प्राप्त किए जाते हैं। इस नई तकनीक के प्रयोग से विशिष्ट वसा और स्टेरॉल का उत्पादन संभव है। यहां तक कि एंजाइम प्रौद्योगिकी की मदद से वसा की आण्विक संरचना भी बदली जा सकती है। रासायनिक और पेट्रोलियम उद्योगों के कचरे को भी उपयोगी प्रोटीन, लिपिड और यहां तक कि जैविक सतहकारकों में बदला जा सकता है। जैव संयोज्य और जैव विघटनशील पॉलीएस्टरों के उत्पादन की संभावना अब दूर की बात नहीं है। रूपांतरित या आनुवंशिक या तैयार कोशिकाओं की सहायता से लिपिड का उत्पादन बढ़ सकता है। नए इंटरफेरॉन, मानव इंसुलिन और नए टीके संश्लेषित किए जा सकते हैं। नई रूपांतरित कोशिकाओं द्वारा कचरे की निपटान समस्या के समाधान के साथ ही कम खर्च में ऊर्जा के स्रोत मिल सकते हैं। विकासशील देशों के लिए ये उन्नत प्रौद्योगिकियां महत्वपूर्ण अवसर प्रदान करेंगीं।

वास्तव में विषैले रसायनों को विघटित करने और कार्बनिक अणुओं की किस्मों को संश्लेषित करने का एक उत्तम साधन है–प्रकृति। पुनर्योजी डी एन ए प्रौद्योगिकी की मदद से औद्योगिक अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए सूक्ष्मजीवों में आनुवंशिक हेरफेर किया जा सकता है। मध्यपूर्व में प्रचुर तेल भण्डार, सागरों की वनस्पतियां और सूक्ष्म वनस्पतियां, और सागर से शैवाल एकत्रण, विशिष्ट रसायनों के स्रोत बन सकते हैं। जैवप्रौद्योगिकी द्वारा तैयार स्टेरॉल, पॉलिन संतृप्त लिपिड और एंटिबायोटिक जैसे पदार्थ अत्यंत उपयोगी हैं।

आज जीनों का पृथक्करण, उनकी मैपिंग और विभिन्न जीवों के जीनोमी मैप तैयार करना आम बात हो गई है। पिछले दशक में जैवप्रौद्योगिकी ने अनेक नए आयाम प्राप्त किए हैं। ऐसा प्राकृतिक प्ररूपों और उत्परिवर्ती एलीलों को अलग करके किया गया, जो विशिष्ट विकास अवस्था में जीन प्रकट करते हैं, और जिससे विषमजीनी जीव प्राप्त करना संभव हुआ है। दो विकास तो उल्लेखनीय हैं -1. बड़े डीएनए अणु की कंपन क्षेत्र जैव इलेक्ट्रोफोरेसिस और 2. विस्तृत वाहकों की उपलब्धि, जिनसे विभिन्न जीवों के गुणसूत्रों का शुद्धिकरण संभव हुआ। इन तकनीकों के संयुक्त प्रयोग से खमीर में इन गुणसूत्रों के अत्यंत लंबे टुकड़ों को क्लोनित करने में मदद मिलेगी और उनको सहधर्मी जीवों में रूपांतरित भी किया जा सकेगा। इस प्रकार पूरे जीनोम की तेजी से मैपिंग और उनको क्रमबद्ध करना संभव हो सकेगा। अब तक मिली जानकारी के द्वारा आनुवंशिक रोगों का विश्लेषण करना और निषेचित अंडज में फेरबदल करना संभव है। क्रमबद्धता के द्वारा जीन की संरचना और उनके कार्य तथा डीएनए और आरएनए अणुओं में उनके नियंत्रण स्थलों की जानकारी के सूत्र हाथ लगे हैं। अनेक जीवाणुओं, विषाणुओं, मानव माइटो-कॉण्ड्रिया और तम्बाकू के हरित लवक के पूरे जीनोम क्रमबद्ध किए गए हैं। इस प्रकार विभिन्न जीनों के विस्तृत अध्ययन द्वारा

वैज्ञानिक इन जानकारियों को भविष्य में उपयोग के लिए कम्प्यूटर में एकत्र कर सकते हैं।

कृषि अनुसंधान के क्षेत्र में पृथक्करण और आवश्यकतानुसार उनके उत्परिवर्ती तैयार करने की क्षमता प्राप्त करना हमारी बड़ी उपलब्धि रही है। इन बाह्य उत्परिवर्ती जीनों को वापस अपने लक्षण प्रकट करने हेतु गुण सूत्र में रोपित किया जा सकता है। सहधर्मी पुनर्योजन तकनीक द्वारा बहुकोशीय जीवों में स्थित जीनों को भी प्रतिस्थापित किया जाना संभव है। इस प्रकार परोक्ष रूप से आनुवंशिकी के ज्ञान द्वारा विकासात्मक जीवविज्ञान का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण है, और जीन चिकित्सा में इसकी उल्लेखनीय भूमिका है। अनचाहे डीएनए क्रमों को अलग करने या हानिकारक क्रमों को प्रतिस्थापित करने तथा प्रोटीन इंजीनियरी में इसका प्रयोग किया जा सकता है। जीन अभिलक्षण को रोकने के लिए प्रति-संवेदी आरएनए का प्रयोग हो सकेगा।

फसल सुधार के लिए पुनर्योजी डी एन ए तकनीक असीमित जीन पूल प्रस्तुत करती है। पौध कोशिका में बाहरी जीन को डालने की दो खास विधियां हैं —वाहक के माध्यम से और सीधे डी एन ए को प्रविष्ट करा कर। **एग्रोबैक्टीरियम ट्यूमेफेसिएंस** नामक जीवाणु का प्रयोग, पौध कोशिकाओं में जीन प्रविष्ट कराने के लिए वाहक के रूप में किया गया है, जिससे पौधों के शाकरोधी या रोग रोधी विभेद प्राप्त हो सकें। फिर भी इस वाहक प्रणाली द्वारा बहुत कम संख्या में जीन ले जाए जाने के कारण इसे प्रायः द्विबीजपत्री पौधों के लिए काम में लाया जाता है।

अन्य अनेक डीएनए या जीन स्थानांतरण तकनीकें, जैसे शुद्धिकृत डीएनए के सीधे स्थानांतरण की तकनीकें भी परखी गई हैं। कोशिका जीव द्रव्यिकें को पॉलीएथिलेनिलिकॉल और विद्युत स्पंदनों द्वारा भी उपचारित किया जाता है, जिससे शुद्धिकृत डीएनए सीधे स्थानांतरित हो जाते हैं। इसका एक और उपाय यह भी है कि डीएनए को सूक्ष्मनलिका द्वारा माइक्रोइंजेक्शन विधि के द्वारा प्रविष्ट कराया जा सकता है। गोभी चकत्ता विषाणु तथा जैमिनी विषाणुओं की भांति पादप विषाणुओं को रूपांतरण के लिए प्रयोग किया जाता है, लेकिन ये विषाणु सीमित ग्राहियों में ही जीनों के सीमित 300 क्षार युग्मों को स्थानांतरित कर सकते हैं। पौधों में नए जीनों को डालने के लिए वाहकों के रूप में बौना गेहूं जैमिनी विषाणु विकसित करने के प्रयास किए जा रहे हैं।

परिवर्ती पदार्थ अन्य प्रकार के सूक्ष्म जीन वाहक हो सकते हैं। ये पदार्थ ग्राही पौधों के जीनोम में एक स्थान से घुसकर फिर दूसरे स्थान में घुस कर चारों तरफ घूमते हैं। मक्का में परिवर्तनकारी पदार्थ तम्बाकू में भी कुछ परिवर्तन कर सकता है।

हाल के वर्षों में पौधों के कार्यों के अध्ययन के लिए नए प्रकार के वाहकों का प्रयोग किया गया है। जब जीनों को अपने निजी नियंत्रण क्रमों के साथ स्थानांतरित किया जाता है, तब सामान्यतया जीवाणु या प्राणि जीन पौधों में क्रियाशील नहीं होते हैं। फलस्वरूप काइमिरिक जीनों का संयोजन करना संभव हो गया है, जहां टी आई प्लाज्मिड वंशाणुओं के नियंत्रण क्रमों के साथ गैर पौधा जीनों के क्रमिक क्षेत्र पार्श्व में रह जाते हैं। ये अनेक पौधों में क्रियाशील पाए गए हैं।

जैव उर्वरकों का प्रयोग लाभदायक है क्योंकि कुछ जैव तकनीकें अपनाकर जैव उर्वरकों को और अधिक कारगर बनाया जा सकता है, जैसे पौध कोशिकाओं में सायनोजीवाणु (नील हरित प्रकाश संश्लेषी जीवाणु) के प्रवेश हेतु नाइट्रोजन बंधनकारी जीनों को डालकर तथा रोधक यूरिएज एंजाइम द्वारा नाइट्रोजन अलग करके नाइट्रोजन की कमी को रोककर जैव उर्वरकों से अधिक लाभ मिल सकता है।

यह भारत का सौभाग्य है कि साल भर में यहां करीब 3000 घण्टे सूर्य प्रकाश मिलता है, अतः प्रकाश संश्लेषण क्रिया में किसी तकनीक से यदि थोड़ी भी वृद्धि की जा सके, तो सकल खाद्य उत्पादन में उल्लेखनीय बढ़त हो सकती है। कुछ प्रकाश संश्लेषण सुधारक पदार्थों के प्रयोग द्वारा प्रकाश संश्लेषण क्रिया को बढ़ाया जा सकता है। ये हैं —एलीफेटिक एल्कोहल, फीनोलिक अम्ल और फोटोसिंथोजीन 2-(3-4 डाइक्लोरोफीनॉक्सी ट्राइएथिलएमीन)। उत्पादकता

जीन को अलग करने और उसे पौधों में डालने की क्रियाविधि
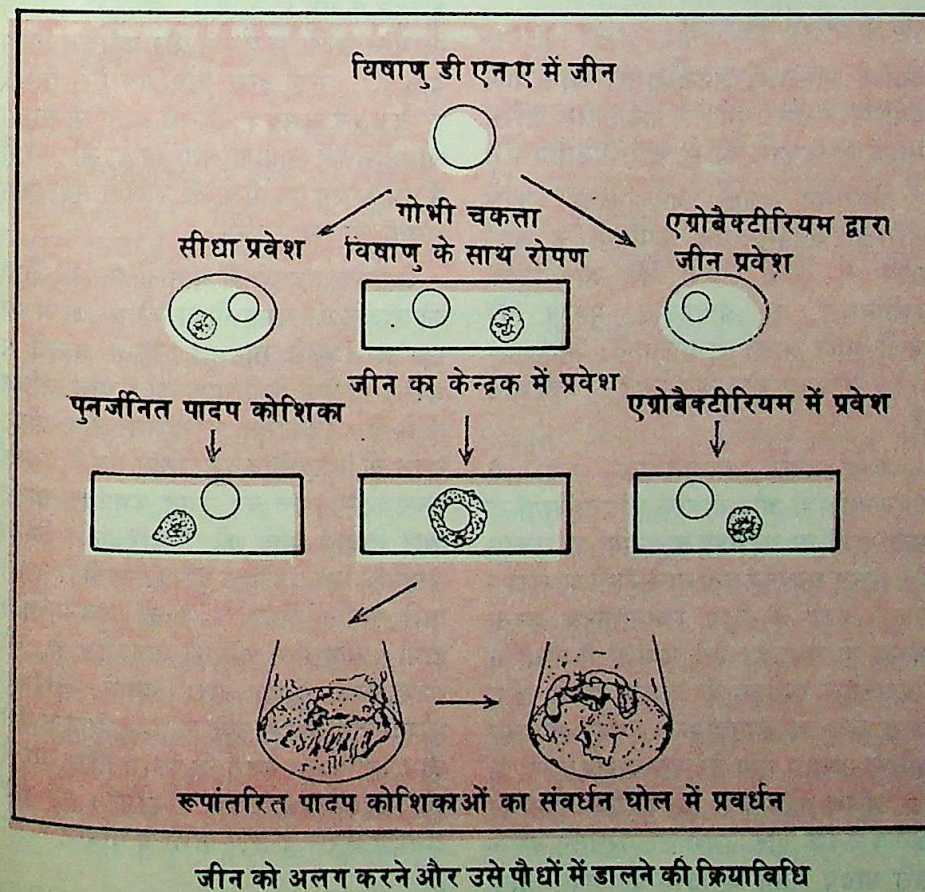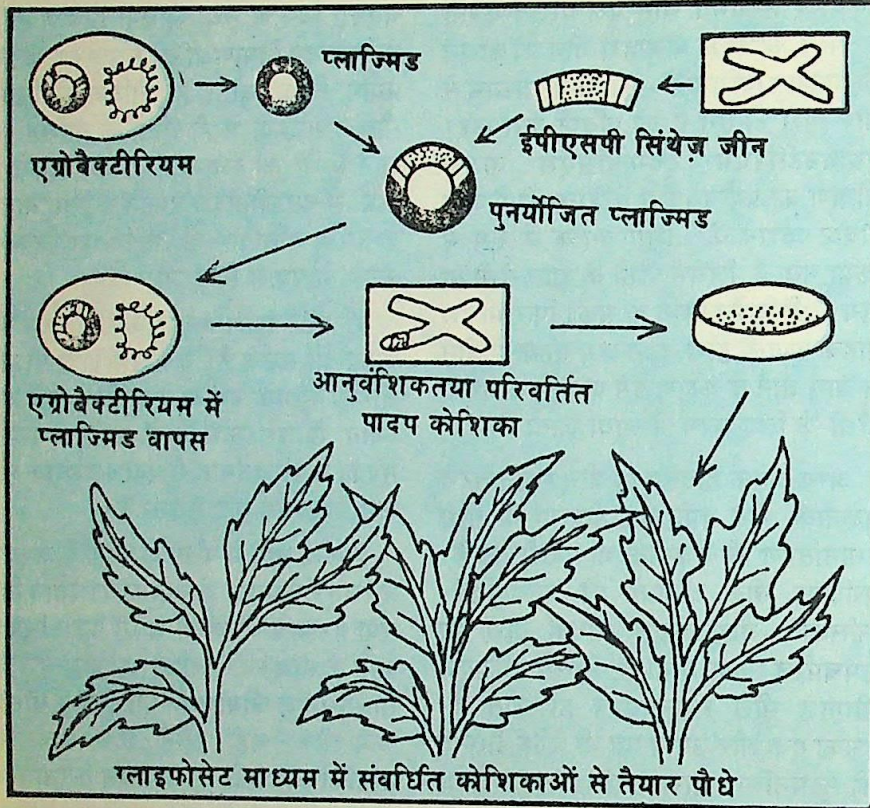
ए. ट्यूमेफेसिएंस के माध्यम से स्थानांतरित ई पी सिंथेज जीन, पौधे को गाईफॉस्फेट युक्त शाकनाशी के प्रतिरोधी बनाता है

बढ़ाने की यह एक श्रेष्ठ तकनीक है। इनमें से कुछ रसायन प्रकाश श्वसन को कम कर देते हैं, जिनसे प्रकाश संश्लेषण में बाधा पड़ती है।

आनुवंशिक इंजीनियरी द्वारा रुबिस्को (आर यू बी आई एस सी ओ यथा : प्रकाश श्वसन ह्रसकारी) के विशिष्ट मान को बदला गया है। शैवाल, कोशिकाओं में अकार्बनिक कार्बन को बढ़ाते हैं, और HCO तथा CO_2के बीच साम्यता को सुगम बनाते हैं, इस बात को ध्यान में रखते हुए उच्च पौधों में इस प्रकार के तंत्र में फेरबदल के प्रभाव भी दिखने संभव होने चाहिए. जिससे कुछ प्रश्नों के उत्तर भी मिल सकते हैं जैसे –हरित लवक की स्ट्रोमा में कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा के संबंध में और थायलेकायड झिल्लियों में हाइड्रोजन आयन सांद्रण (पी एच) कारकों को उत्पन्न करने की क्रिया पर संभव प्रभाव आदि। रुबिस्को की क्रिया और इसके संश्लेषण तथा क्रियाशीलता के नियंत्रण को गहराई से समझने में सहायक जैवप्रौद्योगिकी के क्षेत्र में पर्याप्त जानकारी उपलब्ध है। आने वाले वर्षों में सक्षम, पुनः उत्पादनशील हरित लवक के विकास की स्पष्ट संभावनाएं हैं।

तकरीबन 500 वाणिज्यिक, कृषि उन्मुखी जैवप्रौद्योगिक कंपनियों के आगे आने से कृषि पादपों की आनुवंशिक इंजीनियरी के आशातीत महत्व को भली-भांति आंका जा सकता है। जहां आज पादप आण्विक जीव विज्ञानियों की बड़ी मांग है।

पौधों को आनुवंशिक रूप से शाकनाशियों और नाशक जीवनाशियों के प्रति रोधी या सहनशील बनाया जा सकता है। अनेक एकल रचना वाले जीनों को लक्षण प्रकट करने के लिए स्थानांतरित करना संभव हो गया है। ऐसे मामलों में पौधों में क्रियाशील प्रमोटर के अंतर्गत एकल जीन कोड क्षेत्र को आनुवंशिक हेरफेर के लिए प्रविष्ट कराया गया है। इस प्रकार जल्दी ही यह संभव हो सकेगा कि वांछित जीन को अलग करके और उसमें उत्परिवर्तन करके उसे पादप जीनों में डाला जा सके, ताकि स्थाई जीन अभिलक्षण प्रकट होकर वंशानुगत हो जाए।

बी.नेपस (रेपसीड) के विषमजीनी पौधों को पहले ही पुनर्जनित किया गया है। **ए. ट्यूमेफेसिएंस** वाहक का इस्तेमाल करके मूषक उत्परिवर्ती डाइहाइड्रोफोलेट रिडक्टेज़ जीन तैयार किया गया है, जो गोभी चकत्ता विषाणु 354 प्रमोटर द्वारा व्युत्पन्न तथा मेथोट्रेक्सेट (एक औषधि) का प्रतिरोधी है। इस तरह खाद्य तेलों के जैव रसायन में सुधार होगा। कीटमार विषालु जीन को कपास के पौधे में रोपित किया गया है, ताकि कपास के पौधे नाशकजीवों के आक्रमण से सुरक्षित रहें।

राइबुलोज1,5-बाइफॉस्फेट कार्बोक्सिलेज़ आक्सीजनेज़ (रुबिस्को) एक एंजाइम है जो कार्बन डाईआक्साइड और आक्सीजन दोनों पर क्रियाशील हो सकता है। यह राइबुलोज बाइफॉस्फेट को आक्सीजनीकृत करता है और कार्बोक्सिलेशन को रोकता है, फलस्वरूप स्थिर कार्बन डाईआक्साइड की 25 प्रतिशत कार्बन डाईआक्साइड प्रकाश श्वसन के रूप में जाती है। रुबिस्को जीन को विभिन्न जीवों से पृथक और क्रमबद्ध किया गया है। इसके द्वारा विकसित ऐसे विभेद प्राप्त करने संभव हैं, जिनमें थोड़ी सी बाह्य ऑक्सीजनेज़ क्रियाशीलता भी है, और पौधों में इसे डालने पर पौधों की प्रकाश संश्लेषण क्षमता भी बढ़ सकेगी।

आर्थिक महत्व की फसलों में ऐसे जीनों को डालने की संभावनाओं को भी जांचा जा रहा है, जिनमें सारभूत एमिनो अम्लों से भरपूर प्रोटीनों के निर्माण की सूचना निहित होती है। विकसित फेजोलिन जीन प्राप्त करने के लिए भी कदम उठाए गए हैं, (जहां ग्लाइकोसिलेशन की जगह प्रभावित करने वाले विशेष क्रमों को उत्परिवर्तित किया जाता है) जिनमें पोषक और आसानी से पचने वाले प्रोटीन तैयार करने की सूचना भरी होगी। सोयाबीन स्टेरॉल का स्रोत है, जो सूक्ष्मजैविक क्रिया द्वारा अनेक स्टेरॉयड फार्मास्यूटिकलों से जुड़े होते हैं। हाल में ऐसे जीन को अलग करने के प्रयास किए गए हैं जो **माइकोबैक्टीरियम** से स्टेरॉल का जैव अंतरण करते हैं और पौधों में प्रविष्ट करते हैं।

यू के की टेट और लायल फर्म ने थौमेटिन नामक एक मीठा बनाने वाला प्रोटीन विकसित किया है। इसे टैलिन के नाम से जापान में वाणिज्यिक स्तर पर बनाया जा रहा है, जो कि 4% सुक्रोस विलयन से 5000 गुना मीठा है। हॉलैण्ड स्थित यूनीलीवर अनुसंधान प्रयोगशाला ने थौमेटिन जीन को **थौमेटोकोकस डैनिएली** से खमीर में क्लोनित और अभिलक्षित किया है। अब इन जैव अंतरित खमीर विभेदों के किण्वन द्वारा थौमेटिन प्राप्त किया जा सकेगा। गन्ना और चुकन्दर में भी इस जीन को डालने की संभावना अब दूर की बात नहीं रही।

डुपॉण्ट और कैलजीन (दो प्रमुख जैव रसायन कंपनियां) ने तम्बाकू और टमाटर के पौधों का विकास किया है, जो विशेष शाकनाशियों के प्रतिरोधी हैं। जर्मनी की हॉचस्ट कंपनी ने फॉस्फीनाथ्रिसिन शाकनाशी रोधी आलू, तम्बाकू और टमाटर के पौधों का विकास किया है। मक्का जीन युक्त एक उत्परिवर्ती के रूपांतरण द्वारा जनित एक नया पिटूनियां पुष्पी रंग पहले ही उपलब्ध है।

प्रति-संवेदी आर एन ए तकनीक के प्रयोग द्वारा विषाणुरोधी टेलरिंग पौधे प्राप्त करना पूरी तरह व्यवहार्य है। यह विधि पॉलीगैलेक्टुरोनेज क्रिया को कम करने के लिए सफलतापूर्वक अपनाई जा चुकी है; पॉलीगैलेक्टुरोनेज पेक्टिक बहुलकों का विघटन करता है और फलों को नरम बनाता है। इस एंजाइम में 10% कटौती करके विषमजीनी टमाटर के पौधे प्राप्त किए गए हैं।

लेकिन दुर्भाग्यवश इससे भी फलों का गलना पूरी तरह नहीं रुका। गोभी चकता विषाणु प्रमोटर द्वारा टमाटर और तम्बाकू के पौधों में तम्बाकू चकत्ता विषाणु अभिलिखित प्रोटीन जीन को अभिलक्षित किया गया है जो उसे अन्य चकत्ता रोग जनक विषाणुओं के प्रति परस्पर सुरक्षित बनाते हैं। टमाटर में एथिलीन संश्लेषण जीन (फलों के पकने के लिए महत्वपूर्ण) को क्लोनित करने में भी सफलता मिली है।

मोसैण्टो के वैज्ञानिकों और बेल्जियम की एक कंपनी ने **बेसिलस थूरिंजिनेसिस** से कीट नियंत्रक प्रोटीन वाले जीन को तम्बाकू और टमाटर के पौधों में डालकर लैपिडोप्टर्न
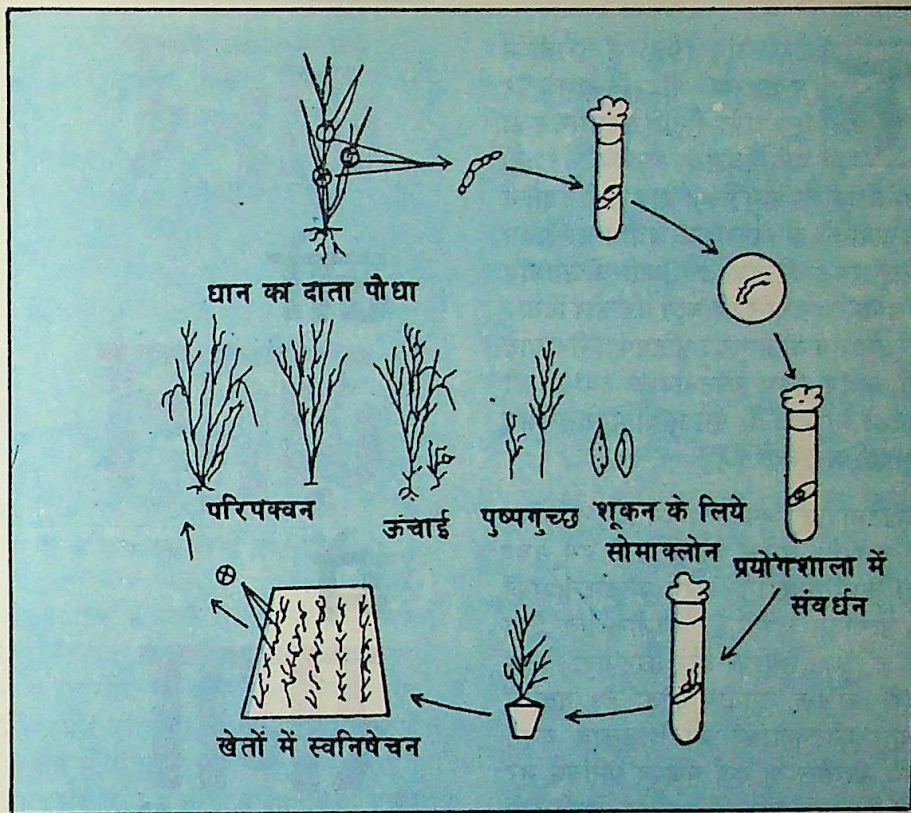
ऊतक संवर्धन तकनीकें विभिन्नताएं पैदा करने में उपयोगी हैं

लारवा सहय विषमजीनी पौधे विकसित किए हैं। पत्तियों को ठण्ड से बचाने के लिए उन पर छिड़के जाने वाले विशेष जीवाणुओं में से भी वैज्ञानिकों ने एक जीन अलग किया है। बायोटेक्निकल इंटरनेशनल ने जीनों में फेर बदल करके बहुत अधिक नाइट्रोजन स्थिरकारी **राइजोबियम** विभेद विकसित किया है।

उत्पादकता बढ़ाने के लिए उन्नत संकरो के वाणिज्यिक उत्पादन द्वारा संकर ओज का उपयोग अत्यंत महत्वपूर्ण है। साइब्रिड विकसित करने के लिए जीव द्रव्यिक नर बंध्यता के उपयोग पर विशेष बल देने की जरूरत है। साइब्रिड वहां विकसित किए जाते हैं, जहां केन्द्रक विहीन प्रोटोप्लास्ट को जीवद्रव्यिक दाता के रूप में ग्राही जनक के संपूर्ण प्रोटोप्लास्ट के साथ प्रयोग किया जाता है। अनेक फसल जातियों के वंध्य रूप प्राप्त करने की विधियों का विकास किया जा रहा है तथा उनको अधिक दक्ष बनाया जा रहा है। उच्च पोषण वाले रूपों के चयन के लिए कोशिक संवर्धन तकनीक से आशाएं हैं, विशेषकर जिनमें अनेक एमिनों अम्ल और प्रचुर प्रोटीन अंश होता है। इसके लिए विभिन्न विधियां अपनाई गई हैं, यथा—रेपसीड में पालक एसिल-वाहक प्रोटीन जीन को क्लोनित करना, जिससे सोयाबीन जैसा तेल मिले, **जैट्रोफा** के साथ एरण्ड का संकरण, जिससे रिसिनोईक अम्ल के स्थान पर लिनोलीक अम्ल देने वाली फसल मिले, कम लिनोलीक और अधिक स्टीएरिक अम्लों युक्त सोयाबीन और अधिक ओलीक अम्ल युक्त सूर्यमुखी का उत्पादन। कैलजीन (संयुक्त राज्य अमेरिका) के वैज्ञानिकों ने सोमाक्लोनल विभिन्नता द्वारा 20% उच्च ठोस पदार्थ युक्त टमाटर के विभेद विकसित किए हैं।

माइक्रोप्रोसेसर और कम्प्यूटर क्रांति की तरह जैवप्रौद्योगिकी के क्षेत्र में बहुत बड़ी संख्या में असाधारण खोजें हुई हैं। इन उन्नत प्रविधियों और खोजों के द्वारा पौध स्वास्थ्य और चयापचय में सुधार की महत्वपूर्ण संभावनाएं हैं। स्पष्ट रूप से जैव प्रौद्योगिकी को आने वाली शताब्दी की प्रौद्योगिकी के

(शेषांश पृष्ठ 32 पर)

ज़हर जो ज़हन में समा रहा है

एम.के. राय

फरवरी सन् 1985 में नैरोबी मे 'पर्यावरण और विकास' पर एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ था जिसमें करीब 1100 प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। सभी देशों ने कीटनाशकों के अत्यधिक प्रयोग पर गहन चिन्ता प्रगट की तथा इन विषों के उपयोग पर प्रतिबंध लगाने की बात पर जोर दिया। एक अनुमान के अनुसार प्रतिवर्ष करीब साढ़े सात करोड़ लोग कीटनाशक दवाओं की चपेट में आ जाते हैं। इन लोगों में से लगभग 20,000 मर जाते हैं।

कीटनाशकों का उत्पादन दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है। अकेले भारत में ही इस समय 350 कम्पनियां 131 तरह के कीटनाशकों का उत्पादन करती हैं। ब्राजील एक ऐसा देश है, जहां उर्वरक और कीटनाशकों का सबसे अधिक उपयोग होता है। दवाओं अर्थात् कीटनाशकों का छिड़काव करते समय ब्राजील के कई मजदूर प्रतिवर्ष मर जाते हैं। एक रपट के अनुसार ब्राजील में केवल जनवरी 1989 में ही करीब 64 लोग इससे काल-कवलित हो गये। कीटनाशक दवाओं का सर्वाधिक उत्पादक देश है—अमेरिका। परन्तु मजे की बात तो यह है कि यह देश स्वयं कई कीटनाशकों का प्रयोग नहीं करता। अमेरिका प्रतिवर्ष 3,00,800 किग्रा. कीटनाशकों का निर्यात करता है। वास्तव में, कीटनाशकों का उपयोग फसलों को कीड़ों से बचाने के लिये किया जाता है। परन्तु कीटों में प्रतिरोधक-क्षमता अधिक हो जाने के कारण अब फसलों का उत्पादन अधिक नहीं हो पाता। सोवियत लेखक अलेक्सेई याबलोकोव के अनुसार—संयुक्त राज्य अमेरिका में पांचवें से नवें दशक तक कीट रोगों से होने वाली हानि 7.1 से 13% तक हो गई है। इसी तरह फसलों की कुल हानि 31.4 से 37% तक हो गई है, जबकि कीटाणुनाशक दवाओं का प्रयोग दस गुना से अधिक हो गया है। सोवियत-संघ में 1960 से 1980 के बीच कीटनाशक दवाओं के प्रयोग से फसलों के उत्पादन में कोई विशेष वृद्धि नहीं हो पाई है। खेतों में इन कीटनाशकों का प्रयोग सात गुना बढ़ा परन्तु उपज केवल 50% ही बढ़ पाई। अभी तक कीटों की करीब 500 प्रजातियां कीटाणुनाशकों के प्रति असंवेदनशील हो चुकी हैं, अर्थात् उनमें प्रतिरोधक क्षमता का विकास हो चुका है। यही कारण है, कि मलेरिया पुनः लौट रहा है। भारत में डी.डी.टी. के प्रयोग से मलेरिया के रोगियों की संख्या सन 1947 के 7.5 करोड़ से घटकर सन 1961 में केवल 50,000 रह गई थी। परन्तु प्रतिरोधक क्षमता का विकास हो जाने के कारण अब प्रतिवर्ष मलेरिया के रोगियों की संख्या 20 लाख हो गई है। पहले अपेक्षाकृत छोटे मच्छर उत्पन्न होते थे, परन्तु आजकल पाये जाने वाले मच्छर बड़े-बड़े होते हैं। एक सर्वेक्षण के अनुसार भारतीय लोगों की वसा में विश्व में सर्वाधिक डी.डी.टी. की मात्रा पाई गई।

प्राथमिक उत्पादक (पौधे) जटिल कार्बनिक पदार्थों का निर्माण करते हैं। उत्पादित पदार्थ को द्वितीयक उत्पादकों द्वारा उपभोग किया जाता है। उदाहरण के लिये पौधों को बकरियां चरती हैं, और इनका मांस मनुष्यों द्वारा खाया जाता है। इस तरह एक भोजन श्रृंखला का निर्माण होता है। यदि पौधों में डी.डी.टी. का छिड़काव होगा तो वह मनुष्य तक जायेगा। भोजन श्रृंखला में यदि कोई भी भाग या बीच की कड़ी न रहे तो वह भोजन-श्रृंखला असाम्य हो जाती है। चीन में एक बार गौरैया नामक चिड़िया को पूर्णतः समाप्त कर दिया गया था। इसका कारण यह था कि ये चिड़ियां फसलों के बीजों को खाती थीं। चिड़ियां समाप्त करने पर चीन निवासियों को बहुत दुष्परिणाम झेलने पड़े। ठीक दूसरे साल फसलों को हानि पहुंचाने वाले कीड़े अत्यधिक पनप गये। खोज करने पर ज्ञात हुआ कि गौरैया पक्षी के समाप्त होने के कारण ही ये कीट पनपे थे। आखिरकार चीन को हारकर 40,000 गौरैया पक्षियों को आयात करना पड़ा। उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट होता है कि भोजन-श्रृंखला की एक कड़ी नष्ट होने से कितना असाम्य आ जाता है। कीटनाशकों के दुष्प्रभाव से चिड़ियां सुगमतापूर्वक मर जाती हैं। इनके मरने से कीट-पतंगे आदि अधिक संख्या में बढ़ जाते हैं। ये ही पतंगे वनस्पति नाशक हैं। चिड़ियों को "प्राकृतिक-कीट-नाशक" कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। "टीम टिट" नामक चिड़ियों का एक जोड़ा प्रतिदिन करीब 300 ग्राम इल्लियों का भक्षण करता है। इसी तरह कोयल हर दिन लगभग 800 इल्लियां खाती हैं। डा. सुरेश मिश्र अमेरिका की राबिन चिड़ियों का उदाहरण देकर अपनी बात को स्पष्ट करते हुये लिखते हैं—अमेरिका में जब 'एल्म वृक्षों' पर 'डच रोग' का आक्रमण हुआ तो पेड़ों पर कीटनाशकों का छिड़काव किया गया। इससे रोग उत्पन्न करने वाले कीट तो मरे ही साथ में परागण में लाभदायक कीट भी समाप्त हो गये। उल्लेखनीय है कि पौधों में लगभग 80% परागण कीटों द्वारा होता है। जब पत्तियां सूखकर जमीन पर गिरती हैं, तो उन्हें केंचुए खाते हैं, जिससे वे भी मर जाते हैं। ऐसे ही अमेरिका में डच-रोग के समय हुआ। जो केंचुए बच जाते हैं, उन्हें चिड़ियां खाती हैं, और वे भी विषैले प्रभाव से मर जाती हैं। जो चिड़ियां बचती हैं उनके अंडे कम होते हैं। जो अंडे उत्पन्न होते हैं, उनसे
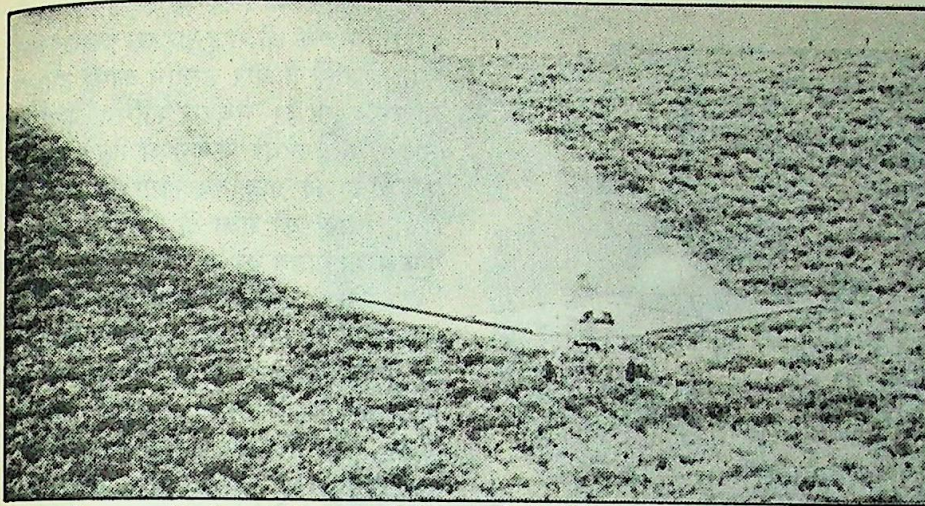
कीटनाशकों की वर्षा से उपज तो बेहतर होगी लेकिन क्या होगा पर्यावरण का

बच्चे नहीं निकलते। कीटनाशक हमारे शत्रुओं को तो नष्ट करते ही हैं, साथ में 'किसानों के मित्र—केंचुओं' को भी नष्ट कर देते हैं।

जितने भी कीटनाशक होते हैं, वे सभी अंत में जल में मिलते हैं। वर्षा के समय ये बहकर नदी तालाबों में मिल जाते हैं एवं जल-जीवन के लिये काल बन जाते हैं। डी.डी.टी., बी.एच.सी., एंड्रिन, हेक्टाक्लोर, बैविस्टिन आदि छिड़काव के बाद भूमि में प्रवेश कर जाते हैं। ये ही कीटनाशक बरसात के बाद नदियों, तालाबों या समुद्रों में पाये जाते हैं। डी.डी.टी. आसानी से विघटित नहीं होता तथा इसका असर पर्यावरण में 20 वर्षों तक रहता है। इसी तरह अन्य कीटनाशक भी आसानी से विघटित नहीं होते और उनका प्रभाव भी वायु में लम्बे समय तक रहता है। भोपाल गैस त्रासदी का दिल दहलाने वाला उदाहरण तो अभी भी हमारे सामने हैं। यह गैस भी कीटाणुनाशक बनाने में काम में आती है। इसका नाम है—मिक गैस (मिथाइल आइसोसायनाइड)। इसी गैस के दुष्प्रभाव से करीब 30,000 लोग अपनी जान गंवा बैठे। न जाने कितने पशु-पक्षी मर गये। जो बच्चे हुये वह भी मरे हुये। एक सर्वेक्षण के अनुसार इस गैस के कुप्रभाव से लगभग 600 मरे हुये बच्चे पैदा हुये और ज़हर का असर रहेगा बीसियों साल। संपूर्ण भोपाल और आसपास का वातावरण जहरीला हो गया है।

डी.डी.टी. और बी.एच.सी. ऐसे कीटनाशक हैं, जो मनुष्य के लिये बहुत अधिक खतरनाक हैं। प्रतिदिन भोजन के साथ इन कीटनाशकों की 0.5 मि.ग्रा. मात्रा प्रवेश कर जाती है। यह आंकड़े भारत के हैं। वास्तव में प्रतिदिन भोजन में आने वाला यह ज़हर अमेरिका में लोगों में पहुंचने वाले जहर से 40 गुना अधिक है। यह विष की स्वीकार्य सीमा से बाहर है। आजकल सब्जी, अंडे, फल आदि सभी प्रदूषित हो गये हैं। गोभी अधिक अच्छी दिखे और ज्यादा दामों में बिके इसलिये कीटनाशकों का उपयोग गोभी तोड़ते समय भी किया जाता है। सच देखा जाये तो हम अपने शरीर में जहर घोल रहे हैं। एक रपट के अनुसार कर्नाटक में शिमोगा और चिकमंगलूर जिलों में 1975-1989 (अब तक) करीब 300 लोंग आर्थ्राइटिस के शिकार हो चुके हैं। अब तक तो यह संख्या दुगुनी हो गई होगी; इसका प्राणघातक कारण कीटनाशी है।

कीटाणुनाशकों का जहर छोटी आंत द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है। बाद में ये चिकनाई वाले ऊतकों से चिपक जाते हैं। अधिकांशतः ये हृदय, वृक्क, गुर्दों, स्तन-ग्रंथियों आदि में चिपकते हैं। स्तन-पान कराने से यह जहर बच्चों में चला जाता है। डी.डी.टी. की 50 से 80 मिग्रा. मात्रा हमारे शरीर में कई वर्षों तक रहती है। भारतीय माताओं के दूध में अन्य देशों की अपेक्षा 4 गुना डी.डी.टी. अधिक पाया जाता है। रूस, अमेरिका, जर्मनी, आदि देशों ने तो डी.डी.टी. का उपयोग बंद कर दिया है, परन्तु हम इसका उपयोग अभी भी करते हैं।

आधुनिक वैज्ञानिक शोधों से यह स्पष्ट होता जा रहा है कि मनुष्य के जीनों पर भी कीटनाशकों का असर पड़ता है। भविष्य में ऐसा भी हो सकता है कि मनुष्य में दवाओं का असर भी समाप्त हो जाये क्योंकि आने वाली संततियों में दवाओं की प्रतिरोधक-क्षमता बढ़ जायेगी। सच तो यह है कि हम स्वयं तो मृत्यु को न्यौता दे रहे हैं, साथ ही साथ अपनी भावी पीढ़ियों को भी भयानक रसायनों के कुप्रभाव के गर्त में डाल रहे हैं।

कुछ सोवियत वैज्ञानिक कीटनाशकों के उपयोग के पक्ष में हैं। उनका कहना है कि ये 'कृषि-रसायन' वास्तव में उत्तम कृषि के लिये वरदान साबित हुये हैं। उनके अनुसार कीटनाशकों से अधिक विषाक्त तो एस्पिरीन की गोलियां हैं। ये गोलियां कीटनाशकों से तीन, पांच या दस गुना अधिक विषैली हैं। ऐसी स्थिति में कीटनाशकों पर रोक क्यों लगाई जाये? पश्चिमी जर्मनी के एक निगम ''हेश्ट'' का विश्व रसायन उद्योग में ऊंचा नाम है। इसके कई शोध कर्त्ताओं ने यह सिद्ध कर दिया है कि आज जो भी कृषि-रसायन प्रयोग में आ रहे हैं, उनमें से अधिकतर ऐसे हैं, जिनका प्रभाव उत्परिवर्तन जनक (संतानों में अचानक होने वाले परिवर्तन—'म्यूटेशन') नहीं है। जहां तक कीटनाशकों के द्वारा प्रदूषण की बात है, तो वह बहुत कम प्रतिशत में है। 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' के आंकड़ों के अनुसार—कीटनाशक जलाशयों, आदि में केवल 3% होता है, तो फिर 97% प्रदूषण कहां से आता है? साफ जाहिर है कि यह फॉसिल-ईंधनों, रेडियो-धर्मिता, अम्लीय वर्षा, भारी धातुओं एवं नाभिकीय विस्फोट आदि से आता होगा। इसके अतिरिक्त ईंधन, तेल, विरंजक आदि पदार्थ भी प्रदूषण फैलाते हैं।

कीट नाशकों पर प्रतिबंध

प्रत्येक सिक्के के दो पहलू होते हैं। इसलिये सोवियत वैज्ञानिकों ने कीटनाशकों की उपयोगिता पर जोर दिया है। इसमें कोई शक नहीं कि कीटनाशकों के प्रयोग से उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। परन्तु कीटनाशकों का प्रयोग सीमित होना चाहिये। सन 1968 में भारत सरकार ने
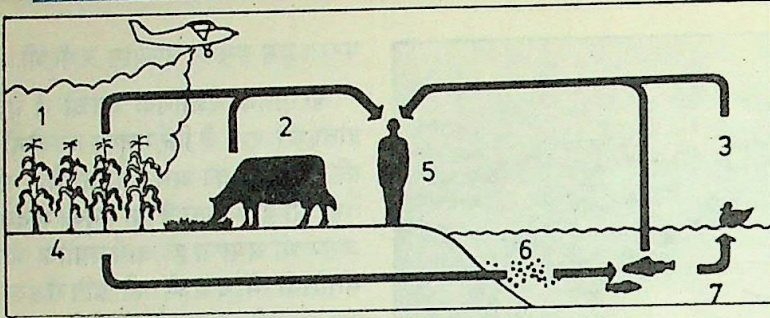
1 पौधों पर शाकनाशियों का छिड़काव 2 पौधों को खाने से मवेशियों में पहुंचे शाकनाशी 3 मछलियां खाने से पक्षियों में पहुंचे शाकनाशी 4 मिट्टी द्वारा अवशोषित शाकनाशी 5 सब्जियां तथा मांस आदि खाने से मनुष्य में पहुंचे शाकनाशी 6 सूक्ष्म जीवों में शाकनाशी 7 सूक्ष्मजीव खाने से मछलियों में पहुंचे शाकनाशी

कीटनाशक कानून लागू किया था, परन्तु दुर्भाग्य की बात यह है कि हम अभी तक स्वीकृत 131 कीटनाशकों में से केवल 31 की ही निरापद सीमा जान सके हैं। कीटनाशकों के प्रयोग और उनके छिड़काव के लिये विशेष प्रशिक्षण लेना आवश्यक होना चाहिये।

जापान के एक वैज्ञानिक एवं कृषक श्री फुकुओका प्राकृतिक खेती या 'नेचुरल फार्मिंग' के पक्ष में हैं। उनका कहना है कि कीटनाशकों का उपयोग न करके फसलों में ही प्रतिरोधक क्षमता (एन्डयोरेन्स) उत्पन्न की जाये जिससे पौधे बीमारी के प्रकोप से स्वयं को बचा सकें। नेचुरल फार्मिंग भारत मे छोटे किसानों के लिये बहुत उपयोगी है। होशंगाबाद के श्री राजू टाइटस इस तरह की खेती कर रहे हैं और उन्होंने काफी हद तक सफलता पाई है। 'नेचुरल फार्मिंग' के प्रयोग उन्होंने 5 हेक्टेयर जमीन में किये हैं। श्री फुकुओका की 'प्राकृतिक खेती' को 'वन स्ट्रा रिवोल्युशन' की संज्ञा दी गई है। इस हेतु फुकुओका साहब को 'पुरुषोत्तम अवार्ड' एवं "मेगास्सेसे" अवार्ड से सम्मानित किया जा चुका है। यदि अभी भी हम लोगों में चेतना का संचार नहीं हुआ तो हमारी पीढ़ियां विष भरे वातावरण में सांस न ले सकेंगी। इसलिये जल्दी सचेत हो जाना ही अच्छा है, ताकि भावी पीढ़ियां खुली हवा में सांस ले सकें और उन्हें पर्यावरण की रक्षा के लिये पर्यावरण दिवस, स्वास्थ्य हेतु स्वास्थ्य दिवस और पृथ्वी को बचाने के लिये पृथ्वी दिवस जैसे कार्यक्रमों का आयोजन न करना पड़े। □

[डा. एम.के. राय, डेनियलसन कालेज, छिंदवाड़ा- 480 001, मध्य प्रदेश]

(शेषांश पृष्ठ 22 का)

लकवा पड़ सकता है। एक बार जब निमोनिया अथवा अन्य संक्रमण पर नियंत्रण कर लिया जाता है तो लकवा भी ठीक हो जाता है।"

"डाक्टर साहब, इस भयानक बीमारी से आप कैसे निपटते हैं?"

"प्रायः इसका संबंध निजी स्वच्छता से होता है, जैसे—नित्य प्रति नहाना-धोना और छींकने तथा खांसने की स्थिति में मुंह ढकना आदि सावधानियां मेनिनजाइटिस को फैलने से रोकती हैं। यदि आप किसी मेनिनजाइटिस रोगी के संपर्क में आते हैं तो इस रोग से निपटने के लिये डाक्टर कुछ दवाएं भी देते हैं। जिनको मेनिनजाइटिस हो जाता है उन्हें दूसरों से अलग रखना चाहिए। इस रोग को फैलने से रोकने के लिए रोगी के कमरे तथा उसके सामान को डाक्टर के निर्देशों के अनुसार साफ और अलग रखना चाहिए।"

"मेनिनजाइटिस की चिकित्सा कैसे होती है डाक्टर?"

"एक समय था जब इस बीमारी का कोई निश्चित इलाज नहीं था। और मेनिनजाइटिस का रोगी प्रायः मर ही जाया करता था सल्फा औषधियों तथा एण्टिबायोटिक दवाइयों की खोज से स्थिति अब बिल्कुल बदल गयी है। रोगी के ठीक होने की आशायें बलवती हो गयी हैं। अब रोगी बहुत जल्दी ठीक हो जाते हैं विशेषकर तब जब रोगी का इलाज जल्दी और समय से शुरू हो जाता है। क्षय रोग जनित मेनिनजाइटिस जो अत्यधिक प्रतिरोधक प्रकार का रोग है, से पूर्णतः छुटकारा पाया जा सकता है, लेकिन इसमें 10 से 12 महीने तक का समय लग जाता है। इसलिए इस रोग में रोगी के रिश्तेदारों को धैर्य तथा अत्यधिक सावधानी से काम लेना चाहिये।

"डाक्टर साहब आपका बहुत-बहुत धन्यवाद। अब मैं इस रोग के बारे में बहुत कुछ जान गयी हूं। मैं यह भी जान गयी हूं कि रमेश की बीमारी से मुझे क्या आशा रखनी चाहिए और उसके संपर्क में आने पर मुझे स्वयं की देख-भाल किस प्रकार करनी चाहिए। एक बार आपका पुनः धन्यवाद। □

[डा. सुरेश नाडकर्णी, फ्लैट 38-39, 5वीं मंजिल, म्युनिसिपिल बिल्डिंग जोबनपुत्रा कम्पाउंड, नाना चौक, मुंबई - 400 007]

(शेषांश पृष्ठ 29 का)

रूप में वर्णित किया गया है। आनुवंशिक रूप से परिवर्तित पौधों को वाणिज्यिक स्तर पर उत्पादित करने से पहले विभिन्न परिस्थितियों में उनका क्षेत्र परीक्षण किया जाना आवश्यक है। विषमजीनी पौधों के परीक्षण स्थलों के पर्यावरण पर पड़ने वाले विपरीत प्रभाव का मूल्यांकन करना बहुत जरूरी है। इसका प्रमाणन भी आवश्यक होगा कि कहीं नए डाले गए जीन युग्म पौधे की वृद्धि को तो प्रभावित नहीं करते और उपज तो नहीं घटाते। क्षेत्र परीक्षणों में काम आने वाली कृषि क्रियाओं का क्रमगत मूल्यांकन भी वांछनीय होगा। इस प्रकार पौधों को सामान्य उत्पादन पर्यावरण के अंतर्गत अपना जीवन चक्र पूरा करने दिया जाना चाहिए। इस प्रौद्योगिकी के वंशानुगत जोखिम को स्वीकार करते हुए आनुवंशिक रूप से रूपांतरित पौधों के वाणिज्यिक उत्पादन के नियंत्रण की हमें आवश्यकता है। □

[डा. सी.पी. मलिक, मौलिक विज्ञान और मानविकी विद्यालय, पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना]

"यह क्या, आज यह चमचमाता नगीना आपने क्यों हमारे सामने रख दिया।"

"अरे भाई यह नगीना या मणि कुछ भी नहीं है।"

"तो जरूर यह दहकते कोयले का चित्र होगा।"

"नहीं जी नहीं, ऐसा कुछ भी नहीं। यह चित्र तो अंतरिक्ष की बात कह रहा है।"

"क्या कहा? अंतरिक्ष की, अच्छा जरा जल्दी बताइये आखिर यह है क्या?"

अंतरिक्ष में घूमते अनेक ग्रह, उपग्रह, धूमकेतु तथा दूसरे खगोल पिण्ड मानव के लिये सदा से रहस्यमय बने रहे हैं। 1608 ई. में हैंस लिप्पर शे द्वारा हुये दूरबीन के अचानक आविष्कार से इन खगोल पिण्डों की गति एवं दिशाओं का अध्ययन और भी रोचक हो गया। 1872 ई. में हेनरी ड्रैपर नामक एक वैज्ञानिक ने पहली बार इन पिण्डों के चित्र खींचे। पहला चित्र था वेगा सितारे के वर्णक्रम या स्पेक्ट्रम का। इसके बाद अकेले हैनरी ने ही 100 से अधिक सितारों के वर्णक्रमों के चित्र लिये। दूरबीन तथा कैमरे की इस जुगलबंदी ने अंतरिक्ष के अध्ययन को बहुत दिलचस्प और आसान बना दिया है।

अगर यही दूरबीन और कैमरा अंतरिक्ष में स्थापित किसी वेधशाला में लगा दिये जायें तो संभव है अंतरिक्ष पर अनुसंधान अधिक सफलतापूर्वक हो सकेगा। ऐसा ही एक प्रयोग किया गया जिसमें नासा के वैज्ञानिकों द्वारा निर्मित हब्बल अंतरिक्ष दूरबीन तथा यूरोपीय अंतरिक्ष एजेन्सी द्वारा निर्मित फेन्ट आब्जेक्ट कैमरे को अन्तरिक्ष में स्थापित एक वेधशाला पर लगाया गया। फेन्ट आब्जेक्ट कैमरा एक ऐसा कैमरा है जिससे मद्धिम प्रकाशमान वस्तु के भी चित्र खींचे जा सकते हैं। इस कैमरे से मद्धिम प्रकाशित आकाश गंगा में क्वासार देखे जा सकते हैं तथा नजदीकी सितारों के उपग्रहों की खोज की जा सकती है।
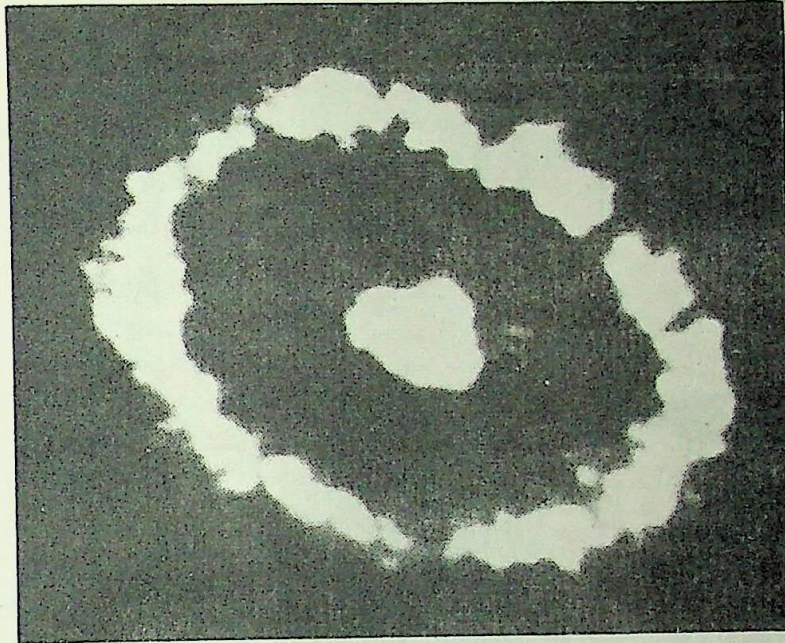
पिछले कुछ दिनों में हब्बल अंतरिक्ष दूरबीन में लगे कैमरे के लैन्सों में आई तकनीकी खराबी से वैज्ञानिक चिंतित हैं और इसे ठीक करने के लिये सतत प्रयत्नशील हैं। 15 अरब डालर की लागत से बनी यह हब्बल अंतरिक्ष दूरबीन ठीक तरह से फोकस नहीं हो पा रही थी।

लेकिन हाल ही में नासा को कुछ चित्र प्राप्त हुये हैं जिनसे पता चला है कि यह दूरबीन तथा कैमरा अभी भी कुछ हद तक कार्य कर रहे हैं। उन्हीं चित्रों में से लिया गया एक चित्र यह भी है– टूटते हुये सुपरनोवा 1987 ए का। इस चित्र में चमकदार पदार्थ का एक दीर्घवृत्त है जिसके केन्द्र में टूटते हुये सुपरनोवा का छोटा सा बचा हुआ भाग नजर आता है। इस केन्द्रीय भाग में भयंकर विस्फोट हो रहे हैं जिनके कारण दीर्घवृत्तीय आकार में दृष्टिगोचर पदार्थ टूट कर बिखर रहा है। वैज्ञानिकों के अनुसार यह दीर्घवृत्त अधिक से अधिक 100 वर्ष तक ही दिखाई दे सकता है क्योंकि उसके बाद वह टूट कर अंतरिक्ष में बिखर जायेगा।

खराब हो गये फेन्ट आबजेक्ट कैमरे से प्राप्त यह चित्र सुपरनोवा 1987 ए के विषय में अधिकाधिक जानकारी देता है। वैज्ञानिकों को आशा है कि उनके अथक प्रयासों से जब यह फेन्ट आब्जेक्ट कैमरा और हब्बल दूरबीन पूर्णरूप से ठीक हो जायेंगे तो हमें अंतरिक्ष के बारे में और भी अधिक जानकारी मिल सकेगी और वहां की अजूबी सच्चाइयों का रहस्योद्‌घाटन होता रहेगा □

[डा. ज्ञान सिंह, डीबी/73, डीडीए फ्लैट्स, हरी नगर, नई दिल्ली- 110064]

40 वर्ष पहले

जनवरी १९५३

सूचना-समाचार

अगर का तेल

अगर का उड़नशील तेल आसाम में उगनेवाली एकूलेरिया आगालोचा नामक वृक्ष की लकड़ी से निकाला जाता है। इस वृक्ष को आसाम में सासी कहते हैं। निरोग सासी की लकड़ी में कोई गंध नहीं होती। जिन वृक्षों को कुछ विशेष फफूंदी बीमारियां हो जाती हैं उनमें बीमार हिस्से के आस-पास रंग गहरा होने लगता है और सुगन्ध बनने लगती है। रंग जितना गहरा होता है सुगंधि की मात्रा उतनी ही अधिक पाई जाती है। लकड़ी के वह टुकड़े जिनमें सुगंधि होती है, अगर कहलाते हैं। सुगंधि की दृष्टि से पीले रंग की अगर सबसे घटिया होती है और काले रंग की अगर सबसे बढ़िया। काली अगर इतनी भारी होती है कि पानी में डूब जाती है। लकड़ी में यह भारीपन एक विशेष राल-तेल पदार्थ बन कर जमा हो जाने के कारण आ जाता है। यह राल-तेल ही सुगंधिधारी पदार्थ है।

देश के विभाजन से पहिले अगर का तेल और इत्र सिलहट ज़िले में बनाया जाता था।

अगर का तेल निकालने का यंत्र
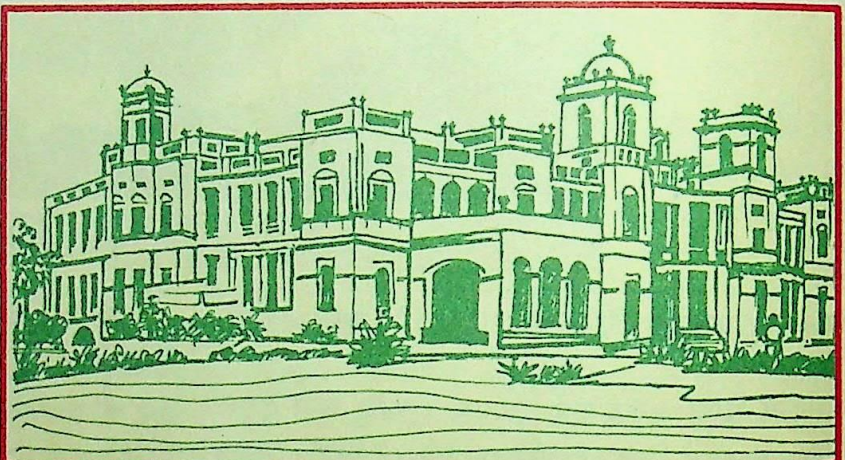
सैन्ट्रल फूड टैक्नोलौजिकल रिसर्च इन्स्टीट्यूट

सुरक्षित डिब्बा-बंद खाद्य पदार्थों की आवश्यकता देश में द्वितीय महायुद्ध के दिनों में अनुभव हुई। १९४३ में बंगाल के अकाल ने, और १९४६ में दक्षिण भारत में अन्न की कमी ने इस प्रकार के खाद्यों और उनको तैयार करनेवाले खाद्य-शिल्प की ओर विशेष रूप से ध्यान आकर्षित किया। कौंसिल ऑफ़ साइंटिफ़िक एण्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च की इंडस्ट्रियल प्लानिंग कमेटी ने समस्या की पूरी जांच-पड़ताल करके एक केन्द्रीय खाद्य शिल्प अनुसंधानशाला बनाने की सिफ़ारिश की और इस शाला को राष्ट्रीय लेबोरेटरियों की पंक्ति में एक महत्वपूर्ण स्थान दिया।
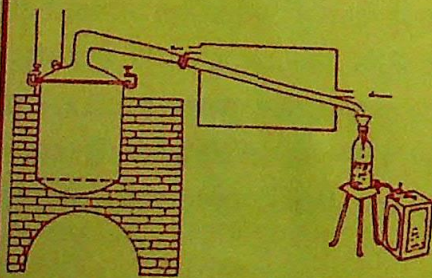
पेटेन्ट

पानी की सहायता से तेल निकालना

भारतीय पेटेन्ट नं० ४५११७; २५ अक्तूबर, १९५२

देश और विदेश में तेल और चर्बियों की मांग खाने तथा उद्योगों में इस्तेमाल करने के लिये बढ़ती जा रही है। भारत तेल उत्पादक देशों में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। तेल का उत्पादन बढ़ाने का एक उपाय यह भी है कि तेलधारी पदार्थों में से अधिक-से-अधिक तेल निकाल लिया जाये। मशीनी और देशी कोल्हुओं में तेल निकालने के बाद जो खल बचती है उसमें ६-१० प्रतिशत तक तेल बाकी रह जाता है। नेशनल कैमिकल लेबोरेटरी में एक ऐसी विधि निकाली गई है जिसका उपयोग करने से खल में ३ प्रतिशत तेल बाकी बचता है।

आधुनिक रसायन विज्ञान के जनक

एंटायन लारेंट लेवोइज़े

देवेंद्र मेवाड़ी

उसने अपनी खोजों से दुनिया में अपने देश का नाम रौशन किया, लेकिन एक दिन उस पर देशद्रोह का झूठा आरोप लगा कर गिलोटीन से उसका सर कलम कर दिया गया!

वह महान वैज्ञानिक था फ्रांस का एंटायन लारेंट लेवोइज़े। आज उसे आधुनिक रसायन विज्ञान का जनक कहा जाता है। उसने रसायन विज्ञान को सरल और सरस रूप में सामने रखा और विभिन्न पदार्थों के पुराने भ्रामक नामों को बदल कर उनका तर्क-सम्मत नया नामकरण किया।

लेवोइज़े का जन्म 26 अगस्त 1743 को पेरिस (फ्रांस) में हुआ था। उसके पिता संसदीय सलाहकार और समृद्ध व्यक्ति थे। लेवोइज़े 7 वर्ष का था कि तभी मां की मृत्यु हो गई। उसके बाद वह अपनी दादी की हवेली में रहने लगा। वहीं उसका पालन-पोषण हुआ। लेवोइज़े को अच्छी शिक्षा देने के लिए पिता ने उसे प्रसिद्ध मज़ारिन कालेज में भेजा। वहां उसने भाषा साहित्य और दर्शन के साथ ही विज्ञान, गणित और खगोल विज्ञान का अध्ययन किया। रसायन विज्ञान में उसकी बहुत गहरी रुचि थी। पिता की सलाह पर उसने कानून की पढ़ाई की और सन् 1764 में उसे वकालत करने का लाइसेंस भी मिल गया। लेकिन लेवोइज़े का मन कानून की बहसों में नहीं बल्कि विज्ञान में डूबा रहता। पत्थरों, चट्टानों और खनिजों में उसकी बहुत रुचि थी। अपने शिक्षक भूगर्भविज्ञानी जे.ई. गुटार्ट के साथ वह खनिजों की खोज यात्रा पर निकलता और कठिन परिश्रम करता। गुटार्ट से उसने सुनियोजित ढंग से प्रयोग करने और धैर्यपूर्वक आंकड़ों का हिसाब रखने की प्रेरणा ली। उसने गुटार्ट के साथ भूगर्भ वैज्ञानिक सर्वेक्षणों में भाग लेकर फ्रांस का खनिज मानचित्र तैयार करने में सहयोग दिया। अपने एक और शिक्षक रौले से वह बहुत प्रभावित हुआ। रौले रसायन विज्ञान के डिमांस्ट्रेटर थे और अक्सर कहा करते कि रसायन विज्ञान प्रयोगशाला में किए गए प्रयोगों के बल पर आगे बढ़ेगा न कि महज सिद्धांतों से। उनसे लेवोइज़े ने प्रयोग करने की कठिन साधना सीखी।
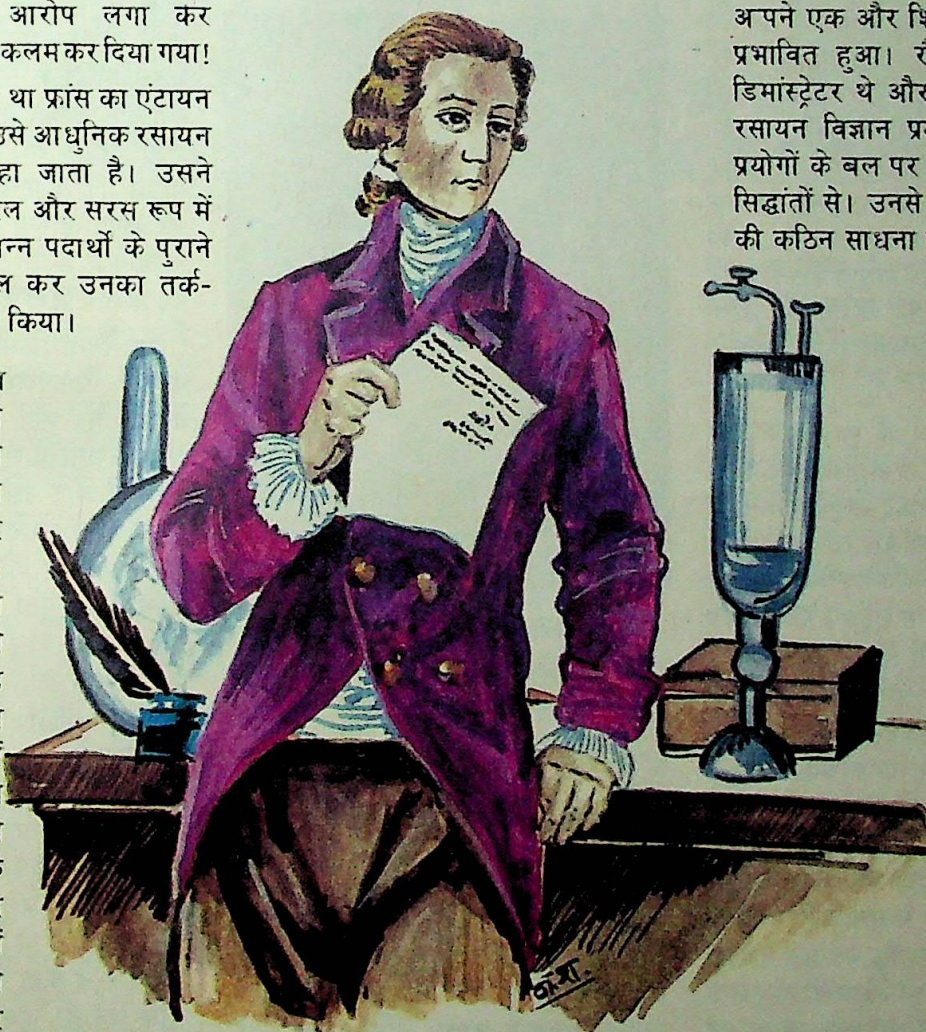
स्वर्णपदक और विज्ञान अकादमी

फ्रांस की विज्ञान अकादमी ने सन् 1766 में एक निबंध प्रतियोगिता आयोजित की। विषय था—एक बड़े नगर में प्रकाश व्यवस्था। लेवोइज़े ने पेरिस की गलियों में प्रकाश की व्यवस्था पर निबंध लिखा, जिस पर उसे स्वर्ण पदक प्रदान किया गया। उसके बाद लेवोइज़े ने अपनी रुचि के तमाम विषयों पर काम किया और शोध पत्र लिखे। उसने उत्तर ध्रुवीय ज्योति (आरोरा बोरिएलिस), मेघ गर्जना और जिप्सम की रासायनिक संरचना पर शोध लेख लिखे। जिप्सम पर किए गए उसके कार्य और भूगर्भ वैज्ञानिक सर्वेक्षण में उसके योगदान के कारण उसे फ्रांस की विज्ञान अकादमी का सदस्य बना लिया गया। पानी के बारे में पुरानी मान्यता का खंडन करते हुए लेवोइज़े

ने अपने प्रयोगों के आधार पर विज्ञान अकादमी को अपना शोध लेख सौंपा। तब विज्ञान अकादमी ने उसे सहयोगी रसायन विज्ञानी के पद पर रख लिया।

विज्ञान अकादमी में लेवोइज़े का प्रभाव बढ़ता गया और नूतन प्रयोगों से उसकी ख्याति भी बढ़ती चली गई। सन् 1785 में वह अकादमी का निदेशक बना। उसके बाद सन् 1791 में वह कोषाध्यक्ष बनाया गया। लेकिन, विज्ञान अकादमी में रहते हुए उसके एक सामान्य फैसले ने उसके लिए दुर्भाग्य के बीज बो दिए। हुआ यह कि सन् 1780 में ज्यां पाल मराट् नामक एक व्यक्ति ने विज्ञान अकादमी की सदस्यता के लिए आवेदन किया। समुचित योग्यता न होने के कारण लेवोइज़े ने उसकी सदस्यता के खिलाफ अपनी राय दी। इससे मराट् बेहद नाराज हो गया और प्रतिशोध की आग में जलता रहा। बाद में फ्रांसीसी क्रांति के दौरान उसने लेवोइज़े के खिलाफ अभियान छेड़ दिया।

इससे पूर्व लेवोइज़े के साथ एक और घटना घटी थी जो यूं तो तब मामूली घटना थी, लेकिन आगे चलकर उसके जीवन की बहुत बड़ी विडंबना साबित हुई। हुआ यूं कि उसकी मुलाकात जैकुअस पाल्ज़े नामक एक उच्च कुलीन व्यक्ति से हुई। उसका संबंध 'कर' जमा करने वाली संस्था 'फर्मे जनरेल' से था। उन दिनों कई धनी और सभ्रांत लोग राजा को एक मुश्त धन देते थे और बदले में किसानों से कर वसूलने का अधिकार पा लेते थे। पाल्ज़े भी संस्था का सदस्य था। उसने लेवोइज़े की वैज्ञानिक प्रयोगों में बेहद रुचि देखकर उसे सलाह दी कि वह भी अपना धन कर वसूलने की संस्था में लगा दे जिससे उसे अच्छा मुनाफा मिलेगा और वह उस पैसे को निश्चिंत होकर अपने प्रयोगों में लगा सकेगा। बात लेवोइज़े की समझ में आ गई और उसने अपनी पूंजी कर वसूलने के काम में लगा दी। उन दिनों इस संस्था के तमाम सदस्य गरीब किसानों से क्रूरतापूर्वक कर वसूलने के लिए बदनाम थे। वे किसानों पर भारी अत्याचार ढाते। लेवोइज़े का मकसद यह नहीं था, लेकिन इस संस्था का सदस्य होना ही उसके लिए दुर्भाग्य बन गया।

विवाह और मेहमानवाजी

सन् 1771 लेवोइज़े ने जैकुअस पाल्ज़े की सुंदर सुपुत्री मेरी ऐन पाल्ज़े से विवाह किया। मेरी ऐन उससे 14 वर्ष छोटी थी। वह बहुत बुद्धिमान और व्यवहार कुशल थी। उसने लेवोइज़े के वैज्ञानिक प्रयोगों में बहुत सहयोग दिया। प्रयोग करने, उनके आंकड़े लेने और परिणाम तैयार करने में मेरी ऐन लेवोइज़े का पूरा साथ देती। इतना ही नहीं, अंग्रेजी और लैटिन में छपे शोध लेखों के अनुवाद में भी वह मदद करती।
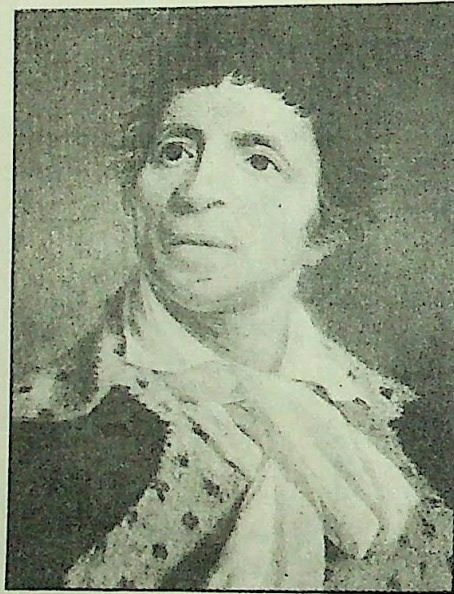
क्रांतिकारी ज्यां पाल मराट्: जिसने ईर्ष्यावश लेवोइज़े का सर कलम करवा दिया था

लेवोइज़े ने उत्तम उपकरणों से सुसज्जित प्रयोगशाला बनाई। वह मेरी ऐनी के साथ उसमें प्रयोग करता रहता। पति-पत्नी दोनों ही मेहमानवाजी के लिए मशहूर थे। प्रसिद्ध वैज्ञानिक उनके घर पर आते, खाना खाते और फिर उनकी सुसज्जित प्रयोगशाला में नए-नए प्रयोगों का जायजा लेते। अंग्रेज रसायन विज्ञानी जोसेफ प्रिस्टले, अमेरिकी वैज्ञानिक बैंजामिन फ्रैंकलिन, फ्रांसीसी खगोल वैज्ञानिक तथा गणितज्ञ ला-प्लास, गणितज्ञ कंडोरसेट आदि सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक मेरी ऐनी तथा लेवोइज़े के मेहमान रहे थे।

पुरानी मान्यताओं को चुनौती

लेवोइज़े ने अपनी प्रयोगशाला में पुरानी मान्यताओं को चुनौती दी। सबसे पहले उसने इस बात का खंडन किया कि पानी का आसवन करते रहने पर वह मिट्टी और फिर सोने में बदल जाता है। उन दिनों कीमियागरों का यही कहना था। लेवोइज़े की प्रयोगशाला में उस समय के सर्वोत्तम तराजू थे। उसने कांच के फ्लास्क में 100 दिन तक पानी उबाला। उसकी भाप भी वापस उसी पानी में जाने दी। अंत में उसे पानी में कुछ छोटे-छोटे भूरे कण दिखाई दिए। उसने पानी और फ्लास्क को तोला तो देखा कि फ्लास्क के वजन में हल्की-सी कमी हुई है। उसने भूरे कणों और फ्लास्क को तोला तो फ्लास्क का वजन पहले के समान निकला। तब उसने कहा कि पानी पानी ही रहता है। उसमें कोई कमी नहीं होती। न उससे मिट्टी या सोना बनता है। फ्लास्क के कांच की अशुद्धियां भूरे कणों के रूप में जमा हो गई थीं।

जलने का रहस्य

उन दिनों किसी भी पदार्थ के जलने का कारण 'फ्लोजिस्टान' माना जाता था। कीमियागर और अन्य विद्वान कहते कि जो चीज जलती है उसमें 'फ्लोजिस्टान' मौजूद रहता है और उसके जलने से उस पदार्थ का वजन भी घट जाता है। लेवोइज़े का वैज्ञानिक मन इस बात को नहीं मानता था। उसने सच्चाई का पता लगाने की ठान ली। तब मिट्टी, जल, वायु और आग ही चार मुख्य पदार्थ माने जाते थे। लेवोइज़े ने वायु पर काम शुरू किया। पदार्थों के जलने में उसे हवा का हाथ नज़र आया। अपने प्रयोगों पर आधारित शोध लेख उसने 1 नवंबर 1772 को विज्ञान अकादमी को प्रस्तुत किया। इसमें उसने बताया कि जलने पर पदार्थों का वजन घटता नहीं है बल्कि गंधक और फास्फोरस जब जलते हैं तो उनका भार बढ़ जाता है। लेवोइज़े ने कहा ये पदार्थ जलने पर 'हवा' सोख लेते हैं। जब उसने लिथार्ज को कोयले में गरम किया तो देखा कि उससे सीसा बन जाता है लेकिन कुल भार घट जाता है। उसने कहा इस क्रिया में हवा 'घट' जाती है।

उसने एक और प्रयोग किया। लोग कहते थे, हीरे को अगर गरम किया जाये तो वे चमत्कारिक रूप से गायब हो जाते हैं। उसने बंद फ्लास्क में कुछ छोटे-छोटे हीरे ऊंचे
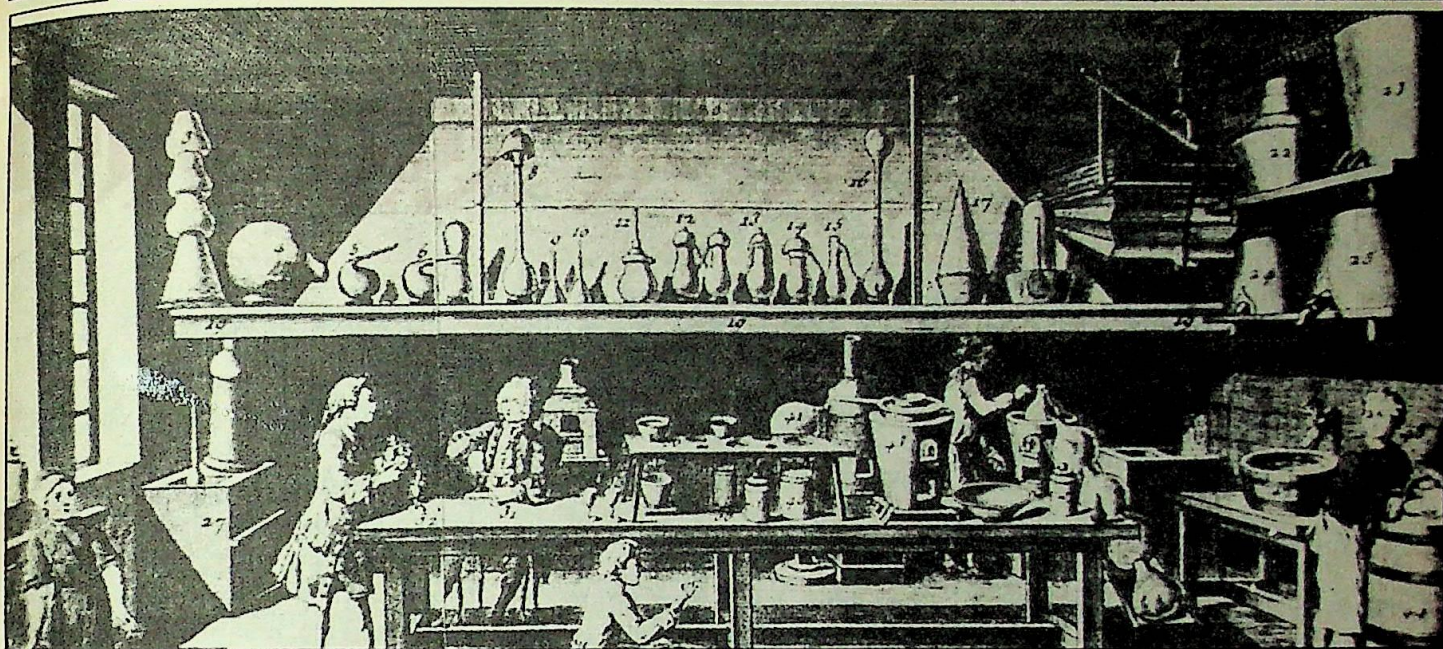
लेवोइज़े की प्रयोगशाला : जो कीमियागरों की रसोई तथा आधुनिक प्रयोगशाला की बीच की कड़ी है (1752)

तापमान पर गरम किए। लोगों ने देखा वे गायब हो गए। तब लेवोइज़े ने बताया कि यह कोई चमत्कार नहीं है। हीरे फ्लास्क में ही हैं, लेकिन वे 'स्थिर हवा' (जो बाद में कार्बन डाइआक्साइड कहलाई) में बदल गए हैं। उसने कहा कि हीरा भी कोयले की तरह कार्बन का ही रूप है और ऊंचे ताप पर कोयले की ही तरह यह भी जल जाता है।

तभी लेवोइज़े ने यह भी पता लगा लिया कि चीजों के जलने के लिए हवा जरूरी है। इसका एक विशेष अंश धातुओं के जलने और भस्मीकरण में काम आता है। उसने कहा, हवा का यह अंश अंग्रेज रसायन विज्ञानी जोसेफ प्रिस्टले द्वारा खोजी गई 'नई हवा' (आक्सीजन) है। जलने में यह सोख ली जाती है और 'एज़ोट' अर्थात नाइट्रोजन शेष रहती है। उसने कहा कि 'नई हवा' में पक्षी अधिक समय तक जीवित रहते हैं। अपने एक प्रयोग में उसने दिखाया कि हवा के बिना कोई भी पदार्थ नहीं जल सकता है। उसने एक जौहरी से कुछ छोटे-छोटे हीरे लिए और उन्हें गरम किया। चिकनी मिट्टी के भीतर कस कर बंद कर दिया। फिर उन्हें गरम किया। लेकिन बेहद गर्म करने के बाद जब मिट्टी को तोड़ा गया तो हीरे सही-सलामत पाए गए।

लेवोइज़े ने एक हवा-बंद फ्लास्क में पारा गर्म किया। वह लाल रंग के 'मरक्यूरिक ऑक्साइड' चूर्ण में बदल गया। प्रयोग 12 दिन चला। लेवोइज़े ने देखा कि फ्लास्क के भीतर हवा का लगभग 5/6 भाग शेष था और 1/6 भाग गायब था। उसने प्रयोग से पता लगाया कि इस बची हुई हवा (नाइट्रोजन) में चूहे आदि जीवित नहीं रहते। उसने अब मरक्यूरिक आक्साइड के चूर्ण को गरम किया। चूर्ण का लाल रंग गायब हो गया और उसमें से 'नई हवा' निकली। उसने इस नई हवा को एकत्र करके उसका भार मालूम किया तो पता लगा यह हवा का वही 1/6 भाग है जो गायब हो गया था।

आक्सीजन और पानी

लेवोइज़े ने यूनानी शब्द 'ऑक्सस' के नाम पर इस 'नई हवा' का नाम रखा 'ऑक्सीजन'। 'ऑक्सस' का अर्थ है, खटास पैदा करने वाला। लेवोइज़े ने सोचा था सभी अम्ल इस गैस से बनते हैं, लेकिन यह सही नहीं था।

25 जून 1783 को उसने विज्ञान अकादमी में घोषणा की कि पानी 'हाइड्रोजन' और 'ऑक्सीजन' गैसों से मिलकर बना है। इससे बड़ी हलचल मची क्योंकि लोग यह मानने को आसानी से तैयार नहीं थे कि पानी जैसा शीतल द्रव जलने में मदद करने वाली गैस 'ऑक्सीजन' और स्वयं बेहद ज्वलनशील गैस हाइड्रोजन से बन सकता है। लेवोइज़े ने पानी के दोनों अंश—ऑक्सीजन और हाइड्रोजन—अलग किए। पानी से उसने हवा से भी हल्की गैस हाइड्रोजन तैयार करके दिखा दी।

सन् 1786 में लेवोइज़े ने पदार्थों के जलने के फ्लोजिस्टान पर आधारित पुराने प्रचलित सिद्धांत को गलत बताया। यद्यपि कुछ वैज्ञानिक तब उससे सहमत नहीं हुए लेकिन जल्दी ही लेवोइज़े के विचार को मान्यता मिल गई। उसने कहा पदार्थ नष्ट नहीं होता। उसका रूप बदल जाता है।

सन् 1787 में पदार्थों के नामकरण और सन् 1789 में प्रारंभिक रसायन विज्ञान पर उसकी पुस्तकें छपीं। इन दोनों पुस्तकों ने रसायन विज्ञान की सरल व्याख्या करने में भारी मदद दी। उसने और उसके साथी वैज्ञानिकों ने पदार्थों के तर्कहीन नामों को बदल कर उनका तर्कसम्मत वैज्ञानिक नामकरण शुरू किया। 'गैस' नाम तभी रखा गया। उससे पहले तक इसे 'लचीला द्रव' कहा जाता था। 'धातु की भस्म' का नया नाम 'ऑक्साइड' रखा गया। इस तरह अंधविश्वास और काल्पनिक आधार पर रखे गए नाम बदल दिए गए जिससे रसायन विज्ञान ने आधुनिक रूप लिया। इन पुस्तकों में रसायन

(शेषांश पृष्ठ 46 पर)

कितना खतरनाक है

श्याम लाल धीमान

शरीर को स्वस्थ रखने तथा सुचारु वृद्धि के लिए कुछ धातु लवण बहुत उपयोगी होते हैं। इनमें सोडियम, लोह और कैल्सियम के लवण मुख्य हैं। परन्तु सभी धातुओं के लवण उपयोगी नहीं होते। कुछ धातुएं और उनके लवण तो शरीर के लिए विष का कार्य करते हैं, हालांकि औद्योगिक दृष्टि से इनका महत्व कम नहीं होता। इनके औद्योगिक लाभ को देखते हुए इनका उपयोग निरन्तर बढ़ता जा रहा है। नित नये कारखानों की स्थापना हो रही है जिनमें प्रतिदिन अपशिष्ट के रूप में धातु और उनके लवणों का ढेर लग जाता है। कितनी ही धातुओं के कण हवा में भी मिल जाते हैं और कितनी ही धातु और उनके लवण नदी-नालों, समुद्र में पहुंचा दिये जाते हैं, जिससे वायु एवं जल दोनों ही प्रदूषित हो जाते हैं, इसे धातु प्रदूषण कहते हैं।

कुछ दशक पूर्व तक धातु-प्रदूषण को कोई जानता भी न था। परन्तु आज धातु-प्रदूषण की समस्या विकराल रूप धारण करती जा रही है। औद्योगिक क्रान्ति ने मनुष्य को आरामतलब अवश्य बना दिया है, परन्तु इसके कारण हमारा वातावरण ही दमघोटू बन चुका है। इसमें धातु-प्रदूषण की भूमिका अहम् है। जल और वायु तो क्या इससे अब खाद्य-सामग्री भी संदूषित होने लगी है।

धातु-प्रदूषण की ओर वैज्ञानिकों का ध्यान तब गया जब 'मिनीमाता' नामक एक दुर्घटना घटित हो गयी। जापान में हुई इस दुर्घटना में 56 लोगों की मृत्यु हुई थी और काफी लोग अपंग हो गये थे। यह दुर्घटना इतनी भयंकर थी कि इससे माताओं के गर्भ में पल रहे बच्चे भी दुष्प्रभावित हुए बिना न रह सकें थे। दुर्घटना एक रासायनिक कारखाने के कारण हुई थी, जो अपशिष्ट पदार्थों को 'मिनीमाता की खाड़ी' में फेंक देता था। इन पदार्थों में पारे के लवण मुख्य थे। इससे खाड़ी का पानी प्रदूषित हो गया था। पारे के लवणों के कारण खाड़ी की मछलियां विषाक्त हो गयी थीं। इन मछलियों को भोजन में उपयोग किये जाने के कारण ही यह दुर्घटना घटित हुई थी। आज भी पारे को फफूंद नाशक के रूप में हजारों टन मात्रा में वातावरण में बिखरा दिया जाता है। बाद में पारे के रूप में यह विष नदियों एवं नालों द्वारा समुद्र में पहुंचा दिया जाता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'मिनीमाता' रोग के लिए उत्तरदायी पारद अवशेष आज भी हमारे आसपास के वातावरण में मौजूद हैं। यह हजारों ऐसी फैक्ट्रियों में भी प्रयुक्त होता है जिनमें प्लास्टिक, कागज, रंग-रोगन और पालिश बनाई जाती है।

वैज्ञानिकों ने पारे के अनके यौगिकों एवं वाष्पों का अध्ययन किया है। पता चला है कि पारे का जहर अनके मानसिक रोगों के लिए उत्तरदायी है। यह मनुष्य को क्रोधी स्वभाव का बना देता है। धीरे-धीरे स्वास्थ्य एवं स्वच्छ मनोवृत्ति नष्ट होती जाती है। यदि दीर्घकाल तक पारे की वाष्प के संपर्क में रहा जाये तो चिड़चिड़ापन, शरीर की ऐंठना तथा चिरकालिक यूरेनिया रोग हो जाते हैं। पारे की वाष्प रंगहीन और गंधहीन होती है और इसलिए सांस लेते समय इनकी उपस्थितिका पता नहीं चल पाता। सांस द्वारा लिये गये पारे का 80% भाग फेफड़ों में रह जाता है। यहां से यह पारा रक्त, मस्तिष्क एवं गर्भ ऊतकों में पहुंच जाता है। इससे मस्तिष्क एवं तंत्रिका तंत्र प्रभावित होते हैं और मनुष्य में उपरोक्त रोग प्रकट होने लगते हैं। पारे द्वारा जनित मानसिक विकृति का उपचार करना कठिन हो जाता है।
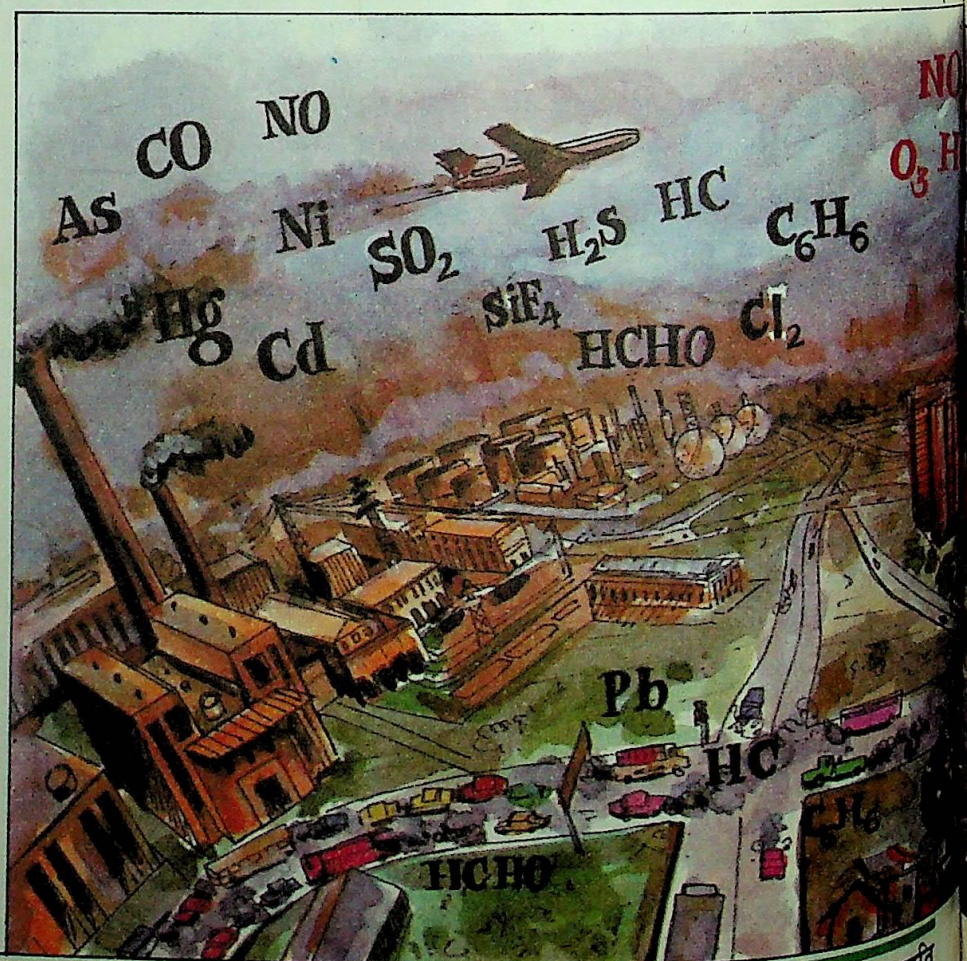
है धातु प्रदूषण

लैड या सीसा दूसरी ऐसी धातु है जो धातु-प्रदूषण उत्पन्न करती है। लैड एसीटेट जिसे लैड शूगर भी कहते हैं, शरीर के लिए बहुत हानिकारक होता है। यही कारण है कि छोटे-छोटे उद्यमों में जहां मनुष्य लैड के सम्पर्क में रहता है, अधिक सावधानी बरती जाती है। सीसा इतना जहरीला होता है कि यह मवेशियों की जान तक ले सकता है। इसके कारण उनमें पेचिश एवं लकवे की बीमारी हो जाती है जो बाद में जानलेवा सिद्ध हो सकती है। 1977 में आंध्र प्रदेश के गंटूर जिले के मलप्पाडु नामक ग्राम के मवेशी इस बीमारी से ग्रसित हुए थे। मवेशियों को यह बीमारी सीसा मिले रसायनों से प्रदूषित जल पीने के कारण हुई थी। हुआ यह था कि इस ग्राम के निकट की नदी में एक रासायनिक कारखाने द्वारा उक्त रसायन छोड़ दिये जाते थे। मवेशी इस नदी का जल पिया करते थे। इस दुर्घटना में अनेक मवेशियों को अकाल मृत्यु का सामना करना पड़ा था।

मोटर गाडियों के धुएं द्वारा भी सीसा जनित प्रदूषण पैदा होता है। इनके इंजनों की कार्यक्षमता बढ़ाने के लिए पेट्रोल में सीसा मिले रसायन मिला दिये जाते हैं। अमेरिका में इस मद में प्रयुक्त सीसा भारत और चीन द्वारा प्रयुक्त सीसे से भी अधिक है। मोटरगाड़ियों द्वारा वातावरण में छोड़ा गया 70% सीसा समुद्र में चला जाता है और उसे प्रदूषित करता है। इसके पूर्व यह वायु को प्रदूषित करता है। इसका दुष्प्रभाव जमीन की सतह से 1 मीटर के भीतर ही पाया जाता है। बच्चे पुस्तकों के रंगीन पन्नों और रंगे हुए खिलौनों को भी मुंह में डाल लिया करते हैं। इससे सीसा उनके शरीर में पहुंच जाता है। विटामिनों, खनिजों और प्रोटीन की कमी हो जाने पर सीसे का स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। सीसा यदि शरीर में पहुंच जाये तो निकलता नहीं है और धीरे-धीरे हड्डियों में कैल्सियम के स्थान पर जमा हो जाता है।

अमेरिकी तथा कैनेडियाई वैज्ञानिकों के अनुसार रोम का पतन सीसे के कारण ही हुआ था। प्राचीनकाल में वहां के अभिजात्य वर्ग के लोग सीसे के बर्तनों का उपयोग किया करते थे। वे साज-श्रृंगार के सामान में भी सीसा धातु का प्रयोग किया करते थे। इसके कारण उनके शरीर में इतना जहर घुल जाता था कि वे 25 वर्ष के होते न होते इस संसार से कूच कर जाते थे।

पीतल या तांबा ऐसी धातु हैं जो हमारे घरों में रोज प्रयुक्त होती हैं। जब बच्चों के जिगर में इन धातुओं की अधिकता हो जाती है तो वे 'इंडियन चाइल्डहुड सिरोसिस' नामक रोग से ग्रस्त हो जाते हैं। यह रहस्योद्घाटन पुणे के किंग एडवर्ड मैमोरियल हॉस्पिटल के शिशु रोग विशेषज्ञ डा. शीला भावे एवं डा. आनन्द पंडित तथा इंग्लैंड में लाइसेस्टर विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने किया है। बच्चों का दूध चूंकि तांबे के बर्तनों में गर्म किया जाता है अतः दूध तांबे के द्वारा संदूषित हो जाता है। ज्ञातव्य है कि हमारे देश में अब भी लोग पीतल या तांबे के बर्तनों का ही उपयोग करते हैं। हालांकि इधर कुछ वर्षों से स्टील के बर्तनों का उपयोग बढ़ चला है।

खनिज धूल के रोग अथवा 'सिलिकोसिस' सिलिकन के कारण होते हैं। यह रोग कुम्हार, पत्थर की कटाई करने वाले मिस्त्रियों, लोहे एवं कोयले के खनिकों और भट्टों पर ईंट बनाने वाले मजदूरों में अधिक पाया जाता है। इसके अतिरिक्त यह रोग खनिज उर्वरक और फ्लोराइड कारखानों में काम करने वाले मजदूरों में भी हो सकता है। इन कारखानों में भी अपशिष्ट के रूप में सिलिकन के लवण प्राप्त होते हैं। सिलिकन इलेक्ट्रॉनिक उद्योगों में भी प्रयुक्त किया जाता है।
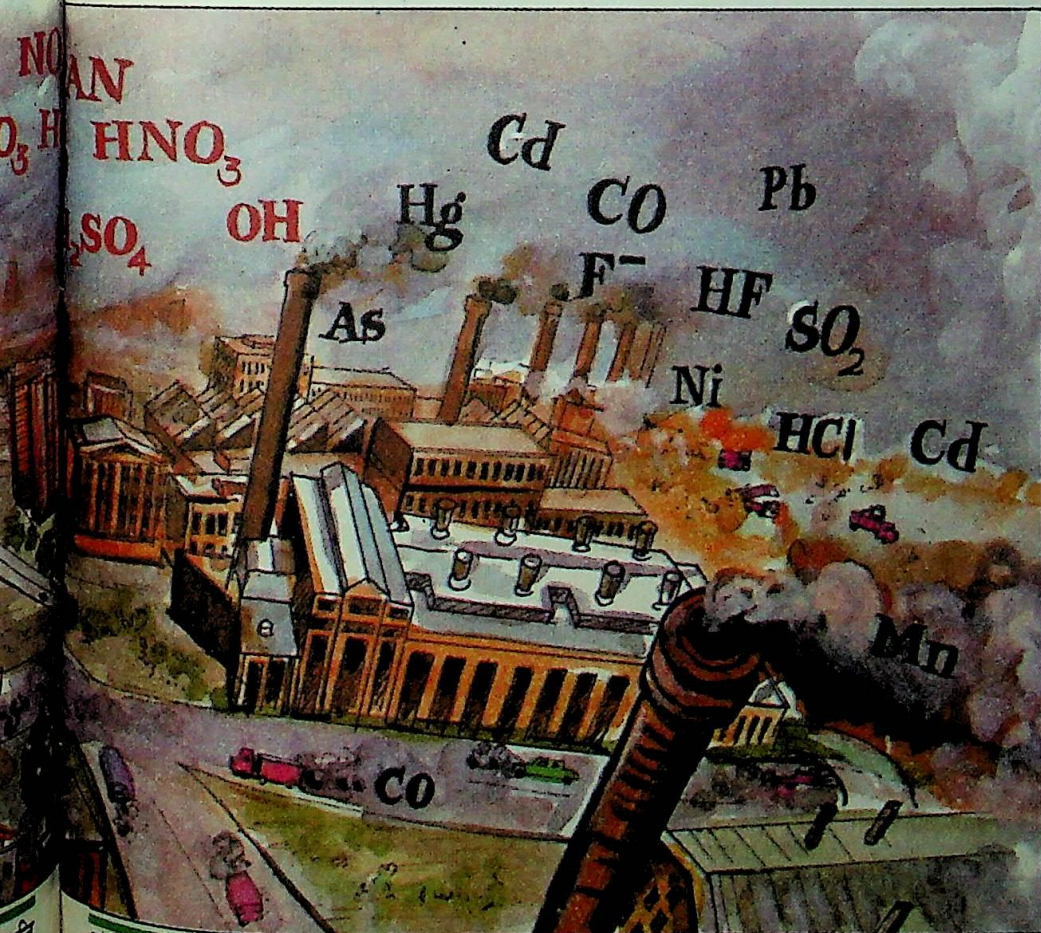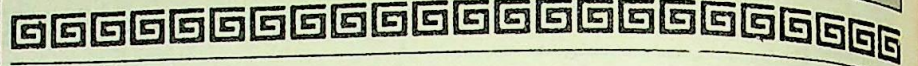
निकल, कैडमियम बैटरी बनाने वाले कारखानों में प्रयुक्त होती हैं। ये धातुएं भी काफी विषैली होती हैं। जापान में 'अतई अतई बयो' नामक दुर्घटना इन्हीं धातुओं के जहर के कारण हुई थी। हमारे देश में ही निकल कैडमियम बैटरी बनाने वाले उद्योगों में प्रदूषण के कारण 4000 लोगों की मृत्यु हो चुकी है। क्रोमियम, निकल धातुओं से संबंधित कारखानों में काम करने वाले मनुष्यों में चर्म एवं श्वास नली के कैंसर होते देखे गये हैं। सिल्वर धातु के लवण भी वातावरण को विषाक्त करते हैं। कच्ची धातु के कारखानों में उत्पन्न सिल्वर डाई आक्साइड हजारों एकड़ में फैले इमारती लकड़ी के बागान को नष्ट कर सकता है। इसके अतिरिक्त आर्सेनिक थैलियम, बैरिलियम, सेलेनियम तथा इनके लवण भी औद्योगिक रूप से अत्यन्त महत्व के होते हैं। परन्तु मानव शरीर के लिए ये भी विषकारक प्रभाव रखते हैं। धातुओं द्वारा जनित प्रदूषण सम्बन्धी यह कोई अन्तिम जानकारी नहीं। सूची में अन्य अनेक धातुएं शामिल हो सकती हैं।

अब प्रश्न है कि धातु प्रदूषण पर कैसे काबू पाया जाये। किसी भी दशा में औद्योगिक विकास में धातुओं के उपयोग को रोका नहीं जा सकता। अतः धातु प्रदूषण को रोकने के लिए अन्य उपायों की खोज होनी आवश्यक है। इस दिशा में वैज्ञानिकों ने जो प्रयोग किये हैं वे उत्साहवर्धक हैं। उन्होंने पाया है कि सैलेनियम धातु को विटामिन 'ई' के साथ प्रयुक्त किया जाये तो यह अनेक धातुओं की विषाक्तता को समाप्त कर सकती है। ज्ञातव्य है कि वर्ष 1938 में सैलेनियम को एक विषैला तत्व घोषित कर दिया गया था। पाया गया कि सोर्ड फिश और लूना नामक मछलियों में इतना सैलेनियम होता है कि पारे के लवणों के जहरीलेपन को दूर कर देता है। इस प्रक्रिया में आर्सेनिक की थोड़ी मात्रा भी सहयोग देती है। वैसे आर्सेनिक भी एक खतरनाक जहर है।

परन्तु यदि आर्सेनिक और सैलेनियम को साथ-साथ प्रयोग में लाया जाये तो दोनों के जहरीलेपन मिलकर विषाक्तता बढ़ाते हैं। जबकि इनके लवणों को भोजन के रूप में लेने पर इनका जहरीलापन समाप्त हो जाता है। आज वैज्ञानिक यह मानते हैं कि आर्सेनिक में कैंसर प्रतिरोधी गुण होते हैं। परन्तु इसको औषधि के रूप में अकेला नहीं लिया जा सकता। सैलेनियम के साथ मिल कर यह लाभकारी कार्य करता है, हानिकर नहीं। सैलेनियम इंजेक्शनों से थैलियम का जहरीलापन दूर किया जा सकता है। परन्तु भोजन में कैडमियम की अधिक मात्रा लेने से सैलेनियम की कमी हो जाती है और रक्त चाप बढ़ जाता है। सैलेनियम की पूरक मात्रा लेने से इस विकार को दूर किया जा सकता है। सैलेनियम एक आश्चर्यजनक तत्व है जो जहरीला होते हुए भी अनेक धातुओं के विषैलेपन को समाप्त कर सकता है। वैज्ञानिकों ने पाया कि सैलेनियम धातु में यह गुण होता है कि यह अन्य धातुओं के परमाणुओं को अपने से बांधे रखता है। परन्तु अभी तक भी वैज्ञानिक यह गुत्थी नहीं सुलझा पाये हैं कि कैसे सैलेनियम धातु विटामिन 'ई' के साथ मिलकर अन्य धातुओं के विषैलेपन को दूर कर देती है।

पेड़-पौधे भी धातु-प्रदूषण को दूर करने में अपनी अहम् भूमिका अदा करते हैं। चीड़ का पेड़ मिट्टी से बेरिलियम अवशोषित कर उसे धातु प्रदूषण से मुक्त कर देने की सामर्थ्य रखता है। बेरिलियम के भंडारों के पास इसके उग आने की स्थिति में इसकी छाल में सैकड़ों गुना अधिक बेरिलियम जमा हो जाता है। ऐसेडियम नामक वनस्पति वैनेडियम को अवशोषित कर लेती है। जहरीली खुम्भी तथा फंफूदी भी वैनेडियम की उपस्थिति में उगती है। डेढ़ अरब वर्ष पूर्व 'मैनेरिया' नामक शैवाल जमीन से यूरेनियम और वैनेडियम अवशोषित किया करती थी। ये धातुएं विरल तो हैं ही साथ ही महंगी भी होती हैं। वंजुल वृक्ष सीसे का अवशोषण कर उसके द्वारा जनित धातु-प्रदूषण को कम करता है।

हैयुमैनिएस्ट्रम नामक वनस्पति जमीन से तांबे एवं कोबाल्ट का अवशोषण करती है। ताम्र पुष्प भी इस कार्य में उपयोगी हो सकता है। इसमें तांबे की मात्रा 0.01 प्रतिशत से भी अधिक होती है।

क्रूसीफेरी की एक प्रजाति थ्लास्पी रोटण्डीफोलिया जस्ते और सीसे को वातावरण से अवशोषित करती है। इनमें इनकी मात्रायें 1 से 2% तक हो सकती है। सेम, मटर आदि के पौधे जमीन से मॉलिब्डेनम धातु को अवशोषित कर लेते हैं।

समुद्री जल में आर्सेनिक, आर्सेनिक खानों से रिसने वाले जल के साथ बहकर आता है। आर्सेनिक विषैला होने के कारण समुद्री जीव-जन्तुओं के लिए खतरनाक होता है। इसे आर्सेनिक मुक्त करने के लिए एजेंसी ऑफ इंडस्ट्रियल साइंस एंड टेक्नोलाजी शुगोकू ने एक ऐसे प्लवक पौधे की खोज की है जो समुद्री जल से आर्सेनिक अवशोषित कर लेता है। ड्यूनेलिला नाम के इस पौधे में प्रति ग्राम 13.6 मिग्रा. तक आर्सेनिक जमा हो जाता है।

हालांकि अब तक हम अनेक धातुओं द्वारा जनित प्रदूषण से अवगत हो चुके हैं, परन्तु औद्योगिक विकास के फलस्वरूप अन्य धातु प्रदूषणों का भी पता लगाने की योजना है। उनके निदान के लिए नये-नये उपाय भी खोजे जायेंगे। धातु प्रदूषण से बचाव के लिए अन्य पौधों की खोज होनी चाहिये। इस दिशा में अभी व्यापक स्तर पर अनुसंधान होने जरूरी हैं क्योंकि यह समस्या निरंतर गंभीर होती जा रही है। □

[श्री श्याम लाल धीमान, राजकीय महाविद्यालय, कोटद्वार, पौड़ी, गढ़वाल- 246 149]

हर तरफ है शोर

एस.पी. सिंगल

जल और वायु प्रदूषण के समान आधुनिक युग में शोर प्रदूषण भी औद्योगीकरण की देन है। साहित्य साक्षी है कि प्राचीन काल में भी मानव को शोर प्रदूषण के विषय में जानकारी थी। जुलियस सीज़र के युग में शोर प्रदूषण की चर्चा है। निरन्तर रथों के पहियों की गड़गड़ाहट से स्वयं जुलियस सीज़र परेशान हो जाते थे और उन्होंने अपने निवास स्थान के चारों ओर के मार्गों पर रथों के चलने पर रोक लगा दी थी।

शोर क्या है?

भौतिक विज्ञान की दृष्टि से शोर एक ऐसी ध्वनि है जिसमें कोई क्रम नहीं होता है। उस की अवधि लम्बी अथवा छोटी तथा आवृत्ति परिवर्तनीय होती है। एक ध्वनि लगातार भी हो सकती है और वही ध्वनि बार-बार पैदा की जा सकती है। ध्वनि की तीव्रता और उसका स्रोत कुछ भी और कहीं भी हो सकता है।

मनोविज्ञान की दृष्टि से शोर, कोई भी ऐसी ध्वनि जो श्रोता को अप्रिय लगे चाहे वह कितना ही बढ़िया संगीत अथवा गायन क्यों न हो, शोर माना जाता है।

स्वास्थ्य पर प्रभाव

शोर से स्वास्थ्य को कई प्रकार की हानियां होती हैं। शोर का सबसे अधिक कुप्रभाव कानों पर पड़ता है। लगातार ऊंची आवाजों को सुनते-सुनते कान बहरे हो जाते हैं और प्रायः उनके पर्दे फट जाते हैं। बातचीत करने में कठिनाई होने लगती है, समझने में भी असुविधा होने लगती है और आवाजें स्पष्ट सुनाई नहीं पड़ती हैं।

डेनमार्क के वैज्ञानिकों के अनुसार दस वर्ष तक लगातार भारी ट्रकों या उसके बराबर मिलों की मंशीनों से लगभग 25% लोगों को बातचीत करने में असुविधा होने लगती है। यदि यह ध्वनि हवाई जहाज की हो अथवा उसके बराबर किसी अन्य स्रोत से हो, तो 40% से भी अधिक लोगों को सुनने में बाधा प्रतीत होने लगती है।

शोर से नींद में भी बाधा आती है। बहुत से व्यक्ति जो शोर में सोने में अभ्यस्त नहीं होते वे शोर से हड़बड़ा कर रात को उठ जाते हैं और फिर सो नहीं पाते।

ऐसा भी देखा गया है कि शोर से कई प्रकार की पेट की और दिल की बीमारियां लग जाती हैं और मानसिक तनाव बढ़ जाता है। शोर का उत्पादन पर भी प्रभाव पड़ता है।

शोर मापने की इकाई

शोर को लाग के पैमाने से मापा जाता है। इसके मापने की इकाई को डेसीबल अथवा डी.बी. कहते हैं। शोर को मापने के लिये अभ्युदेश स्तर निर्धारित कर लिया जाता है जो कि आहट की ध्वनि के बराबर है। मापन ध्वनि की इसके साथ तुलना की जाती है जिससे उसका माप ज्ञात हो जाता है। जो ध्वनि इस माप के बराबर हो वह शून्य डी.बी. मानी जाती है। उससे दुगनी ध्वनि को तीन डी.बी. ऊंचा, 10 गुनी ध्वनि को 10 डी.बी. ऊंचा, सौ गुनी ध्वनि को 20 डी.बी. ऊंचा, हजार गुनी ध्वनि को 30 डी.बी. ऊंचा और दस लाख गुनी ध्वनि को साठ डी.बी. ऊंचा माना जाता है और इसी प्रकार यह क्रम चलता रहता है।

हमारे कान भी लॉग के पैमाने से ही सुनते हैं। यही कारण है कि हम ऊंची से ऊंची और धीमी से धीमी ध्वनि को सरलता से सुन लेते हैं।

लॉग के पैमाने का अनुमान इस प्रकार भी लगाया जा सकता है कि घड़ी की टिकटिक की ध्वनि तीस डी.बी. ऊंची होती है, पक्षी 40 से 50 डी.बी. आवाज पैदा करते हैं, टाईपराइटर की आवाज अथवा हमारे बोल-चाल की ध्वनि का माप 60 से 70 डी.बी. तक होता है, मोटरकार की आवाज 70 से 80 डी.बी. तक होती है, मशीनों और ट्रकों इत्यादि की आवाज की ऊंचाई 80 से 100 डी.बी. तक होती है। हवाई जहाज की आवाज 100 से 140 डी.बी. तक होती है। परन्तु हमारे कान 120 डी.बी. की आवाज सुनने से दुखने लग जाते हैं।

वैज्ञानिकों ने खोज द्वारा प्रमाणित किया है कि यदि हम 75 डी.बी. से ऊंची आवाज आठ घंटे से अधिक देर तक प्रतिदिन सुनें तो हमारे कान बहरे होने लग जाते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार रात को सोने के समय का वातावरण 35 डी.बी. से ऊंचा नहीं होना चाहिये। घरों में आराम से काम करने, बैठने अथवा विश्राम करने के लिये दिन के शोर का माप 45 डी.बी. तक होना चाहिये। काम करने वाले संस्थानों के अंदर दिन के शोर का माप 55 डी.बी. तक और रात्रि में 45 डी.बी. तक होना चाहिये और औद्योगिक क्षेत्रों में 75 डी.बी. से अधिक शोर का माप नहीं होना चाहिये।

शोर पैदा करने वाले साधन

ऐसे अनेक साधन हैं जिनसे अप्रिय ध्वनियां उत्पन्न होती हैं। इनमें उद्योग, परिवहन के साधन, (तकनीकी यंत्र, लाउडस्पीकर अथवा बम विस्फोट इत्यादि प्रमुख हैं।

उद्योगों तथा अन्य तकनीकी यंत्रों के शोर से अधिकतर हानि काम करने वाले कामगारों को होती है। इसके अतिरिक्त उन लोगों को भी हानि हो सकती है जो औद्योगिक क्षेत्र में रहते हैं अथवा काम करते हैं।

सड़कों पर चलने वाले परिवहन के साधनों से सभी को हानि पहुंचती है, क्योंकि यह साधन सभी गली, मुहल्ले और कूचों में चलते हैं और सभी लोग इनका प्रयोग भी करते हैं।

वायुयान की उड़ान से हानि उन लोगों को होती है जो वायुयान के आसपास काम करते हैं या हवाई अड्डों के पास रहते हैं अथवा वायुयान की उड़ान के नीचे वाले क्षेत्रों में रहते हैं।

रेलगाड़ियों के शोर से उन सबको हानि होती है जो रेलगाड़ी की लाइनों के आसपास रहते हैं, स्टेशनों पर काम करते हैं, अथवा रोज आने-जाने के लिये रेलगाड़ी का प्रयोग करते हैं।

घरों में प्रयोग होने वाले यंत्रों से घर में रहने वाले सभी लोगों को हानि होती है। घर में प्रयोग होने वाले यंत्र हैं: फ्रिज, एअरकूलर, मिक्सर, ब्लेन्डर, एअर-कंडीशनर, पावर जेनरेटर इत्यादि। बहुत से लोग इनका प्रयोग बहुतायत में करते हैं।

लाउडस्पीकरों द्वारा होने वाली हानि से लोग प्रायः बेखबर होते हैं। तभी तो लाउडस्पीकरों का प्रयोग अंधाधुंध किया जाता है। घरों में टी.वी., रेडियो को अक्सर ऊंचे स्वर में सुना जाता है। गली-मुहल्लों में और विवाह-शादी के अवसर पर अथवा अन्य किसी सामाजिक व धार्मिक एकत्रीकरण पर लाउडस्पीकरों का प्रयोग किया जाता है। धार्मिक स्थानों पर भी लाउडस्पीकरों का प्रयोग बिना किसी विशेष कारण किया जाता है। जलसे, जलूसों इत्यादि में भी लाउडस्पीकरों का प्रयोग होता है। इन लाउडस्पीकरों द्वारा निकलने वाली ध्वनि 90 से 100 डी.बी. तक का शोर पैदा करती है।

बम, पटाखों के विस्फोट से भी इसी प्रकार

बहुत ऊंची ध्वनि निकलती है जिससे कान के पर्दे तक फट सकते हैं। दीपावली तथा अन्य अवसरों पर बच्चे इनका प्रायः प्रयोग करते हैं जो बहुत ही हानिकारक हो सकते हैं।

शोर रोकथाम कानून

शोर रोकथाम के लिये अथवा उसे कम करने के लिये भारत सरकार एवं कुछ प्रांतीय सरकारों ने समय-समय पर कुछ नियम बनाये। इन नियमों का प्रयोग सुचारु रूप से कभी नहीं हो सका है। इसका सबसे महत्वपूर्ण कारण है– 1. इन सारे नियमों में शोर की आंकिक मात्रा एवं पैमाने की व्याख्या कहीं नहीं है। 2. शोर को मापने के यंत्र भी व्यापक मात्रा में देश में उपलब्ध नहीं हैं। 3. हमारी सरकार ने इस समस्या को बहुत महत्वपूर्ण कभी भी नहीं माना था, इसका कारण यह रहा है कि यह समस्या बहुत समय तक केवल नगरों में ही सीमित थी और उनमें भी कुछ लोगों तक ही। इस समस्या का लेनदेन देश की जनता के साथ नहीं माना जाता था।

आज देश प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रहा है। स्थान-स्थान पर तरह-तरह के उद्योग स्थापित हो रहे हैं। जहां पर जनता मेहनत मजदूरी करने के लिये तत्पर है। लाखों की संख्या में लोग हर रोज शहरों की तरफ आ रहे हैं। यातायात के साधन भी गांवों तक पहुंच गये हैं। ट्रैक्टर तथा बिजली की मोटरों का शोर गांव में भी सुनाई देता है। लाउडस्पीकर का ऊंचे स्वर में प्रयोग सबसे अधिक बच्चे, ग्रामीण तथा कामगार करते हैं। इन कारणों से इस वर्ग की जनता में कान की बीमारियां फैल रही हैं और लोग बहरेपन के शिकार हो रहे हैं।

इन कारणों से भारत सरकार ने शोर प्रदूषण को रोकने के लिये कारगर कदम उठाये हैं। 1986 में पर्यावरण सुरक्षा कानून के तहत भारत सरकार ने शोर को भी वायु और जल प्रदूषण के समान महत्व दिया है।

रोकथाम के सुझाव

फरवरी, 1989 में पर्यावरण मंत्रालय के केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने एक तकनीकी समिति की नियुक्ति की जो शोर रोकथाम के नियमों का सुझाव दे। इस समिति का उद्देश्य शोर पैदा करने वाले साधनों का वर्गीकरण, तथा व्यापक शोर, घरेलू यंत्रों के शोर, परिवहन के साधनों के शोर और औद्योगिक शोर के स्तर का मूल्यांकन करना था।

तकनीकी समिति ने अपनी रिपोर्ट सितंबर, 1989 में विभाग को सौंप दी। जिसको बनाते समय समिति ने दूसरे देशों, विश्व स्वास्थ्य संगठन और अंतर्राष्ट्रीय मानक संगठन के स्तरों को तो ध्यान में रखा ही साथ ही भारतवासियों की सामाजिक अवस्था तथा रहन-सहन के तौर तरीकों का भी ध्यान रखा और व्यापक शोर का स्तर इस प्रकार प्रस्तुत किया :

औद्योगिक क्षेत्र का शोर स्तर दिन में 75 डी.बी. (ए) और रात्रि में 65 डी.बी. (ए)। व्यापारिक क्षेत्र में शोर स्तर दिन में 65 डी.बी. (ए) और रात्रि में 55 डी.बी. (ए)। आवासीय क्षेत्रों में दिन का शोर स्तर 55 डी.बी. (ए) और रात्रि का शोर स्तर 45 डी.बी. (ए)। शांत क्षेत्रों जैसे अस्पताल इत्यादि में दिन का शोर स्तर 50 डी.बी. (ए) और रात्रि में 45 डी.बी. (ए) रखा है। मिले-जुले क्षेत्रों की शोर की व्याख्या उनकी कार्य क्षमता से निर्धारित करने का सुझाव है तथा दिन की व्याख्या सुबह छः बजे से रात्रि के नौ बजे तक की गई है और रात्रि की व्याख्या रात के नौ बजे से सुबह छः बजे तक की गई है।

समिति ने उद्योगों में काम करने वाले कामगारों के लिए भी शोर स्तर निर्धारित किया है। उनके लिए 90 डी.बी. (ए) की सीमा आठ घंटे प्रतिदिन की निर्धारित की है। यह समय हर बार आधा हो जाना चाहिए यदि यह शोर स्तर तीन डी.बी. और ऊंचा हो जाए। रुक-रुक कर आने वाली ध्वनि का शोर स्तर 115 डी.बी. (ए) निर्धारित किया गया है। आकस्मिक शोर का स्तर 140 डी.बी. (ए) से ऊपर नहीं होना चाहिए।

समिति ने परिवहन शोर की रोकथाम के लिये भी मोटरगाड़ियों के शोर स्तर निर्धारित किए हैं। मोटर-साईकिल, स्कूटर तथा तीन पहियों वाले वाहनों के लिये 80 डी.बी. (ए) रखा है।

चार मीट्रिक टन तक के भारी वाहनों के लिये यह शोर स्तर 85 डी.बी. (ए) है। इससे अधिक अथवा बसों के लिये शोर स्तर 89 डी.बी. (ए) का और बारह मीट्रिक टन से भारी वाहनों के लिये शोर स्तर 91 डी.बी. (ए) निर्धारित किया है।

नियमों के अनुसार हर यंत्र का शोर स्तर समय के साथ तकनीकी उन्नति के कारण घटना चाहिए। समिति के सुझाव से यह घटाव तीन डी.बी. (ए) हर पांच साल में 15 साल की अवधि तक रहना चाहिए।

लाउडस्पीकरों के प्रयोग से जो अनावश्यक शोर उत्पन्न होता है उसको रोकथाम के लिये समिति ने सुझाव दिया है कि पब्लिक एड्रेस सिस्टम के प्रयोग के लिये लाइसेंस लेना आवश्यक हो जाना चाहिए। रात्रि के समय में स्पीकरों का प्रयोग बिल्कुल बन्द होना चाहिये। पब्लिक एड्रेस सिस्टम का प्रयोग खुले मैदान के अतिरिक्त बन्द स्थानों में ही होना चाहिए। इनके प्रयोग से बाहर के व्यापक शोर का माप 5 डी.बी. से अधिक बढ़ना नहीं चाहिये। समिति ने शक्तिशाली पटाखों पर भी रोक लगाने के सुझाव दिये हैं।

समिति ने घरेलू मशीनों के शोर स्तर भी सुझाए हैं। इन घरेलू मशीनों में एअरकंडीशनर के लिये शोर स्तर 68 डी.बी. (ए), एअरकूलर के लिए 60 डी.बी. (ए) और रेफ्रीजरेटर के लिए शोर स्तर 46 डी.बी. (ए) निर्धारित किया गया है। ये शोर स्तर 15 वर्ष तक हर पांच वर्ष में 2 डी.बी. (ए) कम होने चाहिये।

अन्त में एक बात महत्वपूर्ण है कि शोर एक ऐसी प्रदूषण समस्या है जिसे हर व्यक्ति व्यक्तिगत रूप से भी नियंत्रित कर सकता है, इसके लिये आवश्यक है उपरोक्त अमूल्य बातों पर अमल। □

[डा. एस.पी. सिंगल, राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला, नई दिल्ली- 12]

'शोर के खिलाफ 'शोर मचाइये

अभय कुमार जैन

नि औद्योगिक एवं आधुनिक युग की देन है। शोर का चक्रव्यूह हमें चारों ओर से घेरे हुये है, प्रातः बिस्तर से उठिये तो मुर्गे की बांग का शोर, अलार्म घड़ी का शोर, टी.वी. का शोर, सड़क पर आयें तो चारों ओर शोर, आसमान से उड़ते हुये हवाई जहाज का शोर, बाजार में शोर, आफिस में गपशप का शोर, कल कारखानों में मशीनों का शोर, खेतों में ट्रेक्टरों का शोर, खलिहानों में थ्रेशर का शोर। कोई मरे तो शोर, कोई पैदा हो तो शोर, शादी विवाह एवं हर मांगलिक अवसरों पर शोर, चुनाव प्रसार प्रसार में शोर, इस प्रकार चारों तरफ शोर ही शोर।

वैज्ञानिक स्तर पर जो अनुसंधान हुये उनसे अब यह अनुभव किया जाने लगा है कि शोर एक अदृश्य प्रदूषण है जो धुंध की तरह मनुष्य के स्वास्थ्य पर घातक प्रभाव डालकर उसे धीरे-धीरे मृत्यु की ओर धकेल रहा है। शोर की तेजी हर दस वर्ष में दुगनी होती जा रही है। यदि शोर की यही गति रही तो आगामी 20-30 वर्षों में नगरों एवं महानगरों में बहरे लोगों की एक बहुत बड़ी संख्या हो जायेगी।

आज से कई वर्ष पूर्व 1949 में तपेदिक के जीवाणुओं के अन्वेषक राबर्ट कॉख ने यह भविष्यवाणी की थी कि एक दिन शोर के विरुद्ध वैसी ही लड़ाई लड़नी पड़ेगी जैसी कि हैजे के रोग के साथ लड़नी पड़ी थी। इस महान वैज्ञानिक की भविष्यवाणी आज अक्षरशः सत्य सिद्ध हो रही है।

जर्मन दार्शनिक आर्थर शोपेन होवर शांतप्रिय व्यक्ति था। 19वीं शताब्दी के बीच के वर्षों में वह सड़कों पर गाड़ीवान के चाबुकों की फटकार सुनकर झल्ला उठता था। उसका कहना था कि शोर व्यक्ति के मस्तिष्क को अशक्त तथा चिंतन को नष्ट कर देता है।

अमेरिकी राजनेता वैज्ञानिक, आविष्कारक और लेखक बेंजामिन फ्रेंकलिन ने एक बार अपना घर इसलिये बदल लिया था कि पास के बाजार के शोर के कारण उसकी बातचीत में विघ्न पड़ता था और उसे हर बात दोहरानी पड़ती थी। आस्ट्रिया के एक शब्दवेत्ता के अनुसार "शोर मनुष्य को समय से पूर्व बूढ़ा कर देता है।"

"अनावश्यक असुविधाजनक तथा अनुपयोगी आवाज ही शोर है।"

लैटिन में शोर का अर्थ होता है--अनावश्यक ध्वनि।

एक व्यक्ति के लिये जो संगीत है वही दूसरे के लिये शोर हो सकता है इतना ही नहीं, वही संगीत एक व्यक्ति को दिन के समय कर्णप्रिय लग सकता है या आनन्दित कर सकता है किन्तु महत्वपूर्ण कार्य करते समय या सोते समय अरुचिकर लग सकता है अतएव कोई आवाज शोर है या नहीं यह उसके कारण, तीव्रता, आवृत्ति, निरंतरता अथवा व्यवधान आदि पर निर्भर है।

वैज्ञानिकों ने शोर को मापने की एक इकाई बनायी है जिसे डेसीबल का नाम दिया गया है इसकी नाप शून्य से प्रारंभ होती है जहां से ध्वनि सुनाई देना प्रारंभ होती है। पत्तियों की खड़खड़ाहट 10 डेसीबल, सवा मीटर दूर होने वाली कानाफूसी 20 डेसीबल तथा सामान्य बातचीत लगभग 60 डेसीबल शोर पैदा करती है, लेकिन जब 50 से 70 डेसीबल के बीच शोर होता है तो वह असहनीय हो जाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 45 डेसीबल तक की ध्वनि को व्यक्ति के लिये ठीक माना है।

शोर का प्रभाव

कुछ मनोवैज्ञानिकों का विश्वास है ध्वनि के कारण अच्छे खासे व्यक्ति को भी अनिद्रा तथा बेचैनी हो जाती है तथा कभी-कभी इसके प्रभाव से लोग हिंसा पर उतारू हो जाते हैं।

वैज्ञानिक मान्यताओं के अनुसार भले ही शोर का स्तर कम ही क्यों न हो मगर लगातार शोर कानों में पड़ने से श्रवण समस्यायें उत्पन्न हो सकती हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ की एक रिपोर्ट से यह प्रकट होता है कि ध्वनि शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक दोनों ही दृष्टियों से व्यक्ति को प्रभावित करती है तथा रक्तचाप तथा हृदय गति को बढ़ाती है तथा प्रायः इसके परिणाम से तनाव, झक्कीपन, डर आदि पैदा होता है। बंबई के डा. वाई.टी. ओकेका के अनुसार, शोर अत्यधिक शारीरिक, मानसिक और अव्यावहारिक गड़बड़ी पैदा करता है 88 डेसीबल से अधिक का शोर व्यक्ति को बहरा बना सकता है। शोर के कारण व्यक्ति का मस्तिष्क अस्थिर हो जाता है तथा वह उच्च रक्तचाप का रोगी बन सकता है।

विख्यात मनोचिकित्सक एडवर्ड सी ल्यूज का कहना है कि निरंतर तेज शोर शराबे से कई मामलों में दिमागी बीमारियों की भी शिकायत हो सकती है।

लम्बे समय तक तीव्र ध्वनि से होने वाली श्रवण शक्ति का ह्रास जहां पूरे बहरेपन में परिणित हो सकता है, वहीं अल्सर, सिरदर्द, पेट की खराबी, अनिद्रा आदि बीमारियों का कारण भी हो सकता है। इस संबंध में डाक्टरों का मत है कि हर तीन स्नायु रोग के मामलों में से एक तथा सिरदर्द के पांच मामलों में से चार के लिये शोर जिम्मेदार है।

शोर के कारण हमारी धमनियां सिकुड़ जाती हैं, हृदय धीमी गति से काम करने लगता है और गुर्दों पर प्रतिकूल असर पड़ता है। एक अध्ययन के अनुसार शोर के कारण कोलेस्ट्रोल बढ़ जाता है जिससे रक्त शिराओं में हमेशा के लिये खिंचाव हो जाता है और दिल का दौरा पड़ने की आशंका पैदा हो जाती है।

शोर के घातक प्रभाव वन्य जीवों तथा निर्जीव पदार्थों पर भी देखे गये हैं। ऐसे उदाहरण हमारे सामने हैं जबकि हवाई जहाज तथा यातायात से उत्पन्न शोर के कारण किसानों की मुर्गियों ने अण्डे देना बंद कर दिया। गाय-भैसों के दूध में कमी आ गई तथा बड़े-बड़े नगरों की बहुमंजिली इमारतों की छतों में दरारें पड़ गई तथा गिरने की नौबत आ गयी।

डा. वर्ज ओ अनुइगन के अनुसार 160 डेसीबल ध्वनि चूहे तथा चूहियों को मार सकती है।

शोर की शक्ति का एक अकाट्य वैज्ञानिक प्रमाण देखिये, सदा मिलकर कदम चलने वाले सैनिक पुल पार करते समय बिना कदम मिलाये क्यों चलते हैं, क्योंकि इसका प्रभाव डाइनामाइट जैसा होता है।

जर्मनी के सैनिक अधिकारियों ने दूसरे महायुद्ध में शोर का उपयोग अस्त्र के रूप में किया, शत्रु को चारों ओर से घेरकर इतना शोर किया जाता था कि बिना युद्ध के सैनिकों ने आत्मसमर्पण किया।

शोर से मुक्ति कैसे मिले

शोर कुल मिलाकर हमारे स्वास्थ्य के लिए बहुत खतरनाक साबित हो रहा है अतः प्रश्न उठता है आखिर शोर की रोकथाक कैसे की जाये—

वैज्ञानिक का कथन है कि ताड़, नारियल, इमली, आम इत्यादि के लम्बे व घने वृक्ष ध्वनि को शोषित करते हैं अतः रेल की पटरियों के किनारे और सड़क के दोनों किनारों, कारखानों के अहाते व घरों के आसपास अधिकाधिक वृक्ष लगाने चाहिये। वृक्षों से वातावरण का 10 प्रतिशत डेसीबल तक शोर कम किया जा सकता है। यदि आपके घर के बाहर चार दीवारी है तो यह भी आवाज के आवागमन को रोक सकती है। घर के बाहर मेंहदी की बाड़ भी उपयोगी साबित हो सकती है।

सोवियत ध्वनि विशेषज्ञों के अनुसार यदि आप घर के आसपास होने वाले शोर से परेशान हैं तो घर को हल्का नीला या हल्का हरा पुतवा लेना चाहिये। अनुसंधानों से यह बात सामने आई है कि रंगों का हल्का हरा या नीला रंग ध्वनि के लिये सर्वाधिक उपयुक्त अवरोधक है।

घरेलू शोर को कम करने के लिये टी.वी. रेडियो, टेप रिकार्ड इत्यादि बहुत ही धीमी गति से चलायें, मांगलिक अवसरों पर लाउडस्पीकर का प्रयोग अति आवश्यक स्थिति में ही करना चाहिये।

कारखानों में होने वाले शोर को कम करने के लिए साइलेंसर लग सकते हैं। और उनको चलाने वाले श्रमिकों को आवश्यक रूप से ईयर प्लग, ईयर मफस अथवा हेलमेट्स का उपयोग करना चाहिये।

वेल्डिंग से होने वाले शोर को रिवेटिंग का प्रचलन बढ़ाकर कम किया जा सकता है और मशीनों की समय समय पर सफाई करके तेल व ग्रीस देकर शोर को कम किया जा सकता है।

नागरिकों, मोटर मालिकों, ट्रक चालकों को चाहिये कि वाहनों में साइलेंसर अवश्य ही लगायें।

हार्न का प्रयोग आवश्यक स्थिति में ही करना चाहिये—ब्रेक लगाते समय भी ध्यान रहे कि ब्रेक एकदम नहीं लगायें।

धार्मिक स्थानों जैसे मंदिर, गुरुद्वारे, मस्जिद इत्यादि में लाउडस्पीकर का प्रयोग विशेष परिस्थितियों में ही करना चाहिये।

कल कारखानों, बस स्टैण्ड, रेलवे स्टेशन आबादी से दूर स्थापित किये जाने चाहिये ताकि शोर का प्रभाव कम हो।

प्रसार प्रचार के माध्यमों के द्वारा शोर के घातक परिणामों से जनसाधारण को अवगत करवाना चाहिये ताकि लोगों में स्वयं ही रुचि हो।

आज प्रत्येक मनुष्य को यह चाहिये शोर के खिलाफ शोर मचायें। शांति के बिना हमारा चिंतन, पर्यवेक्षण शक्ति, परस्पर संचार यहां तक कि वे सारे गुण कम हो जायेंगे जो मानव को इस प्राणी जगत में अन्य जीवों से भिन्न और सबसे अधिक योग्य बनाते हैं। □

[श्री अभयकुमार जैन, तृप्ति बंदा रोड, भवानीमंडी]

(शेषांश पृष्ठ 37 का)

विज्ञान की नई दिशाओं पर भी विचार व्यक्त किए गए।

लेवोइज़े ने 55 तत्वों की सूची बनाई और उनके गुणों का वर्णन किया। हाइड्रोजन और ऑक्सीजन को उसने सरल तत्वों की श्रेणी में रखा। उसने कहा, सरल तत्वों का विघटन नहीं होता। वे रासायनिक क्रिया से दूसरे तत्वों के साथ मिलकर यौगिक बनाते हैं। 'तत्व' की आधुनिक परिभाषा की नींव लेवोइज़े ने रखी थी। उसने विभिन्न धातुओं, यौगिकों और लवणों की सूची बना कर उनके गुणों का वर्णन किया।

लेवोइज़े ने साफ-साफ कहा कि न कुछ नया बनाया जा सकता है और न कुछ नष्ट होता है। सिर्फ पदार्थ का रूप बदल जाता है। उसकी मात्रा ज्यों-की-त्यों रहती है। इससे रसायन विज्ञान के सूत्रों और समीकरणों की नींव पड़ी।

उसने रासायनिक समस्याओं के साथ ही ऊष्मा पर भी प्रयोग किए। उसके प्रयोगों से 'ऊष्मा रासायनिक' प्रयोगों की शुरूआत हुई। लेवोइज़े का कहना था कि ऊष्मा की मात्रा के अनुसार पदार्थ के तीन रूप होते हैं—ठोस, द्रव और गैस। उसने खमीर उठने की प्रक्रिया, प्राणियों में सांस लेने की क्रिया और जीव ऊष्मा पर भी प्रयोग किए। लेवोइज़े ने तभी पता लगा लिया था कि सांस की क्रिया भी कार्बन के जलने की भांति 'ऑक्सीजन' की क्रिया है। उसने वनस्पतियों और प्राणियों के जीवन-चक्रों के संबंधों पर भी काम किया।

जो लोग व्यस्तता का बहाना बनाकर कुछ कर न पाने की बात करते हैं, उन्हें लेवोइज़े के जीवन से शिक्षा लेनी चाहिए, वह वैज्ञानिक तो था ही, इसके अलावा वह तमाम सामाजिक जिम्मेदारियों से भी जीवन भर जुड़ा रहा। फ्रांसीसी विज्ञान अकादमी के सदस्यों को उन दिनों सामाजिक कार्यों को भी पूरा करना पड़ता था। जल आपूर्ति की उत्तम व्यवस्था, मल-जल की दुर्गंध दूर करने के उपाय, घरों को गरम रखने और आग बुझाने के बेहतर तरीकों के बारे में उन्हें अपने सुझाव देने पड़ते थे। लेवोइज़े ने आग बुझाने में मदद के लिए गली-सड़कों में पानी के नल लगाने का सुझाव दिया था। उसने वित्त, कृषि, शिक्षा और समाज कल्याण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण काम किया। प्रशासनिक योग्यता के कारण उसे सन् 1775 में बारूद विभाग का निदेशक बनाया गया। उसने और उसके सहयोगी वैज्ञानिकों ने बारूद के गुणों में सुधार किया और उसका उत्पादन बढ़ाया। उसने देश में नमक का उत्पादन बढ़ाने में भी महत्वपूर्ण योगदान किया।

लेवोइज़े अनेक सामाजिक समितियों का सदस्य था। एक समिति के माध्यम से उसने पेरिस के अस्पतालों और जेलों की सोचनीय स्थिति में सुधार के सुझाव दिए।

सन् 1781 में फ्रांज़ एंटन मेस्मर पेरिस आया और उसने प्राणियों के चुम्बकीय गुणों से चमत्कारिक इलाज करने का दावा किया। तब लेवोइज़े ने बैंजामिन फ्रैंकलिन के साथ मिलकर मेस्मर के इस दावे को झूठा साबित किया। वह सरकार की कृषि समिति का सचिव रहा और फसलों की खेती तथा कृषि योजनाओं के बारे में उसने अपने सुझाव दिए। उसने एक कार्य भी चलाया, जिसमें वैज्ञानिक खेती के फायदे दिखाए गए। उसने वचत बैंक, बीमा, कर नीति के सुधार और नहरों के विस्तार से सामाजिक तथा आर्थिक विकास के भी सुझाव दिए। वह सिक्कों की ढलाई, तोपों के निर्माण, जन स्वास्थ्य और शिक्षा से संबंधित समितियों में भी रहा।

सन् 1790 में उसे फ्रांस में माप-तोल की एकरूपता लागू करने के लिए गठित आयोग का सचिव बनाया गया। अपने जीवन के अंतिम चार वर्षों में उसने साथी वैज्ञानिकों के साथ मिलकर फ्रांस में मीट्रिक प्रणाली की नींव डाली।

लेवोइज़े ने फ्रांसीसी क्रांति में भी बढ़-चढ़ कर भाग लिया। उसे महत्वपूर्ण जिम्मेदारियां भी सौंपी गईं।

इन तमाम व्यस्तताओं के बावजूद लेवोइज़े सप्ताह में एक दिन अपनी प्रयोगशाला में अवश्य काम करता था।

दुखद अंत

प्रतिहिंसा की आग में जलता हुआ मराट् उसे भूला नहीं था। फ्रांस की क्रांति के दौरान उसे लेवोइज़े से बदला लेने का मौका मिल गया। क्रांति की आग धधक रही थी। मराट् क्रांति के नेताओं में था। उसने लेवोइज़े के खिलाफ आरोप लगाना शुरू कर दिया। सन् 1787 में तस्करी रोकने के लिए लेवोइज़े के सुझाव पर पेरिस के चारों ओर एक दीवार खड़ी की गई। मराट् ने कहा, लेवोइज़े पूरे पेरिस को जेल में बंद कर रहा है। पेरिस के निवासियों के लिए ताजा हवा को रोक रहा है। सन् 1791 में कर-वसूली संस्था 'फर्मे जनरेल' पर पाबंदी लगा दी गई। लेवोइज़े को बारूद विभाग के निदेशक पद से हटा दिया गया। उसे अपना घर और प्रयोगशाला छोड़नी पड़ी। उसी साल विज्ञान अकादमी और अन्य संस्थाऐं बंद कर दी गईं। क्रांतिकारी नेताओं के निर्देश पर कर-वसूली संस्था के सभी पुराने सदस्य गिरफ्तार कर लिए गए।

ज्यां-पाल मराट् ने कहा—लेवोइज़े क्रांति का दुश्मन है। कपटी है। तानाशाहों का दोस्त और बदमाशों का शिष्य है। उसे तो सबसे नजदीकी लैम्पपोस्ट पर फांसी दे देनी चाहिए। लेवोइज़े के दोस्तों, साथी वैज्ञानिकों ने अपील भी की। उसके वैज्ञानिक योगदान और सेवा की दुहाई दी, लेकिन जज ने कहा—फ्रांसीसी गणराज्य को वैज्ञानिकों की जरूरत नहीं है।

8 मई, 1794 को क्रांतिकारी अदालत ने 'फर्मे जनरेल' के गिरफ्तार सदस्यों के मुकद्दमे की सुनवाई की। फैसला चंद घंटों में ही हो गया। लेवोइज़े और 27 अन्य व्यक्तियों को मृत्यु दंड दे दिया गया। उसी दिन अपराह्न में गिलोटीन से लेवोइज़े और साथियों के सर कलम कर दिए गए। लेवोइज़े का शरीर भी एक सामूहिक कब्र में फेंक दिया गया।

महान फ्रांसीसी गणितज्ञ और खगोलविद कोम्ते जोसेफ लुई लैग्रेंज ने तब कहा था—उसका सर कलम करने में केवल एक क्षण लगा, लेकिन उसकी तरह का दूसरा व्यक्ति पैदा होने में एक शताब्दी लग जाएगी। □

[श्री देवेंद्र मेवाड़ी, गली- 5/109ए, कृष्णानगर, सफदरजंग इन्क्लेव, नई दिल्ली- 110 029]
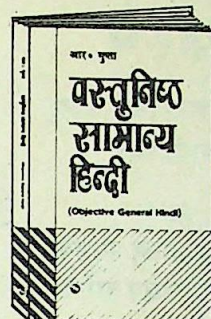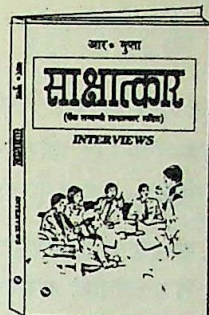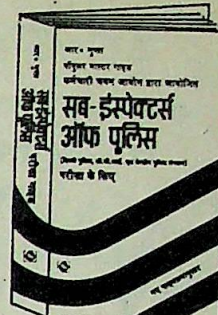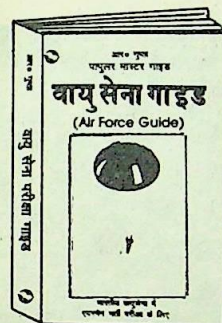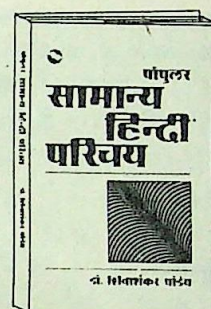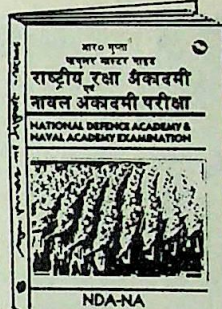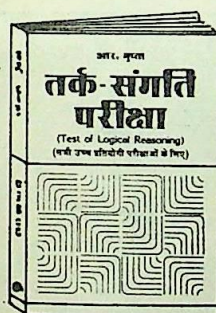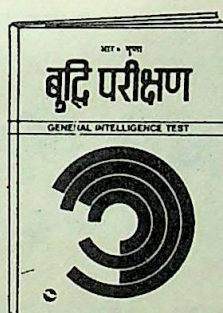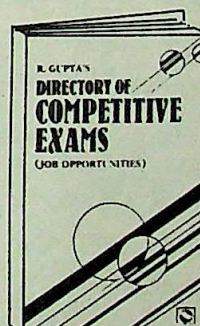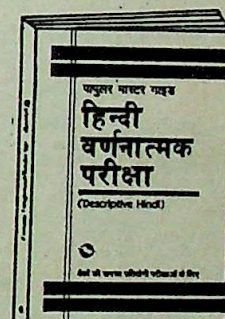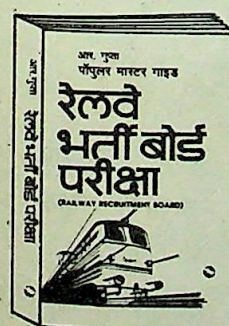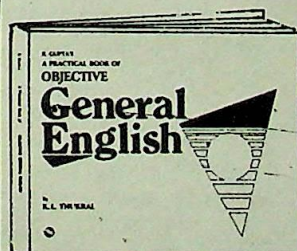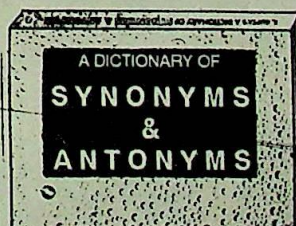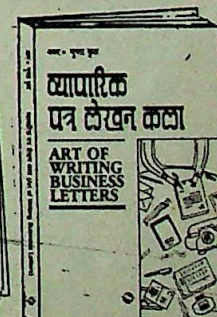
डायमण्ड कॉमिक्स

की ओर से नन्हें मुन्नों के लिए अब हर माह

डायमण्ड वीडियो फिल्म

आप के जाने माने मशहूर पात्र नटखट पिंकी-शरारती बिल्लू
लम्बू मोटू-राजन इकबाल-मोटू छोटू-फौलादी सिंह
चाचा भतीजा- महाबली शाका

अपना सजीव रूप लिए, साहस भरे कारनामों के साथ आपके टेलीविज़न पर 90 मिनट तक आपका भरपूर मनोरंजन करेंगे।

(मूल्य 125/-, डाक व्यय अलग)

अप्रैल माह के अन्य नये कामिक्स	
राजन इकबाल और आधी रात का हंगामा	6.00
फौलादी सिंह और डाक्टर डेविल	6.00
चिम्पू और अंधेरे का राजा	6.00
मोटू छोटू और संदूक का रहस्य	6.00
चाचा भतीजा और इच्छाधारी सर्प	6.00
बिल्लू- V (डाइजेस्ट)	15.00
फैण्टम-XI (डाइजेस्ट)	15.00
गिनेस बुक आफ वर्ल्ड रिकार्ड्स-I (डाइजेस्ट)	15.00

मई माह के अन्य नये कामिक्स	
महाबली शाका और गुलामों का द्वीप	6.00
लम्बू मोटू और प्रतिशोध के अंगारे	6.00
पिंकलू और नौलखा हार	6.00
मामा भांजा और चमत्कारी रोबोट	6.00
जेम्स बाण्ड-I	6.00
पिंकी-IV (डाइजेस्ट)	15.00
फैण्टम-XII (डाइजेस्ट)	15.00
गिनेस बुक आफ वर्ल्ड रिकार्ड्स-II (डाइजेस्ट)	15.00

मूल्य 8/- पृष्ठ 100

महिलाओं की सम्पूर्ण पत्रिका

गृहलक्ष्मी

डायमण्ड की ओर से युवा महिलाओं के लिए सौम्य पत्रिका 'गृहलक्ष्मी'। जो आपका मनोरंजन भी करेगी, प्यार भी देगी, अनुभव भी देगी और जीवन में सार्थकता भर देगी।

स्थायी स्तम्भ

- मेरी समस्या-आशा प्राण
- कार्टूनिस्ट प्राण का रंगीन फीचर
- विशिष्ट व्यक्ति–विशिष्ट महिला संस्था
- घर परिवार-सास बहू के झगड़े-समस्या प्रधान लेख
- ऐ जी सुनियें–अशोक चक्रधर
- नन्हें मुन्नों की अठखेलियां
- दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी
- फिल्मी दुनिया
- स्वास्थ्य समस्या
- मजेदार व्यंजन
- पति पत्नी-समस्याएं
- आपके पत्र
- विश्व दर्शन
- भूल जो बन गई शूल
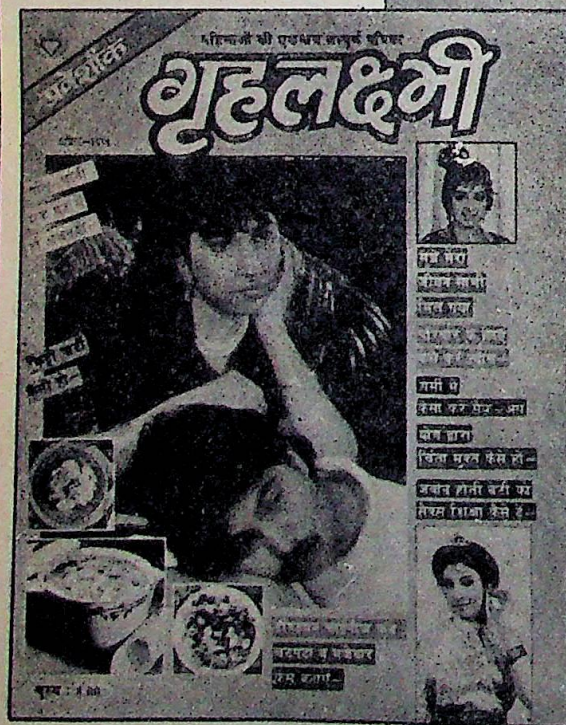
अपने निकट के बुक स्टाल से खरीदें या हमें लिखे।

डायमण्ड मैगजीन्स 2715, दरिया गंज, नई दिल्ली-110002 फोन: 3273493, 3273495

डायमंड कामिक्स प्रा. लि. 2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

NEW TITLES FROM PID

LIFE: FROM CELL TO CELL

by Bal Phondke

The exciting story of Life - an eternal journey from cell to cell is told in this profusely illustrated popular science volume especially written for young readers.

ISBN 81-85038-91-0
74 pages, Price Rs 8.00

LEARN SCIENCE YOURSELF

A compendium of exciting science experiments and do-it-yourself projects that are not only educative but also of practical utility.

ISBN 81-85038-93-7
128 pages, Price Rs 10.00

BIRDS

This well-illustrated volume covers all aspects of the life of Indian birds and their interaction with man. The classification of birds, their inter-relationships and their descriptions are given in detail.

ISBN 81-85038-90-2
152 pages, Price Rs 125.00

PLANTS FOR RECLAMATION OF WASTELANDS

This illustrated volume describes 1003 species of plants suitable for planting on wastelands to provide timber, fuel, fodder and other economic products. A short account on the reclamation of mined wastelands in also included.

ISBN 81-85038-89-9
684 pages, Price Rs. 325.00

GROUNDNUT

Groundnut is one of India's leading oil producing crops. This volume deals with the origin, breeding, cultivation, diseases and pests and their control, processing of oil and meal and utilization and marketing of this important crop.

56 pages, Price Rs 45.00

INDIAN BRASSICAS

Brassica occupies a pride of place among the oilseed crops of India. This well-illustrated monograph gives a comprehensive coverage of the origin, breeding, cultivation, utilization and marketing of this important oilseed crop.

82 pages, Price Rs 50.00

COMPENDIUM OF INDIAN MEDICINAL PLANTS

Vol 1 (1960-69)

Ram P. Rastogi & B.N. Mehrotra

A detailed treatise written for pharmaceutical technologists, entrepreneurs, industrialists, production executives, research scientists and academicians as a much needed and timely update to the 1956 monumental book Glossary of Indian Medicinal Plants by Chopra, Nayar and Chopra

ISBN 81-85042-05-5
Pages : xii + 498; Price : Rs. 180, $ 65, £ 45

Copies available from:
Senior Sales & Distribution Officer
Publications & Information Directorate, CSIR
Dr K.S. Krishnan Marg
New Delhi 110012